ॐ

परमात्मने नमः

श्री सीमन्धर-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन साहित्य स्मृति संचय

अमृत प्रवचन

(भाग-3)

परम पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
'बहिनश्री के वचनामृत' पर प्रवचन
(प्रवचन क्रमांक 61 से 91, वचनामृत 168 से 235)

: हिन्दी अनुवाद व सम्पादन :
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

: सह-प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250
फोन : 02846-244334

प्रथम संस्करण : 1000 प्रतियाँ

वीर निर्वाण 2540 विक्रम संवत् 2070 ईस्वी सन् 2014

ISBN No. :

न्यौछावर राशि : 20 रुपये मात्र

प्राप्ति स्थान :

1. **श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,**
   सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250, फोन : 02846-244334
2. **श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट**
   302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, वी. एल. महेता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट),
   मुम्बई-400056, फोन (022) 26130820 Email - vitragva@vsnl.com
3. **श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट (मंगलायतन)**
   अलीगढ़-आगरा मार्ग, सासनी-204216 (उ.प्र.) फोन : 09997996346, 2410010/11
4. **पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट,**
   ए-4, बापूनगर, जयपुर, राजस्थान-302015, फोन : (0141) 2707458
5. **पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट,**
   कहान नगर, लाम रोड, देवलाली-422401, फोन : (0253) 2491044
6. **श्री परमागम प्रकाशन समिति**
   श्री परमागम श्रावक ट्रस्ट, सिद्धक्षेत्र, सोनागिरजी, दतिया (म.प्र.)
7. **श्री सीमन्धर-कुन्दकुन्द-कहान आध्यात्मिक ट्रस्ट**
   योगी निकेतन प्लाट, 'स्वरुचि' सवाणी होलनी शेरीमां, निर्मला कोन्वेन्ट रोड
   राजकोट-360007 फोन : (0281) 2477728, मो. 09374100508

टाईप-सेटिंग : **विवेक कम्प्यूटर्स,** अलीगढ़

मुद्रक :

प्रकाशकीय

भारत की भव्य वसुन्धरा अनादि से सन्तरत्नों की पवित्र भूमि रही है। यहाँ तीर्थंकर परमात्मा, वीतरागी सन्त एवं ज्ञानी-धर्मात्मा होते रहे हैं। इस देश का सौराष्ट्र प्रान्त भी अध्यात्मप्रधान जैन धर्म के गगन मण्डल में चमकीले नक्षत्र श्रीमद् राजचन्द्र, अध्यात्मयुगस्त्रष्टा आत्मज्ञसन्त पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी और प्रशममूर्ति स्वानुभवविभूषित पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन जैसे असाधारण स्वानुभूतिप्रकाशक साधक धर्मात्माओं की भेंट प्रदान कर पुण्य भूमि बना है।

परम देवादिदेव चरम तीर्थंकर पूज्य श्री महावीरस्वामी की दिव्यध्वनि द्वारा प्रवाहित और गुरु-परम्परा से प्राप्त परम पावन अध्यात्मप्रवाह को भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने परमागम श्रीसमयसार आदि प्राभृत भाजनों में सूत्रबद्ध करके चिरंजीवी किया है। भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने महाविदेहक्षेत्र में विराजमान शाश्वत् भगवन्त श्री सीमन्धरस्वामी के दर्शन एवं दिव्यध्वनि श्रवण का महान सौभाग्य भी प्राप्त किया था, जो इस पंचम काल की एक अविस्मरणीय घटना है। आचार्यश्री द्वारा प्रवाहित वीतरागी तत्त्वज्ञान के पुनीत अमृत का पान करके अन्तर के पुरुषार्थ द्वारा स्वानुभूति समृद्ध आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करके, जिन्होंने सौराष्ट्र, गुजरातसहित सम्पूर्ण देश तथा विदेशों में भी शुद्धात्मतत्त्व प्रमुख अध्यात्मविद्या का पवित्र आन्दोलन प्रसारित करके वर्तमान शताब्दी के भौतिक युग में दु:खी जीवों का उद्धार किया है - शाश्वत् शान्ति का मार्ग उपलब्ध कराया है - ऐसे जिनशासन प्रभावक, करुणामूर्ति, परमोपकारी, परम पूज्य सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामी की शुद्धात्म-सुधारसमय मंगल पवित्रता, पुरुषार्थ से चमत्कृत ध्येयनिष्ट सहज वैराग्य, उत्तम बाल ब्रह्मचर्यसहित पवित्र जीवन, स्वानुभूतिमूलक वीतरागमार्ग-दर्शक सदुपदेश तथा अन्य अनेकानेक उपकारों का वर्णन कितना भी संक्षिप्तरूप से किया जाये तो भी अशक्य है।

आपश्री के विविध उपकारों में से एक महान उपकार यह है कि आपने पूज्य बहिनश्री की पहिचान जगत् को प्रदान की है। पूज्य बहिनश्री के परिणमन में से निकले हुए शब्द अर्थात् 'बहिनश्री के वचनामृत'; इन वचनामृतों में अनुभव का सार, समयसार का सार, समस्त शास्त्रों का सार आ गया है। सादी भाषा में परम सत्य प्रकाशित हुआ है। जैन-जैनेतर सबको समझ में आ सकने योग्य अध्यात्ममार्ग का खजाना वचनामृत में है। जगत् का भाग्य है कि यह अलौकिक पुस्तक प्रसिद्ध हुई।

विशिष्ट ज्ञानविभूषित स्वानुभूतिपरिणत बहिनश्री चम्पाबेन की पवित्र मुद्रा ही मानो साधकदशा

का मूर्तरूप हो तथा सम्यक् मोक्षमार्ग का मूक उपदेश प्रदान कर रही हो! शास्त्रोपम गम्भीर, तथापि सादी सरल भाषा में उनके वचनामृत विविध कोटि के सर्व जीवों को अति उपकारक होते हैं। वे शुद्धात्मरूप द्रव्यसामान्य की मुख्यतापूर्वक, अनेकान्त सुसंगत द्रव्य-पर्यायस्वरूप निज आत्मतत्त्व को हस्तकमलवत् दर्शाते हैं और साधक जीवों की अटपटी अन्तर परिणति की अविरुद्धरूप से स्पष्ट समझ प्रदान करते हैं।

कृपासागर पूज्य गुरुदेवश्री भी सभा में पूज्य बहिनश्री की स्वानुभवविभूषित अन्तर परिणति; अनेक भवसम्बन्धी धर्म विषयक असाधारण जातिस्मरणज्ञान और वचनामृत की विशिष्टता की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते थे। पूज्य गुरुदेवश्री की वह प्रसन्न मुद्रा हजारों श्रोताओं के स्मृति-पटल में स्पष्टरूप से आज भी तैरती है।

पूज्य बहिनश्री गुणगम्भीर, देव-गुरु के परम भक्त, अन्तरंग में अत्यन्त महान और पवित्र तथा बाह्य में अत्यन्त निर्लेप थीं। उनकी निर्विकल्प आनन्दमय अद्‌भुतदशा परखकर पूज्य गुरुदेवश्री ने उन्हें 'भगवती', 'जगदम्बा' जैसे असाधारण विशेषण प्रदान किये थे।

जैनधर्म की गीता अर्थात् 'बहिनश्री के वचनामृत' और मुमुक्षु जगत के लिये अमृत की बेल! पूज्य बहिनश्री लघुवय से ही उग्र पुरुषार्थी थी। इस भव में ही आत्मप्राप्ति कर लेने योग्य है - ऐसी तीव्र धगश, खटक बचपन से ही थी। सतत् पुरुषार्थ, गुरु की महिमा, मुमुक्षु की भूमिका, भेदज्ञान, ज्ञानी पुरुष की अन्तर्बाह्यदशा, आत्मा प्राप्त करने की विधि, मुनिदशा का वर्णन, आदि वचनामृत के बोल में दिखता है।

इस वचनामृत में 432 बोल हैं। उन पर पूज्य गुरुदेवश्री के 181 प्रवचन हुए हैं। उन प्रवचनों को अक्षरशः छह भाग में प्रकाशित किये जायेंगे। उनमें से यह तीसरा भाग है। पूज्य गुरुदेवश्री के सी.डी. टेप प्रवचन सुनते समय शब्दशः वाचन पद्धति मुमुक्षुओं को अत्यधिक अनुकूल और सुगम हुई है; इस कारण यह शब्दशः प्रवचन-ग्रन्थ प्रकाशित करते हुए, हमें अत्यन्त हर्ष हो रहा है।

बहिनश्री के वचनामृत में समाविष्ट अनेक आध्यात्मिक विषयों पर पूज्य गुरुदेवश्री ने जो अद्‌भुत छनावट की है-तलस्पर्शी स्पष्टीकरण किया है, उसे पढ़कर आश्चर्य होता है कि आहा...हा...! ऐसे गम्भीर भाव भरे हैं! यह वचनामृत अमृत है और पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन भी अमृत हैं; इसलिए इस प्रवचन ग्रन्थ का नाम 'अमृत प्रवचन' रखा गया है। एक ओर दिव्य-देशना का प्रपात बहानेवाला तीर्थंकर का द्रव्य और दूसरी ओर दिव्य-देशना को ग्रहण करनेवाला गणधर का द्रव्य! कैसा भव्य सुयोग! इस दिव्य-देशना का मूल्यांकन किस प्रकार हो सकता है!! परम पूज्य गुरुदेवश्री ने यह अमृतसागर प्रवचनों की भेंट प्रदान करके समस्त मुमुक्षुओं को निहाल कर दिया है।

'बहिनश्री के वचनामृत' ग्रन्थ पर पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनों का बारम्बार अमृतपान कर लेने योग्य है। एक-एक बोल में अर्थ गम्भीरता, तत्त्वविषय की गहरायी, तलस्पर्शी अनुभव-पूर्ण मार्गदर्शन, जगत के जीवों के प्रति करुणापूर्ण पवित्रता की भावना-इत्यादि अनेकानेक गुणों का दर्शन कराते हुए ये प्रवचन, मुमुक्षु जीव को आत्महित में निश्चित ही निमित्तभूत होंगे।

इन प्रवचनों को शब्दश: लिखकर गुजराती भाषा में तैयार करने हेतु श्री निलेशभाई जैन, भावनगर के प्रति आभार व्यक्त करते हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद, साथ ही सी.डी. प्रवचन से मिलान पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियाँ (राजस्थान) द्वारा किया गया है। इस हिन्दी प्रकाशन में व्यक्तिगत नाम एवं सम्बोधन आदि भी यथावत् रखे गये हैं। जहाँ आवाज की अस्पष्टता से वाक्य समझ में नहीं आया, वहाँ ..... करके स्थान छोड़ दिया गया है। ग्रन्थ के मूल अंश को बोल्ड टाईप में दिया गया है।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ के टाईप सेटिंग के लिए श्री विवेककुमार पाल, विवेक कम्प्यूटर्स, अलीगढ़ तथा ग्रन्थ के सुन्दर मुद्रण कार्य के लिए ..... के प्रति आभार व्यक्त करते हैं। इसके अलावा सभी सहयोगियों का सहृदय आभार व्यक्त करते हैं।

अन्त में 'बहिनश्री के वचनामृत' के अमृत प्रवचनों का स्वाध्याय करके सभी आत्मार्थी परम शान्ति को प्राप्त हों, ऐसी भावना है।

निवेदक

ट्रस्टीगण, श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई

एवं

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 - ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म**

का श्रावक हूँ। सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्‌भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल **'श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर'** का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्‌घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्‌गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर,

पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त

पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन क्रमांक	दिनाङ्क	वचनामृत	पृष्ठ नम्बर
६१	११-०८-१९७८	१६८-१७०	१
६२	१२-०८-१९७८	१७१-१७२	१५
६३	१३-०८-१९७८	१७३-१७५	३०
६४	१४-०८-१९७८	१७५-१७६	४५
६५	१५-०८-१९७८	१७७-१७८	६०
६६	१६-०८-१९७८	१७९-१८०	७६
६७	१७-०८-१९७८	१८१-१८३	९२
६८	१८-०८-१९७८	१८४-१८५	१०७
६९	१९-०८-१९७८	१८६-१८९	१२२
७०	२०-०८-१९७८	१८९-१९०	१३८
७१	२१-०८-१९७८	१९१-१९२	१५३
७२	२२-०८-१९७८	१९३-१९५	१६८
७३	२३-०८-१९७८	१९६-१९७	१८३
७४	२४-०८-१९७८	१९७	१९८
७५	२५-०८-१९७८	१९७-१९८	२१४
७६	२६-०८-१९७८	१९८-१९९	२३०
७७	२७-०८-१९७८	१९९-२००	२४७

प्रवचन क्रमांक	दिनाङ्क	वचनामृत	पृष्ठ नम्बर
७८	२८-०८-१९७८	२००	२६४
७९	२९-०८-१९७८	२०१	२८१
८०	३०-०८-१९७८	२०१-२०३	२९७
८१	३१-०८-१९७८	२०४-२०५	३१२
८२	०१-०९-१९७८	२०६-२०८	३२९
८३	०२-०९-१९७८	२०८-२१०	३४६
८४	०३-०९-१९७८	२१०-२११	३६२
८५	०४-०९-१९७८	२१२-२१४	३७८
८६	०५-०९-१९७८	२१५-२१७	३९२
८७	०६-०९-१९७८	२१७-२२२	४०७
८८	०८-०९-१९७८	२२३-२२६	४२२
८९	०९-०९-१९७८	२२७-२२९	४३४
९०	१०-०९-१९७८	२२९-२३१	४५२
९१	११-०९-१९७८	२३१-२३५	४६७

परम पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी का अपार उपकार

(पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन के भक्तिभीने उद्‌गार)

पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी तो तीर्थंकर भगवान की दिव्यध्वनि जैसी महामंगलकारी, आनंद उपजानेवाली थी। ऐसी वाणी का श्रवण जिनको हुआ वे सब भाग्यशाली हैं। पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी और पूज्य गुरुदेवश्री तो इस काल के एक अचम्भा थे। बाहरी अभ्यास तो जीव को अनादि से है परन्तु चैतन्य का अभ्यास तो इस काल में पूज्य गुरुदेवश्री ने बहुत सालों तक करवाया है। उनकी वाणी रसात्मक-कसदार थी। उनके अन्तर में श्रुत की धारा और उनकी वाणी में भी श्रुत की गंगा बहती थी। उनकी महा आश्चर्यकारी मुखमुद्रा-शान्तरस बरसाती, उनके नयन उपशमरस भरपूर। अहो! गुरुदेवश्री तो भरत (क्षेत्र) के सौभाग्य थे, भरतक्षेत्र भाग्यशाली कि पूज्य गुरुदेव विदेह से सीधे यहाँ पधारे। सौराष्ट्र भाग्यशाली, जैनसमाज महाभाग्यशाली। पूज्य गुरुदेवश्री ने सच्चा जिनशासन स्वयं ने प्रगट किया। प्रसिद्धरूप से समझाया। और ऐसा काल तो कभी ही आता है। अहो! इस सोनगढ़ में तो 45-45 साल तक मूसलधार बारिश की माफ़िक मिथ्यात्व के जमे हुए चिकने सेवार जैसे पापभाव को उखेड़ने के लिये तेज हवा की माफ़िक पूज्य गुरुदेवश्री ने सम्यक्‌श्रुत की प्रभावना की थी। उनकी कृपा हमलोगों पर सदैव रहती थी। हम तो उनके दास हैं, अरे! दास तो क्या? दासानुदास ही हैं। 3.

★ ★ ★

अहो! पूज्य गुरुदेवश्री ने तो समग्र भरत(क्षेत्र) को जागृत कर दिया है। उनका तो इस क्षेत्र के सर्व जीवों पर अमाप उपकार है। अनन्त-अनन्त उपकार है, पूज्य गुरुदेवश्री का द्रव्य तो अनादि मंगलरूप तीर्थंकर का द्रव्य था। इतना ही नहीं उन्हें वाणी का अद्‌भुत-अनुपम और अपूर्व योग था। पूज्य गुरुदेवश्री अनुपम द्रव्य थे। अपूर्वता के दातार-उनकी वाणी सुननेवाले पात्र जीवों को अन्तर से अपूर्वता भासित हुए बिना नहीं रहती। उपादान सबका अपना-अपना लेकिन उनका निमित्तत्त्व प्रबल से प्रबल था। उन्हें सुननेवाले को अपूर्वता भासित हुए बिना रहे ही नहीं। उनकी वाणी में ऐसा अतिशय था कि उन्हें सुननेवाला कोई भी जीव कभी भी नीरस होकर उनका वक्तव्य सुनते हुए छोड़ दे ऐसा नहीं बनता। ऐसा परम कल्याणकारी मूसलधार उपदेश था। 4.

ॐ

नमः श्री सिद्धेभ्यः

अमृत प्रवचन

(अध्यात्मयुगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री के वचनामृत पर धारावाहिक प्रवचन)

भाग-३

श्रावण शुक्ल-८, शुक्रवार, दिनाङ्क ११-०८-१९७८
वचनामृत-१६८ से १७० प्रवचन-६१

सम्यग्दर्शन होते ही जीव चैतन्यमहल का स्वामी बन गया। तीव्र पुरुषार्थी को महल का अस्थिरतारूप कचरा निकालने में कम समय लगता है, मन्द पुरुषार्थी को अधिक समय लगता है; परन्तु दोनों अल्प-अधिक समय में सब कचरा निकालकर केवलज्ञान अवश्य प्राप्त करेंगे ही॥१६८॥

सम्यग्दर्शन होते ही जीव चैतन्यमहल का स्वामी बन गया। क्या कहते हैं ? कि चैतन्यस्वरूप जो भगवान परमानन्द प्रभु, उसका पुण्य-पाप के विकल्प और निमित्त के आश्रय से छूटकर त्रिकाली आनन्द अन्तर्मुख वस्तु, उस ऊपर अनुभव होने पर, उसकी दृष्टि होने पर जो कुछ अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आवे और उस स्वाद में प्रतीति हो कि यह तो अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप ही प्रभु है। उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहा..हा..! अभी तो धर्म की पहली सीढ़ी है। आहा..हा..!

अनन्त-अनन्त गुण का सागर प्रभु, जिसके अनन्त गुण का पार नहीं - ऐसा जो एकरूप भगवान, जिनस्वरूप कहो, भगवानस्वरूप कहो, परमात्मस्वरूप कहो; उसे ये पुण्य और पाप के जो भाव हैं, वे तो विकारीभाव हैं। दया, दान, व्रत, पूजा, भक्ति — ये सब भाव तो शुभ विकार हैं; इन्हें छोड़कर त्रिकाली निर्विकार प्रभु की सत्ता का स्वीकार (होना), पूर्ण अस्तिरूप प्रभु है, उसकी महिमा आकर अन्तर के पूर्ण स्वभाव का निर्विकल्परूप से स्वीकार (होना)... आहा..हा..! उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं।

मुमुक्षु : निर्विकल्परूप से स्वीकार अर्थात् क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्विकल्परूप से स्वीकार। सम्यग्दर्शन निर्विकल्प है। क्यों? कि वस्तु निर्विकल्प है। आहा..हा..! बहुत सूक्ष्म बात, बापू! लोगों को वीतराग धर्म (की खबर नहीं)। आत्मा है, वह निर्विकल्प निज-जिनस्वरूप ही है। समझ में आया? असंख्यप्रदेशी भले हो, परन्तु दृष्टि में उसका भेद नहीं कि यह असंख्यप्रदेशी है। असंख्य प्रदेश में अनन्त गुण विस्तार से बिछे हुए पड़े हैं, तथापि उसके गुणभेद की जहाँ दृष्टि नहीं। क्योंकि वस्तु स्वयं निर्विकल्प चैतन्यघन है। आहा..हा..!

राग / विकार दुःख है। आहा..हा..! उससे रुचि को बदलकर, अन्तर्मुख वस्तु है पूर्णानन्द; बाहिर का देखने का, मानने का छोड़कर अन्तर में देखने का और मानने का प्रगट करे; उसे अन्तर में जैसा पूर्णस्वरूप है, ऐसा उसमें ज्ञान की पर्याय में ज्ञान हो और उसमें प्रतीतिरूप सम्यग्दर्शन हो। आहा..हा..! बहुत सूक्ष्म बात, बापू! यहाँ तो प्रथम सम्यग्दर्शन की ही बात है। आहा..हा..!

सम्यक् अर्थात् सत्य दर्शन। सत्यदर्शन अर्थात् पूर्ण सत्यस्वरूप जो है, जिसकी सत्ता पूर्ण सत्य है, आहा..हा..! जिसका अस्तित्व / हयाति / सत्ता पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान से सत्तावाली चीज़ है। आहा..हा..! उसके सन्मुख होने पर; निमित्त-देव-शास्त्र और गुरु से लक्ष्य छोड़ने पर, उसकी श्रद्धा है, भगवान और वीतराग की श्रद्धा है, उसका राग, उसका लक्ष्य छोड़ने पर, उस राग का जो ज्ञान, पर्याय में होता है, उस पर्याय का भी लक्ष्य छोड़ने पर। ऐसी बात है। लोगों को कठिन लगती है। निवृत्ति कहाँ है? समय कहाँ है? आहा..हा..!

महाप्रभु अन्दर बिराजता है, जिसके दरबार में अनन्त गुणरत्न भरे हैं। आहा..हा..!

ऐसे प्रभु के अन्तर में; बहिर्मुख का देखना, मानना छोड़कर अन्तर्मुख देखने और मानने में जाये, आहा..हा..! तब उसे सत्य जितना जैसा है, उतना उसकी प्रतीति में आवे; इसलिए उस प्रतीति को सम्यग्दर्शन कहते हैं। ऐसी बात है, बापू! आहा..हा..! और वह सम्यग्दर्शन बिना जो कोई शास्त्रज्ञान करे, व्रतादि तप करे, वह सब संसार है। समझ में आया?

सम्यक् अर्थात् सत्य दर्शन। सत्स्वरूप भगवान, सत्स्वरूप सत्ता। पूर्ण शक्ति के भण्डार का धारक ऐसा पूर्ण सत्, उसके आश्रय में जाने पर जो सत्य दर्शन हो, वह निर्विकल्प दर्शन होने पर, जितने गुण की संख्या अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. हैं, उन सभी गुण का एक अंश व्यक्त / प्रगट पर्याय के वेदन में आता है। धन्नालालजी! आहा..हा..! 'सर्व गुणांश वह समकित' श्रीमद् का ऐसा वचन है। अपने टोडरमलजी की रहस्यपूर्ण चिट्ठी में 'ज्ञानादि अनन्त गुणों का एक अंश प्रगट हो, उसे समकित कहते हैं' (ऐसा कहा है)। आहा..हा..! यह तो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करो, व्रत पालो (ऐसा धर्म मानता है)।

हमारे मूलचन्दजी अन्त में कहते थे। (संवत्) १९९० के साल की बात है। कितने वर्ष हुए? ५४। १९९० में व्याख्या आयी। मोक्षमार्गप्रकाशक चलता था, वहाँ तो हजारों लोग व्याख्यान में आते थे। तीन सौ तो घर हैं। सब सेठ (आते थे)। उपाश्रय में समाते नहीं, पीछे खाली गली है, वहाँ लोग बैठते थे। हमारी प्रसिद्धि तो पहले से इतनी है न! वहाँ आगे सुनते हुए उन्होंने एक बार कहा था कि देखो भाई! इस क्रियाकाण्ड से धर्म मानता है और संक्षेप रुचिवाला है, उसे समकिती कहना - ऐसा भगवान नहीं कहते। सम्प्रदाय की दृष्टि रखकर हमें संक्षेप रुचि है, विस्तार (रुचि) नहीं (-ऐसा कहे)। ऐ..! यह तो १९८० की बात है, ३४ और बीस = ५४ वर्ष। पूरी सभा (भरी थी)। अभी तो थोड़े लोग हैं, वह तो पूरा उपाश्रय भर जाता था, पीछे गली भर जाती थी। यह उसे सहन नहीं हुआ, बाहर भाग गये, जंगल में दीर्घ शंका को चले गये। आकर कहते हैं तू यह कहता था, वह मुझे सहन नहीं हुआ था, इसलिए मैं चला गया। कहा - न रुचे तो भी बैठना तो था न! कहा - मार्ग तो यह है। सम्प्रदाय की दृष्टि रखकर रुचि नहीं, इसलिए संक्षेप रुचि-समकित है - यह बात एकदम मिथ्या है। धन्नालालजी! वेरिस्टर कहलाते थे। हमारे छोटे गुरुभाई थे। वेरिस्टर, दृष्टि एकदम विपरीत। आहा..हा..! हमारे हिम्मतभाई झोबालिया के गुरु थे। देखा था या नहीं? तुम्हारे गाँव के थे न? आहा..हा..!

संक्षेप रुचि का अर्थ इतना है कि विशेष ज्ञान नहीं परन्तु अनन्त आनन्दस्वरूप भगवान पूर्णानन्द के नाथ का अनुभव और रुचि है, दृष्टि हुई है, उसे विशेष ज्ञान नहीं; विशेष ज्ञान नहीं, इसलिए विपरीत ज्ञान है और विपरीत श्रद्धा है, इसलिए संक्षेप रुचि है— ऐसा नहीं है। दस प्रकार आते हैं न ? समकित के दस प्रकार नहीं आते ? मोक्षमार्गप्रकाशक, आत्मानुशासन में आते हैं। संक्षेप रुचि, विस्तार रुचि। बड़ा अधिकार तब ५४ वर्ष पहले सभा में चलता था। खलबलाहट.. खलबलाहट (हो गयी)। कहा, भाई! चाहे जो मानो बाकी मार्ग तो यह है। आहा..हा..!

वह कहे कि अपने को यह जो सम्प्रदाय की दृष्टि मिली है, वह समकित है और अब व्रत और तप करना, वह चारित्र है। कहा–दोनों मिथ्या है। फिर एकान्त में बुलाकर कहा। यह १९८० की बात है। कहा, देखो! तुम्हें हम मिथ्यादृष्टि मानते हैं। परन्तु यदि यह बात बाहर प्रसिद्ध की तो उस समय हम सम्प्रदाय छोड़ देंगे, तुम्हारे वाड़ा में आ गये हैं, इसलिए हम यहाँ बैठे हैं, मुनि हैं – ऐसा नहीं। पाँच–छह व्यक्ति एकान्त में बैठे थे। एकान्त में बात हुई थी, कमरे पर। उस समय दब गयी, फिर... गये भेष ले लूँ और ऐसा करूँ... तुम चाहे जैसा करो मार्ग तो यह है, बापू!

अन्दर आत्मा पूर्णानन्द का नाथ (बिराजमान है) भले उसे विशेष ज्ञान विस्तारवाला न हो.. आहा..हा..! परन्तु वस्तु पूर्ण है, उसका अनुभव–वेदन होता है और सम्यग्दर्शन में अनन्त गुण का व्यक्तपना वेदन (होता है).. इतना सब उस दिन नहीं था, परन्तु उस वस्तु की निर्विकल्प दृष्टि हो, (वह समकित है)। समझ में आया ? जिसमें दया, दान, और व्रत के विकल्प से लाभ होता है, (यह मान्यता हो), वह दृष्टि मिथ्यात्व है। फिर तो सम्प्रदाय छोड़ दिया।

यहाँ कहते हैं **सम्यग्दर्शन होते ही...** आहा..हा..! **जीव चैतन्यमहल का स्वामी बन गया।** आहा..हा..! अनन्त आनन्द और अनन्त सत्ता / अस्तित्ववान गुणों का पिण्ड प्रभु! आहा..हा..! उसमें सन्मुख होकर जहाँ ज्ञान और प्रतीति हुई, वहाँ चैतन्यमहल का स्वामी हो गया। जो अनादि से बाहर की कौतूहल में जो खड़ा था, इसमें ऐसा और इसमें ऐसा है, वह कौतूहल का अर्थात् सुखबुद्धि, आहा..हा..! कोई भी बाह्य पदार्थ की अनुकूलता देखकर अन्दर में कौतुहलता होना कि यह कुछ है, भाई! यह (कुछ) है। आहा..हा..! वह सुखबुद्धि है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहा..हा..! समझ में आया ? आहा..हा..!

दान दिया और व्रत बहुत पालन किये और अपवास करके शरीर को जीर्ण कर दिया, इसकी बाहर की जिसे महिमा है, उसे अन्तर की दृष्टि का अभाव है। आहा..हा..! सम्यग्दृष्टि गृहस्थाश्रम में हो, तथापि उसे युद्ध का भाव भी आता है। आहा..हा..! परन्तु यह सम्यग्दर्शन के बाद की बात है। चक्रवर्ती हो, राजा का कुँवर हो, राज हो और दुश्मन-विरोधी युद्ध करने के लिये आये हों, दुश्मन हो तो यह भाव आता है परन्तु उस भाव को अपना नहीं जानता, उस भाव को, अपने ज्ञान में रहकर उसका ज्ञान करके ज्ञान में वह रहता है। आहा..हा..!

अज्ञानी परजीव के दया का भाव करे, किसी की हिंसा का भाव न करे.. आहा..हा..! और वस्त्र का टुकड़ा भी न रखा हो परन्तु अन्दर में राग की मन्दता की उसे महिमा आती है कि आहा..! हमने तो बहुत किया है। गृहस्थाश्रम छोड़ा, धन्धा छोड़ा, कुटुम्ब छोड़ा - ऐसी जिसे महिमा आती है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहा..हा..! उसे भगवान आत्मा, जिसके अवलम्बन से आनन्द आवे, जिसकी मान्यता करने से... आहा..! आनन्द का फल आवे, जिसे मानने से अनन्त.. अनन्त.. ज्ञान का अंकुर फूटे.. समझ में आया? ऐसा प्रभु का मार्ग है, बापू! भले दुनिया को ऐसा लगे कि एकान्त है। है तो ऐसा ही; सम्यक् एकान्त ही है। आहा..हा..! ऐसा कहते हैं। ऐसे व्रत, तप, भक्ति, पूजा और दान तथा करोड़ों के मन्दिर बनावे, उससे कोई कल्याण नहीं होता? धूल भी कल्याण नहीं होता। सुन न! अब तेरे... आहा..हा..!

सम्यग्दर्शन होते ही... 'होते ही' जीव चैतन्यमहल का स्वामी बन गया। आहा..हा..! जो राग और पर्याय का स्वामी था, वह मिथ्यात्वभाव था। स्वयं, स्वस्वामीसम्बन्ध नाम का इसमें गुण है। सैंतालीस शक्ति में सैंतालीसवीं शक्ति है - स्वस्वामीसम्बन्ध। आहा..हा..! शुद्धस्वभाव द्रव्य, गुण और पर्याय, वह मेरे स्व हैं और मैं उनका स्वामी हूँ। ऐसा सम्यग्दर्शन होने पर इस गुण का परिणमन ऐसा होता है। आहा..हा..! समझ में आया? निर्मल पर्याय, निर्मल गुण और निर्मल द्रव्य, वह मेरा स्व और मैं उसका स्वामी-धनी। इस स्त्री का मैं पति हूँ और पैसे का धनी हूँ और उद्योगपति हूँ और व्यापार का धन्धा मैंने एकत्रित किया और अच्छा ऊँचा किया, यह सब दृष्टि मिथ्यात्व है। आहा..हा..!

अब चैतन्यमहल का जहाँ स्वामी हुआ... आहा..हा..! **तीव्र पुरुषार्थी को महल का अस्थिरतारूप कचरा निकालने में कम समय लगता है,...** तीव्र पुरुषार्थी को अन्दर में रमणता में मन्दता हो, जिसे **तीव्र पुरुषार्थी को महल का अस्थिरतारूप कचरा**

निकालने में कम समय लगता है,... तीव्र पुरुषार्थी को स्वरूप में स्थिरता करने का उग्र प्रयत्न है, उसे अब अन्दर अस्थिरता का कचरा निकालने में थोड़ा समय लगता है। अभी अस्थिरता बाकी है। सम्यग्दर्शन होने पर अस्थिरता अभी चारित्र की अस्थिरता है, उस अस्थिरता का स्वामी नहीं तथा अस्थिरता से मुझे लाभ होगा – ऐसा नहीं परन्तु अस्थिरता है, उसे निकालने के लिये तीव्र पुरुषार्थी को अल्प काल लगता है। आहा..हा..!

मन्द पुरुषार्थी को अधिक समय लगता है;... पुरुषार्थ मन्द हो.. आहा..हा..! तीर्थंकर जैसे ऋषभदेव भगवान का चौरासी लाख पूर्व का आयुष्य था। ८३ लाख पूर्व तक समकिती में, ज्ञान में रहे, चारित्र नहीं था। चैतन्यमहल के स्वामी हो गये थे परन्तु जो चारित्र का पुरुषार्थ, जो अन्तर में रमणता चाहिए, वह ८३ लाख पूर्व तक नहीं आयी। एक पूर्व में सत्तर लाख छप्पन हजार करोड़ वर्ष जाते हैं। तथापि ८३ लाख पूर्व तक पुरुषार्थ की मन्दता थी। आहा..हा..! तीर्थंकर! और भरत चक्रवर्ती को.. आहा..हा..! जहाँ अन्तर में झुके और जहाँ मुनिपना प्रगट हुआ और अन्तर्मुहूर्त में तो केवलज्ञान प्रगट हुआ। आहा..हा..!

मुमुक्षु : पिता-पुत्र को इतना अधिक अन्तर!

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, इतना अन्तर। देखो! ८३ लाख पूर्व तक समकिती, क्षायिक समकिती रहे, हों! ऋषभदेव। यह छह लाख पूर्व तक चक्रवर्ती पद में रहे परन्तु जहाँ काँच भवन में अन्दर जाते हैं, मकान में चारों ओर दर्पण थे। ऐसे अन्दर में दर्पण देखने गये... आहा..हा..! निज का उग्ररूप से अवलोकन किया, वह अवलोकन करने पर क्षण में केवलज्ञान हुआ। आहा..हा..! वह तीव्र पुरुषार्थ है। आहा..हा..! समझ में आया?

मन्द पुरुषार्थी को अधिक समय लगता है; परन्तु दोनों अल्प-अधिक समय में सब कचरा निकालकर केवलज्ञान अवश्य प्राप्त करेंगे ही। आहा..हा..! दूज होगी, उसे पूर्णिमा होगी ही। चन्द्र की दूज, पूर्णिमा होगी ही। इसी प्रकार जिसे निर्विकल्प आत्मा आनन्द का स्वाद आकर सम्यग्दर्शन हुआ.. आहा..हा..! वह जल्दी या देर से भी केवलज्ञान लेकर ही रहेगा। समझ में आया? केवलज्ञान अवश्य प्राप्त करेंगे ही। यह १६८ (बोल पूरा हुआ)।

१६९, यह तो बहुत बोल सब सूक्ष्म हैं। एकदम भावों में आये और संग्रह किया, इसलिए समझने में जरा देरी लगे परन्तु समझने जैसी बात है।

विभावों में और पाँच परावर्तनों में कहीं विश्रान्ति नहीं है। चैतन्यगृह ही सच्चा विश्रान्तिगृह है। मुनिवर उसमें बारम्बार निर्विकल्परूप से प्रवेश करके विशेष विश्राम पाते हैं। बाहर आये नहीं कि अन्दर चले जाते हैं॥१६९॥

विभावों में... अर्थात् पुण्य और पाप के विकल्प और राग में **और पाँच परावर्तनों में...** जगत के द्रव्य के सम्बन्ध में, क्षेत्र के सम्बन्ध में, काल के सम्बन्ध में, भव के सम्बन्ध में और शुभ-अशुभभाव के सम्बन्ध में **कहीं विश्रान्ति नहीं है।** इन दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम में भी कहीं विश्रान्ति नहीं है, यह तो राग है। आहा..हा..! ऐसी बात लोगों को कठिन पड़ती है। प्रभु का मार्ग ऐसा है। अर्थात् प्रभु! तेरा स्वरूप ही ऐसा है। आहा..हा..!

जैन कोई सम्प्रदाय नहीं। जिन, वस्तु का स्वरूप है। 'जिन सो ही आत्मा' 'घट-घट अन्तर जिन वसे।' आहा..हा..! यह स्वयं जिनस्वरूपी भगवान है। यह कोई पक्ष और वाड़ा की बात नहीं है। इस जिनस्वरूप में श्रद्धा-ज्ञान करके स्थिर हो, वह पर्याय में जिन होता है। यह वस्तु का स्वरूप है। यह कहीं कोई पक्ष की बात है और इससे ऐसा होता है - ऐसा कुछ है नहीं। आहा..हा..! समझ में आया?

विभावों में और पाँच परावर्तनों में... शुभभाव विभाव में आ जाता है। **कहीं विश्रान्ति नहीं है।** आहा..हा..! **चैतन्यगृह ही सच्चा विश्रान्तिगृह है।** चैतन्यगृह - अनन्त गुण का एक पिण्ड - ऐसा प्रभु, वही वास्तविक विश्रान्ति, विश्रान्ति लेने के लिये वह गृह है। आहा..हा..! निजघर ही विश्रान्ति का स्थान है। रागादि परघर है; वे सब थकान के (स्थान हैं)। राग और दुःख के स्थान हैं। ऐसी बात अभी लोगों को (कठिन पड़ती है)।

चैतन्यगृह! निजघर भगवान पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञानादि, पूर्ण, एक-एक गुण पूर्ण—ऐसे अनन्त गुण का पूर्णरूप—ऐसा चैतन्यघर-चैतन्यगृह, वह विश्रान्ति का स्थान है। यह मेरा घर है और ये मेरे महल हैं और यह मेरे मकान हैं। आहा..हा..! अरे! प्रभु! कहाँ गया तू?

मुमुक्षु : कथंचित् है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कथंचित् अर्थात्? मिथ्यामान्यता, वह यथार्थ है। वह मिथ्यामान्यता है। आहा..! अरे! प्रभु! देखो न!

मुमुक्षु : कथंचित् नहीं लगाना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कथंचित् लगाया न ! मिथ्यात्व की अपेक्षा से वह मिथ्यादृष्टि है। सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा से वह मिथ्यादृष्टि है। आहा..हा.. !

मुनिवर... अब विश्रान्तिगृह भगवान आनन्दकन्द स्थल अन्दर पड़ा है। प्रभु तो अतीन्द्रिय आनन्द का दल है। इन्द्रियों के ओर के आनन्द की जो कल्पना है, वह तो दुःखरूप है। आहा..हा.. ! इन्द्रियों के विषयों में जो कोई ठीक लगता है, वह कल्पना तो भ्रम और दुःख है। आहा..हा.. ! स्वयं ही आनन्द का घर है न ! आहा.. ! अर्थात् दुःख की थकान उतारने के लिये विश्रामगृह तो आत्मा है। आहा..हा.. ! ऐसा उपदेश अब।

मुनिवर उसमें बारम्बार निर्विकल्परूप से प्रवेश करके विशेष विश्राम पाते हैं। आहा..हा.. ! समकिती को तो एकदम अन्दर में बारम्बार उपयोग आवे – ऐसा नहीं। किसी समय बहुत देरी लगे। मुनि हैं, जिन्हें सच्चे सन्त कहते हैं... आहा..हा.. ! वे मुनिवर उसमें– आनन्द के घर में – अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रियज्ञान जो विश्रामघर है... आहा..हा.. ! उसमें **निर्विकल्परूप से प्रवेश...** बारम्बार अभेदरूप से प्रवेश करके। आहा..हा.. ! निर्विकल्प परिणतिरूप से उसमें प्रवेश करके। आहा..हा.. ! अरे ! बापू ! मुनिपना किसे कहते हैं ! आहा..हा.. !

मुनिवर... आहा..हा.. ! कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य आदि सन्त अन्दर में बारम्बार निर्विकल्परूप से प्रवेश करके **विशेष विश्राम पाते हैं।** विशेष आनन्द और विश्राम और स्थिरता वहाँ पाते हैं। आहा..हा.. ! आनन्द के धाम में स्थिरता पाते हैं, उन्हें मुनि कहते हैं, बापू ! भाई ! आहा..हा.. ! जिन्होंने विश्रान्तिगृह जाना है, अनुभव किया है। अब वे बारम्बार उसमें जाना चाहते हैं। छठवें (गुणस्थान में) विकल्प आता है, परन्तु सीधे अन्दर में जाना चाहते हैं। आहा..हा.. ! जहाँ स्वयं, अतीन्द्रिय आनन्द का पर्वत पड़ा है, उसमें बैठना–स्थिर होना चाहते हैं। समझ में आया ? ऐसी बात है, बापू ! वीतरागमार्ग कोई (अलौकिक है) ! और ऐसा मार्ग अन्यत्र कहीं है नहीं। जैन परमेश्वर... यहाँ तो ऐसा कहा था कि जैन, वह पक्ष नहीं; वह तो वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। आहा..हा.. ! समझ में आया ? भले जापानवाले ने कहा, इतनी अपेक्षा से बात तो करे परन्तु... आहा..हा.. ! ऐसी वस्तु की स्थिति जगत को हाथ आना मुश्किल है।

यह परमात्मा अनन्त गुण का धाम-ध्रुवधाम, जिसमें स्थिरता करने के लिये मुनिराज बारम्बार अन्दर जाने को लालायित हो रहे हैं। आहा..हा..! मेरे आनन्द के घर को छोड़कर... अरे! मैं विकल्प में कहाँ आया? महाव्रत का विकल्प और देव-गुरु की श्रद्धा का राग और देव-गुरु-शास्त्र का विनय—ऐसे विकल्प में मैं कहाँ आया? आहा..हा..! मेरा स्थान-विश्राम स्थान - तो यह है।

मुमुक्षु : स्वयं आया...

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं आया पुरुषार्थ की कमजोरी से। आहा..हा..! मेरा देश-आनन्द का देश, उसमें से निकलकर यह विकल्प तो दुःख है। आहा..हा..! ऐसा है, बापू! मार्ग बहुत सूक्ष्म। जगत के साथ मेल खाये, ऐसा नहीं है। आहा..हा..!

बारम्बार निर्विकल्परूप से प्रवेश... किसमें? आनन्दस्वरूप में निर्विकल्परूप से अन्दर में जाकर... आहा..हा..! **विशेष विश्राम पाते हैं।** अन्दर आनन्द में विशेष स्थिरता पाते हैं। आहा..! उन्हें मुनि कहते हैं, बापू! मुनि तो परमेश्वर है। आहा..हा..! जो परमेश्वर में दृष्टि करके अन्दर में स्थिर होते हैं, वे परमेश्वर हैं, पर्याय से परमेश्वर हैं। आहा..हा..! वस्तु से तो परमेश्वर है, वह तो है ही; परन्तु मुनिराज तो पर्याय में परमेश्वर हैं। आहा..हा..! जिन्हें विकल्प में आना रुचता नहीं, परन्तु पुरुषार्थ की कमजोरी के कारण आते हैं, वे वहाँ से हटकर... आहा..हा..! वहाँ वापस जाते हैं। आहा..हा..! विश्रामस्थान में जाते हैं। वहाँ राग छोड़ता हूँ और निर्विकल्प (होता हूँ) - ऐसा भी जहाँ विकल्प नहीं। आहा..हा..! ऐसी दशा को मुनिराज बारम्बार सम्यग्दर्शनसहित मुनिपना है। आहा..हा..! इससे बारम्बार अन्दर प्रवेश करना चाहते हैं।

बाहर आये नहीं कि अन्दर चले जाते हैं। मुनि अर्थात् धन्य अवतार, भाई! आहा..हा..! चारित्र; और चारित्र, वह मोक्ष का साक्षात् कारण है। आहा..हा..! जिन्हें अन्तर में ऐसी चारित्रदशा प्रगट हुई है, वे अन्दर में रमने, जमने, स्थिर होने, जम जाने को निर्विकल्परूप से बारम्बार अन्दर जाते हैं, आहा..हा..! परन्तु पुरुषार्थ की कमी के कारण बाहर आये, परन्तु आये - न आये होकर अन्दर जाते हैं। आहा..हा..! भाई! मार्ग ऐसा बापू! जैन में-वाड़ा में जन्में हैं, उन्हें भी खबर नहीं होती। अरे रे! यह १६९ (बोल पूरा हुआ)।

एक चैतन्य को ही ग्रहण कर। सर्व ही विभावों से परिमुक्त, अत्यन्त निर्मल निज परमात्मतत्त्व को ही ग्रहण कर, उसी में लीन हो, एक परमाणुमात्र की भी आसक्ति छोड़ दे॥१७०॥

१७०, **एक चैतन्य को ही ग्रहण कर।** आहा..हा..! पूर्ण चैतन्य वस्तु जो है, उसे पकड़। उसे ग्रहण कर अर्थात् उसे जान। आहा..हा..! बाहर के देखने में जो कुछ तुझे विस्मयता लगती है, वह सब अज्ञान है। आहा..हा..! इस चैतन्य को ही ग्रहण करने में... आहा..हा..! एक को ही ग्रहण कर। भेद को नहीं, पर्याय को नहीं, राग को नहीं; अभेद चैतन्यस्वरूप एकरूप ध्रुवस्वरूप को ग्रहण कर। आहा..हा..!

ध्रुव को ध्येय में धीरज से लेकर... ये बोल आये हैं। तेरह थे न? अभी भावनगर से। आहा..हा..! ध्रुवस्वरूप को ध्येय में विषय बनाकर.. कलश टीका में है। **विषय कुरु** अध्यात्म तरंगिणी कलश टीका है, न? अध्यात्म तरंगिणी, हों! यह टीका राजमलजी की है। एक अध्यात्म तरंगिणी है। उसमें यह है कि.. **विषय कुरु** भगवान पूर्णानन्द के नाथ को विषय कर न! ध्येय बना न! तेरी दृष्टि और तेरे ज्ञान का ध्येय और ज्ञेय उसे बना न! आहा..हा..! कलश टीका है? नहीं लगता। वहाँ रह गया। दो-तीन जगह संस्कृत टीका में है।

वस्तु पूर्णस्वरूप है, उसे तू ध्येय-विषय बना। विषय शब्द से (आशय) लक्ष्य बना। यह विषय और यह विषय (-ऐसा नहीं)। आहा..हा..! यह भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द का धाम, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर भगवान आत्मा है। आहा..हा..! ऐसे-ऐसे अनन्त-अनन्त अतीन्द्रिय गुणों का प्रभु सागर-समुद्र है। उसे एक को ग्रहण कर। ऐसा है, बापू! आहा..हा..!

सर्व ही विभावों से परिमुक्त,... आहा..हा...! समस्त विभावों। चाहे तो भगवान के स्मरण का विकल्प हो, णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं—ये सब विकल्प और विभाव है। आहा..हा..! इसलिए यह लोग कहते हैं न? इस क्रिया से कुछ नहीं होता, यह एकान्त है। नहीं होता - ऐसा होगा? उससे बन्ध होता है, धर्म नहीं होता। आहा..हा..!

सर्व ही विभावों से परिमुक्त,... परिमुक्त अर्थात्? परि (अर्थात्) समस्त प्रकार से मुक्त। आहा...हा...! परि अर्थात् समस्म प्रकार से मुक्त। किसी भी एक अंश का सहारा

स्वरूप की दृष्टि करने में है नहीं। आहा..हा..! अरे रे! जिन्दगी जाती है, चली जाती है। आहा..हा..! और सिर पर मौत का नगाड़ा बज रहा है। किस समय देह छूटेगी, इसका भरोसा देकर वह नहीं आयेगी। यह कहे, देखो! अब मैं दो घण्टे बाद देह छूटने वाली है,, ध्यान रखना—ऐसा कहीं कहकर आता है? आहा..हा..! सिर पर मौत का नगाड़ा बजता है, बापू! तू कर ले न, तेरे कल्याण के पन्थ में आ जा। दुनिया चाहे जो माने, न माने, उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। दुनिया सर्टिफिकेट दे कि यह तो गजब, भाई, यह ज्ञानी और धर्मी, इससे उसे कल्याण हो जाये - ऐसा नहीं है। आहा..हा..!

सर्व ही विभावों से परिमुक्त,... परिमुक्त अर्थात् समस्त प्रकार से मुक्त। **अत्यन्त निर्मल निज परमात्मतत्त्व को ही ग्रहण कर,...** यह चैतन्य का ग्रहण करने की व्याख्या की है। **अत्यन्त निर्मल निज परमात्मतत्त्व...** निज परमात्मतत्त्व। वीतराग परमात्मादेव अरिहन्त, वे तो नहीं; उनके प्रति लक्ष्य जायेगा तो तुझे राग ही होगा। आहा..हा..! गजब बात, भाई! आनुपूर्वी में गिनते हैं न? णमो अरिहंताणं, णमो आयरियाणं, णमो सिद्धाणं, णमो उव्वज्झायाणं - उलट-पुलट नहीं आता? नहीं आता तुम्हारे? आनुपूर्वी। पुस्तक आती है। णमो अरिहंताणं, णतो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं। फिर णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उव्वज्झायाणं, णमो सिद्धाणं... उलट-पुलट। एक पुस्तक आती है। उसमें क्या हुआ? वह तो विकल्प है, राग है।

मुमुक्षु : आगे बढ़ने का होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह संसार में बढ़ने का कारण है। आहा..हा..! मुनिराज भावलिंगी सन्त जो स्वरूप में विश्राम प्राप्त हैं, उन्हें भी जो पंच महाव्रत का विकल्प आता है, उसे समयसार नाटक में चालीस बोल है, उसमें सोलहवाँ बोल कहा है (कि) वह जगपंथ है। आहा..हा..! जिन्हें अन्तर में विश्रामगृह उग्ररूप से मिल गया है, रहने का स्थान मिल गया है और वहाँ बारम्बार जाते हैं, उन्हें भी जो विकल्प आता है... आहा..हा..! अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य का विकल्प (आता है)। कहते हैं कि वह जगपन्थ है।

समयसार नाटक में है। है यहाँ? है इसमें? लो, मोक्षद्वार ही निकला, सोलहवाँ बोल है। मोक्षद्वार। यह क्या है? '**ता कारण जगपंथ इत**' मुनिराज को भी जो विकल्प उठता है, वह जगपन्थ है '**उत शिवमारग जोर**' अन्तर में रमणता, वह शिव-मोक्ष का मार्ग है। '**पमरादी जग को ढुंके**' छठे गुणस्थान में प्रमादवाला, पंच महाव्रत का विकल्प

है, वह प्रमाद है। आहा..हा..! वह **'जग को ढुंके'** वह जग की ओर ढल गया है। आहा..हा..! इसे तो पूरे दिन स्त्री-पुत्र-धन्धा और व्यापार, अकेले पाप के ढगले और प्रपंच। आहा..हा..! इसका तो क्या परिणाम आयेगा? बापू! आहा..हा..!

यहाँ तो मुनिराज, जिन्हें तीन कषाय का अभाव है और अन्दर में बारम्बार प्रवेश करने का भाव है, उन्हें जो यह विकल्प पंच महाव्रत का, विनय का, स्वाध्याय का, कहने का, सुनने का आता है.. आहा..हा..! (वह) जगपन्थ, संसार है, राग है, उदयभाव है। आहा..हा..! देखो! वीतरागमार्ग! देखो! परमात्मा जिनेश्वरदेव के उपदेश में यह आया है। आहा..हा..!

'अपरमादी शिव ओर' प्रमादी जो पंच महाव्रत के विकल्प में आया, वह उतना जगपन्थ की ओर गया है। आहा..हा..! ऐसे अन्दर में जाना वह विषय और है। समयसार नाटक में चालीसवाँ बोल है।

अत्यन्त निर्मल निज... अत्यन्त निर्मल। विकार है, वह मलिन है। प्रभु आत्मा है, वह तो अत्यन्त निर्मल निज परमात्मतत्त्व है। **परमात्मतत्त्व को ही ग्रहण कर,..** एकान्त नहीं होता? निज परमात्मा को ग्रहण कर और पर परमात्मा की ओर का लक्ष्य छोड़ - यह अनेकान्त है। आहा..हा..!

उसमें तो भाई! ऐसा लिखा है, अध्यात्म पंच संग्रह है न? उसमें दस हजार केवली और एक तीर्थंकर, इतनी उनकी महिमा है तथा दस हजार तीर्थंकर.. सुना है कभी? सुना नहीं? यहाँ बहुत बार बात हो गयी है। 'उपदेश रत्नमाला' हों! दीपचन्दजी का बनाया हुआ है। जिन्होंने चिद्विलास, अनुभवप्रकाश बनाया है, उन्होंने अध्यात्म पंच संग्रह बनाया है परन्तु बहुत सूक्ष्म वस्तु है।

'महिमा हजार दस सामान्य जु केवली की' 'महिमा हजार दस जु सामान्य केवली की, ताकै के सम तीर्थंकरदेवजी की मानिये।' एक तीर्थंकर दस हजार केवली से भी इन एक तीर्थंकर महिमा विशेष है। सुना नहीं कभी? यहाँ तो बात हो गयी है। **'तीर्थंकर देव मिले दस हजार ऐसी'** दस हजार तीर्थंकरदेव मिले **'ऐसी महिमा महंत एक प्रतिमा का जानिये'** क्योंकि चौबीस घण्टे तीर्थंकर वहाँ बिराजते हैं। चौबीस घण्टे वहाँ लाभ का कारण है। आहा..हा..! समझ में आया? ये प्रतिमा को नहीं माने, (उन्हें क्या कहना)? ऐसा विकल्प होता है। समझ में आया? दस हजार केवली और एक ओर एक तीर्थंकर तथा दस हजार तीर्थंकर और एक ओर जिनप्रतिमा। 'जिनप्रतिमा जिन

सारखी' तथापि.. यहाँ कहा, उसका कारण - हेतु यह है। तीर्थंकर तो एक स्थान में नहीं होते, तथापि भगवान तो जब देखे तब वहाँ ही बिराजते होते हैं। इतनी अपेक्षा है। 'उपदेश रत्नमाला' है, उसमें पाँचवाँ है। आहा..हा..! यह तो ऐसी बातें हैं, बापू! जगत से (अलग प्रकार है), कहो, मोहनलालजी! यह सुना है? इसके पहले कभी नहीं (सुना)? यहाँ बात हुई थी। यहाँ तो बहुत वर्षों से बहुत पढ़ा है। पूरा पंच संग्रह है, पाँच शास्त्र हैं-परमात्मपुराण, ज्ञानदर्पण, स्वरूपानन्द, उपदेश सिद्धान्त रत्न, सवैया टीका (ऐसे पाँच हैं), यह तो बहुत वर्षों से यहाँ तो देखा है। चेतनजी! यह बात पहले हुई थी। ऐसा विकल्प आता है, परमात्मा की प्रतिमा को पूजने का (विकल्प) आता है परन्तु वह धर्म नहीं है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु आता है। उसकी भूमिका में साधकपना है, सिद्धपना नहीं, उतना बाधकपना आता ही है। जानने के लिये आता ही है। हेयरूप से भी आता है। आहा...हा..! ऐसी बातें हैं। समयसार नाटक में नहीं कहा? है न? गुणस्थान अधिकार में (दूसरा श्लोक) है, देखो! उसके पहले में है, देखो!

जाके मुख दरससौं भगत के नैननि कौं,
थिरता की बानी बढ़ै चंचलता विनसी।

आवे, ऐसा भाव होता है।

मुद्रा देखी केवली की मुद्रा याद आवै जहाँ,
जाके आगै इंद्र की विभूति दीसै तिनसी।
जाकौ जस जपत प्रकास जगै हिरदे मैं,
सोई सुद्धमति होई हुति जु मलिनसी।
कहत बनारसी सुमहिमा प्रगट जाकी,
सोहै जिनकी छवि सुविद्यमान जिनसी। २

गुणस्थान की शुरुआत में (यह श्लोक लिया है)।

जाके उर अंतर सुदृष्टि की लहर लसी,
विनसी मिथ्यात मोहनिद्रा की ममारखी।
सैली जनशासन की फैली जाकै घट भयौ,
गरबकौ त्यागी षट-दरवकौ पारखी.

आगम कै अच्छर परे हैं जाके श्रवन मैं,
हिरदै-भंडार मैं समानी वानी आरखी।
कहत बनारसी अलप भवथिति जाकी,
सोई जिन प्रतिमा प्रवांनै जिन सारखी। ३

जिस अपेक्षा से कहा (हो), उस अपेक्षा से जानना चाहिए न? समझ में आया? ऐसी बात। वे कहते हैं, नहीं, प्रतिमा को माने, वह मिथ्यादृष्टि है। वहाँ गये थे न? तारणस्वामी का मलहारगढ़, मलहारगढ़ है न? वहाँ उनके गाने वाले लोग थे तो वे गाने लगे। प्रतिमा को माने, वह मिथ्यादृष्टि। सेठ न रोका, रोका। रहने दे। क्योंकि वे तारणस्वामीवाले (थे)। सेठ ने रोका। भाई! प्रतिमा है, उसकी भक्ति-पूजा है परन्तु उस स्वरूप में जहाँ स्थिर नहीं हो सके, उसे ऐसा शुभभाव, अशुभ से बचने को आये बिना रहता नहीं है। वह आवे ही नहीं और माने ही नहीं तो वह वस्तु को समझता नहीं। आहा..हा..! और आवे तो भी वह बन्ध का कारण है। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं।

पंचास्तिकाय में टीका में यह कहा है। अशुभ स्थान से बचने को ऐसा शुभभाव आता है, परन्तु है वह बन्ध का कारण। जब तक अबन्धपरिणाम पूर्ण प्रगट नहीं हुए, तब तक अबन्धपरिणाम अल्प के स्थान में ऐसे बन्धपरिणाम उसे होते हैं। होते हैं, इसलिए वे आदरणीय हैं और उनसे जीव को लाभ होता है, यह प्रश्न यहाँ अभी नहीं है। आहा..हा..! इतनी सब अपेक्षाएँ।

अत्यन्त निर्मल निज परमात्मतत्त्व... निज परमात्मतत्त्व अर्थात् परमात्म भगवान नहीं, मूर्ति नहीं और भगवान भी नहीं। **निज परमात्मतत्त्व को ही ग्रहण कर, उसी में लीन हो, एक परमाणुमात्र की भी आसक्ति छोड़ दे।** रजकण का एक अंश हो, राग का या रजकण का (अंश हो, उसकी) आसक्ति छोड़ दे।)।

मुमुक्षु : .....तो बहुत परमाणु हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत परमाणु हो, कहा न, यह तो शुभभाव का आश्रय किया, परन्तु उसका स्वभाव का आश्रय करना है, उसे वह सब छोड़ देना पड़ेगा। आहा..हा..! तथापि वह छोड़कर सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ तो भी उसे ऐसा शुभभाव आता है, वह जाननेयोग्य है - जाना हुआ प्रयोजनवान है। समझ में आया? विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल-९, शनिवार, दिनाङ्क १२-०८-१९७८
वचनामृत-१७१-१७२ प्रवचन-६२

एक म्यान में दो तलवारें नहीं समा सकतीं। चैतन्य की महिमा और संसार की महिमा दो एकसाथ नहीं रह सकतीं। कुछ जीव मात्र क्षणिक वैराग्य करते हैं कि संसार अशरण है, अनित्य है, उन्हें चैतन्य की समीपता नहीं होती। परन्तु चैतन्य की महिमापूर्वक जिसे विभावों की महिमा छूट जाये, चैतन्य की कोई अपूर्वता लगने से संसार की महिमा छूट जाये, वह चैतन्य के समीप आता है। चैतन्य तो कोई अपूर्व वस्तु है; उसकी पहिचान करनी चाहिये, महिमा करनी चाहिये॥१७१॥

वचनामृत, १७१ (बोल) १७० हो गया है। आज तो हिन्दी चलेगा न? **एक म्यान में दो तलवारें नहीं समा सकतीं।** दृष्टान्त है। **एक म्यान में दो तलवारें नहीं समा सकतीं।** नहीं समा सकती - नहीं रह सकती। इसी प्रकार **चैतन्य की महिमा और संसार की महिमा दो एकसाथ नहीं रह सकतीं।** आहा..हा..! जिसे चैतन्य की महिमा भी हो और दया, दान, व्रत आदि के विकल्प की भी महिमा हो - ऐसी (दो) महिमा नहीं हो सकती।

मुमुक्षु : दृष्टान्त तो समझ में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जिसे, चैतन्य भगवान पूर्णब्रह्म परमात्मा, जिसमें निर्मल भाव का पिण्ड है - ऐसा आत्मा। जिसे आत्मा की महिमा है, उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। उसे राग का विकल्प और पुण्य का फल, इसकी उसे महिमा नहीं रहती। आहा..हा..! और जिसे राग-पुण्यपरिणाम और उसका फल.. लड़के नहीं आये। क्यों शनिवार है न? छुट्टी तो हो गयी है। होगा कुछ।

जिसे दया, दान, व्रत, भक्ति का शुभभाव और उसका पुण्यबन्धन तथा उसका

अनुकूल फल — इसकी जिसे अन्तर में रुचि और महिमा है, उसे चैतन्य भगवान पूर्णानन्द निर्विकल्प आनन्दकन्द, सुखकन्द, सुख का समुद्र है, आनन्द का कन्द है... आहा..हा..! ऐसे आत्मा की उसे महिमा नहीं आती। सूक्ष्म बात है, भाई! आहा..हा..! जिसे व्यवहाररत्नत्रय, जिसे शुभभाव कहते हैं और जो देव-शास्त्र-गुरु पर है... आहा..हा..! उनकी भी जिसे अन्तर में महिमा आती है, उसे अन्तर चैतन्य भगवान, (जिसमें) निमित्त का अभाव, राग का अभाव (है और)... आहा..हा..! अपने द्रव्य में आनन्दभाव, गुण में आनन्दभाव (की) महिमा नहीं तो पर्याय में उसे आनन्दभाव नहीं आता। समझ में आया? सूक्ष्म विषय है, भाई!

जिसे कुछ भी पर की महिमा, अधिकता, विशेषता, आश्चर्यता, विस्मयता शुभराग से लेकर सभी चीज़, उसमें कुछ भी विस्मयता, आश्चर्यता, अधिकता... आहा..हा..! और उसकी कुछ महिमा (रहती है).. आहा..हा..! यह सुन्दर शरीर - इसकी भी जिसे महिमा है। (लड़के अभी तो देरी से आये)। समझ में आया? ये तो अकेले सिद्धान्त हैं। **एक म्यान में दो तलवारें नहीं समा सकतीं।** ऐसा लिखा है न? रह सकती नहीं, इसका अर्थ समा सकती नहीं। इसी प्रकार जिसे पुण्य और पाप के भाव, एक समय में-पर्याय में ज्ञान का परलक्ष्यी क्षयोपशम हो... आहा..हा..! और पुण्य के फलस्वरूप यह बाहर की अनुकूल सामग्री हो, उसकी जिसे अन्तर में महिमा है, उसे चैतन्य की महिमा नहीं है। उसे सम्यग्दर्शन नहीं है। आहा..हा..! समझ में आया?

जिसे चैतन्य की महिमा है; भगवान पूर्ण अनाकुल आनन्दकन्द प्रभु, जिसकी विकल्प से खबर नहीं पड़ती और एक समय की पर्याय (स्वरूप) सन्मुख हो तो खबर पड़ती है—ऐसी महिमावन्त प्रभु चीज़, की जिसे महिमा नहीं, उसे पर की महिमा है। आहा..हा..! और जिसे अपनी निज चीज़ में महिमा है, तो आत्मा में एक भावभाव नाम का गुण पड़ा है। भावभाव नाम का गुण पड़ा है। आहा..हा..! जिसे अपना ज्ञायक शुद्ध चैतन्य प्रभु अनाकुल आनन्द का नाथ... आहा..हा..! उसकी महिमा जिसे आयी और दृष्टि हुई तो उसके द्रव्य में भाव, गुण में भाव और पर्याय में आनन्द का भाव आता है। समझ में आया? समझ में आया या नहीं? धन्नालालजी!

मुमुक्षु : कुछ समझ में नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : समझ में नहीं आया ? यह ठीक कहा। विशेष स्पष्टीकरण चाहते हैं। जिसे, भगवान आत्मा, एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में शाश्वत् पदार्थ प्रभु अन्दर है; उस शाश्वत् पदार्थ की जिसे महिमा आयी और अशाश्वत् राग-दया, दान के विकल्प आदि परवस्तु की महिमा जिसकी दृष्टि में से छूट गयी... आहा..हा..! अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ, सागर, शाश्वत् प्रभु... आहा..हा..! उसकी जिसे महिमा आयी, उसे द्रव्य में आनन्दभाव, गुण में आनन्दभाव और पर्याय में भी आनन्दभाव आता है। आहा..हा..!

जिसे पर की महिमा (आती है), आहा..हा..! कठिन बात है, भाई! इन्द्र की इन्द्राणी... यह तो 'धान का ढोकला' है (अर्थात्) अनाज खाये तो शरीर रहे और न खायें तो ऐं.. ऐं.. हो जाए। इन्द्राणी, जिसे अनाज नहीं, हजारों वर्ष में अमृत आवे (झरे), उस इन्द्राणी की सुन्दरता भी जिसे लक्ष्य में आती है, उसे आत्मा की सुन्दरता लक्ष्य में नहीं आती। इन्द्र ऐसा जो भगवान आत्मा.. आहा..हा..! अतीन्द्रिय-अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ प्रभु, वीतरागमूर्ति शाश्वत् प्रभु की जिसे महिमा नहीं, उसे सुन्दर स्त्री इत्यादि की महिमा आती है। आहा..हा..! और जिसे (सुन्दर स्त्री आदि की) महिमा है, उसे चैतन्य की महिमा नहीं आती। समझ में आया ? सूक्ष्म बात है, भगवान! आहा..हा..!

परमब्रह्म परमात्मस्वरूप प्रभु आत्मा है। परमब्रह्म परमात्मा जिनस्वरूपी प्रभु आत्मा तो है। आहा..हा..! जिसे उसकी महिमा नहीं, वह अनादि से पर की महिमा में पड़ा है। आहा..हा..! बाहर के पैसे, इज्जत, मकान और फर्नीचर.. आहा..हा..! एक गृहस्थ राजा की बात आती है, जिसके लगन में.. लगन समझते हो ? शादी। एक रात्रि में एक करोड़ रुपये खर्च किये। अभी राजा है। और दारुखाना (आतिशबाजी की)। प्रकाश और भपका। ओहो..हो..! अरे, प्रभु! परन्तु वह क्या चीज़ है ? वह तो ठीक, परन्तु अन्दर भगवान परमात्मा, अपने अतिरिक्त बाहर में मन्दिर, परमात्मा की शोभा में महिमा जिसकी लगती है... आहा..हा..! अभी आये थे न ? कलकत्ता से ? होमियोपेथी के बड़े वैद्य हैं। कलकत्ता में। अपने यहाँ तीन-चार बार आ गये हैं। ४९ वर्ष की उम्र है। ब्रह्मचारी है, बाल ब्रह्मचारी हैं। लाखों की कमाई है, विवाह नहीं किया। राजकुमार जैसा सुन्दर शरीर है। यहाँ तो आये। वेदान्ती रूप से थे। यहाँ तो पहले देखने आये थे। फिर सुनकर ऐसा लगा कि ओहो..हो..! यह क्या चीज़ है! बेंगलोर में अपना पन्द्रह लाख का मन्दिर है, बेंगलोर, वहाँ आये। हम थे और उन्हें आने का हुआ, आये। पन्द्रह लाख का बेंगलोर का मन्दिर अभी ऐसा है, अपने

मुमुक्षु की ओर से (बनाया है) । मन्दिर देखकर, वेदान्ती वैद्य बाल ब्रह्मचारी है, राजकुमार जैसा शरीर है, लाखों की कमाई है, परजीव की दया इत्यादि में खर्च करते हैं। यहाँ आकर कहने लगे - महाराज! आशीर्वाद दो कि मैं आजीवन ऐसा ही रहूँ। वह मन्दिर देखकर ऐसा प्रसन्न हो गया कि एक हजार रुपये मैं मन्दिर में देता हूँ। वैद्य, परन्तु यह तो बाहर की घटना है, प्रभु! आहा..हा..!

अन्दर का देव, परमात्मा का मन्दिर अन्दर बिराजमान देह-मन्दिर में भगवान अनन्त गुणालंकृत—अनन्त गुण के अलंकार से जो शोभित वस्तु है। आहा..! अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. पार नहीं, इतने गुण की शोभा से, शृंगार से भरपूर भगवान है। उसकी जिसे सम्यग्दर्शन में महिमा आयी.. आहा..हा..! उसे बाहर का भपका... समवसरण देखे तो भी उसकी महिमा दृष्टि में नहीं आती। समझ में आया?

समवसरण अर्थात्? जिसमें सौ इन्द्र, सिंह और बाघ जिनके समवसरण में होते हैं, एक भवतारी इन्द्र जिनकी सभा में होते हैं, वह समवसरण तो हीरा-माणेक से बना हुआ होता है। आहा..हा..! स्फटिकरत्न से बने हुए गढ़ होते हैं। भगवान ऐसे स्फटिकरत्न - नीलमणि से ऊपर अध्धर बिराजते हैं। ऐसा जहाँ देखे.. आहा..हा..! परन्तु वह तो बाहर की शोभा है, प्रभु! अन्तर (में) अलंकृत स्वरूप भगवान आत्मा की जिसे अन्तर में महिमा आयी, उसे किसी बाह्य पदार्थ की महिमा नहीं आती। सम्यग्दृष्टि - सत्यदृष्टि, जिसने आत्मा परमात्मस्वरूप भगवान पूर्णानन्द - ऐसा जो परमात्मा, जिसकी दृष्टि में महिमा करके आया, आहा..हा..! उसे समवसरण जैसी ऋद्धि और इन्द्र-इन्द्राणियों, इस ऋद्धि की महिमा अन्तर में से छूट गयी।

दूसरे प्रकार से कहें तो जिसे अपने चैतन्य की महिमा आयी है, उसमें सुखबुद्धि हुई तो राग और पुण्य के परिणाम और सर्व चीज़ में से सुखबुद्धि उड़ गयी है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : समवसरण में तो आनन्दरूप भगवान बिराजते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान बिराजते हैं, वे तो भगवान के हैं; यह भगवान तो यहाँ है। वे भगवान तो पर हैं। वे भगवान तो ऐसा कहते हैं कि हमारे दर्शन करने आवे और दर्शन करे तो शुभभाव होगा, बन्धन होगा। आहा..हा..! प्रभु! यह तो वीतरागमार्ग है, भाई! जिसे अन्दर राग की महिमा आती है, उसे वीतरागस्वरूपी भगवान आत्मा, निर्विकल्प आनन्द

का कन्द नाथ, उसकी उसे महिमा नहीं है। आहा..हा..! **एक म्यान में दो तलवारें नहीं समा सकतीं।** समा नहीं सकती। देवीलालजी! आहा..! ऐसी बात है, प्रभु! क्या हो?

मुमुक्षु : इस पुस्तक में ऐसी धर्मकथा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी बात है। 'बहिन' की वाणी तो अनुभव के आनन्द में से निकली हुई है न! वाणी तो वाणी से निकली है परन्तु... आहा..हा..! निमित्तपना है तो आत्मा से वाणी निकली-ऐसा कहने में आता है। श्रीमद् भी कहते हैं, आत्मा, आत्मा से जब बोले, तब आत्मा की वाणी कहने में आती है। उसका अर्थ (यह कि) भगवान अनाकुल आनन्द का नाथ प्रभु, उसमें अनुभव की दृष्टि लाकर आनन्द का वेदन आया, उसकी जो वाणी निकलती है, वह आत्मवाणी निमित्त से, व्यवहार से कही जाती है। है तो जड़। आहा..हा..! उसमें यह है।

महिमा दो एकसाथ नहीं रह सकतीं। कुछ जीव मात्र क्षणिक वैराग्य... श्मशान वैराग्य। स्त्री पर, पैसा पर, लक्ष्मी (पर)—ऐसा क्षणिक वैराग्य करके अपने को अधिक मानते हैं। आहा..हा..! **क्षणिक वैराग्य करते हैं कि संसार अशरण है, अनित्य है, उन्हें...** ऐसे क्षणिक वैराग्य में **चैतन्य की समीपता नहीं होती।** आहा..हा..! पुण्य और पाप के भाव से विरक्त (होना), वह वैराग्य है। 'पुण्य-पाप अधिकार' में आया है। आहा..हा..! पुण्य-पाप के विकल्प से वैराग्य। रक्त नहीं और वैराग्य, उसे वैराग्य कहते हैं। यह स्त्री-पुत्र छोड़े और ब्रह्मचर्य लिया, (वह) वैरागी है-वह सब क्षणिक है। आहा..हा..! समझ में आया? क्षणिक कृत्रिम वैराग्य करनेवाले जीव को भगवान की समीपता नहीं होती। आहा..हा..! जिसे राग का.. आहा..हा..! प्रेम जिसे छूट गया है.. आहा..हा..! वैराग्यदशा (ऐसी है) - राग से भिन्न होकर वैराग्य हुआ है, वह चैतन्य के समीप हो जाता है। ऐसी बात सूक्ष्म बात है, प्रभु! क्या हो? आहा..हा..!

भगवानस्वरूप को भूलकर भ्रमणा में भव किये। भगवान, भव के अभावस्वरूपरूप भाव, ऐसा चैतन्य प्रभु, ऐसे भगवान को भूलकर भवभ्रमण के भाव करके भवभ्रमण किया। आहा! उसकी (चैतन्य की) जिसे महिमा आती है, उसे पर की सब महिमा छूट जाती है। क्षणिक वैरागी को ऐसा (होता है), स्त्री छोड़ी, पुत्र छोड़ा, दुकान-धन्धा छोड़ा; इसलिए वैराग्य है (परन्तु) वह वैराग्य नहीं है। राग के भाव से छूटना, वह वैराग्य

है। राग की रक्तता छोड़कर स्वरूप की रक्तता करना, वह वैराग्य है। कठिन बात है, भाई! आहा..हा..!

समीपता नहीं होती। जिसे क्षणिक वैराग्य, कृत्रिम वैराग्य है, आहा..हा..! अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान की दृष्टि हुई नहीं और राग से विरक्त हुआ नहीं, उसे आत्मा की समीपता नहीं होती। ऐसा मुनिपना तो अनन्त बार लिया, हजारों रानियाँ छोड़कर, राजपद छोड़कर द्रव्यलिंगी मुनि (होकर) निरतिचार अट्ठाईस मूलगुण (का पालन किया), उसके लिये चौका बनाकर आहार-पानी दे तो प्राण जाये तो भी नहीं ले - ऐसी तो जिसकी क्रिया थी। आहा..हा..! परन्तु वह कहीं मूल वैराग्य नहीं है। क्षणिक वैराग्य है, वह चैतन्य के समीप नहीं जा सकता। आहा..हा..!

परन्तु चैतन्य की महिमापूर्वक जिसे विभावों की महिमा छूट जाये,.. वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा, शाश्वत् पदार्थ की महिमा से सम्यग्दृष्टि हुई। आहा..हा..! **चैतन्य की महिमापूर्वक जिसे विभावों की महिमा छूट जाये,...** राग का विकल्प है, उसकी महिमा छूट जाये। आहा..हा..! उसमें यह भरा है। धन्नालालजी! यह साधारण पुस्तक नहीं है। आहा..हा..! समझ में आया?

मुमुक्षु : यह तो बहुत ऊँची बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी तो सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की यह तो बात है। आहा..हा..! अनन्त-अनन्त गुण के रत्न के भण्डार से भरपूर, अनन्त गुण के रत्न का महा ढेर है! आहा..हा..! बाहर में बरसात आयी और पेशाब करने गया तो वहाँ कोई चरु देखे, चरु, करोड़ों के हीरे का चरु, लाख-दो लाख हीरे हों, वहाँ उसे ऐसा हो जाये... आहा..हा..!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें क्या हुआ? धूल में क्या आया? मुनियों को उसकी महिमा छूट जाती है। पेशाब करने गये और देखा कि यह तो चरु है। इसमें तो एक-एक हीरा करोड़ की कीमत का, ऐसे लाखों पड़े हैं, वे तो धूल हैं - ऐसा समझकर हट जाते हैं।

मुमुक्षु : शिष्यों को कहे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसी को नहीं कहते कि वहाँ पड़ा है, इसलिए ले लो।

मुमुक्षु : लेने का भले ही न कहे, परन्तु विकल्प...

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प भी नहीं आता। वह क्या चीज़ है? जगत की धूल है, ऐसी वह धूल है। आहा..हा..! ए.. सेठ! तुम्हारे सोने का धन्धा है न? आहा..हा..! रावण के घर में स्फटिकरत्न का महल था। स्फटिकरत्न का महल! सोने का नहीं। उसकी भी जिसके अन्दर में महिमा आयी.. आहा..! ऊपर देखे तो स्फटिक, नीचे देखे तो स्फटिक। दादरा समझते हो? क्या कहते हैं, सीढ़ी, सीढ़ी भी स्फटिक की। आहा..हा..! परन्तु वह क्या चीज़ है? वह तो धूल-मिट्टी है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : मिट्टी का प्रकार अलग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रकार अलग, पर्याय वह भी परिणमित हुई है, उसमें क्या प्रकार अलग है? जड़ है। कोयले में परमाणु काली पर्यायरूप परिणमा है, उस समय की दशा ऐसी है और उन परमाणु की जो स्फटिक की पर्याय ऐसी पर्याय होने का नियम-निश्चित काल था तो परमाणु में हुई है। समझ में आया? निज क्षण। उस पर्याय की उत्पत्ति के परमाणु में (जन्म-क्षण था)। आहा..हा..! परमाणु द्रव्य तो नित्य एकरूप रहता है, पर्याय में ऐसी चमक (होती है)। आहा..हा..! यह तो मैंने अभी देखा था। शिवलालभाई ने दिखाया था। शिवलालभाई है न! हीरे लाये थे न? बहिन को (बहिनश्री को) सम्मानित करने को, वे लाये थे। हमने तो पहले देखा था। वहाँ बेचरभाई के पास, अस्सी हजार का हीरा, अस्सी हजार का एक हीरा! डिब्बी में लाये थे, वहाँ राजकोट में बताया था। मणिलाल, सेठ कैसा? बेचरभाई के बड़े भाई। नानालालभाई और बेचरभाई सब ये एक बार बताने को लाये थे? अस्सी हजार का एक हीरा था, तथापि उसमें कुछ कमी थी। नहीं तो करोड़ों की कीमत का हीरा है। एक मखमल की डिब्बी थी और उसमें हीरा था।

मैंने तो जामनगर में स्फटिक रत्न देखा है। इतना! स्फटिक रत्न इतना लम्बा-चौड़ा! वह तो परमाणु की पर्याय यह निज क्षण में उस समय में उत्पन्न होने की थी तो उत्पन्न हुई है। वही पर्याय.. आहा..हा..! बिच्छु के डंकरूप जब परमाणु परिणमते हैं, वे ही परमाणु बिच्छु के डंक की पर्यायरूप परिणमित हुए हैं। परमाणु तो वह के वही हैं। आहा..हा..! उसमें विशेषता क्या? बिच्छु के डंक के जो रजकण थे, वे रजकण अभी इस शरीररूप परिणमित हुए हैं। पहले जो डंकरूप थे, सर्प की दाढ़ में विषरूप थे, वे ही परमाणु अभी इस शरीररूप आये हैं। आहा..हा..! और ये परमाणु भी भविष्य में उस (विषरूप) होंगे। यह तो परमाणु की पर्याय है, उसमें कुछ विशेषता नहीं है। आहा..हा..!

यहाँ यह कहते हैं, जिसे चैतन्य की महिमा आयी, **जिसे विभावों की महिमा छूट जाये,...** आहा..हा..! जिस भाव से तीर्थंकर गोत्र बँधे, उस भाव की भी महिमा छूट जाती है। आहा..हा..! समझ में आया? जिस भाव से तीर्थंकर गोत्र बँधे, वह भाव अधर्म है। शुभभाव है और प्रकृति बँधी, वह तो ज़हर का वृक्ष है। समयसार में अन्त में आता है, १४८ प्रकृति है, वह ज़हर का वृक्ष है। तीर्थंकर प्रकृति पड़ी है, वह भी जहर का वृक्ष है। आहा..हा..! भगवान आत्मा अमृत का कल्पवृक्ष अन्दर है। उसकी जितनी एकाग्रता करे, उतना पर्याय में आनन्द झरता है। आहा..हा..! ऐसी महिमा जिसे होती है, उसे **विभावों की महिमा छूट...** जाती है। भाई! शब्द थोड़े हैं परन्तु भाव बहुत भरे हैं! आहा..हा..!

चैतन्य की कोई अपूर्वता लगने से संसार की महिमा छूट जाये,... आहा..हा..! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दकन्द प्रभु अनन्त गुण से चमकता – झलकता चैतन्य हीरा... आहा..हा..! उसकी जिसे अन्तर में महिमा आयी, सम्यग्दर्शन में उसकी महिमा दिखी... आहा..हा..! तो वह ऐसी प्रतीति करता है कि ओहो..! यह तो अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है। वस्तु तत्त्व है, वह तो अतीन्द्रिय आनन्द का समुद्र है। आहा..हा..! **चैतन्य की कोई अपूर्वता लगने से संसार की महिमा छूट जाये,...** आहा..हा..!

सम्यग्दृष्टि भले चक्रवर्ती पद में हो, आहा..हा..! परन्तु अतीन्द्रियज्ञान और आनन्द का जिसे महिमापूर्वक स्वाद आया, आहा..हा..! समझ में आया? बात तो, बापू! यह तो भगवान परमात्मा... आहा..हा..! अन्तर चैतन्य के हीरों से भरपूर अनन्त-अनन्त हीरे भरे हैं। चैतन्य रत्नाकर है, चैतन्य के रत्न का आकर – समुद्र है। बापू! इसे पता नहीं, भाई! देखनेवाला शरीर को देखे, राग को देखे परन्तु देखनेवाला देखनेवाले को नहीं देखता। आहा..हा..! सूक्ष्म सिद्धान्त है, प्रभु! आहा..हा..!

संसार की महिमा छूट जाय,... जिसे चैतन्य की महिमा आवे उसे। **वह चैतन्य के समीप आता है।** आहा! क्या कहा, समझ में आया? **चैतन्य की कोई अपूर्वता लगने से संसार की महिमा छूट जाये, वह चैतन्य के समीप आता है।** आहा..हा..! जो राग की महिमा से चैतन्य से दूर.. दूर.. दूर... वर्तता है, वह अपने चैतन्य की महिमा से विभाव की महिमा छूट जाती है और चैतन्य के समीप जाता है। अरे! ऐसे सिद्धान्त! इसमें करना क्या? बाहर क्या करना था? आहा..हा..! जिसकी दृष्टि में चैतन्य हीरा, अनन्त रत्न का हार,

अन्दर सब रत्न भरे हैं - ऐसे चैतन्य की जिसे अन्दर महिमा आयी... आहा! उसे सब महिमा छूट जाती है। आहा..हा..!

चैतन्य तो कोई अपूर्व वस्तु है;... अपूर्व, बापू! वह क्या चीज़ है! आहा..! यह वाणी कितना काम करे? बापू! वाणी तो जड़ है, उसे पता नहीं कि यह चीज़ क्या है? वाणी को पता है? भगवान की वाणी को पता है कि भगवान आत्मा कैसा है? आहा..हा..! वाणी से पार, प्रभु! **चैतन्य तो कोई अपूर्व वस्तु है; उसकी पहिचान करनी...** चाहिये। आहा..हा..! करना तो यह है; जन्म-मरण रहित होना हो तो। बाकी तो सब ठीक है। आहा..हा..! **उसकी पहिचान करनी चाहिये, महिमा करनी चाहिये।** आहा..हा..! शाश्वत् चैतन्य रत्न पड़ा है, प्रभु! उसकी महिमा करनी चाहिए, उसकी पहिचान करनी चाहिए। आहा..हा..! तो इसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान होगा, तब जन्म-मरण का अन्त आयेगा। आहा..हा..! कहो, सुजानमलजी! क्या है? भगवान तो ऐसा कहते हैं, वह यह वाणी है। समझ में आया?

मुमुक्षु : चैतन्यस्वरूप कैसा है, वह कोई दृष्टान्त देकर कहो न!

पूज्य गुरुदेवश्री : दृष्टान्त तो दिया न! हीरे का दृष्टान्त कहा न! उसे दृष्टान्त लागू नहीं पड़ता। निरुपम वस्तु को कोई उपमा लागू नहीं पड़ती। आहा..हा..! अनुपम वस्तु! अनुपम वस्तु!! अनुपम अर्थात् किसी की उपमा नहीं दी जा सकती, वह वस्तु / चीज़ कैसी? आहा..हा..! उस वस्तु जैसी जगत में दूसरी कोई वस्तु नहीं। इतनी उपमा दे सकते हैं कि आत्मा कैसा? सिद्ध सदृश-सिद्ध जैसे हैं वैसा। आहा..हा..!

भगवान अन्दर निर्लेप, निरावरण, अल्पज्ञता और अशुद्धतारहित, सर्वज्ञता और शुद्धता से भरपूर भगवान है। आहा..हा..! ऐसा आत्मतत्त्व है, उसकी पहिचान करना और उसकी महिमा करनी चाहिए। ऐसी बात है, प्रभु! क्या हो? वाद-विवाद में अभी लोगों को मार दिया है।

मुमुक्षु : पहिचान करने से महिमा आती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : महिमा करे तो पहिचान होती है। यह वस्तु अन्दर कोई अलौकिक है, अलौकिक है—ऐसी महिमा आती है तो दृष्टि वहाँ जाती है, तो चैतन्य के नजदीक जाता है। ऐसी बात है। आहा..हा..! भाई! यह तो अपूर्व बातें हैं। आहा..हा..! १७१ बोल (पूरा) हुआ।

जैसे कोई राजमहल को पाकर फिर बाहर आये तो खेद होता है, वैसे ही सुखधाम आत्मा को प्राप्त करके बाहर आ जाने पर खेद होता है। शान्ति और आनन्द का स्थान आत्मा ही है, उसमें दुःख एवं मलिनता नहीं है—ऐसी दृष्टि तो ज्ञानी को निरंतर रहती है॥१७२॥

१७२, **जैसे कोई राजमहल को पाकर फिर बाहर आये तो खेद होता है,...** आहा..हा..! जिसे अरबों-अरबों रुपये का राजमहल मिला... साढ़े तीन करोड़ का तो मैसूर में है। बिलायती-लन्दन में तो जार्ज का बड़ा (महल है)। उसमें रहता है। उसे बाहर आवे तो खेद होता है। समझ में आया? बाहर जाओ, यहाँ से निकल जाओ.. आहा..हा..! **जैसे कोई राजमहल को पाकर फिर बाहर आये तो खेद होता है, वैसे ही सुखधाम आत्मा को प्राप्त करके...** अतीन्द्रिय आनन्दरूप सुखधाम। श्रीमद् में आता है न? 'स्वयं ज्योति सुखधाम।' भगवान स्वयं ज्योति सुखधाम है।

शुद्ध बुद्धं चैतन्यघन स्वयं ज्योति सुखधाम।
बीजु कहिये केटलुं कर विचार तो पाम॥

कोई क्रिया करे, दया करे, भक्ति करे तो प्राप्त हो - ऐसा नहीं है। आहा..हा..! श्रीमद् राजचन्द्र। आहा..हा..! स्वयं ज्योति सुखधाम आत्मा को... आहा..हा..! आत्मा कैसा है? अतीन्द्रिय आनन्द का स्थान, अतीन्द्रिय आनन्द का क्षेत्र, अतीन्द्रिय आनन्द का स्थल है। आहा..हा..! उसे प्राप्त करने के पश्चात् बाहर आ जाने से... आहा..हा..! चाहे तो शुभ में आ जाये (तो भी) खेद है, दुःख है। ऐसी वस्तु है, चन्दुभाई! आहा..हा..!

आत्मा को प्राप्त करके बाहर आ जाने पर खेद होता है। आहा..हा..! अज्ञानी ऐसा कहता है (कि) व्यवहार करते-करते निश्चय होगा। आहा..हा..! अरे रे! यहाँ कहते हैं कि जिसने निश्चय आत्मा के आनन्द का महल देखा, उसमें से निकलना, विकल्प आना, उसमें खेद / दुःख होता है। आहा..हा..! समझ में आया? आहा..हा..! **आत्मा को प्राप्त करके बाहर आ जाने पर खेद होता है।** कल बताया था न? १४९ पृष्ठ पर बताया था। उसमें ऐसा आता है, अरे! जब विकल्प में आता है तो धर्मी को ऐसा लगता है, आनन्द के नाथ में से निकलने पर (ऐसा लगता है,) अरे रे! हम परदेश में कहाँ आ गये? अरे रे!

यह हमारा देश नहीं, यह हमारा परिवार नहीं। गजब बातें ऐसी, बापू!

धर्मी ने चैतन्य के आनन्द का महल देखा है, अनुभव किया है.. आहा..हा..! उसमें से बाहर निकलकर भक्ति का, पूजा का, दान का, दया का, विकल्प आता है तो भी उसे ऐसा लगता है कि अरे रे! हम तो हमारे देश को छोड़कर परदेश में आ गये। आहा..हा..! 'हम परदेशी पंखी साधु' परदेशी शब्द से (आशय) राग से भिन्न देखा है, वह मेरा देश है। हम हमारे उस देश को छोड़कर परदेश में (आ गये)। रागादि को परदेश कहते हैं। आहा..हा..! यहाँ तो (लोग) कहते हैं कि व्यवहार आता है तो व्यवहार से निश्चय होता है। अरे! वह होता है, व्यवहार आता है (परन्तु उससे निश्चय नहीं होता)।

मुमुक्षु : ऐसा कितनों को हुआ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु उसे यह मानना है न! अभी जो क्रिया है, उससे भी अनन्त शुभवाली (क्रिया) नौवें ग्रैवेयक गया तब अनन्त की है। राग की क्रिया से आत्मा प्राप्त होगा? आहा..हा..! चाहे जितने व्रत, तप, भक्ति, लाख-करोड़-अरब अनन्त करे। आहा..हा..!

मुमुक्षु : आपकी द्रव्यश्रुत की वाणी सुनने से होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वाणी सुनने से नहीं होता, वह अन्दर में स्पर्श करे तो होता है। वस्तु बहुत कठिन। देवाधिदेव भगवान आत्मा को अपने अनुभव के लिये पर की-रंक की जरूरत नहीं है। आहा..हा..! परपदार्थ स्व की अपेक्षा से तो रंक है। आहा..हा..!

जैसे स्वद्रव्य की अपेक्षा से अन्य द्रव्य को अद्रव्य कहा जाता है। सुना है? स्वद्रव्य की अपेक्षा से तीन लोक के नाथ के द्रव्य को भी अद्रव्य कहा जाता है। उनकी अपेक्षा से द्रव्य, परन्तु इस द्रव्य की अपेक्षा से अद्रव्य (कहा जाता है)। इसी प्रकार यह क्षेत्र-भगवान का जो असंख्य प्रदेशी क्षेत्र-आनन्द का धाम, उस स्वक्षेत्र की अपेक्षा से परक्षेत्र को अक्षेत्र कहा जाता है। आहा..हा..! ऐसे भगवान त्रिकाल आनन्द के नाथ की अपेक्षा से स्वकाल की पर्याय को भले अपनी गिनो, तो उस स्वकाल की पर्याय की अपेक्षा से पर की पर्याय है, वह अकाल है और अपने गुणस्वभाव की अपेक्षा से अपने गुण हैं और अपने स्वभाव की अपेक्षा से पर का भाव है, वह अभाव है। सुना है या नहीं? सप्तभंगी। आहा..हा..!

(समयसार) २५२ में तो यहाँ तक लिया है, २५२ कलश (में) कि भगवान आत्मा जो त्रिकाली आनन्द का धाम प्रभु, चैतन्य रत्नाकर सागर ध्रुव, वह त्रिकाली वस्तु है, वह स्वकाल है और उसकी वर्तमान पर्याय-निर्मल पर्याय, वह भी पर काल है। २५२ कलश में लिया है न? बताया था न? द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव, बापू! मार्ग अलग! एक समय की पर्याय को परकाल कहा तो फिर परद्रव्य-समय की पर्याय परकाल तो कहीं भिन्न रह गयी। धीर का काम है, बापू! पूर्व का आग्रह पकड़ा हो, उसे यह बैठना कठिन पड़ता है। उसे चैतन्य का स्वाद और विचार (नहीं आता)। आहा..हा..!

वस्तु विचारत ध्यावतै मन पावै विश्राम;
रस स्वादत सुख उपजै अनुभ ताकौ नाम। *(समयसार नाटक)*

यह चैतन्य की महिमा जो अनुभव में आयी, उस महिमा के समक्ष जगत के वैभव की महिमा छूट गयी।

मुमुक्षु : आत्मा के वैभव के समक्ष जगत का वैभव तो धूल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल है, धूल। वह वैभव ही नहीं। आहा..हा..! कुन्दकुन्दाचार्य ने नहीं कहा? मेरे निज वैभव से कहूँगा। निज वैभव क्या? मैं यह समयसार कहूँगा। आहा..हा..! और यदि दिखाऊँ, प्रभु! तू प्रमाण करना, हों! आहा..हा..! अरे! प्रभु! परन्तु आप पंचम काल के साधु और पंचम काल के प्राणी को आप कहते हो कि प्रमाण - अनुभव कर ले। इतनी सब जोरदार आपकी बात?!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे काल कहाँ लागू पड़ता है? आत्मा को काल कहाँ है? पंचम काल और चौथा काल, नरक का क्षेत्र (उसे लागू नहीं पड़ते)। आहा..हा..! नरक के क्षेत्र में जैसे सुख की गन्ध नहीं; स्वर्ग के क्षेत्र में नरक के दुःख की गन्ध नहीं; वैसे भगवान के क्षेत्र में शुभाशुभभाव की गन्ध नहीं। आहा..हा..! ऐसा है।

सुखधाम आत्मा को प्राप्त करके बाहर आ जाने पर खेद होता है। आहा..हा..! वे छोटेलाल ब्रह्मचारी थे न? इन्दौर... छोटेलाल ब्रह्मचारी थे न? पहले आये थे, तब बात बराबर बैठी थी कि बात सत्य है। फिर वहाँ गये तो (उनसे कहा) तुम्हें सोनगढ़ की श्रद्धा है तो सबके साथ भोजन करने नहीं बैठाया जायेगा। बाहर भोजन करो। इन्दौर में। फिर

उनके साथ मिल गये और ऐसा भी कहने लगे कि व्यवहार में आवे तो जरा विश्राम मिले, फिर निश्चय में जाया जाये। वे छोटेलालजी ऐसा कहते थे। फिर यहाँ वापस आये। मेरी भूल थी (ऐसा कहते थे)। अरे भाई! व्यवहार के विकल्प में-दुःख में आवे तो फिर आनन्द में जा सकेगा? आहा..हा..!

भाई! तूने तेरे तत्त्व की अचिन्त्यता, अपूर्वता और अगाधता सुनी नहीं, प्रभु! आहा..हा..! प्रभु अन्दर अपूर्व अगाध अचिन्त्य अनन्त शक्तियों का सागर नाथ है। आहा..हा..! उसकी जिसे महिमा आयी, उसे उसमें से बाहर निकलने पर दुःख होता है। आहा..हा..! अज्ञानी कहता है कि व्यवहार आवे तो उसे जरा ठीक पड़ता है। अरे प्रभु! सुन तो सही, भाई! आये, आये बिना रहता नहीं। समझ में आया? कल उसमें नहीं कहा था?

गुणों की, अनन्त गुणों की सूक्ष्म में सूक्ष्म बात जितनी बात दीपचन्दजी ने निकाली है, वैसी बात दूसरे किसी ने कही नहीं। बहुत निवृत्तिमय जीवन (था)। एक-एक गुण में अनन्त विचित्रता, अनन्त प्रभुता, अनन्त प्रमेयता.. वर्णन करते-करते ऐसा लिया, 'उपदेश रत्नमाला' में कल कहा था। दस हजार केवली से एक तीर्थंकर की महिमा विशेष है और दस हजार तीर्थंकर से इस भगवान की एक प्रतिमा की विशेषता है। इसका अर्थ क्या? कि भगवान तीर्थंकर तो विहार करते हैं और भगवान की प्रतिमा तो हमेशा बिराजमान रहती है, इस अपेक्षा से (वैसा कहा है)। है तो शुभभाव का लक्ष्य। समझ में आया? आहा..हा..! कल बताया था। उपदेश रत्नमाला पुस्तक है न? अध्यात्म पंच संग्रह है। कल बताया था। पहले भी एक बार बताया था। आहा..हा..!

तेरा अपूर्व आनन्द और अपूर्व शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. वह अन्तर में जो शान्ति नाम का स्वभाव-गुण है, वह अमाप अनन्त शान्ति का गुण है। आहा..हा..! ऐसे शान्ति के गुण को जिसने जाना और अनुभव किया.. आहा..हा..! उसे बाहर में आने से दुःख लगता है। आहा..हा..! ज्ञानी भी विषय की वासना के विकल्प में आवे, पाँचवें (गुणस्थान में) समकिती है, परन्तु जानता है कि कोई उपसर्ग पड़ा हो और दुःख पड़ा हो -ऐसा लगता है। आहा..हा..! जैसे कोई मारता हो और डण्डा मारता हो (ऐसा लगता है)। धोका (डण्डा) समझे? लकड़ी। आहा..हा..! धर्मी-सम्यग्दृष्टि जीव को... क्या कहा?

मुमुक्षु : कपड़े धोने का...

पूज्य गुरुदेवश्री : कपड़े धोने का, उससे भी बड़ा होता है, वह थोड़ा लगे वहाँ तक तो सुधी रहे, अधिक मारे तो बेसुध हो जाता है। आहा..हा..! इसी प्रकार अपनी दृष्टि अपने स्वभाव पर है, वहाँ आनन्द आता है, बाह्य में विकल्प में आवे तो दुःख के डण्डे लगते हैं। आहा..हा..! ऐसी बात सुनी जाये नहीं, हैं...? कठिन पड़ती है। आहा..हा..! भगवान तो अतीन्द्रिय आनन्द का खिलाड़ी प्रभु है। आहा..हा..! उस खेल की क्रीड़ा जिसने देखी है, उसमें से बाहर निकलना उसे कठिन लगता है, दुःख लगता है। आहा..हा..!

शान्ति और आनन्द का स्थान आत्मा ही है,... देखो! दो (बातें) आयीं। आहा..! शान्ति... शान्ति... अकषायस्वरूप अर्थात् वीतरागस्वरूप अथवा शान्तस्वरूप, बेहद अनन्त-अनन्त अमाप—ऐसी शक्ति से भरपूर भगवान है। वह शान्ति, चारित्र की अपेक्षा से है और आनन्द, सुख की अपेक्षा से है। समझ में आया? आहा..हा..! भगवान आत्मा में चारित्रगुण, शान्तगुण पड़ा है, उसमें अनन्त-अनन्त शान्ति है। आहा..हा..!

एक गुण में अनन्त गुण का रूप है, तो एक बार विचार (आने पर) कहा था। शान्ति नाम का गुण है, उसका रूप अस्तित्वगुण में क्या रूप होगा? कुछ ख्याल में नहीं आता। शान्ति नाम का गुण है, उसमें अस्तित्वगुण का रूप है क्योंकि शान्ति 'है' ऐसा अपने में अस्तित्व का रूप, अस्तित्वगुण का रूप है। एक-एक गुण में अनन्त गुण का रूप है तो अस्तित्वगुण में शान्ति का रूप क्या होगा? यह मस्तिष्क में नहीं आया।

मुमुक्षु : अस्तित्वगुण में ज्ञान का रूप क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : यही तो कहा सर्वदर्शी और सर्वज्ञान। सबेरे कहा था। एक व्यक्ति ने पूछा था। सर्वदर्शी और सर्वज्ञ, ऐसा इसका गुण है, ऐसा इसका स्वभाव है। अस्तित्वगुण में सर्वदर्शी और सर्वज्ञ का रूप क्या होगा? आहा..हा..! अस्तित्वगुण का रूप सर्वज्ञ और सर्वदर्शी में है, वह तो ठीक। वह तो अगम्य वस्तु है, बापू! आहा..हा..! अनन्त-अनन्त गुण का सागर, भण्डार, उसकी चाबी खोलते.. आहा..हा..! उसकी राग की एकता तोड़ते, स्वभाव की जो एकता होती है, वह निधान इसने खोल दिया। आहा..हा..! परन्तु जिसे राग के रस का प्रेम है, उसने भगवान का निधान है, उसे ताला लगा दिया। आहा..हा..! समझ में आया?

शान्ति और आनन्द का स्थान आत्मा ही है,... दो क्या लिये? शान्ति, वह चारित्र

का गुण है अर्थात् वीतरागी भाव और आनन्द, सुख का भाव है। दो वस्तु भिन्न है। समझ में आया? भगवान आत्मा में अकषायस्वभाव अर्थात् शान्तस्वभाव अर्थात् चारित्र अर्थात् स्वरूप में रमणतारूप शान्ति अन्दर भरी है। आहा..हा..! वह भी अमाप है, वह भी आत्मा में है और आनन्द भी आत्मा में ही है। **उसमें दुःख एवं मलिनता नहीं है...** भगवान तीन लोक का नाथ, चिदानन्द प्रभु, पवित्र स्वभाव का सागर है। उसमें मलिनता और दुःख नहीं है। आहा..हा..! मलिनता और दुःख तो उसकी एक समय की पर्याय में है, वस्तु में नहीं। यह क्या होगा? पर्याय में है और वस्तु में नहीं! बापू! दो चीज़ें भिन्न हैं। पर्याय, पर्याय से है; द्रव्य, द्रव्य से है। आहा..हा..! ऐसा मार्ग है, भाई! क्या हो? अरे! प्रभु का-सर्वज्ञ परमात्मा का भरत (क्षेत्र) में विरह पड़ा और यह बात पीछे रह गयी। आहा..हा..! लोगों को यह समझना, बाहर के व्यवहार के रसिकों को, निमित्त के प्रेमियों को (यह समझना कठिन पड़ता है)। आहा..हा..!

(आत्मा) शान्ति और आनन्द का स्थान है। **उसमें दुःख एवं मलिनता नहीं है— ऐसी दृष्टि तो ज्ञानी को निरंतर रहती है।** आहा..हा..! सम्यग्दृष्टि की दृष्टि तो ध्रुव पर निरन्तर रहती है। जिससे उसे शान्ति और आनन्द के स्थान में दृष्टि पड़ी है। आहा..हा..! समझ में आया? आहा..हा..! देखो तो, सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है! लोगों को बस! देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करो, नवतत्त्व की श्रद्धा करो, समकित हो गया (ऐसा मानते हैं)। अब व्रत और तप ले लो, वह चारित्र। दोनों व्यर्थ। आहा..हा.. १७२ (बोल पूरा हुआ)।

विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

यदि मनुष्य अवतार प्राप्त करके भी आत्मा की पहिचान नहीं की तो इस अवतार की कोई विशेषता नहीं है। जिस प्रकार कच्चा चना कड़वा लगता है और उसे बो दिया जाए तो उगता है परन्तु उसे सेक दें तो मिठास आती है और वह फिर से उगता नहीं है। इसी प्रकार आत्मा, अज्ञानभाव से दुःखी है और नये-नये भव धारण कर रहा है परन्तु आत्मा की सच्ची पहचान करने से उसे सुख प्रगट होता है और फिर से भव धारण नहीं करना पड़ता। (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, आतम के हित पंथ लाग! में से)

श्रावण शुक्ल-१०, रविवार, दिनाङ्क १३-०८-१९७८
वचनामृत-१७३, १७४, १७५ प्रवचन-६३

आँख में किरकिरी नहीं समाती, उसी प्रकार विभाव का अंश हो तब तक स्वभाव की पूर्णता नहीं होती। अल्प संज्वलनकषाय भी है तब तक वीतरागता और केवलज्ञान नहीं होता॥१७३॥

वचनामृत १७३। १७२ पूरा हो गया न! क्या कहते हैं। **आँख में किरकिरी नहीं समाती,...** हमारे यहाँ 'कणु' कहते हैं, तुम्हारे (हिन्दी में) किरकिरी कहते हैं। आँख में एक किरकिरी भी समा नहीं सकती। खटक.. खटक.. खटक.. (करती है)। राई जितना कण हो तो भी आँख में खटकता है, खटकता है। **उसी प्रकार विभाव का अंश हो, तब तक स्वभाव की पूर्णता नहीं होती।** एक तो बात ऐसी है कि जब तक आत्मा में विभाव के अंश की रुचि है, तब तक आत्मा का अन्तर-सन्मुख सम्यग्दर्शन नहीं होता। समझ में आया? भगवान चिदानन्दस्वरूप प्रभु का अनुभव, आदर, आश्रय; विभाव के एक अंश का भी प्रेम है तो अन्तर में अनुभव नहीं होता। उसे सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता। समझ में आया? भाई! ऐसा कैसे कहा? लोग ऐसा कहते हैं कि निश्चय के साथ व्यवहार हो और व्यवहार की क्रिया हो तो वह कथन बराबर है। वह कथन बराबर है और वह बात बराबर है। उसे तो व्यवहार का उमंग-उत्साह है। समझ में आया?

(समयसार की) १४३ गाथा में कहा है न? समयसार १४३ (गाथा)। केवली भगवान दो नय के साक्षी हैं। उन्हें नय नहीं, उसका अर्थ साक्षी है। समझ में आया? अभी तो उसका भी बहुत विवाद है न? १२ वीं गाथा। **सुद्धो सुद्धादेसो णादव्वो परमभावदरिसीहिं** अर्थात् जिसे पूर्ण शुद्धनय जानने में आया, ऐसे केवली को उसका पक्ष नहीं है। उसका

ऐसा अर्थ करते हैं, अभी अर्थ आया है कि शुद्धनय, जहाँ तक सातवाँ, आठवाँ, दसवाँ गुणस्थान हो, तब शुद्धनय होता है। केवली को शुद्धनय कहा है तो वहाँ नय नहीं। क्या कहा? वहाँ आया न?

'**ववहारदेसिदा पुण जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे**' इसका अर्थ उन लोगों ने ऐसा किया है कि जब तक शुद्धनय में नहीं, तब तक अकेला व्यवहार है। चौथे, पाँचवें, छठे (गुणस्थान में) व्यवहार है, वहाँ शुद्धनय नहीं और केवली को शुद्धनय नहीं। शुद्धनय जाना हुआ प्रयोजनवान है तो वहाँ तो नय नहीं। अन्तर में सातवें गुणस्थान इत्यादि में शुद्धनय है, उसे जाना हुआ प्रयोजनवान है, ऐसा अर्थ करते हैं। अभी तो बहुत विचित्रता हुई है। आहा..! ऐसा नहीं।

जब आत्मा का, राग के कण की रुचि छूटकर-चाहे तो शुभराग हो, व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प हो, उसका भी अवलम्बन और रुचि छूटकर अन्तर में अनुभव में जाता है, वहाँ कोई नयपक्ष और राग नहीं रहता। समझ में आया? अन्तर में जब आत्मा अपना ज्ञायकस्वरूप, अपना ज्ञायक, ज्ञान और ज्ञाता ऐसे तीन भेद को भी छोड़कर अपने स्वरूप के अनुभव में जाता है, तब उसे व्यवहार नहीं रहा तो व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है, वह उसे रहा नहीं।

वे लोग ऐसा कहते हैं कि व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान तो छठवें गुणस्थान तक है, पश्चात् तो शुद्धनय है। ऐसा नहीं है। आहा..हा..! राग के कण का-अंश का भी प्रेम है... वहाँ भाई! ऐसा कहा है न? कि श्रुतज्ञान के क्षयोपशम से विकल्प उत्पन्न होते हैं। १४३ गाथा, समयसार। श्रुतज्ञान का क्षयोपशम है, उस कारण से ज्ञानी को विकल्प उठता है, परन्तु उस विकल्प को पकड़ने का उत्साह निवृत्त हुआ है। आहा..हा..! बात में बहुत अन्तर है। समझ में आया? पहले यथार्थ चीज़ क्या है, उसका ज्ञान तो करे। आहा..हा..!

मुमुक्षु : क्षयोपशम है परन्तु उत्साह से निवृत्त हुआ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु उस उत्साह से निवृत्त हुआ है। है अवश्य, परन्तु इसमें उत्साह नहीं, प्रेम नहीं। आहा..हा..! वे लोग ऐसा कहते हैं कि निश्चय हो, वहाँ व्यवहार आता है और व्यवहार से लाभ होता है—ऐसा कहो तो अनेकान्त है। यहाँ तो कहते हैं कि व्यवहार का विकल्प आया, अन्तरस्वरूप की दृष्टि हुई, राग की-विकल्प की रुचि छूटकर

निर्विकल्प स्वभाव का अनुभव-दृष्टि हुई, तब तो उसमें विकल्प नहीं, परन्तु अनुभव होने के पश्चात् अन्दर में रह नहीं सकते और बाहर आवे तो श्रवण का, मनन का, कथन का, भक्ति इत्यादि का विकल्प उत्पन्न होता है परन्तु उस विकल्प के प्रति उत्साह निवृत्त हुआ है। वह ठीक है और मुझे लाभदायक है - ऐसे उत्साह से निवृत्त है। आहा..हा..! ये किस प्रकार (बैठे) ? समझ में आया ? आता है - सम्यग्दृष्टि को भी जब तक पूर्ण वीतराग न हो, तब तक राग आता है। दया का, दान का, भक्ति का, पूजा का (राग आता है) परन्तु अन्तर्दृष्टि के विषय में उस राग को पकड़ना, उस उत्साह से निवृत्त हो गया है - एक बात। और अनुभव के काल में तो कोई विकल्प है ही नहीं। समझ में आया ? आहा..हा..! बहुत सूक्ष्म बात, भाई! वीतरागमार्ग जिनेश्वर-परमेश्वर का पंथ अलौकिक चीज़ है।

यहाँ कहते हैं कि (आँख में) किरकिरी समा नहीं सकती। भगवान आत्मा आनन्द चिदानन्दस्वरूप के अनुभव में सम्यग्दर्शन होने में राग का कण भी वहाँ सहायक नहीं होता। वहाँ राग का कण भी खटकता है। आहा..हा..! समझ में आया ? आहा..हा..! यहाँ तो दूसरी बात करते हैं। **आँख में किरकिरी नहीं समाती,...** एक रजकण भी नहीं रह सकता, समा नहीं सकता। **उसी प्रकार विभाव का अंश हो, तब तक स्वभाव की पूर्णता नहीं होती।** आहा..हा..! जब तक व्यवहाररत्नत्रय के विभाव का अंश हो... आहा..हा..! वहाँ तक पूर्णता-आनन्द की दशा और केवलज्ञान की पूर्ण प्राप्ति वहाँ तक नहीं होती, तो वह व्यवहार करने योग्य है - ऐसा कर्तव्य है ? आता है, और परिणमन है; इसलिए करता है - ऐसा भी कहने में आता है। परिणमता है, इसलिए करता है—ऐसा भी ज्ञानी को कहने में आता है परन्तु करनेयोग्य है - ऐसी बुद्धि नहीं रहती। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं। समझ में आया ? वह करनेयोग्य है - ऐसी बुद्धि छूट गयी है। अरे! मैं शुद्ध हूँ, परिपूर्ण हूँ, अबन्ध हूँ—ऐसा जो विकल्प / राग है, वह भी छूट जाये, तब निर्विकल्प दृष्टि का अनुभव होता है। आहा..हा..!

स्वभाव सहजानन्द प्रभु का अनुभव कब होता है ? सम्यग्दर्शन, अनुभव कहो, दर्शन-सम्यक् कहो, अनुभूति - स्वभाव की अनुभूति कहो। जैसा पूर्ण चिदानन्द भगवान आत्मा की अनुभूति-स्वभाव के अनुसार आनन्द की जो दशा होती है, उसमें विकल्प का अंश भी सहायक नहीं है। आहा! विकल्प के एक अंश की भी रुचि रहे, तब तक अनुभूति, सम्यग्दर्शन नहीं होता धन्नालालजी! आहा..हा..! और फिर रुचि नहीं, दृष्टि नहीं, उत्साह

(अर्थात्) यह ठीक है—ऐसा उत्साह भी निवृत्त हुआ है परन्तु राग है अवश्य, वह राग का अंश भी जब तक रहे, तब तक स्वभाव की पूर्णता प्राप्त नहीं होती। आहा..हा..! समझ में आया?

अरे, आठ वर्ष के बालक हों, (वे भी) सम्यग्दर्शन प्राप्त करके केवलज्ञान प्राप्त करते थे। आहा..हा..! अरे! प्रभु! तुझमें इतनी ताकत है! उसे किसी उम्र की आवश्यकता नहीं। आहा..हा..! भगवान शाश्वत् वस्तु अन्दर पड़ी है न! नित्यानन्द का नाथ, सहजात्मस्वरूप सहज आत्मस्वरूप—ऐसी त्रिकाली शाश्वत् वस्तु है। उसे दृष्टि में लेकर अनुभव होता है और उसमें स्थिर होकर केवलज्ञान होता है। आहा..हा..! आठ वर्ष का पुत्र राजकुमार हो, परन्तु अन्तर पूर्ण वस्तु पड़ी है न पूरी! आहा..हा..! परन्तु उस वस्तु में जाना-दृष्टि करना, वह कोई अलौकिक चीज़ है। आहा..हा..!

राग के विकल्प से भी हटकर निर्विकल्पस्वभाव की दृष्टि हो, तब आत्मा की अनुभूति होती है। अनुभूति अर्थात् आत्मा स्वभाव सहजानन्द प्रभु को अनुसरण कर दशा होती है। वह होने के पश्चात् भी जब तक राग का अंश रहता है, तब तक पूर्णता नहीं होती। आहा..हा..! समझ में आया? पहले राग के अंश में रुचि रहती है, तब तक सम्यग्दर्शन नहीं होता और पश्चात् राग की आसक्ति का अंश भी रहता है, तब तक पूर्णता-केवलज्ञान नहीं होता। आहा..हा..! ऐसा मार्ग है।

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन के एक समय पहले दुःख का अनुभव है या सुख का अनुभव है?

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दर्शन के पहले दुःख का अनुभव है। विकल्प है न! उस विकल्प को तोड़कर अन्दर जाता है, तब आनन्द का अनुभव होता है। अरे..! वहाँ तक कहा है न? मैं शुद्ध अबन्ध मुक्तस्वरूप हूँ, शाश्वत् चिद्घन अस्ति तत्त्व हूँ—ऐसा विकल्प उठता है, वह भी दुःखरूप है। आहा..हा..! १४२ गाथा में आया है न? व्यवहार का तो हम निषेध करते आये हैं... समयसार १४२ गाथा। व्यवहार का तो हम निषेध करते आये हैं परन्तु अभी तो हम (ऐसा कहते हैं)। शुद्ध चैतन्यघन अखण्ड अभेद शाश्वत् वस्तु का विकल्प रहता है, उसका भी हम निषेध करते हैं। ऐसे नय का पक्ष रहेगा, तब तक सम्यग्दर्शन नहीं होगा।

मुमुक्षु : एक समय पहले तो स्वभाव की महिमा...

पूज्य गुरुदेवश्री : दुःख है, दुःख है, राग है न!

मुमुक्षु : स्वभाव की महिमा में लगा हुआ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : महिमा आयी, तब तो सम्यग्दर्शन हुआ। महिमा किसे कहते हैं? महिमा यह अच्छा है—ऐसा विकल्प आया, वह महिमा का विकल्प आया, वह तो दुःखरूप है। आहा..हा..! सूक्ष्म बात है, भाई! अद्भुत वस्तु है—अनुभव के पहले ऐसा विकल्प आया, (वह भी दुःखरूप है); इसलिए तो कहा, सम्यग्दृष्टि को अनुभव होने के बाद विकल्प तो आता है परन्तु वह मेरी चीज़ है - ऐसा उत्साह निवृत्त हो गया है, जाननेवाला रह गया है। सूक्ष्म बात है, भाई! आहा..हा..!

यह तो वीर का पंथ है, यहाँ कायर का काम नहीं। आहा..हा..! लोग चाहे जिस प्रकार कहें, ऐसा है और वैसा है। एक दरबारीलाल (अर्थात्) है न? उसने भाई का-हुकमचन्दजी का गुणगान किया है, तुम अब निश्चय के साथ व्यवहार लेने लगे, इसलिए बहुत अच्छी बात है। हुकमचन्दजी! बात ऐसी है कि व्यवहार आवे तो ठीक है, ऐसा उनका भाव है। आहा..हा..! व्यवहार आता है तो प्रसन्न होते हैं, परन्तु व्यवहार आया, वह तो राग है। अरे! प्रभु! गुण-गुणी का भेद... परमात्मप्रकाश में निश्चय के दो भेद लिये हैं न? निश्चय वह पूर्णानन्द है—ऐसा विकल्प (आवे), वह भी एक निश्चय का विकल्प है, वह सास्रव है और अन्दर निर्विकल्प निश्चय हुआ, वह अनास्रव और संवर है। ऐसी बात है, भाई! वाद-विवाद से कहीं पार पड़े, ऐसा नहीं है। आहा..हा..!

सहजस्वरूप शाश्वत् चैतन्यघन प्रभु, जिसमें विकल्प का अवकाश नहीं। जैसे आँख में किरकिरी नहीं (समा सकती), वैसे भगवान आत्मा में राग का अंश नहीं और ऐसा अनुभव होने के बाद भी राग का कण अस्थिरता का रहता है, तब तक पूर्णता की प्राप्ति नहीं होती। इस राग के कण से पूर्णता की प्राप्ति नहीं होती। उसका अभाव करने से पूर्णता प्राप्त होती है। बात तो ऐसी है, बापू! सत्य तो यह है। उसे कहीं कुछ भी लांछन लगा दो तो तुझे कलंक लगेगा, भाई! आहा..हा..!

वीतरागमूर्ति प्रभु स्वयं वीतराग बिम्ब है, आत्मा जिनबिम्ब है, उसके अनुभव में विकल्प का कोई अंश जो दुःखरूप है, उसकी मदद, सहायता बिल्कुल नहीं है। आहा..हा..!

यहाँ कहते हैं कि पहले तो सम्यग्दर्शन में राग के कण के अंश का प्रेम रह गया तो सम्यग्दर्शन नहीं होता, एक बात। फिर **उसी प्रकार विभाव का अंश हो, तब तक स्वभाव की पूर्णता नहीं होती।** बराबर है ? आहा..हा..! समझ में आया ?

अल्प संज्वलनकषाय भी... आहा..हा..! संज्वलन-चौथी कषाय का थोड़ा अंश। आहा..हा..! बुद्धिपूर्वक पंच महाव्रत इत्यादि का विकल्प है, वह भी नुकसान करनेवाला है। आहा..हा..! वह आगे बढ़ने नहीं देता। आहा..हा..! और सातवें (गुणस्थान में) अन्दर ध्यान में (सातवें में) गये तो भी अबुद्धिपूर्वक का राग रहा, वहाँ तक पूर्णता प्राप्त नहीं होती। समझ में आया ? ऐसा वीतराग का मार्ग है, भाई! सर्वज्ञ परमात्मा की दिव्यध्वनि में तो यह आया है। बाकी सब अपने घर की गड़बड़ करते हैं।

अल्प संज्वलनकषाय भी है, तब तक वीतरागता और केवलज्ञान नहीं होता। आहा..हा..! यहाँ कहते हैं कि राग आता है, वह तो बराबर ठीक आया है। निश्चय के साथ व्यवहार आया तो ठीक आया परन्तु व्यवहार आया, वह नुकसानकारक आया है। ज्ञानी को हेयबुद्धि से राग आता है। आता है। समझ में आया ? आहा! पूर्ण अतीन्द्रियज्ञान का... बापू! इसे पता नहीं। भाई! प्रभु! तेरी चीज़ अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय वीतरागस्वभाव से भरपूर भरी है। आहा..हा..! ऐसी वस्तु को विकल्प का आधार हो तो सम्यग्दर्शन होता है - ऐसा नहीं है और पश्चात् विकल्प का आधार हो तो केवलज्ञान होता है-(ऐसा भी नहीं है)। ऐसी वस्तु है, भाई!

मुमुक्षु : तो भी है क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह है, वस्तु यह है। आहा..हा..! इसे ज्ञान में पहले ऐसा निर्धार करना पड़ेगा, प्रभु! यदि ज्ञान के निर्वाह में फेरफार होगा तो अन्तर में नहीं जा सकेगा, वह दरबार में नहीं प्रवेश कर सकेगा। अन्दर गहरे-गहरे राग के कण का प्रेम और रस रहेगा, वह चैतन्य के रस में घुस नहीं सकेगा। ऐसी बात है, प्रभु! क्या हो ? **तब तक वीतरागता और केवलज्ञान नहीं होता।** १७३ (बोल) पूरा हुआ। १७४।

वचनामृत की प्रशंसा बहुत आयी है। आत्मधर्म हिन्दी पुस्तक आती है न ? उसमें बहुत लोगों ने लिखा है, बहुत अच्छा है। भाई! जरा शान्ति से आग्रह छोड़कर, सत्य क्या है—ऐसा ज्ञान करे तो उसे पता लग जाये... आहा..हा..! कि यह बात ही सत्य है। बाकी सब व्यवहार से होता है, व्यवहार आता है तो हमें ठीक लगता है, (यह सब विपरीतता है)।

आठवीं गाथा में तो ऐसा कहा कि मुनिराज, सन्त और ज्ञानी आत्मा, दूसरे को आत्मा कहा परन्तु वह आत्मा का अर्थ समझा नहीं तो मुनिराज स्वयं कहनेवाले अथवा दूसरे थे, अपने निश्चयसहित व्यवहार में आये, तब उसका अर्थ उन्होंने बताया कि भाई! यह दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो वह आत्मा। आहा..हा..! आया है न? शशीभाई! आठवीं गाथा, आहा..हा..! दिगम्बर सन्तों की वाणी... दुनिया में कहीं कोई वस्तु, किसी मार्ग के साथ मिलान खाये ऐसा नहीं है। आहा..! यह वीतरागी वाणी वीतरागभाव से निकली हुई वाणी है। आहा..हा..! वह ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! जब तक आत्मा में राग का अंश रहता है, आता है। राग के अवलम्बन बिना चैतन्य के अवलम्बन से आत्मा का अनुभव हुआ.. समझ में आया? उसके पश्चात् भी राग तो रहता है। उसमें से रुचि हट गयी, परन्तु अस्थिरता रह गयी। समझ में आया? जब तक अस्थिरता रह गयी, तब तक केवलज्ञान और वीतरागता नहीं होती। जब तक व्यवहार का विकल्प आता रहेगा, तब तक वीतरागता नहीं होती। आहा..हा..! अरे! ऐसा मार्ग! अरे! इसका निर्णय और अनुभव करने के लिये यह मनुष्यभव मिला है।

छहढाला में तो ऐसा कहा कि जैसे चिन्तामणि की प्राप्ति होती है, वैसे निगोद में से त्रस की प्राप्ति होना, वह चिन्तामणि के समान है, भाई! अरे रे! वहाँ अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. काल अनन्त निगोद की दशा। आहा..हा..! भाई! तुम्हें शब्द ठीक नहीं लगेगा। अन्दर शब्द का माहात्म्य क्या है? एक शरीर में अनन्त-अनन्त निगोद और जिनके ज्ञान का उघाड़ एक अक्षर के अनन्तवें भाग; उनके दुःख की वेदना... आहा..हा..! उसे भी आनन्द का नाथ अन्दर द्रव्य बिराजमान है परन्तु पर्याय में अक्षर के अनन्तवाँ भाग (उघाड़), एक शरीर में अनन्त आत्माएँ! आहा..हा..! क्या है यह? उसमें से निकलकर त्रसपना प्राप्त करना, वह चिन्तामणि के समान है। अरे! भाई! तुझे कीमत नहीं। कीमत किसलिए नहीं? धर्म करने के लिये। यह महा मनुष्यपना मिला, वह कहीं भोग के लिये या विषय करने के लिये, व्यापार करने के लिये यह मनुष्यपना है? समझ में आया? गोम्मटसार में तो ऐसा लिखा है कि मनुष्य किसे कहते हैं? 'ज्ञायते इति मनुष्यः' जाननेवाला हो, वह मनुष्य है, बाकी पशु है। आहा..हा..!

चैतन्यमूर्ति भगवान पूर्ण आनन्द और ज्ञान का सागर नाथ, शाश्वत् वस्तु अन्दर बिम्ब जिसके कर्तृत्व में कुछ है नहीं, उसका कोई कर्ता नहीं, उसकी कोई आदि नहीं और

उस शाश्वत् वस्तु का कोई अन्त नहीं, उस शाश्वत् वस्तु में अनन्त शक्तियाँ हैं, उन शक्तियों का अन्त नहीं। वर्तमान में, हों! शक्ति का अन्त नहीं। आदि और अन्त नहीं; भूत और भविष्य, वह तो दूसरी बात है परन्तु आत्मा में जो अनन्त शक्तियाँ / गुण हैं, उस गुण का वर्तमान में कोई अन्त नहीं कि यह अन्तिम गुण रह गया। आहा..हा..! आहा..हा..!

प्रभु! चैतन्य द्रव्यस्वरूप चिदानन्द भगवान, जिसकी शुरुआत नहीं, जिसका अन्त नहीं और वर्तमान में उसके अनन्त गुण का छोर / अन्त नहीं। आहा..हा..! आहा..हा..! क्या चीज़ है वह? समझ में आया? ऐसी चीज़ को प्राप्त करना। इस राग के कण का भी प्रेम छूट जाये, तब इसे अनुभव होगा। आहा..हा..! फिर भी राग का-व्यवहार का कण आता है, अरे! सातवें, आठवें, नौवें, दसवें गुणस्थान में अबुद्धिपूर्वक का राग रहेगा, तब तक केवलज्ञान नहीं होगा। आहा..हा..! राग आया है, वह ठीक है, सहायक है - ऐसा है? आहा..हा..! पीछे १७४, यह तो अकेला मक्खन है! आहा..हा..!

'मैं हूँ चैतन्य'। जिसे घर नहीं मिला है ऐसे मनुष्य को बाहर खड़े-खड़े बाहर की वस्तुएँ, धमाल देखने पर अशान्ति रहती है; परन्तु जिसे घर मिल गया है, उसे घर में रहते हुए बाहर की वस्तुएँ, धमाल देखने पर शान्ति रहती है; उसी प्रकार जिसे चैतन्यघर मिल गया है, दृष्टि प्राप्त हो गई है, उसे उपयोग बाहर जाय तब भी शान्ति रहती है॥१७४॥

१७४, **'मैं हूँ चैतन्य'**। ऐसा अपना घर जिसे मिला, आहा..हा..! अपना वतन जो निर्मल त्रिकालस्वरूप, वह अपना स्थान है। मैं चैतन्य हूँ, उसे अपना घर मिला। आहा..हा..! **जिसे घर नहीं मिला है ऐसे मनुष्य को बाहर खड़े-खड़े बाहर की वस्तुएँ, धमाल देखने पर अशान्ति रहती है;...** अपने घर में गया नहीं और बाहर खड़ा है। बाहर की बात है, अपने घर में गया और फिर बाहर देखे, वह दूसरी बात है। अपने घर में गये बिना बाहर में रहकर धमाल देखे तो उसे अशान्ति रहती है। आहा..हा..! क्या कहते हैं? समझ में आया?

जिसे घर नहीं मिला है, ऐसे मनुष्य को बाहर खड़े-खड़े बाहर की वस्तुएँ, धमाल देखने पर अशान्ति रहती है;... क्योंकि निज घर में प्रवेश नहीं किया। बाहर का,

हों! पहले बाहर के घर की बात है। आहा..हा..! **परन्तु जिसे घर मिल गया है...** मैं चैतन्य हूँ-ऐसा घर मिल गया। भक्ति में-भजन में आता है न? नहीं?

अब हम कबहूँ न निज घर आये
पर घर भ्रमत नाम अनेक धराये
अब हम कहूँ न निज घर आये

निज घर चैतन्य वस्तु भगवान ज्ञायकस्वभाव, पूर्णानन्द सहजात्म चिद्घन, आनन्द के अमृत के सागर से भरपूर भरा हुआ अन्दर, ऐसा प्रभु जिसकी दृष्टि में, निज घर में आ गया। आहा..हा..! है? **परन्तु जिसे घर मिल गया है...** मैं चैतन्य हूँ-ऐसा घर मिल गया। आहा..हा..! **उसे घर में रहते हुए...** चैतन्यघर में रहते हुए, आहा..हा..! **बाहर की वस्तुएँ, धमाल...** शुभ-अशुभभाव उत्पन्न होते हैं, धमाल.. **देखने पर शान्ति रहती है;...** धमाल-राग आता है, उसे देखता है परन्तु अन्तर में तो शान्ति है (क्योंकि) निज घर में है। आहा..हा..! समझ में आया? इस होली में लोग धमाल करने निकलते हैं न? घर के बाहर खड़ा हो तो उसे दु:ख लगता है कि अभी निकलेंगे तो क्या करेंगे? क्या करेंगे? पकड़ कर मुँह काला करेंगे। अभी होली में कहाँ थे? हैदराबाद। उस दिन गाँव में लोग ऐसे सबको पकड़े, मुँह काला करे। बाहर निकले तो, घर में रहे तो कौन (आवे)? दरवाजा बन्द करके अन्दर बैठे, फिर दिक्कत नहीं। यहाँ कहते हैं कि घर में रहकर बाहर की धमाल देखे तो उसे अशान्ति नहीं होती। ऐसे निज घर में रहता है। आहा..हा..!

'सुखधाम अनन्त सुसंत चही, दिन रात रहे तद्ध्यान महीं' आहा..हा..! 'प्रशान्ति अनन्त सुधामय जे, प्रण मु पदते वरते जयते।' श्रीमद् का अन्तिम वाक्य है। श्रीमद् का अन्तिम (वाक्य है)।

मुमुक्षु : आपने राजकोट में अन्तिम कहा था।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तिम कहा था। 'सुखधाम अनन्त सुसंत चही' वहाँ गुरु की मुख्यता ली है, आत्मा भी ऐसा है।

सुखधाम अनंत सुसंत चही,
दिन रात रहे तद्ध्यान महीं,
प्रशान्ति अनंत सुधामय जे...

प्रशान्ति-शान्ति, स्वभाव में से शान्ति प्रगट हुई। आहा..हा..! शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. प्रगट। आहा..हा..! 'प्रणमु पदते' प्रशान्तस्वरूप भगवान और प्रशान्त स्वरूप परिणति। '**प्रणमु पदते वरते जयते**' जिसका जगत में जय हुआ। आहा..हा..! डंका मारा अन्दर में से! भगवान तीन लोक का नाथ, चैतन्यस्वरूपी मैं, केवलज्ञान की पर्याय से भी अनन्तगुणा मेरा सामर्थ्य है। आहा..हा..! भाई! बात सूक्ष्म है परन्तु इसके घर की बातें हैं। घर में क्या भरा है, इसकी खबर नहीं। समझ में आया? आहा..हा..!

वह यहाँ कहते हैं, **घर में रहते हुए बाहर की वस्तुएँ, धमाल देखने पर शान्ति रहती है;...** क्योंकि जानने-देखनेवाले में रहा। फिर भले विकल्प की धमाल उत्पन्न हो, परन्तु ज्ञाता-दृष्टा रहता है तो शान्ति रहती है। समझ में आया? ऐसी बातें, भाई! ऐसा है। यह कथा-वार्ता नहीं है। यह तो आत्मकथा, धर्मकथा है। बाकी तो राग से लाभ हो—ऐसी कथा तो विकथा है, वह धर्मकथा नहीं। आहा..हा..!

व्यवहारनय के विषय में राग आता है, अरे! पर्यायबुद्धि में शान्ति नहीं, उससे मुझे लाभ होगा... आहा..हा..! वह तो अशान्ति, परघर में है। उस परघर में रहता है, उसे पर की धमाल देखने में अशान्ति रहती है। आहा..हा..! परन्तु निज घर में प्रवेश करने के पश्चात्, होली में भले सौ, दो सौ, पाँच सौ लोग हो... हा..., हो..हा.. करते निकलें परन्तु मेरे घर में प्रवेश नहीं कर सकते। समझ में आया?

अफ्रीका के जंगल में सैकड़ों सिंह होते हैं, सैंकड़ों के झुण्ड निकले तो फिल्मवाले, पहले पाँच लाख का सुना था परन्तु अब तो पन्द्रह-पन्द्रह लाख, बीस लाख की गाड़ियाँ (बनती है)। सामने लोहे के सरिया होते हैं, वे खुले रहते हैं। सिंह आकर मारे परन्तु अन्दर थाप नहीं लग सकती। चारों ओर लोहे के (सरिया होते हैं)। उस समय पाँच लाख कहते थे। अब तो साढ़े दस लाख की रजनीश ने ली है। रजनीश नहीं? धर्म के नाम (रखते हैं)। था तो यहाँ दिगम्बर, तारणस्वामी का परन्तु अभी अज्ञान के नाम से धमाल (करता है)। ऐसा किसी को ऐसा करे और किसी को ऐसा करे और ऐसा करे तो ऐसा हो, अमुक हो, ऐसा बहुत आया था। समाचार-पत्र में आया है। कोई कहता था, हम कहाँ समाचार-पत्र पढ़ते हैं? साढ़े दस लाख रुपये की... साढ़े दस लाख है न? अभी गाड़ी ली है। साढ़े दस लाख। कैसी होगी? यह गाड़ी तो सिंह की फिल्म लेने जाते हैं, अफ्रीका के जंगल में

सैकड़ों सिंह के बच्चे ऐसे चले जाते हों। वह मोटर ऐसी होती है कि सिंह के झुण्ड आवें तो भी उसका पैर अन्दर प्रवेश नहीं कर सकता।

इसी प्रकार जो निज घर में-चैतन्य भगवान में जो आया... आहा..हा..! उसे पुण्य-पाप का विकल्प खेद उत्पन्न नहीं होता, वह तो शान्ति-ज्ञाता-दृष्टा रहता है। आहा..हा..! है तो खेद, परन्तु उसे जानने-देखने में रहता हो तो शान्ति रहती है। आहा..हा..! ऐसा उपदेश! बनियों को व्यापार के कारण फुरसत नहीं मिलती। पूरे दिन बाहर कमाना और यह करना और... आहा..हा..! अर र! अरे रे! ऐसा मनुष्यभव...

मुमुक्षु : तो फिर खाना क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : खाने के रजकण तो मिलनेवाले होते हैं (वे तो मिलते ही हैं)। कहते हैं न, 'दाने-दाने पर लिखा है खानेवाले का नाम।' उसमें नाम लिखा है अर्थात् वे ही आनेवाले हैं वे आयेंगे। ये प्रयत्न करेगा तो भी जो आनेवाले हैं, वे आयेंगे। नहीं करेगा तो भी जो आने का होगा, वह आयेगा। 'दाने-दाने पर लिखा है खानेवाले का नाम।' ऐसा नहीं कहते। श्रद्धा-प्रतीति कहाँ है? मैं ऐसा करूँगा तो आहार मिलेगा, ऐसा करूँगा तो (मिलेगा)... धूल में भी नहीं, सुन न! आहा..हा..!

यहाँ कहते हैं कि जिसे चैतन्य घर मिला, उसे बाहर की धमाल देखने पर भी अन्दर में शान्ति रहती है और जिसे चैतन्य घर नहीं मिला, घर के बाहर खड़े-खड़े राग में खड़ा है, ज्ञेय की धमाल देखकर उसे राग और विकार ही होता है। आहा..हा..! समझ में आया?

चैतन्यघर मिल गया है, दृष्टि प्राप्त हो गई है,... आहा..हा..! शुद्ध चैतन्य सहजानन्द प्रभु, अमृत का पिण्ड प्रभु है, सुख अमृत का पिण्ड है। आहा..हा..! जिसे शाश्वत् वस्तु अन्दर में मिल गयी, उसे दृष्टि में ली, सम्यग्दर्शन में पूरी चीज़ मिल गयी। सबेरे आया था न? सम्यग्दर्शन, वह आत्मा है। आहा..हा..! त्रिकाल स्वरूप भी आत्मा है। त्रिकाल श्रद्धा, हों! और वर्तमान श्रद्धा भी आत्मा है। उसमें राग का भाव नहीं, वह तो निरागी, अरागी सम्यग्दर्शन पर्याय है। आहा..हा..! तो वह तो आत्मा है। आहा..हा..! स्वभाव की शरण से भगवान आनन्द का पर्वत परमात्मा प्रभु, ओहो..हो..! जैसे बिजली गिरने से पर्वत के दो टुकड़े हो जाते हैं, वे दो टुकड़े किसी रेण से इकट्ठे नहीं होते। रेण... रेण कहते हैं न? साँधते हैं न? इसी प्रकार भगवान आत्मा और राग के बीच प्रज्ञाछैनी मारकर दो भिन्न टुकड़े हो

गये। अब वे दोनों कभी इकट्ठे नहीं होते। आहा..हा..! ऐसा मार्ग है, बापू! अभी प्रथम सम्यग्दर्शन की भूमिका का मार्ग कोई अलौकिक है।

चारित्र तो बापू! वह तो अलौकिक बातें, भाई! आहा..हा..! चारित्र अर्थात् चरना। परन्तु किसमें? पशु चरते हैं तो क्या (चरते हैं)? घास हो वह चरते हैं या घास बिना पत्थर और धूल चरते हैं? आहा..हा..! एक भाई मिले थे वहाँ, नानालालभाई का गाँव है न? भाई! सनोढा? नानाभाई का गाँव। अपने करोड़पति नानालालभाई, छोटा गाँव सनोढा हम गये थे। सब आये थे। सेठ आये थे, पूरे गाँव को गुड़ देना, ऐसा सब निश्चित किया। गाँव के लोगों को काठी के साथ विरोध था। काठी - गरसिया, गरसिया इन लोगों को अनुकूल होने में मदद (करते थे), इसलिए पूरा गाँव कहे कि पूरे गाँव को गुड़ देने का कुछ था। गुड़ था न? प्रत्येक को घर अनुसार देना था। जीमाना होगा या गुड़ देना होगा? जीमाना होगा। हम वहाँ गये थे, इसलिए पूरा गाँव जीमाना था। गाँव में क्या? दो-पाँच-दस हजार का खर्च होता है। नहीं गये, नहीं माने, क्योंकि वे काठी लोग हैं, वे इन्हें अनुकूल हैं और हमारे से विरुद्ध हैं तो काठी को अनुकूल है, तब तक हम उनका आहार नहीं लेंगे। फिर गुड़ था, वह वितरित किया था। बहुत गुड़ लाये न?

यहाँ तो दूसरा कहना है। उस समय एक किसान आया था, वह तो बड़ा सेठ करोड़पति और छोटे गाँव में जन्मा हुआ और बड़ा सेठ हो गया। एक सेठ आये, वहाँ प्रसन्न-प्रसन्न हो गया। महाराज! भगवान ने ऐसा किया है कि बाहर में घास नहीं। भगवान! तेरा बुरा होगा। क्या बोलता है, उसकी बेचारे को खबर नहीं। हमारे पास बैठा था, सेठ बैठा था। भगवान! तेरा बुरा होगा। बाहर में घास नहीं, पशु चरे क्या? घास बिना चरे क्या? आहा..हा..! इसी प्रकार प्रभु आत्मा की दृष्टि और अनुभव हुआ नहीं तो चरना किसमें? रमना किसमें? आहा..हा..! समझ में आया?

दृष्टि प्राप्त हो गई है,... आहा..हा..! **उसे उपयोग बाहर जाये...** विकल्प में आता है, **तब भी शान्ति रहती है।** आहा..हा..! भगवान शान्ति का सागर परमात्मा, उपशमरस। आहा..हा..! स्तवन में नहीं आता?

उपशमरस बरसे रे प्रभु तेरे नयन में...

उपशमरस का कन्द प्रभु! आत्मा अकषाय वीतरागस्वभाव का पिण्ड प्रभु अन्दर

है। आहा..हा..! उसका जहाँ अनुभव हुआ.. आहा..हा..! तो कहते हैं कि शान्ति.. शान्ति.. शान्ति दिखती है। धर्मी को तो शान्ति दिखती है। आहा..हा..! समझ में आया? बाहर की धमाल देखकर.. शरीर आदि बाहर की क्रिया हो परन्तु अन्तर में तो ज्ञाता-दृष्टा रहता है। आहा..हा..! ऐसी बात है। सूक्ष्म बात, बापू! धर्म ऐसी चीज़ है। एक सेकेण्ड भी जहाँ सम्यग्दर्शन हुआ तो जन्म-मरण का अन्त हो गया। वह वस्तु कैसी है? आहा..हा..! समझ में आया? १७४ (बोल पूरा) हुआ।

साधक जीव को अपने अनेक गुणों की पर्यायें निर्मल होती हैं, खिलती हैं। जिस प्रकार नन्दनवन में अनेक वृक्षों के विविध प्रकार के पत्र-पुष्प-फलादि खिल उठते हैं, उसी प्रकार साधक आत्मा को चैतन्यरूपी नन्दनवन में अनेक गुणों की विविध प्रकार की पर्यायें खिल उठती हैं॥१७५॥

१७५, **साधक जीव को अपने अनेक गुणों की पर्यायें निर्मल होती हैं, खिलती हैं।** आहा..हा..! तिर्यंच हो, मनुष्य हो, नारकी हो परन्तु अपने भगवान का अनुभव, सम्यग्दर्शन हुआ, साधकपना हुआ, स्वरूप का साधकपना हुआ; राग का साधकपना हुआ तो अनादि से था, उस बाधकपने का नाश करके... आहा..हा..! भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु का साधकपना हुआ, शुद्ध चिदानन्द प्रभु.. आहा..हा..! आठ वर्ष की बालिका हो और उसे सम्यग्दर्शन, साधकपना हुआ। आहा..हा..!

अपने अनेक गुणों की पर्यायें निर्मल होती हैं,... आहा..हा..! अनेक अर्थात् अनन्त। सब जितने गुण हैं, उन सबकी निर्मल पर्यायें समकिती को प्रगट होती हैं। सम्यग्दर्शन पहली चीज़, धर्म की पहली चीज़; ऐसे साधक जीव को अनन्त गुणस्वरूप भगवान आत्मा की दृष्टि हुई, सम्यग्दर्शन में अनुभव हुआ, तब अनन्त गुण की पर्यायें निर्मल होती हैं। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भगवान! आहा..हा..!

सम्यग्दर्शन अर्थात् 'सर्व गुणांश, वह समकित'। 'सर्व गुणांश, वह समकित'। आत्मा में अनन्त गुण हैं, अपार गुण हैं, अपार गुण हैं, बापू! चिदानन्द सहजात्म भगवान आत्मा... आहा..हा..! उसकी जहाँ दृष्टि सम्यक् हुई, उसका अनुभव हुआ तो अनन्त गुण जितने हैं, उनमें से सभी गुण का एक अंश व्यक्त अर्थात् प्रगट निर्मल दशा होती है। तब

उसे सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान कहने में आता है। आहा..हा..! समझ में आया? क्या कहा?

साधक जीव को... भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर— ऐसा भगवान अपना निजस्वरूप, उसका अनुभव हुआ, साधक जीव को सम्यग्दर्शन हुआ; मैं राग भी नहीं, शरीर नहीं, वाणी नहीं, अल्प पर्याय भी मैं नहीं... आहा..हा..! मैं तो चैतन्यस्वरूप पूर्णानन्द का नाथ, वह चैतन्य मैं हूँ। आहा..हा..! ऐसी दृष्टि जब हुई, तब सम्यग्दृष्टि को जितनी संख्या में अन्दर गुण हैं, उन सब गुणों की निर्मल पर्याय आंशिक प्रगट होती है। आहा..हा..!

अपने रहस्यपूर्ण चिट्ठी में टोडरमलजी ने लिखा है, टोडरमलजी - एकदेश ज्ञान का अंश, अनन्त गुण का अंश समकिती को प्रगट होता है। आहा..हा..! अरे! समकित क्या चीज़ है, इसकी खबर नहीं होती। आहा..! धर्म की पहली सीढ़ी सम्यग्दर्शन। उस सम्यग्दर्शन में अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु आत्मा, वह ज्ञान में ज्ञात होकर प्रतीति हुई तो प्रतीति के साथ, जैसे श्रद्धागुण का अंश-प्रतीति प्रगट हुई, वैसे अनन्त गुण का अंश प्रगट होता है। समकिती को चौथे गुणस्थान में! पाँचवाँ-छठा (गुणस्थान) वह तो कोई अलग चीज़ है, बापू! वर्तमान में सब मान बैठे, चाहे जैसा माने। आहा..हा..! समझ में आया?

साधक जीव को अपने अनेक गुणों की पर्यायें निर्मल होती हैं,... वीतरागी पर्याय समकिती को उत्पन्न होती है। आहा..हा..! श्रेणिक राजा समकिती, क्षायिक समकिती थे परन्तु अन्दर में अनन्त गुण का एक अंश व्यक्त वेदन में आया था। आहा..हा..! अपार.. अपार... आत्मा में गुण की संख्या अपार...! ऐसे अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. जिसके गुण की हद और संख्या की मर्यादा नहीं, ऐसे अनन्त-अनन्त धर्मरूप भगवान आत्मा गुणरूप है, उसका जहाँ सम्यग्दर्शन हुआ, उसका अनुभव हुआ, तब अनन्त गुण का एक अंश, सब गुण का अंश प्रगट हुआ। द्रव्यदृष्टि हुई न! आहा..हा..! द्रव्य अर्थात् वस्तु भगवान चिदानन्द सहजात्म प्रभु, शाश्वत् चीज़ अन्दर जो आत्मा, उसमें अनन्त गुण भी अन्दर शाश्वत् पड़े हैं। आहा..हा..! विकल्प, राग और निमित्त से हटकर अन्दर स्वभाव का आश्रय करके सम्यग्दर्शन हुआ तो वह साधक जीव हुआ। चौथे से बारहवें (गुणस्थान) तक साधक है। बारहवाँ गुणस्थान। आहा..हा..! तेरहवें में तो भगवान सर्वज्ञ परमात्मा को साध्य / पूर्ण दशा हो गयी। साधकदशा में... आहा..हा..! चौथे-पाँचवें गुणस्थान में श्रावक

को... सच्चा श्रावक, हों! ये वाड़ा के श्रावक, वे श्रावक ही नहीं। अभी इसे सम्यग्दर्शन क्या है—उसकी भी खबर नहीं होती, श्रावक कहाँ से हो गया?

मुमुक्षु : वह तो व्यवहार से श्रावक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से भी नहीं। निश्चय के बिना व्यवहार नहीं होता। ईकाई के बिना शून्य की संख्या नहीं होती। अंक हो फिर मिडूं (शून्य) हो तो दस की संख्या में गिनने में आवे। बात ऐसी है, बापू! जगत भरमाया है, चाहे जैसा करो।

मुमुक्षु : मिडूं अर्थात् क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : शून्य.. शून्य। लाख शून्य हो तो भी उसमें से एक होता है? आहा..हा..! एक का शून्य भी अलग प्रकार का होता है। इसी प्रकार भगवान आत्मा पूर्णानन्द सहजात्मस्वरूप प्रभु शाश्वत् चीज़ की दृष्टि जहाँ हुई, अन्तर अनुभव हुआ तो अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया, तब अनन्त गुण की पर्याय प्रगट निर्मल हुई। आहा..हा..! ऐसी बात है। दुनिया तो पागल कहे ऐसा है भाई! यह तो। पागलपनवाले को तो पागलपना दिखे ऐसा है।

ऐसा प्रभु अन्दर सहजात्मस्वरूप आनन्द का सरोवर / सागर—ऐसा आत्मा जो अन्दर अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप प्रभु, शाश्वत् वस्तु है। आदि नहीं, अन्त नहीं, जिसके गुण की संख्या का पार नहीं। आहा..हा..! उसका जहाँ अनुभव, सम्यग्दर्शन होता है तो अनन्त गुण जितनी संख्या में हैं, उन सब गुण का एक अंश व्यक्त वेदन में आ जाता है। आहा..हा..! ज्ञानचन्दजी! ऐसी बातें हैं, भाई!

सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव की दिव्यध्वनि में यह आया है। आहा..हा..! अरे..रे! जगत को समझने को मिले नहीं, सुनने को मिले नहीं और जिन्दगी चली जाती है, भाई! ऐसा जो प्रभु आत्मा, **उस साधक जीव को अपने अनेक गुणों की पर्यायें निर्मल होती हैं, खिलती हैं।** जैसे कमल खिले, वैसे अनन्त शक्ति जो स्वभावरूप कमल है, वह दृष्टि पड़ते ही खिल जाता है। पर्याय खिलती है, विकास होता है। आहा..हा..! दृष्टि में जहाँ पूर्णानन्द आत्मा का अनुभव हुआ तो अनन्त गुण का पर्याय में विकास होता है। आहा..हा..! वे निर्मल होती हैं। फिर दृष्टान्त देकर विशेष बात करेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल-११, सोमवार, दिनाङ्क १४-०८-१९७८
वचनामृत-१७५, १७६ प्रवचन-६४

वचनामृत १७५ वाँ बोल है। पौने दो सौ।

साधक जीव को अपने अनेक गुणों की पर्यायें निर्मल होती हैं,... क्या कहते हैं? चौथे से बारहवें गुणस्थान तक साधक कहते हैं। चौथे गुणस्थान में भी साधक कहने में आता है। आहा..! साधक जीव को अपने अनन्त गुण और धर्म जो स्वभाव स्वरूप प्रभु, उसकी दृष्टि करके अनुभव हुआ हो, उसे यहाँ सम्यग्दृष्टि साधक कहने में आता है। आहा..हा..! निमित्त के ऊपर से लक्ष्य छोड़कर और संकल्प-विकल्प शुभाशुभभाव जो है, उनसे भी लक्ष्य छोड़कर, एक समय की जो पर्याय है, उसका भी लक्ष्य छोड़कर.. आहा..हा..! अकेला ज्ञायकस्वरूप सद्चिदानन्द प्रभु! 'अप्पा सो परमप्पा' परमात्मस्वरूपी आत्मा है। 'घट घट अन्तर जिन बसै।' अन्तर में भगवान जिनस्वरूपी बिराजमान है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : शक्तिरूप से या व्यक्तिरूप से?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वभाव कहो, शक्ति कहो, सामर्थ्य कहो, व्यक्त / प्रगट कहो। वस्तु की अपेक्षा से प्रगट है। आहा..हा..! पर्याय की अपेक्षा से उसे अव्यक्त कहा है परन्तु वस्तु की अपेक्षा से प्रभु चैतन्यज्योत... आहा..हा..! अतीन्द्रिय-अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रियज्ञान और अतीन्द्रिय प्रभुता, अतीन्द्रिय स्वच्छता, अतीन्द्रिय कर्ता-कर्म-करणादि शक्तियाँ, वह अतीन्द्रियस्वरूप का पिण्ड भगवान आत्मा है। सूक्ष्म बात है, प्रभु! उस वस्तु की दृष्टि हो, वर्तमान पर्याय में त्रिकाली चीज़ की प्रतीति और ज्ञान हो... आहा..हा..! पर्याय में त्रिकाली का ज्ञान होता है, परन्तु त्रिकाली चीज़ पर्याय में नहीं आती। आहा..हा..! समझ में आया? पण्डितजी को पुस्तक दिया? पत्र नहीं दिया।

यहाँ पहले **साधक जीव को...** ऐसा शब्द पड़ा है। तो साधक किसे कहते हैं? १७५ (बोल) आहा..हा..! चौथे गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान तक साधक कहने में आते हैं। तो चौथे गुणस्थान से अपनी चीज़ जो पूर्ण आनन्द का धाम प्रभु, पूर्ण शुद्धस्वभाव अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. ऐसे गुण का एक पिण्ड, उसकी दृष्टि होने से, निर्विकल्प दृष्टि होने से, उस तत्त्व में... तत्त्व जो चीज़ है, उसकी प्रतीति उसमें आती है। आहा..हा..! वह प्रतीति आती है, उसमें त्रिकाली चीज़ आती नहीं। आहा..हा..! समझ में आया?

यह ज्ञान की एक समय की जो पर्याय है, उसमें पूर्णानन्द के नाथ का ज्ञान होता है। परन्तु उस पर्याय में पूर्णानन्दस्वरूप प्रभु आता नहीं। आहा..हा..! ऐसी साधकदृष्टि, जब सम्यग्दर्शन हुआ... आहा..हा..! तब अपने अनन्त गुणों की पर्यायें निर्मल होती हैं। आहा..हा..! श्रीमद् राजचन्द्र ने ऐसा कहा कि 'सर्वगुणांश, वह समकित।' अपने टोडरमलजी की रहस्यपूर्ण चिट्ठी में ऐसा आया कि जितने ज्ञानादि गुण की संख्या अनन्त-अनन्त है, उसकी दृष्टि और अनुभव हुआ, अनन्त गुण जितनी संख्या में हैं, उन सबका एक अंश व्यक्त परिणमन में आ जाता है। आहा..हा..! समझ में आया? पहले उसका ज्ञान तो करो कि क्या चीज़ है? आहा..हा..! ऐसे कोई क्रियाकाण्ड से आत्मा मिल जाये—ऐसी चीज़ नहीं है। आहा..हा..!

भगवान आत्मा परमात्मस्वरूपी बिराजमान है। जिन-जिन कहते हैं न? कहा न? 'घट-घट अन्तर जिन बसै, घट-घट अन्तर जैन'। इसका अर्थ क्या? यह समयसार नाटक का शब्द है परन्तु कलश है, उसका यह भाव है। आहा..हा..! वस्तुरूप से तो आत्मा जिनस्वरूप है। अर्थात् अकषायस्वभावस्वरूप है। अकषायस्वभावभावस्वरूप कहो या जिनस्वरूप कहो। आहा..हा..! वह पूर्णानन्द प्रभु जिनस्वरूपी चीज़ है, उसकी दृष्टि करने से, उसे दृष्टि में लेने से पर्याय में अनन्त गुण की सब पर्यायें निर्मल होती हैं। आहा..हा..! क्यों? कि द्रव्यदृष्टि हुई तो द्रव्य में जितनी शक्तियाँ हैं, उनकी दृष्टि हुई तो उतनी शक्तियों का अंश, सम्यग्दर्शन के साथ अनन्त गुण का अंश व्यक्त / प्रगट वेदन में आता है। ऐसी बात है, भाई! समझ में आया? यह पुस्तक मिल गयी? पण्डितजी! यह पुस्तक मिल गयी? मिल गयी न वहाँ? काशी में मिली न? अभी नहीं पहुँची? सबको भेंट दी है। नहीं मिली? गुजराती मिली, भाई! हिन्दी पुस्तक देना। इन्हें हिन्दी देना। सबको भेंट दी है। दे

दो। क्या कहते हैं ? बहिन के वचनामृत हैं। आहा..हा..! अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन में से यह वाणी आयी है। बहुत सूक्ष्म बात है, भाई!

साधक जीव को अपने... निज गुण की। अपने जो अनन्त गुण हैं, उनकी **पर्यायें निर्मल होती हैं,...** आहा..हा..! खिलती हैं, विकास होता है। जैसे सूर्य के निमित्त से कमल और गुलाब के फूल का विकास होता है; वैसे ही भगवान आत्मा त्रिकाली शक्ति का पिण्ड जो गुलाब और कमल की भाँति है, उसे जब अन्तर में दृष्टि मिली तो सब गुण खिल जाते हैं। आहा..हा..! सूक्ष्म बात है, प्रभु! अनन्त काल में कभी किया नहीं।

'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' आहा..हा..! 'पर आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' इसका अर्थ क्या ? मुनिव्रत धार, अट्ठाईस मूलगुण, पाँच महाव्रत (पालन किये परन्तु) 'लेश सुख न पायो।' (क्योंकि) पंच महाव्रत का परिणाम तो दुःख है। आहा..हा..! समझ में आया ? परन्तु सम्यग्दर्शन होने पर, त्रिकाली वस्तु की जितनी शक्तियाँ हैं, गुण कहो, शक्ति कहो, स्वभाव कहो, सत् का सत्व कहो, सत्वस्तु का सत्वपना-भाव कहो... आहा..हा..! अन्तर में निर्विकल्प दृष्टि, सम्यग्दर्शन होने पर पर्याय में जितनी संख्या में गुण है, उनकी व्यक्त निर्मल पर्यायें होती हैं। आहा..हा..! और खिलती है। आहा..हा..!

जिस प्रकार... दृष्टान्त देते हैं। **नन्दनवन में...** मेरुपर्वत में नन्दनवन है। आहा..हा..! **अनेक वृक्षों के विविध प्रकार के...** अनेक वृक्षों के और विविध प्रकार के।आहा..हा..! **पत्र-पुष्प-फलादि खिल उठते हैं,...** नन्दनवन में अनेक प्रकार के वृक्ष और अनेक प्रकार के फल-फूल। आहा..हा..! विविध प्रकार के पत्र, पुष्प और फल इत्यादि खिल उठते हैं। **उसी प्रकार साधक आत्मा को...** आहा..हा..! सम्यग्दृष्टि को, साधक जीव को। आहा..हा..! **चैतन्यरूपी नन्दनवन में...** जिसमें अनन्त गुण का कल्पवृक्ष पड़ा है। आहा..हा..! भगवान आत्मा में... आहा..हा..!

छहढाला में तो ऐसा कहा है कि त्रस (पर्याय) मिले तो वह भी चिन्तामणि समान है - ऐसा कहते हैं। छहढाला में आता है न ? पण्डितजी! निगोद में से त्रसपना मिले तो (वह चिन्तामणि समान है)। आहा..हा..! यह छहढाला में आता है। यह तो प्रभु अन्दर चिन्तामणि रत्न है। आहा..हा..! मनुष्यपना मिला, वीतराग की वाणी सुनने में आयी, और

सुनकर के जो ज्ञान हुआ, उसका भी लक्ष्य छोड़कर। वाणी सुनी और जो ज्ञान हुआ, वह ज्ञान अपने से-उपादान से हुआ परन्तु वह वाणी निमित्त है, तथापि उपादान से हुआ, वह निमित्त के लक्ष्य से हुआ है। अपने में अपने से हुआ है, उस ज्ञान का भी लक्ष्य छोड़कर। आहा..हा..! त्रिकाली भगवानस्वरूप चिदानन्द प्रभु! नन्दनवन जैसा ही अन्दर में अनन्त वृक्ष अर्थात् गुण हैं और प्रत्येक गुण के अनन्त फल हैं, आनन्द के, शान्ति के, स्वच्छता के, ईश्वरता के (फल हैं)। आहा..हा..! **चैतन्यरूपी नन्दनवन में अनेक गुणों की विविध प्रकार की पर्यायें खिल उठती हैं।** आहा..हा..! इसका नाम धर्म और इसका नाम साधक।

मुमुक्षु : वह कला आप हमें सिखाओ न!

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या कहते हैं? कला तो इसे करनी है या बतानेवाले को करनी है?

भगवान! तेरी प्रभुता तो पूर्ण पड़ी है न, प्रभु! आहा..हा..! तेरी प्रभुता में पामरता का अंश नहीं तो वह प्रभुता निमित्त के आश्रय से प्रगट होती है, ऐसी पामरता उसमें है नहीं और भगवान आत्मा में ऐसा एक गुण पड़ा है। अकार्यकारण नाम की शक्ति-गुण उसमें पड़ा है। आहा..हा..! भगवान आत्मा (में) अनन्त गुण में एक गुण ऐसा है, अकार्य-कारण नाम का गुण उसमें है। आहा..हा..! वह दया, दान, व्रत, भक्ति का राग कारण हो और निर्मल कार्य हो - ऐसा वस्तु में नहीं है।

अकार्यकारण नाम का गुण प्रभु! अनन्त गुण में उसका रूप है। आहा..हा..! तो ज्ञान की पर्याय जो खिलती है, वह पर के लक्ष्य से खिलती है और ज्ञान सुना, ग्यारह अंग का ज्ञान हुआ तो इससे आत्मा का ज्ञान होता है - ऐसा है नहीं। आहा..हा..! ऐसी बात है। समझ में आया? पर्याय में जो स्वतन्त्रता अकार्यकारण.. प्रत्येक गुण में अकार्यकारण नाम का गुण पड़ा है भगवान में। तो भगवान आत्मा की जहाँ दृष्टि हुई, आश्रय लिया... आश्रय का अर्थ इतना कि पर्याय स्वसन्मुख झुकी, उतना आश्रय। आश्रय का अर्थ - कोई पर्याय, द्रव्य में घुस जाती है (-ऐसा नहीं है)। आहा..हा..!

जिस पर्याय में राग और निमित्त का तथा वर्तमान पर्याय का आश्रय था.. आहा..हा..! उस पर्याय में द्रव्य त्रिकाली भगवान का आश्रय हुआ। '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' (समयसार) ग्यारहवीं गाथा। आहा..हा..! अर्थात् पर्याय में जब त्रिकाली ज्ञायकभाव का लक्ष्य हुआ तो

आश्रय लिया – ऐसा कहने में आता है। आहा..हा..! ऐसी पर्याय में अनन्त गुण का आश्रय – आधार हुआ तो पर्याय भी अकार्यकारण नाम की पर्याय उत्पन्न हुई, जिस पर्याय में व्यवहार, कारण और निश्चय, कार्य – ऐसा वस्तु के स्वरूप में नहीं है। आहा..हा..! समझ में आया?

सम्यग्ज्ञान की पर्याय जो स्वदृष्टि के लक्ष्य से हुई, उस पर्याय में परज्ञान का क्षयोपशम (हुआ), पर को सुना, जाना, वह कारण और ज्ञान की पर्याय वह कार्य, पर्याय में ऐसा नहीं है। वह पर्याय अकार्यकारणरूप से परिणमी है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : आपने समझाया, तब हमें समझ में आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो निमित्त का कथन है प्रभु! आहा..हा..! यह चैतन्यरत्न भगवान.. आहा..हा..! चैतन्यरत्नाकर कहा न? चैतन्यरत्नाकर। स्वयंभूरमण समुद्र के तल में बालू-रेत नहीं है, स्वयंभूरमण समुद्र जो है असंख्य योजन का (है उसके) तल में रेत-बालू नहीं है। तल में अकेले रत्न भरे हैं। सुना है? स्वयंभूरमण समुद्र। जितने द्वीप और समुद्र हैं, उनसे भी उसकी लम्बाई तीन योजन विशेष है। क्या कहा? इस ओर जो समुद्र और द्वीप हैं, उनकी जितनी चौड़ाई है, उनसे भी स्वयंभूरमण की चौड़ाई तीन योजन अधिक है। उस पूरे स्वयंभूरमण समुद्र में नीचे अकेले रत्न और माणिक भरे हैं। आहा..हा..! ऐसा यह भगवान स्वयंभू.. प्रवचनसार की १६ वीं गाथा में कहा। आहा..हा..!

स्वयंभू भगवान स्वयं से उत्पन्न होता है। भू – पर्याय, हों! आहा..हा..! अपने में निर्मल वीतरागी सम्यग्दर्शन की पर्याय आदि, स्वयंभू स्वयं से उत्पन्न हुई है क्योंकि उसके अन्दर अनन्त चैतन्य रत्न तल में पड़े हैं। जैसे स्वयंभू के तल में अकेले रत्न हैं, वैसे भगवान की पर्याय के पीछे तल में, पूरे ध्रुव में अनन्त रत्न ध्रुव पड़े हैं। समझ में आया? ऐसे रत्न की जहाँ दृष्टि हुई, वह दृष्टि निर्विकल्प होती है। विकल्प का दम नहीं – विकल्प का सामर्थ्य नहीं कि उससे स्वरूप की दृष्टि हो। आहा..हा..! डाह्याभाई! आहा..हा..! यह कहते हैं, देखो!

आत्मा को चैतन्यरूपी नन्दनवन... आहा..हा..! अनन्त गुणरूपी वृक्ष पड़ा है और अनेक गुणों की विविध प्रकार की पर्यायें खिल उठती हैं। आहा..हा..! सम्यग्दर्शन होने पर, सत्दर्शन होने पर। सत्दर्शन का अर्थ – त्रिकाली भगवान नन्दनवन समान अनन्त गुण

का पिण्ड प्रभु, ऐसे सत् का दर्शन अर्थात् प्रतीति अनुभव में होने पर.. आहा..हा..! पूरे नन्दनवन में जैसे वृक्ष-पत्र-पुष्प-फल से खिल उठते हैं, वैसे पर्याय में पूरे अनन्त गुण खिल उठते हैं। आहा..हा..! अभी तो साधक-सम्यग्दर्शन की बात है। अरे! लोग कुछ का कुछ मानकर बैठे हैं। समझ में आया?

गुणों की विविध प्रकार की पर्यायें खिल उठती हैं। आहा..हा..! १७५ (बोल पूरा) हुआ। बोल १७६, यहाँ आये तब से शुरु हुआ है। सवा दो महीने ऊपर हो गये। ज्येष्ठ शुक्ल एकम को आये, तब से दोपहर को शुरु किया है। १७५ हुए। ऐसे तो ४१३ बोल हैं। ऐसे ४१३ (वचनामृत हैं)। आहा..हा..!

मुक्तदशा परमानन्द का मन्दिर है। उस मन्दिर में निवास करनेवाले मुक्त आत्मा को असंख्य प्रदेशों में अनन्त आनन्द परिणमित होता है। इस मोक्षरूप परमानन्दमन्दिर का द्वार साम्यभाव है। ज्ञायकभाव परिणमित होकर विशेष स्थिरता होने से साम्यभाव प्रगट होता है॥१७६॥

१७६, **मुक्तदशा परमानन्द का मन्दिर है।** आहा..हा..! सिद्धदशा, परमानन्द का मन्दिर है। **उस मन्दिर में निवास करनेवाले मुक्त आत्मा को..** उस मन्दिर में निवास करनेवाले... आहा..हा..! नि-वास करनेवाले। आहा..हा..! अनन्त गुणरूप भगवान आत्मा, उसमें अपनी दृष्टि पसारकर, उसमें निवास करनेवाले। आहा..हा..! ऐसा मार्ग है। **मुक्त आत्मा को असंख्य प्रदेशों में अनन्त आनन्द परिणमित होता है।** आहा..हा..! असंख्य प्रदेश। सर्वज्ञ के अतिरिक्त किसी मत में ऐसी बात नहीं है। समझ में आया? आत्मा - आत्मा की बात की है परन्तु सर्वज्ञ के सिवाय असंख्य प्रदेश और असंख्य प्रदेश में अनन्त गुण - हदरहित.. किसी गुण का माप नहीं कि अनन्त में यह अन्त आया। यह तो सर्वज्ञस्वरूपी भगवान ने कहा है और सर्वज्ञस्वरूप भगवान में ऐसा है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : भगवान ने कहा है, इसलिए ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा है, इसलिए है - ऐसा नहीं है; है, इसलिए कहा है। शक्कर शब्द में शक्कर नहीं है परन्तु शक्कर शब्द शक्कर को बताता है कि यह शक्कर है। शक्कर में शक्कर शब्द का अभाव है और शक्कर शब्द में शक्कर पदार्थ का अभाव है। इसी प्रकार

वाणी पदार्थ को बतावे तो वाणी में चैतन्य पदार्थ का अभाव है और भगवान चैतन्य पदार्थ में वाणी का अभाव है। आहा..हा..! समझ में आया?

भाई! यह तो वीतराग तीन लोक के नाथ... आहा..हा..! सीमन्धर प्रभु महाविदेहक्षेत्र में साक्षात् बिराजमान हैं। जहाँ एकावतारी इन्द्र सुनने जाते हैं। प्रभु! वह वाणी कैसी होगी? शकेन्द्र, सौधर्म का इन्द्र। बत्तीस लाख विमान, एक विमान में असंख्य-असंख्य देव। कोई विमान छोटा है परन्तु बहुत तो असंख्य देववाले हैं। बत्तीस लाख विमान। आहा..हा..! जिसमें करोड़ों इन्द्राणियाँ। वह जो इन्द्र है.. आहा..हा..! वह समकिती है, ज्ञानी है। कोई चीज़ मेरी है - ऐसा नहीं मानता। मेरी चीज़ तो मेरा आनन्द का नाथ मेरे पास है, वह मैं हूँ। आहा..हा..! ऐसा समकिती ज्ञानी, जिसे सिद्धान्त में एकावतारी -एक भवतारी कहा है। पण्डितजी! और उसकी पत्नी, एक मुख्य इन्द्राणी है, वह भी एक भवतारी है। कहना क्या है? ऐसे तीन ज्ञान के धनी—मति, श्रुत, अवधि—और समकिती हैं, एक भवतारी है। जिसे ख्याल है कि मुझे एक ही भव रहा है। आहा..हा..! समझ में आया? ऐसे इन्द्र, भगवान की सभा में सुनने आते हैं। आहा..हा..! भाई! वह बात कैसी होगी? दया पालो, व्रत करो - ऐसा तो कुम्हार भी कहता है। आहा..हा..! पर की दया तो तीन काल में पाल नहीं सकता। पर की दया का भाव आता है, वह स्व की हिंसा है। पुरुषार्थसिद्धि-उपाय में है, पण्डितजी! पुरुषार्थसिद्धि-उपाय में है कि दया का भाव है, वह राग है और स्व की हिंसा है। आहा..हा..! बापू! वीतराग का मार्ग... आहा..हा..! समझ में आया?

पर की दया तो तीन काल में पाल नहीं सकता। - एक बात। एक स्वद्रव्य जो है, वह अपने गुण-पर्याय को चुम्बन करता है। समयसार की तीसरी गाथा, परन्तु परद्रव्य को स्पर्श भी नहीं करता, तीन काल में कभी स्पर्श नहीं किया। आहा..हा..! भगवान आत्मा अपने गुण-पर्याय को चुम्बन करता है-स्पर्श करता है, परन्तु अपने गुण-पर्याय के अतिरिक्त यह आत्मा कर्म को भी स्पर्श नहीं करता। आत्मा ने कभी शरीर को भी स्पर्श नहीं किया। बात ऐसी है, भाई! आहा..हा..! और कर्म का उदय है, वह जड़ की पर्याय है, वह तीन काल में आत्मा को स्पर्श नहीं हुई है। आहा..हा..! ऐसा मार्ग है। भगवान की सभा में इन्द्र सुनने आते हैं। आहा..हा..! वह कथा, वह दिव्यध्वनि कैसी होगी! भाई! आहा..हा..! समझ में आया?

वह यहाँ कहते हैं। आहा..हा..! **अनन्त आनन्द परिणमित होता है।** मोक्ष। अब यहाँ जरा ऐसा लेना है। **इस मोक्षरूप परमानन्दमन्दिर का द्वार साम्यभाव है।** प्रवचनसार की सातवीं गाथा में, चारित्र कहो, साम्यभाव कहो, धर्म कहो, (ऐसे) मूल पाठ में तीन बोल हैं। आहा..हा..! ध्यान रखो, हों! प्रभु परमानन्दरूपी जो मोक्षमन्दिर है, उसका द्वार क्या? कि द्वार चारित्र वीतराग धर्म, वीतरागता, साम्यभाव। साम्यभाव अर्थात् चारित्रभाव। चारित्रभाव अर्थात् धर्मभाव। धर्मभाव अर्थात् वीतरागी पर्यायभाव। आहा..हा..! यहाँ प्रवचनसार में लिया है न? भाई! वीतराग चारित्र उपादेय है। बीच में पंच महाव्रत का कण (राग) आता है परन्तु वह चारित्र नहीं, वह हेय है। आहा..हा..! प्रवचनसार में शुरुआत की गाथा में आता है।

यहाँ कहते हैं कि मोक्षरूपी मन्दिर का द्वार क्या है? अन्दर जाने का दरवाजा क्या है? तो कहते हैं 'वीतरागभाव' आहा..हा..! साम्यभाव, समताभाव, स्वरूप का जो अनुभव हुआ, वीतरागीदशा (हुई), वह धर्मभाव, वह चारित्रभाव, वह साम्यभाव है। आहा..हा..! प्रवचनसार, पहले शुरुआत में तीन बोल एक साथ लिये हैं। '**चारितं खलु धम्मो**' चारित्र, वह धर्म है, यह गाथा है और उस धर्म को मूल पाठ में साम्य कहा है। उस श्लोक में '**चारितं खलु धम्मो**' वह साम्य। आहा..हा..! क्या कहते हैं?

पूर्ण नन्दनवन आत्मा का मोक्ष, उसमें प्रवेश करने का उपाय क्या? दरवाजा क्या? आहा..हा..! साम्यभाव। कुन्दकुन्दाचार्य ने ऐसा कहा न? कि मैं साम्यभाव को अंगीकार करता हूँ। प्रवचनसार की पहली गाथाओं में है। मैं साम्यभाव को, वीतरागभाव को (अंगीकार करता हूँ)। आहा..हा..! किसलिए? मोक्ष का कारण है इसलिए। शुरुआत की गाथा में ऐसा पाठ है, टीका है। समझ में आया? आहा..हा..!

आत्मा की दशा जो पूर्णानन्दरूप मुक्तदशा, उसे प्राप्त करने का द्वार क्या? उसे प्राप्त करने का द्वार साम्यभाव है। अपने स्वरूप की सम्यग्दर्शनपूर्वक जो वीतरागता उत्पन्न होती है, चारित्र की दशा-चरना, अनन्त आनन्दगुण का पिण्ड प्रभु, उसकी वस्तु का भान हुआ, फिर उसमें चरना। अनन्त गुण में चरना, रमना, अनन्त गुण का भोजन करना। आहा..हा..! 'आनन्दामृत भोजी' चारित्र, वह आनन्द अमृत का भोजी है। वह चारित्र है, बापू! चारित्र किसे कहते हैं! भाई! आहा..हा..! उस चारित्र को यहाँ बहिन ने साम्यभाव कहा है। आहा..हा..! समझ में आया? साम्यभाव कहो, स्वरूप आनन्द के नाथ में चरना, रमना,

जमना (कहो)। आहा..हा..! और वीतरागभाव कहो, वह **परमानन्दमन्दिर का..** मोक्षरूपी परमानन्दमन्दिर। आहा..हा..!

अभी हिन्दी दस हजार (पुस्तकें) आ गयी हैं। अभी हिन्दी नयी प्रकाशित हुई है, दस हजार आ गयी है। समझ में आया? आहा..हा..!

मोक्षरूप परमानन्दमन्दिर... परम अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्तिरूपी मोक्ष। आत्मा के स्वभाव की पूर्णता की प्राप्ति-लाभ, वह मोक्ष। आहा..हा..! वह मोक्षरूपी परमानन्दमन्दिर। वह परमानन्दरूपी मन्दिर है। आहा..हा..! उसके अन्दर प्रवेश करने का द्वार क्या है? अन्दर जाने का द्वार क्या है? अन्दर जाने का द्वार, क्या कहते हैं? दरवाजा। साम्यभाव है। आहा..हा..! राग का कण भी उसमें प्रवेश कर सके, उतनी उसकी ताकत नहीं। मोक्ष के उपाय का दरवाजा एक साम्यभाव है। आहा..हा..! क्यों? कि प्रभु जिनस्वरूपी, साम्यभावरूप ही आत्मा है। आत्मा है, वह जिनस्वरूपी है। 'घट-घट अन्तर जिन बसे' जिनस्वरूपी आत्मा है। साम्यस्वरूपी आत्मा त्रिकाल, वीतराग स्वरूपी आत्मा त्रिकाल है। वह साम्य और वीतरागस्वरूप का आश्रय लेकर, जो शक्ति में से व्यक्तता वीतरागता हुई.. आहा..हा..! वह वीतरागता, परमानन्दरूपी मोक्ष का द्वार है। कहो, धन्नालालजी!

मुमुक्षु : बात सत्य है परन्तु उसका निमित्त क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त उसे कहते हैं कि जो पर में कुछ करे नहीं, उसे निमित्त कहते हैं। उसका तो अभी स्पष्टीकरण हो गया है। वह चर्चा हुई थी (एक विद्वान के साथ) चर्चा हुई थी। सब (पण्डित) कैलाशचन्दजी आदि बैठे थे। आत्मा की पर्याय में जो विकृत दशा होती है... पंचास्तिकाय की ६२ गाथा।

मुमुक्षु : शिखरजी में।

पूज्य गुरुदेवश्री : शिखरजी में तुम थे? परन्तु हमारे पण्डितजी ने एक यथार्थ बात कही, भाई! विकृत अवस्था जो पर्याय में होती है, वह षट्कारक अपनी पर्याय के परिणमन से होती है। परकारक से निरपेक्ष (होती है)। संस्कृत टीका है। कर्म के निमित्त से निरपेक्ष। आहा..हा..! विकृत अवस्था भी निमित्त की अपेक्षा से रहित निरपेक्ष (होती है)। आहा..हा..! इस बात में पण्डितजी ने हाँ कही थी। दूसरों ने तो वर्णीजी और बंशीधरजी ने ऐसा कहा - यह तो अभेद की बात है, अभेद की बात है परन्तु अभेद का अर्थ क्या? (परन्तु

फूलचनदजी ऐसा) बोले कि स्वामीजी ऐसा कहते हैं कि विकार निश्चय से पर की अपेक्षा बिना होता है। इतना पण्डितजी बोले थे। इक्कीस वर्ष पहले की बात है। (संवत्) २०१३ की बात। ३४ (वर्ष) हुए। जहाँ विकृत अवस्था में भी निमित्त से नहीं होती, पर की अपेक्षा नहीं तो मोक्ष के मार्ग की पर्याय पर की अपेक्षा रखती है – ऐसा है ही नहीं।

दूसरे प्रकार से कहें तो मोक्ष की पर्याय अथवा मोक्ष के मार्ग की पर्याय, वह भी उस समय के षट्कारक से परिणमित होती है। क्या कहा ? जन्म-क्षण है। प्रवचनसार १०२ गाथा में है। ज्ञेय अधिकार है तो ज्ञेय की जिस समय की पर्याय उत्पन्न होनी है, वह उसका जन्मक्षण है, वह उत्पत्ति का काल है। वह उत्पत्ति का काल, मोक्ष के मार्ग की, मोक्ष की पर्याय षट्कारक से परिणमति है। निर्मल पर्याय का कर्ता पर्याय; निर्मल कर्म; निर्मल करण; निर्मल सम्प्रदान; निर्मल अपादान; निर्मल आधार। उसे द्रव्य-गुण का आधार नहीं। आहा..हा..!

मुमुक्षु : क्या यह शास्त्र में लिखा है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पण्डितजी की उपस्थिति में बात हुई थी। पंचास्तिकाय है यहाँ ? ६२ -६२ (गाथा) तब बताया था, देखो!

कम्मं पि सगं कुव्वदि सेण सहावेण सम्ममप्पाणं।
जीवो वि य तारिसओ कम्मसहावेण भावेण॥६२॥

इस प्रकार जीव भी (१) भावपर्यायरूप से प्रवर्तमान आत्मद्रव्यरूप से कर्तृत्व को धारण करता हुआ... है ? छह बोल लिये हैं। **ऐसा स्वयमेव षट्कारकरूप से वर्तता हुआ अन्य कारक की अपेक्षा नहीं रखता।** विकार, हों! आहा..हा..! वहाँ तो पुकार यह – कर्म से होता है, कर्म से होता है। अरे! सुन तो सही! यह बात तो (संवत्) १९७१ के साल में हमने बाहर रखी थी। ६३ वर्ष हुए।

अपनी पर्याय में विकृत अवस्था है, वह कोई कर्म से हुई है और कर्म है तो हुई है, उसका अस्तित्व है तो यहाँ अस्तित्व हुआ – ज्ञेय का स्वभाव ऐसा नहीं। तब तो पंचास्तिकाय देखा भी नहीं था। यह तो (संवत्) १९७८ में (हाथ में) आया। वह तो ७१ की बात है, संवत् १९७१। ६३ वर्ष हुए। पर्याय में विकार होता है, वह कर्म से नहीं, पर की अपेक्षा से नहीं। खलबलाहट हो गया। हमारे गुरु थे, भद्र थे, वे सुनते थे। हम कहते थे, वे सुनते

थे परन्तु एक गृहस्थ सेठ थे, अभी बहुत पैसेवाला हो गया, परन्तु उस समय उसके पास दस लाख रुपये थे, ६३ वर्ष पहले। उसे यह बात खटक गयी कि यह कहाँ से निकाला? हमारे गुरु कहते नहीं, कभी सुना भी नहीं, तो तुमने यह कहाँ से निकाला कि विकार अवस्था स्वयं से होती है, पर से नहीं होती? कहाँ से निकाला क्या, वस्तु ऐसी है। समझ में आया? विकृत अवस्था में... यहाँ देखो! **ऐसा स्वयमेव षट्कारकरूप से वर्तता हुआ अन्य कारक की अपेक्षा नहीं रखता।** उस समय कहा था। आहा..हा..! जब विकृत अवस्था में पर की अपेक्षा नहीं.. आहा..हा..! तो मोक्षमार्ग की पर्याय में पर की अपेक्षा नहीं।

यहाँ जो कहना है, साम्यभाव से मोक्ष होता है, वह भी एक अपेक्षा वाक्य है। वीतरागता है, वह अन्दर पूर्ण प्राप्ति करने के लिये कारण है। वास्तव में तो मोक्ष की जो पर्याय है, वह पर्याय षट्कारकरूप से, अपने से पूर्व की पर्याय की अपेक्षा रखे बिना, द्रव्य-गुण की अपेक्षा रखे बिना (परिणमति है)। आहा..हा..! प्रभु! मार्ग ऐसा है, हों! आहा..हा..!

यहाँ तो मात्र द्वार-उपाय बताना है कि वीतराग पर्याय है—सम्यग्दर्शनसहित की चारित्र की पर्याय, धर्मपर्याय, साम्य पर्याय, वीतराग पर्याय वह मुक्ति प्राप्त करने का द्वार है। यह भी एक अपेक्षा से कहा है। मात्र राग से होता है, पर से होता है, उसका निषेध करने को कहा है। निमित्त-निमित्त। निश्चय से तो भगवान आत्मा की मोक्षपर्याय, पूर्ण केवलज्ञान, पूर्ण दर्शन, पूर्ण आनन्द की पर्याय अपने षट्कारक से परिणति होकर उत्पन्न होती है। आहा..हा..! और वह पर्याय का जन्मक्षण है। ज्ञेय अधिकार में ऐसा लिया है। ज्ञेय में जीव जो ज्ञेय है, उस ज्ञेय की-मोक्ष की पर्याय जो उत्पन्न होती है.. आहा..हा..! वह षट्कारक के परिणमन से स्व की पर्याय से उत्पन्न होती है। पर्याय से पर्याय उत्पन्न, पर्याय कर्म, पर्याय कर्ता, पर्याय करण, पर्याय साधन। द्रव्य-गुण भी नहीं। आहा..हा..! भाई! वस्तु का ऐसा स्वरूप है, ऐसी अन्दर में जब प्रतीति आती है तो निर्विकल्प दर्शन होता है। आहा..हा..! ....ऐसा मार्ग है, प्रभु! क्या हो? एकान्त लगे और एकदम कह दे, इनका एकान्त है, एकान्त है। जैन में यह एक हथियार है।

मुमुक्षु : बात तो सत्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एकान्त है, वह सम्यक् एकान्त है। निश्चयनय का विषय सम्यक् एकान्त है। नय है न? प्रमाण का तो निश्चय-व्यवहार दो विषय साथ में है।

निश्चयनय सम्यक् एकान्त है। सम्यक् एकान्त, स्व से परिणति होती है, वह सम्यक् एकान्त है।

मुमुक्षु : स्वरूप को कहनेवाला है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे पता नहीं। आहा..हा..! भाई! यह तो सर्वज्ञ त्रिलोक के नाथ ने कही हुई बात है, प्रभु! आहा..हा..! ऐसी विद्वत्ता न हो और इतना पुण्य भी न हो, परन्तु वस्तु तो ऐसी है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं। **मोक्षरूप परमानन्दमन्दिर का द्वार साम्यभाव है।** इसका अर्थ कि चारित्र से मुक्ति होती है, यह सिद्ध करना है। साक्षात् मोक्ष का कारण चारित्र है। दर्शन-ज्ञान / समकित, ज्ञान है, वह परम्परा कारण है। आहा..हा..! समझ में आया? वीतरागी पर्याय चारित्र, मोक्ष प्राप्त करने का द्वार है। व्यवहार से और पर से नहीं, इतना बताने को वीतराग चारित्र कारण बताया। आहा..हा..! परन्तु प्रवचनसार १०२ गाथा में और १०१ गाथा में (कहा कि) जो मोक्ष की पर्याय उत्पन्न होती है, उसे ध्रुव की अपेक्षा नहीं, उसे व्यय की अपेक्षा नहीं - ऐसा पाठ १०१ में है। प्रवचनसार १०१ गाथा। भगवान! यह तो भगवान के घर की बात है, प्रभु! क्या कहें? आहा..हा..!

केवलज्ञान की जो पर्याय उत्पन्न होती है, वह पर्याय षट्कारक से परिणमति होती है। उसे गुण का भी कारण नहीं। कर्म का अभाव तो उसका कारण नहीं। क्यों? कि उसमें भाव नाम की एक शक्ति है। भगवान आत्मा में भाव नाम का एक गुण-शक्ति है, तो वह भाव की पर्याय वर्तमान में होती है, वह अपनी स्वतन्त्रता से होती है। और उसमें अभाव नाम का एक गुण है तो कर्म का अभाव है तो अभाव हुआ - ऐसा नहीं। अपने में अभाव शक्ति है (तो) राग का अभावरूप परिणमन होना, वह अभाव गुण का कार्य है। आहा..हा..! कठिन काम है, भाई! लोगों को, बनियों को.. उसमें लिखा है, पत्र दिया पण्डितजी को? यह न? यह पत्र पढ़ लेना। बहुत अच्छा है। इसकी दृष्टि से लिखा है। यह पढ़ लेना।

उसमें ऐसा लिखा है कि जैनधर्म में बहुत शोध की। बहुत शास्त्र खोजे हैं। कोई शोधक जीव है, जापान। ६३ वर्ष की उम्र है। मैंने तो ऐसा खोजा है कि जैनधर्म अनुभूतिरूप धर्म है। आहा..हा..! दूसरे प्रकार से कहें... इतना अधिक तो उसे कुछ पता नहीं.. आत्मा

निर्वाणस्वरूप है – ऐसा उसने लिखा है। अपन कहते हैं कि मुक्तस्वरूप है। निर्वाणस्वरूप है तो पर्याय में निर्वाणता आती है। मुक्तस्वरूप है तो मुक्त पर्याय आती है। आहा..हा..! वह भी एक अपेक्षा है। बाकी तो मुक्त की पर्याय भी स्वतन्त्र निजक्षण में, उस ज्ञेय का स्वभाव है और उस समय में वही पर्याय उत्पन्न होने की योग्यता है। १०१, १०२ (गाथा) प्रवचनसार।

उत्पाद को ध्रुव की अपेक्षा नहीं है। आहा..हा..! गजब बात है तेरी, नाथ! उत्पाद को व्यय की अपेक्षा नहीं; व्यय को ध्रुव की अपेक्षा नहीं; व्यय को उत्पाद की अपेक्षा नहीं। तीनों सत् है न? सत् है न? सत् अहेतुक होता है। है, उसे हेतु क्या? आहा..हा..! थोड़ी सूक्ष्म बात आ गयी है परन्तु सुनो तो सही! आहा..हा..!

मोक्षरूप परमानन्दमन्दिर का... है यहाँ? प्रवचनसार '**चारित्त खलु धम्मो**' सातवीं गाथा है। '**जो सो समो तत्ति णिद्दिट्ठो।**' वीतराग चारित्र है, वह साम्यभाव है। साम्यभाव है, वह धर्मभाव है; धर्मभाव है, वह चारित्रभाव है। नीचे लिखा है। साम्य है, साम्य.. समझे? साम्य, धर्म, चारित्र वह एकार्थवाचक है। मूल पाठ में '**चारित्तं खलु धम्मो धम्मो जो सो समो तत्ति णिद्दिट्ठो।**' चारित्र, धर्म और साम्य एक पाठ में तीन बोल हैं। सातवीं गाथा। है? '**मोहक्खोहविहीणो**' मोह और क्षोभ से विहीन-रहित। '**परिणामो अप्पणो हु समो।**' वह साम्य। जिसमें मिथ्यात्व के परिणाम का अभाव और राग-द्वेष के परिणाम का अभाव है—ऐसा वीतरागभाव, वह साम्यभाव मोक्षमन्दिर का द्वार है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, बापू! बहुत सूक्ष्म। यह तो थोड़ा पढ़े और हम समझ गये (ऐसा मान लेते हैं)। अरे..भाई! यह मार्ग कोई अलौकिक है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : आत्मा ठीक, परन्तु क्रिया क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्रिया। निर्मल वीतरागी पर्याय (वह क्रिया है)। सैंतालीस शक्ति है, उसमें एक भावशक्ति है। पहली भावशक्ति भिन्न, एक दूसरी भावशक्ति है। षट्कारक से जो विकृत परिणाम होते हैं, उससे रहित इसका भावगुण है। उससे रहित परिणमना इसका भावगुण है। सैंतालीस शक्ति में है।

फिर से.. समयसार है? देखो! शक्ति है न? **कारकों के अनुसार जो क्रिया... पर्याय में राग होना, राग का कर्ता, कर्म, क्रिया पर्याय में है। उन कारकों के अनुसार क्रिया, उससे रहित भवनमात्रमयी, होनेमात्रमयी, अस्तित्वमात्रमयी, भावशक्ति।** आत्मा

में भाव नाम का एक गुण ऐसा है कि विकृत परिणाम से अभावरूप परिणमना वह भाव नाम का गुण है। आहा..हा..! क्या कहा यह ?

आत्मा में जैसे ज्ञान-दर्शन-आनन्द गुण है, वैसा एक भाव नाम का गुण है। उस गुण का गुण क्या ? गुण का गुण क्या ? कि विकाररहित परिणमना, वह गुण का गुण है। समझ में आया ? दो बात है। पहली यह बात है और **(कर्ता, कर्म इत्यादि) कारकों के अनुसार परिणमित होनेरूप क्रिया शक्ति।** यह क्रिया। क्या कहते हैं। कि जो षट्कारक अन्दर गुण में हैं, वे पर्याय में षट्कारक का शुद्ध परिणमन होना; कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान (इत्यादि) क्रिया नाम की एक शक्ति आत्मा में है, गुण है। क्रिया नाम का एक गुण है। उस गुण का गुण क्या ? कि षट्कारकरूप से परिणमन सहितपना, शुद्ध षट्कारकरूप से परिणमनसहितपना, वह क्रिया का गुण है और भाव नाम का गुण यह कि विकाररूप परिणमन है, उससे रहितरूप होना, वह भावशक्ति का गुण है। अरे रे! क्या हो ? ऐसी पुकार तो अमृतचन्द्राचार्य (करते हैं)। अरे! एक बात की भी खबर नहीं होती और मान बैठता है कि मैंने यह माना है। भाई! यह वीतराग का मार्ग अलग है, भाई! आहा..हा..!

बहिन यह आगे कहेंगी - सच्चे ज्ञान के बिना सच्चा ध्यान होता ही नहीं। पहले सच्चा ज्ञान होना चाहिए कि क्या है ? सम्यक् ज्ञान नहीं परन्तु धारणा का। यथार्थ क्या है, उसका ज्ञान होना चाहिए। ज्ञान हो तो फिर अन्दर ध्यान हो सकता है परन्तु ज्ञान ही विपरीत हो, जो वस्तु का स्वरूप है, उससे ज्ञान ही विपरीत हो तो उसे कभी स्वरूप में एकाग्रता, ध्यान नहीं हो सकता। आहा..हा..! समझ में आया ? ऐसा है। इन वचनों में इतना भरा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो फिर आयेगा। कहा न ? अभी कहा था, तुमने ख्याल नहीं रखा। अभी बहिन का (बोल) आयेगा। मैंने पहले कहा था। आहा..हा...!

साम्यभाव। गजब बात है, प्रभु! क्योंकि प्रभु जिनस्वरूप है तो पर्याय में जिनस्वरूपी वीतराग पर्याय होती है, वह वीतरागी पर्याय मोक्ष-द्वार—मोक्ष का द्वार है। आहा..हा..! व्यवहाररत्नत्रय रागादि हैं, वह कहीं मोक्ष का द्वार नहीं है; वे तो बन्ध में प्रवेश करने का

द्वार है। समझ में आया? मार्ग सूक्ष्म है, भाई! आहा..हा..! यह तो अलौकिक बातें हैं। आहा..हा..! यह साम्य किसे कहते हैं, वह अब कहते हैं।

ज्ञायकभाव परिणमित होकर... भगवान जाननेवाला। जानन.. जानन.. जानन.. जानन.. जानन.. जानन.. ऐसा ज्ञायकभाव, ध्रुवभाव, जाननभाव। पारिणामिकभाव नहीं कहकर ज्ञायक कहा, क्योंकि पारिणामिकभाव तो परमाणु में भी होता है परन्तु यह तो ज्ञायकरूपी त्रिकाल पारिणामिकभाव। आहा..हा..! समझ में आया? त्रिकाली ज्ञायकभावरूप परिणमित होकर। इस ज्ञायकभाव पर दृष्टि होने से पर्याय में ज्ञायकरूप परिणमित हुआ। वीतरागभावरूप से परिणमित हुआ। वीतरागभावरूपी ज्ञायकभाव के आश्रय से वीतरागभावरूप परिणमन पर्याय में हुआ। है?

परिणमित होकर विशेष स्थिरता होने से... स्वरूप में विशेष स्थिरता होने से **साम्यभाव प्रगट होता है।** साम्यभाव प्रगट होता है और साम्यभाव, वह मोक्ष का द्वार है। आहा..हा..! विशेष बात आयेगी...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

देखो, यह चैतन्यविद्या का अभ्यास! यह चैतन्यविद्या तो भारत की मूल विद्या है। पूर्व काल में तो बाल्यवय से ही भारत में बालकों में ऐसी चैतन्यविद्या के संस्कार डाले जाते थे... माताएँ भी धर्मात्मा थीं, वे अपने बालकों को ऐसे उत्तम संस्कार सिखलाती थीं और बालक भी अन्तर में अभ्यास करके, अन्तर में उतरकर, आठ-आठ वर्ष की उम्र में आत्मा का अनुभव करते थे। भारत में चैतन्यविद्या का ऐसा अद्‌भुत धर्मकाल था... उसके बदले आज तो इस चैतन्यविद्या का श्रवण प्राप्त होना भी कितना दुर्लभ हो गया है! परन्तु जिसे हित करना हो और शान्ति अपेक्षित हो, उसे यह चैतन्यविद्या सीखना ही होगी... इसके अतिरिक्त जगत् की दूसरी किसी विद्या के द्वारा आत्मा का हित अथवा शान्ति का अंश भी प्राप्त नहीं हो सकता। इसलिए हे जीवों! 'यह बात हमें समझ में नहीं आती... हमें कठिन लगती है... हमें अभी समय नहीं है' -इस प्रकार व्यर्थ का बकवास करना बन्द करो... और इस चैतन्य के अभ्यास में ही अपनी आत्मा को जोड़ो। छह महीने तक एक धारा से अभ्यास करने से तुम्हें अवश्य आत्मभान और आत्मशान्ति होगी। (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, आतम के हित पंथ लाग! में से)

श्रावण शुक्ल-१२, मंगलवार, दिनाङ्क १५-०८-१९७८
वचनामृत-१७७, १७८ प्रवचन-६५

चैतन्य की स्वानुभूतिरूप खिले हुए नन्दनवन में साधक आत्मा आनन्दमय विहार करता है। बाहर आने पर कहीं रस नहीं आता ॥१७७॥

१७७ है। है न? सूक्ष्म विषय है। **चैतन्य की स्वानुभूतिरूप खिले हुए नन्दनवन में साधक आत्मा आनन्दमय विहार करता है।** आहा..हा..! क्या कहते हैं? कि यह आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है और अतीन्द्रियज्ञान तथा शान्ति का पूर्ण स्वरूप यह है। उसका अनुभव करके.. चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प हो, वह कोई धर्म नहीं है और धर्म का कारण नहीं है।

मुमुक्षु : परम्परा कारण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परम्परा कारण है ही नहीं। परम्परा कारण कहा है, वह तो सम्यग्दर्शन हुआ, आत्मअनुभव हुआ, मैं निर्विकल्प आनन्दस्वरूप हूँ - ऐसा अनुभव हुआ तो वह अनुभूति जो है, वह मोक्ष का कारण है। साथ में जो राग आया, उसे आरोप करके परम्परा अर्थात् बाद में उसे छोड़कर स्थिरता होगी; इसलिए सम्यग्दृष्टि को परम्परा कारण कहा है। अज्ञानी के जो व्रत और तप, भक्ति और पूजा के भाव हैं, वह परम्परा कल्याण का कारण है, यह बिल्कुल झूठ है।....सूक्ष्म बात है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : गिरेगा, बापू! अनन्त काल हुआ, भाई! आहा..हा..! अरे! प्रभु! चौरासी के अवतार में एक-एक योनि में अनन्त अवतार किये, भाई! आहा..हा..! उसमें से त्रसपना पाना, वह चिन्तामणि समान कहा है। आहा..हा..! उसमें इतने दुःख सहन

किये, नरक में, नरक भूमि में गया। आहा..हा..! नरक में एक क्षण के दुःख.. भगवान ऐसा फरमाते हैं, एक क्षण के दुःख करोड़ जीभ से और करोड़ भव में भी नहीं कहे जा सकते, प्रभु! आहा..हा..! अरे! प्रभु! क्या है? आहा..हा..! इस आत्मा के आनन्दस्वरूप से विरुद्ध दृष्टि के कारण यह व्यवहार दया, दान, व्रत, भक्ति से मेरा कल्याण होगा, यह मिथ्यात्वभाव है। इस मिथ्यात्वभाव के कारण नरक में अनन्त बार गया, निगोद में अनन्त बार गया, प्रभु! यह नरक के एक क्षण के दुःख, एक क्षण के..! रत्नकरण्डश्रावकाचार में कहा है और छहढाला में है, करोड़ जीभ और करोड़ भव में... अरे! प्रभु! क्या है? भाई! अतीन्द्रिय आनन्द प्रभु सच्चिदानन्दस्वरूप की दृष्टि, आश्रय लिया नहीं और पुण्य-पापभाव का आश्रय लेकर मेरा हित होगा- ऐसे मिथ्यात्वभाव का सेवन किया, उस मिथ्यात्व के कारण (चौरासी) योनियों में अनन्त बार अवतरित हुए। उसमें नरक का एक क्षण का दुःख.. आहा..हा..! भाई! तूने कभी विचार नहीं किया। आहा..हा..! करोड़ जीभ और करोड़ों भवों में एक क्षण के दुःख नहीं कहे जा सकते।

प्रभु! तू अनन्त बार तेंतीस सागर की स्थिति में गया। दस हजार की नरक की स्थिति में अनन्त बार गया। दस हजार और एक समय में अनन्त बार गया। (दस हजार और) दो समय में अनन्त बार गया। आहा..हा..! तेंतीस सागर की स्थिति (में) अनन्त बार गया। प्रभु! उस दुःख का वेदन.. आहा..हा..! तो तू एक बार सम्यग्दर्शन प्रगट कर। आहा..हा..!

स्वानुभूति। राग और पुण्य के भाव का अनुभव, वह कर्मचेतना, कर्मफलचेतना का अनुभव है। वह मिथ्या अनुभव है। आहा..हा..! क्या कहा? जो कुछ शुभभाव दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के होते हैं, वे शुभभाव कर्म चेतना हैं। विकारभाव का उसमें चेतन है, विकारभाव का वेदन है। आहा..हा..! समझ में आया?

साधक जीव को.. आहा..हा..! **चैतन्य की स्वानुभूतिरूप...** भगवान अनन्तगुण के पिण्ड प्रभु के सन्मुख होकर; निमित्त, राग और पर्याय की रुचि से छूटकर, त्रिकाली ज्ञायकभाव के आनन्द के धाम की रुचि करके अनुभव करना। उस अनुभूति में खिले हुए नन्दनवन में.. आहा..हा..! जैसे उस दुःख में अनन्त काल गया, वैसे भगवान आत्मा अपने स्वरूप का-आनन्द का अनुभव करे तो एक क्षण के आनन्द में-अनुभूति में **नन्दनवन में साधक आत्मा आनन्दमय विहार करता है।** आहा..हा..!

(समयसार) ४१२ गाथा में कहा है। समयसार, ४१२ **'तत्थेव विहर'** समयसार, ४१२ गाथा। आहा..हा..! प्रभु! तेरी चीज़ अन्दर आनन्द का धाम है। आहा..हा..! तेरी प्रभुता का पार नहीं, प्रभु! ऐसी अन्तरशक्ति का सागर प्रभु है। उसके सन्मुख होकर अनुभूति करना, वह धर्म की पहली सीढ़ी, शुरुआत है। आहा..हा..! इसके बिना सब भक्ति और पूजा, दान, व्रत, और करोड़ों रुपये के दान दे, करोड़ों रुपये के मन्दिर बनावे, उसमें तो शुभभाव दुःखरूप है। देवचन्दजी! आहा..हा..! आहा..हा..! आहा..!

चैतन्य की स्वानुभूति... आहा..हा..! भगवान अनन्त पवित्रस्वभाव से भरपूर है। उसके सन्मुख होकर जो उसका अनुभव होता है, उसका नाम सम्यग्दृष्टि और सम्यग्ज्ञानी कहा जाता है। बाकी सब व्यर्थ है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : सन्मुख किस प्रकार होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बाहर में लक्ष्य करना आता है या नहीं? आर्तध्यान और रौद्रध्यान करना आता है या नहीं?

मुमुक्षु : परन्तु पर का करना आता है इसलिए...

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए.. ध्यान करना आता है या नहीं? पर का, राग का, पुण्य का ध्यान करना आता है या नहीं? तो जैसे राग का ध्यान करता है, वह आर्तध्यान मिथ्यात्वभाव है, दुःखरूप है। आहा..हा..! इसी प्रकार अन्तर में ध्यान लगाना। बाहर का ध्यान करता है, वह अन्तर में लगाना। यह पीछे थोड़ा आयेगा। सूक्ष्म बात है, प्रभु! अभी तो मार्ग तो छिन्न-भिन्न कर दिया है, भाई! आहा..!

अन्तरभगवान, अन्तर की ज्ञान की पर्याय में उसका लक्ष्य करके, श्रद्धा की पर्याय में उसका आश्रय करके जो अनुभूति होती है, उस आनन्द के स्वाद के साथ ज्ञानचेतना प्रगट हुई। आहा..हा..! उस **नन्दनवन में...** आहा..हा..! **साधक आत्मा...** अपने स्वरूप का साधक सम्यग्दृष्टि जीव। आहा..हा..! **आनन्दमय विहार करता है।** वह अतीन्द्रिय आनन्द में विचरता है। चाहे तो गृहस्थदशा में हो। आहा..हा..! परन्तु धर्मी और समकिती उसे कहते हैं कि जो अपने अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव में विचरता है। आहा..हा..! वह नन्दन वन-आनन्द का वन अन्दर है। आहा..हा..! सभी अनन्त गुण बाग में पड़े हैं, वे खिल जाते हैं। आहा..हा..! सूक्ष्म बात है, प्रभु! परन्तु समझनी तो पड़ेगी न, भाई!

ऐसा मनुष्यपना मिला, उसमें जैन में जन्म हुआ और जैन में वीतराग की वाणी सुनने को मिली, प्रभु! तो तुझे कुछ करना पड़ेगा। आहा..हा..! बाकी तो बहुत बार-अनन्त बार एक श्वास में निगोद के अठारह भव किये। गजब बात है। क्या है यह? सुनते हैं परन्तु क्या है, वह विचार करे तो पता पड़े। एक निगोद के भव में-एक श्वास में... वह श्वास मनुष्य का श्वास, हों! देव का श्वास तो उसे पन्द्रह दिन में श्वास उठता है। क्या कहा? सागरोपम (आयुष्यवाले) देव जो है, उसे तो पन्द्रह दिन में श्वास उठती है। वह बात नहीं। समझ में आया? देव जो पुण्य के फलरूप से मिले, एक सागर की स्थिति हो तो पन्द्रह दिन में तो श्वास लेता है। श्वासोच्छ्वास- श्वास और उच्छ्वास, दो हुए न? आहा..हा..! वह श्वास यहाँ नहीं लेना। यहाँ तो मनुष्य का जो श्वास-उच्छ्वास है, उस एक श्वासोच्छवास में निगोद के अठारह भव किये, प्रभु! भूल गया। भूल गया, इसलिए नहीं - ऐसा कैसे कहा जाये?

जन्म होने के पश्चात् माता ने छह मास (तक) माता ने क्या खिलाया, क्या पिलाया? नहलाया - पता है? याद है? याद नहीं, इसलिए नहीं था? आहा..हा..! इस ही भव में जन्म के पश्चात् छह महीने क्या हुआ? कैसे रोया? कैसे खाया? कैसे पिया? किस प्रकार दूध पिलाया? वह क्रिया हुई है न? याद है? याद नहीं, इसलिए नहीं थी? ऐसा कौन कहे? इसी प्रकार पूर्वभव का याद नहीं तो पूर्व भव में इतने दुःख सहन किये, वे नहीं हैं? ऐसा कौन कहे? समझ में आया? लॉजिक से-न्याय से समझना पड़ेगा। आहा..हा..!

कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन तो सही! तेरी प्रभुता अन्दर इतनी पड़ी है कि अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. शक्तियाँ हैं और एक-एक शक्ति में अनन्त-अनन्त प्रभुता है। आहा..हा..! ऐसी अनन्त प्रभुता का पिण्ड प्रभु तेरी वस्तु अन्दर है, भगवान! आहा..हा..!

आचार्य तो भगवान कहकर बुलाते हैं। आहा..! (समयसार की) ७२ गाथा। ७२ है न? कर्ता-कर्म (अधिकार) की ७२, वहाँ लिया, संस्कृत टीका है। पुण्य और पापभाव, शुभ और अशुभभाव अशुचि है, मैल है। ये दया, दान, व्रत, भक्ति, तीर्थयात्रा आदि के भाव, वह सब मैल है, शुभभाव मैल है, बाद में अमृतचन्द्राचार्य ने टीका में लिया है, भगवान आत्मा.. ऐसा टीका में लिया है। आहा..हा..! वे पुण्य और पाप के विकल्प, प्रभु! वह राग है, दुःख है, आकुलता है, नाथ! प्रभु! तू तो भगवान आत्मा, अशुचि के स्थान में वह शुचि

पवित्र है। आहा..हा..! शरीर अशुचि है, यह बात यहाँ नहीं है। यह तो माँस, हड्डियाँ और चमड़ी का पुतला है, यहाँ उसकी बात नहीं परन्तु अन्दर जो शुभ और अशुभभाव होते हैं। आहा..हा..! वे अशुचि हैं, मलिन हैं। भगवान आत्मा पवित्र है-ऐसा संस्कृत टीका में आचार्य महाराज अमृतचन्द्राचार्य दिगम्बर सन्त, भगवानरूप से तो बुलाते हैं, प्रभु! आहा..हा..! समझ में आया?

भगवान आत्मा तो निर्मलानन्द है न, प्रभु! एक बोल (हुआ)। दो बोल हैं। रागादिभाव हैं.. आहा..हा..! वे जड़ हैं, अचेतन हैं। आहा..हा..! चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, तप का भाव / विकल्प हो, वह अजीव है, जड़ है, क्योंकि वह राग अपने को जानता नहीं और राग, इस चैतन्यस्वरूप भगवान के साथ बिराजता है, उसे जानता नहीं। यह राग पर द्वारा ज्ञात होता है, ज्ञान द्वारा ज्ञात होता है; इसलिए यह राग अजीव और जड़ है। आहा..हा..!

भगवान आत्मा चैतन्य विज्ञानघन है। उसके सामने ऐसा लिया है। तीन बार - तीन बार लिया है। आहा..हा..! शुभभाव अचेतन - जड़ है, प्रभु! इससे आत्मा का कल्याण होगा (-यह मान्यता) महामिथ्यात्व का सेवन है। महापाखण्ड श्रद्धा का सेवन है।

मुमुक्षु : पुण्य से तो अरिहन्त पद मिलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य से अरिहन्त पद नहीं मिलता है। 'पुण्य फला अरहन्ता', जो कहा है, उसका दूसरा अर्थ है। उसमें ऊपर टीका है। समवसरण मिला वह.. समझ में आया? यहाँ पाठ में है, देखो! (प्रवचनसार गाथा) ४५ है न? उसमें देखो, 'पुण्य फला अरहन्ता', आहा..! '**अथैवं**' संस्कृत। '**तीर्थकृतां**' तीर्थंकर को '**पुण्यविपाकोऽ-अकिंचित्कर**' संस्कृत में पहला शब्द है। भगवान को पुण्य तो अकिंचित्कर है, उन्हें कुछ करता नहीं। है? अकिंचित्कर है। '**इति एवं आख्याति**' आहा..हा..! तो लोग ऐसा अर्थ करते हैं (कि) 'पुण्य फला अरहन्ता'। पुण्य से अरिहन्त पद प्राप्त होता है (-ऐसा मानना) अत्यन्त मिथ्याश्रद्धा, अज्ञान है। यहाँ तो पुण्य का फल, उनकी वाणी, औदारिकशरीर आदि मिले, वह पुण्य का फल है, वह उदयभाव है। यहाँ तो कहा न '**तीर्थकृतां**' तीर्थंकर को पुण्य का विपाक अकिंचित्कर ही है। अकिंचित्कर ही है। है? '**अकिंचित्कर एवेत्यवधारयति**' आहा..हा..! प्रवचनसार है। समझ में आया? आगम का तो यह वाक्य

है - ऐसा कहते हैं, 'पुण्य फला अरहन्ता' - पुण्य के फल में अरिहन्त पद मिलता है। अरे.. प्रभु! ऐसा नहीं है। पुण्य तो राग है, उसके फल में वीतरागता - सर्वज्ञ होता है? आहा..हा..! राग से रहित..

(प्रवचनसार) १६ वीं गाथा में कहा है, स्वयंभू। आत्मा जब केवलज्ञान प्राप्त करता है तो अपने शुद्ध उपयोग से प्राप्त करता है। समझ में आया? स्वयंभू, १६ वीं गाथा है। १५ और १६गाथा। स्वयंभू, अपनी केवलज्ञान की पर्याय अपने से कर्ता, कर्म है। पूर्व की पर्याय से भी केवलज्ञान नहीं हुआ। आहा..हा..! केवलज्ञान की एक समय की पर्याय षट्कारक से परिणमन होकर अपने से उत्पन्न होती है। आहा..हा..! वह कर्म के (क्षय से) उत्पन्न होती है, यह बात तीन काल में नहीं है। पुण्य से तो नहीं परन्तु पूर्व की मोक्षमार्ग की पर्याय है, उससे भी केवलज्ञान उत्पन्न होता है - ऐसा भी नहीं है क्योंकि मोक्षमार्ग की पर्याय है, वह तो व्यय होती है और केवलज्ञान की तो उत्पत्ति होती है - तो व्यय से उत्पत्ति होती है? आहा..हा..! समझ में आया?

(प्रवचनसार की) १६ वीं गाथा में है। वह तो षट्कारक के परिणमन से (उत्पन्न होता है)। केवलज्ञान, तो कर्ता पर्याय, कर्म पर्याय, साधन पर्याय, सम्प्रदान पर्याय, अपादान पर्याय, अधिकरण पर्याय। वह पर्याय के षट्कारक से उत्पन्न होता है। द्रव्य-गुण के आश्रय से भी नहीं। आहा..हा..! सत्.. सत्! भगवान केवलज्ञान पर्याय सत्, पर्याय प्राप्त होती है। केवलज्ञान-मोक्षदशा, वह अपनी पर्याय में षट्कारक के परिणमन से उत्पन्न होती है। आहा..हा..! पूर्व की पर्याय से नहीं, पुण्य से नहीं, निमित्त से नहीं, संहनन मजबूत है तो उससे नहीं। ऐसा स्वरूप है, भाई! इसने कभी सुना नहीं। लॉजिक से-न्याय से-क्या वस्तु है? समझ में आया? भगवान का मार्ग नयावोयम है-न्यायमार्ग है, तो न्याय से वस्तु की सिद्धि करते हैं। अन्याय और कुन्याय से सिद्ध करने जाएगा तो तुझे मिथ्यात्व होगा। आहा..हा..! समझ में आया?

यहाँ कहते है... ७२ गाथा के दो बोल आये। (राग) अशुचि है; भगवान आत्मा निर्मलानन्द है। राग अचेतन, भगवान चेतनरूप है। राग दुःखरूप, भगवान आनन्दरूप। आहा..हा..! तीन बोल हैं। (समयसार) ७२ गाथा। यह शुभराग-दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का, दान का, करोड़ों रुपये के दान का भाव, राग मन्द किया हो तो पुण्य है, दुःख है। आहा..हा..! देवचन्दजी! कभी सुना नहीं। ऐसे के ऐसे हम धर्म करते हैं (- ऐसा मान

लिया)। धूल में भी धर्म नहीं। धूल में भी नहीं - इसका अर्थ क्या? कि सम्यग्दृष्टि को जो पुण्यानुबन्धी पुण्य बँधता है, वैसा मिथ्यादृष्टि को नहीं बँधता; उसे तो पापानुबन्धी पुण्य बँधता है। आहा..हा..! समझ में आया?

जहाँ राग को दु:ख कहा और भगवान आनन्दस्वरूप है। वहाँ तो ऐसा लिया है कि दु:ख का कारण आत्मा की पर्याय नहीं और दु:ख का, राग का कार्य आत्मा की पर्याय नहीं। वहाँ से अकार्यकारणशक्ति निकाली है। ४७ शक्तियाँ निकाली हैं। पहली जीवत्वशक्ति। **जीवोचरित दंसणणाण ठिदो** - दूसरी गाथा के पहले शब्द में से जीवत्वशक्ति निकाली है। आहा..हा..! अकार्यकारणशक्ति, ७२ वीं गाथा की टीका में लिया है कि भगवान आत्मा की आनन्दरूप जो दशा है, वह कोई राग का कार्य नहीं है। आहा..हा..! और राग का वह कारण भी नहीं है। आहा..हा..! समझ में आया? उसकी निर्मलानन्द पर्याय का कर्ता, करण उसकी पर्याय स्वतन्त्र है। आहा..हा..! उसे ऐसा कहना कि पुण्य के फल में अरिहन्तपद प्राप्त होता है, प्रभु! गजब करते हैं। आहा..हा..!

मुमुक्षु : परसन्मुख हो, तब पुण्य होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परसन्मुख, पर दिशा। राग की दिशा पर की ओर है। राग की दिशा, दशा पर की ओर है। सुनो! चाहे तो शुभराग हो, उसकी दशा, उसकी दिशा पर की ओर है और वीतरागपर्याय की दशा, उसकी दिशा द्रव्य के ऊपर है। आहा..हा..! समझ में आया? चाहे तो तीर्थंकरगोत्र का भाव हो, वह राग है और राग की दिशा पर की ओर है। आहा..हा..! और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो वीतरागी पर्याय है, वह दशा, उसकी दिशा द्रव्य के ऊपर है। आहा..हा..! धन्नालालजी! दशा की दिशा। राग की दशा की दिशा (पर की ओर है)।

मोक्षपाहुड़ में १६ वीं गाथा में तो कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने यहाँ तक कहा '**परदव्वादो दुग्गई**' आहा..हा..! गजब बात! कुन्दकुन्दाचार्य और भगवान ऐसा कहते हैं कि हम तेरी अपेक्षा से परद्रव्य ही हैं और हमारे ऊपर तेरा लक्ष्य जाएगा (तो) तेरी चैतन्य की गति की दुर्गति होगी। पण्डितजी! १६ वीं गाथा। आहा..हा..! लोगों को तत्त्व का पता ही नहीं। ऐसे के ऐसे मूढ़रूप से चले जाते हैं कि हमने ऐसा किया और ऐसा किया।

मुमुक्षु : दुर्गति का अर्थ नरक?

पूज्य गुरुदेवश्री : दुर्गति का अर्थ यह नहीं। चैतन्य की परिणति से विपरीत (भाव हुआ), वह दुर्गति है। सोलहवीं गाथा है। **परदव्वादो दुग्गई** कुन्दकुन्दाचार्यदेव ऐसा कहते हैं, हमें मानने में तुझे जो भाव होता है, वह राग है, वह दुर्गति अर्थात् चैतन्य की परिणति नहीं। आहा..हा..! मार्ग दूसरा है, भाई! लोग तो बाहर की (बात में पड़ गये हैं।) अभी तो बाहर का भी ठिकाना नहीं होता और मान, जहाँ हो वहाँ अभिमान (करे)। मैंने किया, मैंने किया, मुझे मान मिला, मुझे अभिनन्दन मिला। वहाँ पाप है, पुण्य का भी कहाँ ठिकाना है? समझ में आया?

यहाँ तो पुण्यभाव हो तो वह दुर्गति अर्थात् चैतन्य की वह परिणति नहीं। वह विकारगति है तो वह चैतन्य की दुर्गति अर्थात् बुरी गति-परिणाम है। **सदव्वादो सुगाई** - ऐसा शब्द वहाँ है। आहा..हा..! भगवान की अनुभूति। स्वद्रव्य भगवान पूर्ण स्वरूप का लक्ष्य करके जो अनुभूति हुई, वह **स्वदव्वादो सुग्गई** सुगति है। वह चैतन्य की सुगति है। वह चैतन्य की परिणति सुगति है और उसका फल भी सिद्ध अर्थात् सुगति है। सिद्ध, वह सुगति है और चारगति है, वह दुर्गति है। आहा..हा..! समझ में आया? यह कहते हैं, सब कहते हैं, हमें सब पता है।

अभी तो जैनदर्शन (पत्रिका) में एक लेख ऐसा आया है कि चौथे, पाँचवें, छठवें (गुणस्थान) में तो शुभयोग ही होता है। बारहवीं गाथा में आया न?

सुद्धा सुद्धादेसो णादव्वो परमभावदरिसीहिं।
ववहारदेसिदा पुण जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे॥१२॥

इसका विपरीत अर्थ किया है कि वह तो जो परमभाव में स्थित है, सर्वज्ञ है, उन्हें अब नय नहीं है। परन्तु, शुद्धनय कहाँ तक है? सातवें से बारहवें तक। चौथे से छठवें तक शुभ है, सातवें से बारहवें तक शुद्ध उपयोग है और केवल (ज्ञान) में शुद्धोपयोग का फल है। ऐई! प्रवचनसार की गाथा है, उसमें उतारा है। उपयोग की अपेक्षा से लें.. संस्कृत टीका है, तो पहले गुणस्थान, दूसरे गुणस्थान, तीसरे गुणस्थान में अशुभ उपयोग है और चौथे से बारहवें तक, चौथे-पाँचवें-छठवें तक शुभ उपयोग है और सातवें से बारहवें तक शुद्ध उपयोग है। यह तो मुख्यता से बात की है। आहा..हा..!

द्रव्यसंग्रह की ४७ गाथा है। तुम्हारे सैंतालीस कहते हैं न? चार और सात। '**दुविहं**

पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणिणियमा।' ऐसा पाठ है। **'दुविहं पि मोक्खहेउं'** दो प्रकार का मोक्षमार्ग ध्यान में प्राप्त होता है। इसका अर्थ क्या ? अपना चैतन्यमूर्ति जो अन्दर आनन्दस्वरूप भगवान है, उसकी अनुभूति करके, अन्दर जो दशा-सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुए, वह निश्चयमोक्षमार्ग है। वह ध्यान में प्राप्त होता है। वह अन्तरस्वरूप की दृष्टि हुई, वह ध्यान में प्राप्त होता है, तो वह ध्यान है, वह शुद्ध उपयोग वहाँ है, शुभ उपयोग नहीं। आहा..! समझ में आया ? आहा..! और उस त्रिकाली भगवान के ध्यान में शान्ति, श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र हुए, वह निश्चयमोक्षमार्ग है; साथ में राग रहा, उसे उपचार से व्यवहारमार्ग कहा। अभी ध्यान है तो भी यह दो बात आयी। आहा..हा..! समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं, व्यवहार है, उसका फल-पुण्य फल, उससे अरिहन्तपद प्राप्त होता है। - यह अत्यन्त विपरीत दृष्टि है। अन्दर-ऊपर लिखा है कि अकिंचित्कर है। तीर्थंकर को पुण्य अकिंचित्कर - कुछ करता नहीं। यह पुण्य फल तो देह, वाणी, हिलना-चलना, यह पुण्यफल है और वह भी उस पुण्यफल का समय-समय में नाश होता है तो उदय को क्षायिकभाव कह दिया। (प्रवचनसार की) ४५ गाथा है। समझ में आया ? जैसे निचले दर्जे में अपने स्वरूप में ध्यान में है। आनन्द और ध्यान में है, (उस समय) उदय आया, वह खिर जाता है, आया - वह खिर जाता है। अन्दर आननद में है तो उदय खिर जाता है। वहाँ जैसे खिर जाता है, वैसे केवली को बोलने आदि का जो कर्म उदय आया, वह उदय समय-समय आया, वह खिर जाता है। खिर जाता है तो उसे क्षायिकभाव कह दिया है। आहा..हा..! अरे रे.! अभी मार्ग का सच्चा ज्ञान व्यवहार से भी सच्चा नहीं, उसे सम्यग्दर्शन और अनुभूति कहाँ से हो ? आहा..! समझ में आया ?

यह कहते हैं, **आनन्दमय विहार करता है। बाहर आने पर कहीं रस नहीं आता।** आहा..हा..! आत्मा का सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान हुआ तो उसमें - आनन्द में विचरते हैं। बाहर जहाँ विकल्प आया, उसमें रस नहीं। आहा..! बाहर आने पर कहीं रस नहीं आता। शुभभाव आया, होता है, ज्ञानी को भी शुभभाव आता है, परन्तु रस नहीं। आहा..हा..! समझ में आया ? यह पुस्तक तो अब चालीस हजार - पचास हजार बाहर आ गयी है। बहिन की बहुत पुस्तक (प्रकाशित हो गयी है)। आहा..! देखा है या नहीं ? वचनामृत पुस्तक आयी है या नहीं ? देवचन्दजी! आयी है ? पढ़ी है ? पढ़ी नहीं होगी। आहा..हा..!

यहाँ कहते हैं, आहा..हा..! स्वरूप के आनन्द का अनुभव जहाँ सम्यग्दर्शन में हुआ, अनुभूति जहाँ हुई, धर्म की प्रथम दशा जहाँ प्रगट हुई, उसे बाहर आने में-राग में दुःख लगता है, रस नहीं आता। बाहर में दिखायी दे, इन्द्र भी भगवान की भक्ति करे। क्या कहलाता है? नन्दीश्वरद्वीप। नन्दीश्वरद्वीप शाश्वत् है न? प्रतिमा शाश्वत् है, वहाँ अष्टाह्निका में इन्द्र जाते हैं। वे नाचते दिखते हैं, बाहर में उत्साह दिखता है। समकिती हैं, ज्ञानी हैं, पहले देवलोक का इन्द्र है, पैर में घुँघरू बाँधकर भगवान के समीप नाचता है, उत्साह दिखता है परन्तु उस शुभभाव में रस नहीं है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : नाचने में तो आनन्द आता होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न? नाचने की क्रिया तो जड़ की है। जो राग आया, वह विकार है, दुःख है। आहा..हा..! कठिन बात, भाई! बाहर में तो ऐसा ही दिखता है। भगवान के समक्ष स्तुति करे, उसमें उत्साह (उठता है)। एक बार कहा था, समयसार की १४३ गाथा है, सम्यग्दृष्टि को ज्ञान की क्षयोपशम दशा है, अल्पदशा है तो विकल्प आता है परन्तु विकल्प से उत्साह की निवृत्ति है, उसे रस नहीं है। आहा..हा..! बहुत सूक्ष्म बात, बापू! यह मार्ग कोई अलौकिक है। आहा..हा..! और वह जैनदर्शन के अतिरिक्त यह चीज़ कहीं नहीं है और वह जैनदर्शन! दिगम्बर दर्शन, वह जैनदर्शन है। बाकी कहीं नहीं है। अरे रे! क्या हो? पक्ष में आकर लोग सत्य को असत्य कर दें, (ऐसा) नहीं होता। वस्तु, वस्तुरूप से रहेगी। आहा..हा..! अन्यथा करेगा तो इसकी दृष्टि में अन्यथा होगा। वस्तु में अन्यथा नहीं होगा। वस्तु तो वस्तु है। आहा..हा..!

यहाँ कहते हैं ज्ञानी को बाहर आने पर रस नहीं आता। शुभभाव आता है। आहा..हा..! भरतेशवैभव में एक लेख है। भरतेशवैभव है न? भरत चक्रवर्ती क्षायिक सम्यग्दृष्टि थे और राग अशुभ आया। भोग के काल में अशुभराग हुआ। क्रिया तो जड़ की होती है। आहा..हा..! परन्तु जब अशुभ (राग) आया तो दुःख लगा और जहाँ भोग पूरा हुआ और नीचे बैठते हैं, (वहाँ) निर्विकल्प ज्ञान हो जाता है। भरतेश में है, भरतेश वैभव में है कि धर्मी जीव को अशुभराग, भोग की वासना आयी परन्तु दुःख (लगता है) और जहाँ पूरा हुआ, वहाँ निर्विकल्प आनन्द, ध्यान हो गया, दूसरे क्षण! क्योंकि लगन वहाँ है, डाह्याभाई! बापू! मार्ग कोई अलग प्रकार है, भाई! आहा..हा..!

जहाँ आत्मा का निर्विकल्प सम्यग्दर्शन और अनुभव हुआ, उसे राग आया (परन्तु) रस नहीं है और एक क्षण में राग छूटकर दूसरे क्षण ध्यान में आ जाते हैं। ऐसी वस्तु है। आहा..हा..! समझ में आया? उस राग में रस नहीं है। यह १७७ (बोल पूरा) हुआ।

पहले ध्यान सच्चा नहीं होता। पहले ज्ञान सच्चा होता है कि—मैं इन शरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्शादि सबसे पृथक् हैं; अंतर में जो विभाव होता है वह मैं नहीं हूँ; ऊँचे से ऊँचे जो शुभभाव, वह मैं नहीं हूँ; मैं तो सबसे भिन्न ज्ञायक हूँ॥१७८॥

१७८ **पहले ध्यान सच्चा नहीं होता।** क्या कहते हैं? आत्मा में जब सम्यग्दर्शन ध्यान में उत्पन्न होता है, वह ध्यान पहले नहीं होता। **पहले ध्यान सच्चा नहीं होता।** कल्पना से करे कि मैं ध्यान करता हूँ और ऐसा करता हूँ। आहा..हा..! **पहले ज्ञान सच्चा होता है...** पहले ज्ञान में सत्यता आनी चाहिए। आहा..! ज्ञान सच्चा नहीं और झूठा ज्ञान है.. आहा..हा..! राग से कल्याण होगा और राग का कर्तव्य है, वह मेरा कार्य है—ऐसा ज्ञान है, वह तो खोटा ज्ञान है। उस ज्ञान में इसे ध्यान नहीं होता। समझ में आया? आहा..हा..! सूक्ष्म बात है, भाई! मार्ग ऐसा है। आहा..! आहा..हा..!

त्रिलोकनाथ परमात्मा महाविदेहक्षेत्र में तो बिराजते हैं। वहाँ से तो यह वाणी आयी है। कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ से आये और (शास्त्र) बनाये। तुम्हें व्यक्तिगत बात कदाचित न जँचे परन्तु बहिन भी महाविदेह से आयी हैं। व्यक्तिगत बात न जँचे तो एक ओर रखो, तत्त्व क्या है, वह सुनो-समझो। समझ में आया? आहा..हा..!

मुमुक्षु : बात अधूरी रह गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो इतनी है कि भगवान के पास जाकर जैसे कुन्दकुन्दाचार्य वाणी लाये, वैसे बहिन भी वहाँ थीं। वहाँ जरा भूल हो गयी और यहाँ आ गये और स्त्री हो गये। समझ में आया? यह वाणी देखो न!

धर्मी जीव... पहले समझे बिना ध्यान करने जाये तो ध्यान नहीं होता। पहले सच्चा ज्ञान होना चाहिए। क्या? **पहले ज्ञान सच्चा होता है...** क्या? सम्यग्ज्ञान की यहाँ बात नहीं है। ज्ञान में सत्यता आनी चाहिए कि राग पर है, स्वभाव मेरी पूर्ण वस्तु है, वह पर से (भिन्न

है)। राग से कुछ लाभ होगा नहीं, स्वभाव की दृष्टि से लाभ होगा। परलक्ष्यी ज्ञान में ऐसी सत्यता आनी चाहिए। आहा..हा..! समझ में आया?

पहले ज्ञान सच्चा होता है कि... क्या? **इन शरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्शादि सबसे पृथक् हैं;...** ऐसे ज्ञान में पहले (आना चाहिए)। सम्यग्ज्ञान (बाद में होता है)। परन्तु ज्ञान के क्षयोपशम में यह बात पहले आनी चाहिए। आहा..हा..! समझ में आया? १३ वीं गाथा में कहेंगे। पहले नय-निक्षेप-प्रमाण से ज्ञान होना चाहिए परन्तु फिर अनुभव काल में वे भी अभूतार्थ हैं, उनसे कोई अनुभूति नहीं होती। आहा..हा..! (समयसार की) १३ वीं गाथा है न? १३वीं गाथा चली नहीं है, उसमें आयेगा। नव तत्त्व का ज्ञान, नय-निक्षेप का, प्रमाण का ज्ञान आता है। पहले सच्चा ख्याल आता है। फिर अन्तर में जाकर ध्यान होता है। अभी ज्ञान में ही विपरीतता है तो अन्दर में ध्यान किस प्रकार होगा? आहा..हा..! समझ में आया?

पहले एक बार बात की थी। (संवत्) १९८३ के साल, संवत् १९८३, कितने वर्ष हुए? ५१। हम तो उसमें, मुँहपत्ती में थे न? वहाँ एक सेठ थे, वे सेठ ऐसा कहते थे कि भगवान की प्रतिमा की पूजा मिथ्यादृष्टि को होती है, सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् नहीं। एक बड़े सेठ थे। उस समय सत्तर वर्ष पहले दस लाख रुपये थे। अभी दस लाख और पाँच लाख धूल में बहुत आता है। उस समय तो बहुत पैसा। चालीस हजार की आमदनी थी। दस हजार का एक गाँव घर में था। बनियों की जाति के थे। दामनगर है। वे ऐसा कहते थे, स्थानकवासी थे न? मूर्ति की पूजा कब तक है? कि मिथ्यादृष्टि है तब तक है। सम्यग्दृष्टि होने के बाद मूर्ति की पूजा नहीं होती।

मैंने कहा, ५१ वर्ष पहले! पण्डितजी! न्याय सुनो! वास्तव में तो जब आत्मा का ज्ञान, अनुभूति होती है, तब भावश्रुतज्ञान होता है और भावश्रुतज्ञान में दो भाग पड़ते हैं। निश्चय और व्यवहार। तो ज्ञान का जो व्यवहार भाग है, वह ज्ञेय का निक्षेप (भाग है)। ज्ञेय के नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव ये चार भाग हैं। नय में निश्चय और व्यवहार दो भाग हैं। जब सम्यग्दर्शन हुआ, अनुभूति हुई, तब भावश्रुतज्ञान हुआ, उसका एक पक्ष व्यवहारनय आया। निश्चय तो स्व को देखता है। व्यवहार आया, वह व्यवहार ज्ञान, ज्ञेय का जो भेद स्थापना है, उस नय का विषय वह है, तो समकिती को ही नय का विषय यथार्थ होता

है। पण्डितजी! समझ में आया? आहा..हा..! सम्यग्दृष्टि को ही व्यवहारनय का विषय है। है भले शुभभाव। आहा..हा..! ऐसा नहीं चलता, कहा। हम इसमें आ गये हैं, इसलिए मान लेंगे (-ऐसा नहीं है) उसमें दीक्षित हुए थे न, बड़ी दीक्षा थी धूमधाम। ६५ वर्ष पहले हाथी के होदे पर घर में बड़े भाई ने दीक्षा दिलायी थी। १८००-२००० रुपये खर्च करके.. ६५ वर्ष पहले। इसमें आ गये, इसलिए तुम्हारा यह मानना ऐसे नहीं हैं। हम तो सत्य होगा, वह मानेंगे, क्योंकि वे तो स्थानकवासी थे न? इसलिए मूर्ति को निषेध करना था। स्वर्ग में मूर्ति है न? वह जिन की प्रतिमा है तो वे लोग कहते हैं कि वह यक्ष की है क्योंकि इन्द्र भी पूजता है न? ऐसा नहीं है। आहा..हा...!

शाश्वत् प्रतिमा भी जिन प्रतिमा है। जैसे केवलज्ञानी परमात्मा त्रिकाल हैं तो उनकी प्रतिमा भी लोक में त्रिकाल होती ही है। आहा..हा..! परन्तु वह निक्षेप स्थापना है। नाम, द्रव्य, भाव में यह स्थापना (निक्षेप है) ज्ञेय का एक भाग हुआ और यहाँ नय में निश्चय और व्यवहार में व्यवहारनय का एक भाग हुआ। व्यवहारनय का विषय उसे होता है। अज्ञानी को व्यवहारनय का विषय नहीं है। नय ही नहीं तो उसे निक्षेप कहाँ से आया? समझ में आया? ऐसी बात है, प्रभु! मार्ग तो यह है। डाह्याभाई!

यहाँ कहते हैं.. आहा..हा..! प्रथम अभी ज्ञान में भी सच्चा यथार्थ, व्यवहार आया नहीं तो उसे कभी सच्चा ध्यान नहीं होता, अन्दर में नहीं जा सकता। आहा..हा..! समझ में आया? आहा..! बात तो ऐसी अनजानी लगती है परन्तु बापू! मार्ग तो यह है। मर जाये शुभक्रिया करके, कायक्लेश है। वह क्लेश है। निर्जरा अधिकार में लिया है। शुभभाव की क्रिया व्रत और तप सब क्लेश है, राग है। आहा..हा..! अरे! योगीन्द्रदेव तो ऐसा कहते हैं, 'पाप पाप को तो सब कहे परन्तु अनुभवीजन पुण्य को पाप कहे'। आहा..हा..! पण्डितजी! योगीन्द्रदेव, योगसार में आता है। अरे! उन्होंने तो कहा परन्तु पाठ में है। पुण्य-पाप अधिकार जहाँ पूरा हुआ, जयसेनाचार्यदेव की संस्कृत की टीका में ऐसा अधिकार आया है कि यहाँ अधिकार तो पाप का आया है और उसमें व्यवहाररत्नत्रय का अधिकार क्यों लिया? जयसेनाचार्यदेव की संस्कृत टीका। सुन तो सही! यह व्यवहाररत्नत्रय का भाव व्यवहार से पवित्र है। पाप से बचने के लिये; परन्तु निश्चय से स्वरूप में से पतित होता है तो व्यवहार में आता है तो उसे हम पाप कहते हैं। जयसेनाचार्यदेव की टीका। पुण्य-

पाप अधिकार में अन्तिम (में लिखा है)। हमने तो सब पहले से (संवत्) १९७८ के साल से दिगम्बर के शास्त्र देखते हैं। १९७८, कितने वर्ष हुए? ५६। सब धन्धा ही यह किया है न? क्या कहा इसमें, समझ में आया?

राग आता है, परन्तु राग का रस ज्ञानी को नहीं है। राग दुःखरूप लगता है। अरे! आहा..हा..! बहिन के शब्दों में तो आया है। १४९ पृष्ठ में है या नहीं? ४०१ बोल, ४०१ बोल। आहा..हा..! है? हिन्दी में १७६ पृष्ठ है। ४०१ बोल है? **ज्ञानी का परिणमन...** आहा..हा..! **विभाव से विमुख होकर स्वरूप की ओर ढल रहा है।** क्या कहते हैं? ज्ञानी-धर्मी का उपयोग, परिणमन विभाव से विमुख होकर स्वरूप की ओर ढल रहा है। **ज्ञानी...** आहा..हा..! **निज स्वरूप में परिपूर्णरूप से स्थिर हो जाने को तरसता है।** धर्मी तो पूर्ण स्वरूप में इस समय यदि केवलज्ञान होता हो तो मुझे कुछ काम नहीं - ऐसी उसकी भावना है। है? '**यह विभावभाव हमारा देश नहीं है।** है? ये दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प आया, वह हमारा देश नहीं है। आहा..हा..! धन्नालालजी!

इस परदेश में हम कहाँ आ पहुँचे? अरे रे! आहा..हा..! यह राग आया, वह परदेश है, मैं कहाँ परदेश में आ पहुँचा? आहा..हा..! सूक्ष्म बात है, बापू! प्रभु का मार्ग.. कहते हैं, **इस परदेश में हम कहाँ आ पहुँचे? हमें यहाँ अच्छा नहीं लगता।** शुभभाव में हमें अच्छा नहीं लगता। आहा..हा..! **यहाँ हमारा कोई नहीं है।** आहा..हा..! शुभराग में हमारी कोई चीज़ नहीं है। आहा..हा..! पढ़ा हो तो भी यह बराबर नहीं समझा होगा। जयचन्दजी!

जहाँ ज्ञान, श्रद्धा, चारित्र, आनन्द, वीर्यादि अनन्तगुणरूप हमारा परिवार बसता है... आहा..हा..! अन्तर में ज्ञान-दर्शन-आनन्द, वह हमारा परिवार अन्दर है। आहा..हा..! राग उत्पन्न हुआ, वह हमारा देश नहीं, हमारा परिवार नहीं। अरे! मैं कहाँ आ पहुँचा? धर्मी को ऐसा लगता है। आहा..हा..! आहा..हा..! **अनन्तगुणरूप हमारा परिवार बसता है, वह हमारा स्वदेश है।** आहा..हा..! देखो! यह बहिन की वाणी। **अब हम उस स्वरूपस्वदेश की ओर जा रहे हैं।** हम तो हमारा आनन्दस्वरूप भगवान-देश-उस ओर जा रहे हैं। आहा..हा..! हमारे स्वदेश में हम तो जा रहे हैं।

हमें त्वरा से अपने मूल वतन में जाकर आराम से बसना है... आहा..हा..!

सम्यग्दृष्टि को तो अपने निज देश में त्वरा से जाना है। आहा..हा..! वाँचन का शुभराग आया, सुनने का शुभ (राग) आया.. आहा..हा..! अरे! हम परदेश में कहाँ आ पहुँचे? हमारे वतन-स्वदेश में तो ज्ञान, श्रद्धा, आनन्द आदि हमारा परिवार बसा है। राग वह हमारा परिवार नहीं है। आहा..हा..! समझ में आया? '**अपने मूल वतन में जाकर आराम से बसना है, जहाँ सब हमारे हैं।**' आहा..हा..! असंख्य प्रदेशी अनन्त गुण का धाम, बादशाह, वह अपना स्वदेश है। समझ में आया? असंख्य प्रदेश में अनन्त गुण की प्रजा, वह हमारा देश है। आहा..हा..! राग, वह हमारा देश नहीं, वह हमारा परिवार नहीं। आहा..हा..! जिसे लोग कहते हैं कि व्यवहार करते-करते निश्चय (होगा)। अरे! प्रभु! सुन तो सही! गजब करता है, नाथ! तेरे आत्मा में बहुत विपरीत मिथ्यात्वभाव भरा है, भगवान! उसका दुःख होगा, उसके फल में तुझे दुःख होगा, भाई! वर्तमान लोग पसन्द करें, तू मान। उस दुःख का वेदन तुझे मिथ्यात्वभाव में आयेगा। आहा..हा..! तब कोई लोग तुझे सहायक नहीं होंगे। आहा..हा..! कि हमें बहुत मानते थे, हमें पसन्द करते थे, हमें पूज्यरूप से मानते थे तो क्या हुआ? अज्ञानी तो माने। समझ में आया? आहा..हा..! परन्तु अज्ञान में, राग से लाभ होगा—ऐसी जिसे मान्यता है, वह परदेश में-मिथ्यात्व में भ्रमता है। आहा..हा..! यह एक बोल है न? ४०१ बोल है, ४०१ बोल। ४३२ बोल है, उनमें यह ४०१ बोल है। इस प्रकार पढ़ा भी नहीं, वहाँ हैदराबाद। हैदराबाद के सेठ हैं। पहिचानते हो? जयचन्दजी! निवेदन करने आये थे, वहाँ इनके घर में चार दिन रहे थे परन्तु यह मार्ग, बापू! कहाँ गये? जेठाभाई! ये वहाँ थे न? इनकी साथ है न ये?

यहाँ कहते हैं **पहले ध्यान सच्चा नहीं होता। पहले ज्ञान सच्चा होता है...** क्या? मैं यह शरीर नहीं। रंग, गन्ध जो इस शरीर में दिखते हैं, वह मैं नहीं हूँ। आहा..हा..! उनसे मैं पृथक् हूँ। **अंतर में जो विभाव होता है, वह मैं नहीं हूँ;..** आहा..हा..! ऐसे सम्यक् का ध्यान होने के पहले ऐसा सच्चा ज्ञान होना चाहिए। आहा..हा..! देवचन्दजी! बात तो ऐसी है। है? अन्दर में जो विभाव होते हैं। पहले बाह्य वस्तु कही, शरीर, वर्ण, गन्ध। अन्दर में जो पुण्य दया, दान, व्रतादि के भाव होते हैं, वह मैं नहीं। पहले अन्तर ध्यान सम्यग्दर्शन में जब होता है, उससे पहले ऐसा सच्चा ज्ञान, परलक्ष्यी भी सच्चा ज्ञान होना चाहिए। आहा..हा..! समझ में आया? इसके बिना अन्तर्मुख में ध्यान में नहीं जा सकेगा। सत्यस्वरूप जैसा है,

उससे विरुद्ध ज्ञान हो तो सत्य में नहीं जा सकेगा। आहा..हा..! समझ में आया? आहा..हा..!

ऊँचे से ऊँचे जो शुभभाव, वह मैं नहीं हूँ;... है? उत्कृष्ट शुभभाव। आहा..हा..! जिस भाव से तीर्थंकर गोत्र बँधे, वह भाव मैं नहीं। समझ में आया? आहा..हा..! अपराध है। कहा नहीं? पुरुषार्थसिद्धि-उपाय में (कहा है कि) वह अपराध है। आहा..हा..! शुभभाव भी अपराध है, गुनाह है। आहा..हा..! यहाँ तो षोढस कारण भावना ऐसी है और उससे तीर्थंकरगोत्र (बँधता है)। आहा..हा..! वह तो सम्यग्दृष्टि है, उसे ऐसा भाव आता है, उसे भी दुःखरूप और बन्ध का कारण मानता है। आहा..हा..! **ऊँचे से ऊँचे जो शुभभाव, वह मैं नहीं हूँ; मैं तो सबसे भिन्न ज्ञायक हूँ।** ऐसा तो पहले ज्ञान में ऐसा सत्यपना आना चाहिए। इसके बिना, अन्तर में ध्यान में सम्यग्दर्शन होता है, वह ध्यान नहीं हो सकता। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रभु! तू अन्दर आत्मा है या नहीं? तू अतीन्द्रिय आनन्दरूप अमृत से भरपूर अकेला अमृत का सागर है, जबकि परद्रव्य के झुकाव से उत्पन्न यह इन्द्रियों का सुख तो दुःख का, जहर का प्याला है। भगवान आत्मा से विरुद्ध जो शुभविकल्प उत्पन्न होता है, वह भी जहर है। भाई! इसमें यह ठीक है - ऐसा हर्ष का भाव भी जहर है। अरे प्रभु! तू इसमें निश्चिन्त होकर सो रहा है। भगवान यह तेरे रहने का स्थान नहीं है, यह तो अपद है; इसलिए जाग रे नाथ... जाग! तेरा पद तो अन्दर शुद्ध चैतन्यधातुमय है, वहाँ जा, उसमें निवास कर!

अहो! सन्त, निस्पृह करुणा करके जगाते हुए कहते हैं कि तू राग में एकाकार होकर सो रहा है परन्तु वह तेरा पद नहीं है। प्रभु! तेरा पद तो शुद्ध चैतन्यधातुमय है। एक ज्ञानस्वभाव से भरपूर ध्रुव नित्यानन्द स्वरूप प्रभु आत्मा शुद्ध चैतन्यधातुमय है और वह तेरा पद है। इस प्रकार शुभाशुभराग में; अर्थात्, अपद में परिभ्रमण करने जाता है, उसके बदले स्वपद में जा न! वहाँ बस न!! वहीं ठहर जा न!!! लो यह करने योग्य कार्य है। *(पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, आतम के हित पंथ लाग! में से)*

श्रावण शुक्ल-१३, बुधवार, दिनाङ्क १६-०८-१९७८
वचनामृत-१७९-१८० प्रवचन-६६

ध्यान वह साधक का कर्तव्य है। परन्तु वह तुझसे न हो तो श्रद्धा तो बराबर अवश्य करना। तुझमें अगाध शक्ति भरी है; उसका यथार्थ श्रद्धान तो अवश्य करने योग्य है॥१७९॥

वचनामृत, १७९ बोल है। सूक्ष्म है, सूक्ष्म। **ध्यान वह साधक का कर्तव्य है।** सूक्ष्म है, भगवान! सम्यग्दृष्टि धर्मी का, ध्यान वह कर्तव्य है। आत्मा को ध्येय बनाकर,.. यह मूल सूक्ष्म चीज़ है। चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के परिणाम हों, वे कोई धर्म नहीं हैं; वह तो पुण्यबन्ध का कारण है। धर्म की दशा कब होती है? कि ध्रुव को ध्येय बनाकर ध्यान की धुनी लगा दे। सूक्ष्म बात है, प्रभु! क्या हो? इसने अनन्त काल से किया नहीं। अपना स्वरूप एक समय में, एक पर्याय के अतिरिक्त पूर्णानन्द प्रभु नित्यानन्द अनन्त गुण का पिण्ड, उस पर लक्ष्य करके-ध्येय बनाकर साधक का कर्तव्य तो वह ध्यान है। ज्ञानचन्दजी! आहा..हा..! उसके बिना धर्म कभी तीन काल में नहीं होता।

द्रव्यसंग्रह में ४७ गाथा में लिया है। ४ और ७ '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।**' द्रव्यसंग्रह, नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती। आहा..! सूक्ष्म बात है, भाई! यह देह, वाणी, मन तो जड़ है। इनकी कोई पर्याय / क्रिया चलती है, वह तो जड़ में है। आत्मा में जो रागादि होते हैं, पुण्य और पाप, हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-भोग वासना, वह पाप परिणाम है और दया, दान, भक्ति, व्रत, तप, पूजा, ध्यान आदि का भाव, वह पुण्य-परिणाम है। दोनों दु:खरूप और राग है। आहा..हा..!

धर्मी का कर्तव्य क्या? व्रतादि के परिणाम वह कर्तव्य नहीं, वह तो राग है।

आहा..हा..! धर्मी का कर्तव्य अर्थात् करने योग्य कार्य यह है कि ध्रुव को ध्यान में लेकर -ध्रुव को ध्येय बनाकर, आहा..हा..! ध्रुव को वर्तमान पर्याय का विषय बनाकर... ऐसी बात है। यह अन्तर चीज़ (वस्तु) आनन्द का नाथ प्रभु, पूर्णानन्द प्रभु आत्मा सच्चिदानन्द -स्वरूप है। सत् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द आदि गुण का भण्डार है। आहा..हा..! ऐसी चीज़ में पहले ध्यान लगाकर सम्यग्दर्शन होता है। आहा..हा..! सूक्ष्म बात है, भाई! आहा..हा..! यह शुभ-अशुभभाव जो होते हैं, वह भी अधर्म है; धर्म नहीं।

मुमुक्षु : तो उसे शुभ कहा क्यो?

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभ तो वास्तव में अशुभ की अपेक्षा से कहा, बाकी तो दोनों अशुद्ध ही है, अशुभ ही है। डाह्याभाई! बहुत सूक्ष्म बात, बापू! एक क्षण का धर्म, जन्म-मरण का अन्त लाने की चीज़ की बात है। बाकी तो अनन्त बार.. आहा..! भक्ति की, लाखों-करोड़ों-अरबों का दान दिया, लाखों-करोड़ों-अरबों के मन्दिर बनाये। उसमें क्या आया? उसमें तो तेरा भाव हो तो शुभ है और वह क्रिया होती है, वह तो पर से होती है, तेरे भाव से होती है - ऐसा नहीं है। आहा..हा..!

यहाँ तो जिसे आत्मा का कल्याण करना हो, जन्म-मरण के चौरासी के अवतार करते-करते वह दुःखी प्राणी है। आहा..हा..! चाहे तो वह अरबोंपति हो या बड़ा राजा हो या इन्द्र हो, आत्मा के स्वभाव से विपरीत पुण्य-पाप के भाव में पड़े हैं, वे दुःखी हैं। भाव में, हों! पुण्य-पाप का फल जो धूल मिलता है, लक्ष्मी आदि धूल है, उसकी बात नहीं है।

मुमुक्षु : लक्ष्मी आदि इसके पास नहीं आते।

पूज्य गुरुदेवश्री : लक्ष्मी इसके पास आती है? आत्मा तो अरूपी है, उसके पास लक्ष्मी कहाँ से आवे? लक्ष्मी तो जड़ है, लक्ष्मी तो जड़ है। परमाणु मिट्टी धूल है। जीव में तो उसका अभाव है। अजीव में अजीव का भाव है। अजीव में जीव का भाव है? और जीव के भाव में अजीवभाव है? अरे! कभी किया नहीं और सुना नहीं। आहा..हा..!

यहाँ तो कहते हैं कि **ध्यान वह साधक का कर्तव्य है।** आहा..हा..! जिसे आत्मा का साधन करना हो.. आहा..! उसका कर्तव्य तो ध्यान है। आहा..हा..! अपनी चीज़ जो अन्दर पूर्ण ध्रुव है, उसे ध्येय बनाकर पर्याय में उसमें एकाग्रता करना। आहा..हा..! वह साधक जीव का कार्य अर्थात् कर्तव्य है। आहा..हा..! यह सब व्यवहार तो उड़ जाता है।

ए.. सेठ! यह सब तीर्थ फण्ड करना, और अमुक करना.. उसमें क्या करे? वह तो पर की-जड़ की क्रिया है। उसमें कदाचित् शुभराग हो, वह भी राग है, दुःख है। आहा..हा..! प्रभु का मार्ग अलग है।

मुमुक्षु : उसके फल में अनुकूल पदार्थ मिलते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं। अनुकूल नहीं, वे ज्ञेय हैं। अनुकूल कहाँ से लाया? अनुकूल कहना किसे? ज्ञान में परपदार्थ ज्ञेयरूप है। उसमें यह इष्ट है और अनिष्ट है - ऐसा कुछ ज्ञेय में नहीं है। आहा..हा..! यह तो मुद्दे की रकम अनादि से कभी की ही नहीं और बाहर में मान लिया कि हम धर्म करते हैं। भगवान के मन्दिर में जाओ, पूजा-भक्ति करो, लाख-दो लाख-पाँच लाख, दस लाख का दान दिया, बस! हो गया धर्म। धूल में भी धर्म नहीं, सुन तो सही।

यहाँ परमेश्वर, जिनेश्वर त्रिलोकनाथ की दिव्यध्वनि में आया। वह सन्त कहते हैं और वही बहिन की वाणी में आया। आहा..हा..! यह तो देखा है न पूरा? यह पूरा देखा है न? घर में आ गयी है। पुस्तक भेंट आ गयी। पूछा था, वहाँ आये थे। पढ़ा है परन्तु पढ़े उसमें समझे क्या? बड़े कृषि पण्डित हैं। सरकार की ओर से खेत के पण्डित का सम्मान मिला है।

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन तो सही! आहा..हा..! आचार्य (तो) भगवानरूप से सम्बोधन करके उपदेश देते हैं। आहा..हा..! समयसार प्रथम गाथा में यह लिया कि अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. सिद्ध जो हुए, आचार्य कहते हैं, प्रभु! मैं ऐसा कहता हूँ, मेरी पर्याय में तो अनन्त सिद्धों को स्थापित किया है, हे श्रोताओं! तुम्हारी पर्याय अल्पज्ञ है.. आहा..हा..! उसमें अनन्त सिद्धों को स्थापित कर। आहा..हा..! राग में नहीं; राग तो भिन्न चीज़ है। आहा..हा..! सूक्ष्म बात है, प्रभु! प्रचलित पन्थ से भगवान का मार्ग कोई अलग प्रकार का है। सबेरे कहा नहीं? एक जापानी व्यक्ति है। बड़ा ऐतिहासिक शोधक है। ६३ वर्ष की उम्र है। तुमने पढ़ा नहीं? नहीं पढ़ा। यहाँ पन्ना है। पन्ना है? अन्दर होगा। वह यहाँ है। उसमें लेख आया है। ६३ वर्ष की उम्र है। उसने बहुत इतिहास खोजा। उसका लड़का १७ वर्ष का है। १० और ७। उसे भी इसमें रस है। जापान। तो उसमें लिखा है, बोल है, फिर पढ़ लेना।

मुमुक्षु : सार तो आप सुनाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहते हैं न! उसने लिखा है, जैनधर्म क्या है? हम पूरा इतिहास और हजारों शास्त्र पढ़कर कहते हैं - जैनधर्म क्या है? उसमें लेख है। आहा..हा..! है? देखो! जैनधर्म पूर्णत: आत्मानुभूति पर आधारित है। जापानी ऐतिहासिक शोधक लाखों पुस्तकें पढ़कर, वाँचकर जैन का तत्त्व पढ़कर यह जैन क्या कहते हैं? भले ही इन्हें बैठे या न बैठे, अलग बात है परन्तु जैनधर्म क्या है? लिखा है कि आत्मानुभूति पर आधारित है। आहा..हा..! जिसमें गुरु उपदेश और प्रवचन का कोई स्थान नहीं है। किसी पर के निमित्त का उसमें स्थान नहीं है।

मुमुक्षु : निमित्त के बिना तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त के बिना ही होता है। निमित्त के लक्ष्य से जो ज्ञान हुआ, उससे भी आत्मा का भान नहीं होता। यह तो मूलमार्ग सूक्ष्म है, भाई! समवसरण में भगवान की वाणी सुनी, अपने ज्ञान की पर्याय हुई, उसमें तो (वह) निमित्त है परन्तु निमित्त से हुई नहीं, अपने से हुई है। वह ज्ञान की पर्याय भी वास्तविक ज्ञान नहीं है। उस ज्ञान की पर्याय से भी धर्म नहीं होता। .... ये सब पैसेवाले पैसे में घुस गये और फिर हो गया... जाओ जिन्दगी (चली गयी)। आहा..हा..!

तीन लोक का नाथ आनन्दकन्द प्रभु, उसे राग के एकत्व का मोह तोड़कर.. आहा..हा..! अन्तर में अनुभव, आत्मा के आनन्द का अनुभव (होना), वह जैनधर्म है। यह जापानी पण्डित ऐतिहासिक (लिखता है)। बड़ी संस्था है, उसका स्थापक है। अन्दर लिखा है। उसने निकाला और यहाँ जैनधर्म में जन्में उन्हें पता नहीं। आहा..हा..! और निर्वाणमय है। यह आत्मा वस्तु है, वह निर्वाणमय है। उसने ऐसी भाषा लिखी है। अपनी जैनदर्शन की भाषा है, आत्मा मुक्तस्वरूप है। वस्तु मुक्तस्वरूप-निर्वाणस्वरूप ही है। उसने निर्वाण लिया है। सबेरे बताया था। समयसार १९८ कलश, उसमें '**स हि मुक्त एव**' (आता है।) भगवान आत्मा, शुभराग के विकल्प के बन्ध से भी रहित है। भाई! यह बात सूक्ष्म है, प्रभु! आहा..हा..! तेरी प्रभुता, भगवन्त! तेरी प्रभुता की शक्ति इतनी अपार है कि उसे अन्तर्दृष्टि में लेने में, उसमें अकार्यकारण नाम का प्रभु में गुण पड़ा है। आत्मा में अकार्यकारण नाम का गुण है। आहा..हा..! उस गुण का धारक भगवान है, उसकी दृष्टि

करने में, ध्यान करने में उस पर्याय को कोई राग की मदद मिले तो ध्यान कर सके, व्यवहार की मदद हो तो सम्यग्दर्शन हो सके – ऐसा वस्तु के स्वरूप में नहीं है। समझ में आया? ऐसी बातें! लोग बेचारे ऐसे के ऐसे जिन्दगी (व्यतीत करते हैं)। बेचारे क्यों कहा? शास्त्र वरांका कहता है। शास्त्र में, अरबोंपति हो या इन्द्र हो, उसे वरांका कहते हैं, भिखारी! तेरी चीज़ में अनन्त आनन्द की लक्ष्मी अन्दर पड़ी है, उसकी तुझे प्रतीति और कीमत (महिमा) नहीं और बाहर की वस्तु की तुझे कीमत है। भिखारी! आत्म बादशाह को तू भूल गया है। इन्हें–मुनि को कहाँ पड़ी है? जगत को ठीक लगे न लगे, वे तो नग्न मुनि हैं, नग्न हैं। नागा बादशाह आघा है। आहा..हा..! अरबोंपति हो.. समझ में आया? वह तो धूल है। वह लक्ष्मी तेरी है कहाँ? तुझमें तो अनन्त आनन्द, अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. अनन्त अविकारी शक्तियों से भरपूर, शान्तरस से भरपूर प्रभु.. आहा..हा..! उस लक्ष्मी की तुझे कीमत नहीं। जिसे संयोग की कीमत है; जिसे शुभराग आता है, उसकी कीमत है; जिसे वर्तमान पर्याय में ज्ञान के क्षयोपशम का जो अंश है, उसकी जिसे कीमत है, उसे अन्तर त्रिकाली चीज़ की कीमत नहीं है। सूक्ष्म बात है, भाई! कहाँ गये हमारे दीपचन्द! देवचन्दजी! पण्डितजी! बैठे हैं? वे ऐसा कहते थे कि हमें सुनने को मिला नहीं। हैं पण्डित। आहा..हा..!

प्रभु! तेरी प्रभुता.. एक शक्ति में अनन्त प्रभुता पड़ी है। ध्यान, दर्शन, चारित्र, आनन्द, वीर्य, स्वच्छत्व, कर्तृत्व, जीवत्व, चिति, दर्शि, ज्ञान, सुख, वीर्य, प्रभुत्व, विभुत्व, सर्वदर्शि, सर्वज्ञ, स्वच्छत्व, प्रकाशकत्व, असंकोचविकास, परिणम्यपरिणामकत्व, त्यागउपादानशून्यत्व, अगुरुलघुत्व ऐसी सैंतालीस शक्तियाँ हैं। एक–एक शक्ति में अनन्त प्रभुता पड़ी है। क्योंकि एक–एक शक्ति में, प्रभुत्वगुण अलग है, उसका रूप उनमें है। आहा..हा..! ऐसी अनन्त शक्ति–गुण, जिनका अन्त नहीं। प्रभु! वह क्या बात है? अनन्त इतने गुण–शक्ति है कि उनका अन्त नहीं कि यह अन्तिम गुण है। अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त में अन्तिम (गुण) है – ऐसी कोई चीज़ नहीं। आहा..हा..! क्षेत्र भले असंख्य प्रदेश हो, शरीर प्रमाण क्षेत्र भिन्न है परन्तु उसके गुण की जो संख्या है.. बहुत सूक्ष्म बात है, भगवन्त! उस गुण की संख्या में अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त है तो भी अनन्त का अन्तिम गुण है—ऐसा अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त करते यह अन्तिम गुण है – ऐसा नहीं आता। जुगलकिशोरजी! आहा..हा..!

ऐसे अमाप / बेहद शक्तियों का भण्डार प्रभु है। आहा..हा..! और एक-एक शक्ति में अनन्त शक्ति का स्वरूप-रूप है।

ज्ञान है, ज्ञान तो है, अस्तित्व है, वह भी है परन्तु ज्ञान में 'है' पड़ा है, वह अस्तित्व का रूप है, ऐसे अनन्त गुण में एक-एक गुण में अनन्त गुण का रूप है। आहा..हा..! यह आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, इसे ध्यान में लेना। वह ध्यान की पर्याय निर्विकल्प होती है। आहा..हा..! उसके बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता। धर्म की पहली सीढ़ी वह सम्यग्दर्शन (है)। '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणि णियमा**' द्रव्यसंग्रह में (४७ नम्बर की) गाथा है। समझ में आया? आहा..हा..!

बहिन ने पहले यहाँ ऐसा कहा कि **ध्यान वह साधक का कर्तव्य है।** ध्यान, वह धर्मी जीव का कार्य है। आहा..हा..! **परन्तु वह तुझसे न हो...** अन्तर में ध्यान में न जा सके तो **श्रद्धा तो बराबर अवश्य करना।** श्रद्धा में तो ऐसा लेना कि अन्तर में जाना और अन्तर में उतरना, वह ध्यान ही कर्तव्य है। आहा..हा..! समझ में आया? **परन्तु वह तुझसे न हो तो श्रद्धा तो बराबर अवश्य करना।** श्रद्धा में तो ऐसा लेना कि पूर्णानन्द नाथ के ध्यान में जाना, वही मोक्ष का मार्ग है; बाकी सब व्यर्थ है। आहा..हा..! ऐसी श्रद्धा तो अवश्य करना, प्रभु! इसके बिना तुझे मार्ग हाथ नहीं आयेगा। कठिन बात है, भाई! सत्य बात ऐसी है। आहा..हा..!

तुझमें अगाध शक्ति भरी है;... प्रभु! आहा..हा..! अगाध शक्ति का अर्थ - वह शक्ति अर्थात् गुण अगाध है, अपार है। आहा..हा..! संख्या जो अनन्त है, वह अनन्त शक्ति-गुणस्वरूप, उस अनन्त शक्ति का अगाध भाव है। अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त को अनन्तगुना गुणा करो तो भी उसका अन्त नहीं, ऐसी अनन्त अगाध शक्ति पड़ी है। आहा..हा..! अरे! ऐसी बात! ज्ञानचन्दजी! बड़े पण्डितों के भी पानी उतर जाये ऐसा है। आहा..हा..!

कहते हैं **तुझमें अगाध शक्ति भरी है;...** कोई बाहर से लानी नहीं है। आहा..हा..! प्रभु! जिसे आत्मा कहते हैं, उसमें तो अनन्त अगाध शक्ति भरी है। केवलज्ञान की एक समय की पर्याय, ऐसी-ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड तो एक ज्ञानगुण है। आहा..हा..! एक गुण की अनन्त केवलज्ञान आदि पर्याय और एक गुण की अनन्त शक्ति, उसमें अनन्त का

रूप, आहा..हा..! भगवान! तुझमें ऐसी अगाध शक्ति भरी है न, नाथ! प्रभु! आहा..! तू कहाँ खोजने जाता है? आहा..हा..! मृग-हिरण की नाभि में कस्तूरी है, हिरण कस्तूरी को जंगल में खोजने जाता है। हिरण की नाभि में कस्तूरी है, गन्ध आती है तो बाहर से आती है - ऐसा उसे लगता है। अन्दर में है, उसका उसे पता नहीं। आहा..हा..! इसी प्रकार हिरण जैसे प्राणी 'मनुष्यरूपेण मृगा चरंति' मनुष्य के रूप में हैं परन्तु अपनी अगाध शक्ति की प्रतीति और ज्ञान नहीं है, वे मृग जैसे राग में और पर में अपनापन मानकर चार गति में भटकते हैं। आहा..हा..! समझ में आया? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' मुनिव्रत धारण करके नग्न-मुनि (हुआ), अट्ठाईस मूलगुण अनन्त बार लिये। वह क्या वस्तु है? वह कोई चीज़-वस्तु है? आत्मा की अगाध शक्ति में वह शक्ति-वस्तु है? आहा..हा..!

मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो;
पै निज आतम ज्ञान बिना सुख लैश न पायो।

यह पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प भी दुःख है, राग है और दुःख है। छहढाला में आता है। छहढाला पाठशाला में चलती है परन्तु अर्थ की खबर कहाँ? जयनारायण! सीखे और ये सेठ दूसरों को पैसा दे, इसलिए हो गया, जाओ, धर्म हो गया। धूल में भी धर्म नहीं। सुन तो सही! धूल में नहीं, इसका अर्थ (यह है कि) वहाँ पुण्यानुबन्धी पुण्य भी नहीं है। आहा..हा..!

जिसे, आत्मा अनन्त अगाध शक्ति का पिण्ड प्रभु है, जिसकी दृष्टि में उसका स्वीकार हो और अगाध शक्ति का विश्वास आया। मैं तो अगाध अनन्त-अनन्त शक्ति का पिण्ड भगवान हूँ - ऐसा विश्वास आया। उस विश्वास से पर्याय, राग और निमित्त की रुचि छूट गयी। आहा..हा..! समझ में आया? वह विश्वास तो स्वसन्मुख का लक्ष्य करे, ध्यान करे तो आयेगा। आहा..हा..! सूक्ष्म बात है, बापू! किसे पड़ी है? बाहर में यह खाना, पीना, स्त्री, पुत्र बाईस घण्टे सम्हालकर पाप करके मर जाता है। आहा..हा..! धर्म तो नहीं परन्तु वहाँ तो पुण्य भी नहीं। आहा..हा..!

यहाँ तो कहते हैं, कदाचित् अशुभभाव छोड़कर इसने शुभ (भाव) किये, वह भी दुःखरूप दशा है। आहा..हा..! उनके रहित भगवान अन्तर अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु को

ज्ञान की पर्याय में स्वीकार करना, श्रद्धा की पर्याय में उसे श्रद्धा में लाना.. आहा..हा..! वह श्रद्धा और ज्ञान की पर्याय, ध्येय का लक्ष्य करने से होती है। आहा..हा..! सूक्ष्म है, भाई!

कहते हैं, देखो, **तुझमें अगाध शक्ति भरी है; उसका यथार्थ श्रद्धान तो अवश्य करने योग्य है।** आहा..हा..! है? १७९। यह तो ४१३ बोल हैं। ऐसे-ऐसे ४१३ बोल हैं। बहिन ने कहा होगा, लड़कियों ने लिख लिया था। उसमें से छाँटकर उनके भाई - हिम्मतभाई ने यह बनाया है। जब पुस्तक मेरे हाथ में आयी.. अभी तक बीस लाख पुस्तकें प्रकाशित हो गयी हैं। हमने किसी को कहा नहीं कि पुस्तक छपाओ या करो, बनाओ, हमने तो किसी को कहा नहीं। यह मकान (मन्दिर) बनाओ या यह (बनाओ.. ऐसा) हमने किसी को कहा नहीं। हम तो तत्त्व की बात करते हैं। समझ में आया? परन्तु यह पुस्तक जहाँ हाथ में आयी.. आहा..हा..! रामजीभाई को कहा, भाई! यह लाख पुस्तक बनाओ। बीस लाख तो प्रकाशित हो गये हैं, हमने तो कभी कहा नहीं। दुनिया करती है। रामजीभाई कहते हैं और यह लोग करते हैं। समझ में आया?

आज एक पत्र आया है। कोई बाबूलाल शास्त्री है। बाबूलाल शास्त्री कोई है? भिण्डर, भिण्डर में है। हमारे पर पत्र आया है। महाराज! आपसे बहुत प्रचार हुआ परन्तु जैनधर्म तक इसकी मर्यादा रही किन्तु ईशु, ख्रिस्ती, ब्राह्मण वेश, वहाँ नहीं आया तो फिल्म बनाओ। अरे भाई! हमने तो कभी कहा नहीं, हम प्रचार करने आये नहीं। हमें तो यह आता है, विकल्प आता है तो यह बात आती है। हम किसी को बनाते हैं और रचते हैं, हमने प्रचार किया है (-ऐसा नहीं है)। समझ में आया?

मुमुक्षु : हमारे लाभ की बात तो आपको कहनी चाहिए?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात होती है। इसकी फिल्म बनाओ, हजारों गायन बनाओ, तुम्हारा नाम रहेगा.. अब नाम हमारा कहाँ है? बड़ा पत्र आया है। कोई बाबूलाल शास्त्री है। भिण्डर.. भिण्डर है न? वहाँ हम थे न? अभी गये थे न? कुरावड़ गये थे। पंच कल्याणक थे न? दस, बारह हजार लोग आये थे कुरावड़ में और भिण्डर में कोई (साधु) थे। यह बात... बापू! आहा..!

वस्तु जो पाताल में पड़ी है, अन्दर गुण (पड़े हैं).. आहा..हा..! एक समय की पर्याय की समीप में भिन्न पड़ी है। पर्याय से भिन्न है। राग से तो भिन्न है। पर, शरीर, वाणी,

लक्ष्मी से तो प्रभु भिन्न है परन्तु इसकी एक समय की पर्याय से भी वस्तु भिन्न है। पर्याय में वस्तु आ नहीं गयी। आहा..हा..! अरे! ऐसा कहीं सुनने को मिलता नहीं। जीवन चला जायेगा, प्रभु! मौत के नगाड़े सिर पर बजते हैं। एक समय ऐसा आयेगा कि शरीर छूट जायेगा। आहा..हा..! पहले कहकर नहीं आयेगी कि अब मौत आती है। तैयारी कर-ऐसा कहकर आती है? आहा..हा..! क्योंकि देह तो जड़ है, संयोगी है तो छूटेगी ही छूटेगी। आहा..हा..! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, **उसका यथार्थ श्रद्धान तो अवश्य करने योग्य है।** १७९ हुआ।

उपयोग अन्तर में जाये वहाँ समस्त नयपक्ष छूट जाते हैं; आत्मा जैसा है, वैसा अनुभव में आता है। जिस प्रकार गुफा में जाना हो तो वाहन प्रवेशद्वार तक आता है, फिर अपने अकेले को अन्दर जाना पड़ता है, उसी प्रकार चैतन्य की गुफा में जीव स्वयं अकेला अन्दर जाता है, भेदवाद सब छूट जाते हैं। पहिचानने के लिये यह सब आता है कि 'चेतन कैसा है', 'यह ज्ञान है', 'यह दर्शन है', 'यह विभाव है', 'यह कर्म है', 'यह नय है', परन्तु जहाँ अन्दर प्रवेश करे वहाँ सब छूट जाते हैं। एक-एक विकल्प छोड़ने जाय तो कुछ नहीं छूटता, अन्दर जाने पर सब छूट जाता है॥१८०॥

उपयोग अन्तर में जाये वहाँ समस्त नयपक्ष छूट जाते हैं;... क्या कहते हैं? भगवान आत्मा... अपनी पर्याय में जो ज्ञान का उपयोग है, वह जब अन्तर में जाता है, तब मैं शुद्ध हूँ और बुद्ध हूँ और परिपूर्ण हूँ - ऐसे विकल्प भी वहाँ छूट जाते हैं। मैं पर्यायवान् हूँ—ऐसा तो है ही नहीं, मैं तो त्रिकाली शुद्ध हूँ, अभेद हूँ, अखण्ड हूँ - ऐसा विकल्प जो राग की वृत्ति आती है, (वह भी छूट जाती है)। आहा..हा..! हिन्दी है न? हिन्दी? हिन्दी है।

आहा..हा..! **उपयोग अन्तर में जाये...** ज्ञान की वर्तमान परिणति का व्यापार अन्तर तल में ध्रुव की ओर जाये, आहा..हा..! है? **समस्त नयपक्ष छूट जाते हैं;...** व्यवहार का राग मैं हूँ, यह नयपक्ष तो छूट ही जाता है परन्तु मैं रागरहित हूँ—ऐसा नयपक्ष-विकल्प भी छूट जाता है। आहा..हा..! देवचन्दजी! ऐसी बातें हैं, प्रभु! क्या हो? भरतक्षेत्र में सर्वज्ञ की अनुपस्थिति है। हाजिरी-महाविदेह में प्रभु बिराजते हैं, उन्होंने कहा हुआ मार्ग यह है।

समझ में आया ? चाहे तो जगत को जँचे, न जँचे परन्तु वस्तु तो यह है। आहा..हा.. ! कहा था न ? सर्वज्ञ परमात्मा तीर्थंकर का भरतक्षेत्र में विरह है.. आहा..हा.. ! और सर्वज्ञपने की पर्याय की उत्पत्ति का विरह.. आहा..हा.. ! अरे ! अवधि और मन:पर्यय (ज्ञान) आदि की उत्पत्ति का विरह पड़ गया। उसमें ऐसा मार्ग, जो श्रुतज्ञान की पर्याय से जानने में आता है। आहा..हा.. ! शास्त्र से भी नहीं। आहा.. !

मैं शुद्ध चैतन्य हूँ, अभेद हूँ, अखण्ड हूँ, एक हूँ—ऐसी वृत्ति / राग उठता है, वह विकल्प है। आहा..हा.. ! वह भी अन्तर में जाते हैं, वहाँ '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे**' अन्दर ध्यान में जाते हैं, सम्यग्दर्शन प्राप्त करने को अन्दर ध्यान में जाते हैं, तब वह नय विकल्प छूट जाता है। आहा..हा.. ! कठिन पड़े, भाई ! क्या करें ? मार्ग तो यह है। समझ में आया ?

पद्मनन्दि पंचविंशति है। अधिकार २६ है। पद्मनन्दि मुनि हो गये हैं। दिगम्बर सन्त वनवासी (मुनि थे)। उन्होंने पद्मनन्दि पंचविंशति (शास्त्र) बनाया है। २६.. २६ वें अधिकार में ब्रह्मचर्य का ऐसा अधिकार बनाया है। ओहो..हो.. ! ब्रह्मचर्य का अधिकार कहते.. कहते.. कहते (ऐसा कहते हैं), प्रभु ! ब्रह्म अर्थात् आत्मा के आनन्दस्वरूप में चरना अर्थात् रमना, उसका नाम ब्रह्मचर्य है। आहा..हा.. ! ऐसी व्याख्या बहुत की है। पद्मनन्दि पंचविंशतिका में, फिर कहा, सन्त हैं, आचार्य हैं, भगवत्स्वरूप अन्दर परमेश्वर पद है, (वे कहते हैं)। हे युवकों ! मेरी बात तुमको न रुचे, तुम इस विषय की वासना के प्रेम में फँस गये और मैं कहता हूँ कि राग से भी भिन्न भगवान, ऐसे आनन्द के नाथ में रमना, वह ब्रह्मचर्य है, प्रभु ! तुम्हें न जँचे, (रुचे) तो माफ करना, प्रभु ! हम तो मुनि हैं, दूसरा क्या कहेंगे ? आहा..हा.. ! हमारे से दूसरी क्या आशा रखोगे ? नाथ ! तुम्हें न रुचे तो माफ करना। मार्ग तो यह है। पद्मनन्दि (पंचविंशतिका का) एक-एक अधिकार.. २६ अधिकार है परन्तु नाम दिया है पद्मनन्दि पंचविंशत क्योंकि पद्मनन्दि में प.. प.. का सम्बन्ध है न ? नहीं तो है तो अधिकार छब्बीस। सब पढ़ा है न ? सभा में (भी पढ़ा है)। आहा..हा.. ! इसी प्रकार यहाँ आचार्य कहते हैं, (उसी प्रकार) बहिन कहती हैं, अभी लो न, यह बात हम कहते हैं और तुम्हें न रुचे तो माफ करना, प्रभु ! दूसरा क्या कहे ? मार्ग तो यह है, डाह्याभाई ! आहा..हा.. !

आत्मा जैसा है, वैसा अनुभव में आता है। आहा..हा.. ! जब इसकी परिणति / पर्याय अन्दर ध्यान में जाती है। सम्यग्दर्शन हुआ, वह ध्यान में प्राप्त होता है। सम्यग्दर्शन

कोई बाह्य की क्रियाकाण्ड में यह माना और वह माना, उसमें नहीं होता। वह तो अन्तर में **'दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणि णियमा'** ऐसा पाठ है। द्रव्यसंग्रह, जो पाठशाला में पढ़ाते हैं। सम्यग्दर्शन, मोक्ष का निश्चय सत्यमार्ग, वह अन्तरध्यान में प्राप्त होता है। आहा..हा..! समझ में आया? ऐसी बात है। **आत्मा जैसा है, वैसा अनुभव में आता है।**

जिस प्रकार गुफा में जाना हो... गुफा.. गुफा। **तो वाहन प्रवेशद्वार तक आता है,..** वाहन / मोटर हो या घोड़ागाड़ी हो, प्रवेशद्वार तक जाता है। **फिर अपने अकेले को अन्दर जाना पड़ता है,...** दृष्टान्त तो देखो! आहा..हा..! वह मोटर लेकर गुफा में नहीं जा सकता। समझ में आया? (वाहन) छोड़कर अकेले को गुफा में जाना पड़ता है। है? **फिर अपने अकेले को अन्दर जाना पड़ता है, उसी प्रकार...** यह दृष्टान्त हुआ। **चैतन्य की गुफा में जीव स्वयं अकेला अन्दर जाता है,..** आहा..हा..! भगवान आत्मा.. अरे! आठ वर्ष की बालिका हो या सातवें नरक का नारकी हो, प्रभु! उसके दुःख की अपारता, तैंतीस सागर की स्थिति.. आहा..हा..! जिसके क्षण के दुःख, प्रभु कहते हैं, एक क्षण के दुःख तो करोड़ों जीभ और करोड़ों भव में नहीं कह सकते, प्रभु! ऐसे क्षण के दुःख तूने अनन्त बार अनन्त सागर भोगे हैं। आहा..हा..! वह प्राणी भी नरक में होने पर भी, जब सम्यक्त्व प्राप्त करता है, तब अन्तर गुफा में जाता है। आहा..! इतने दुःख और ऐसे संयोग, तथापि जब आत्मा में अन्दर जाता है.. आहा..हा..! तो मैं शुद्ध हूँ और बुद्ध हूँ—ऐसे विकल्प के वाहन वहाँ रुक जाते हैं। आहा..हा..!

मुमुक्षु : वाहन बराबर समझ में नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या कहा? सेठ स्पष्टीकरण कराता है। जो विकल्प उठता है, वह वाहन है परन्तु वाहन गुफा में जाने का काम नहीं कर सकता। इसी प्रकार भगवान आत्मा पहले विकल्प में आया कि मैं आत्मा हूँ, मैं शुद्ध हूँ, अभेद हूँ, अखण्ड हूँ, मैं राग नहीं, शरीर नहीं, वाणी नहीं, मन नहीं—ऐसा विकल्प अर्थात् राग आया, परन्तु उस रागसहित अन्दर ध्यान में जा सके - ऐसा नहीं है। जुगलकिशोरजी! ऐसी बात है, प्रभु! यह तो शिक्षण शिविर है। बहुत लोग आये हैं। यह तो जंगल में मकान है। पहले जंगल में मकान बना था, यह (परमागम मन्दिर) तो अब (बना है)। यह मकान स्वाध्यायमन्दिर (संवत्) १९९४ में जंगल में बना था। यहाँ तो भैंसे बैठते थे परन्तु यह बनने का काल है तो बनता है। बनावे कौन और रचावे कौन? आहा..हा..! समझ में आया?

मुमुक्षु : आपकी कृपा से बना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब बातें हैं। यह जड़ की पर्याय, प्रभु! प्रवचनसार १०२ गाथा में भगवान कहते हैं कि जड़ की जो पर्याय जिस समय में वहाँ होनी है, वह उसका जन्मक्षण-उत्पत्ति का काल है तो होती है। मन्दिर का रामजीभाई ने ध्यान रखा, इसलिए उत्पन्न कराता है - ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। प्रमुख तो ये थे न? ध्यान तो इन्होंने बहुत रखा है।

मुमुक्षु : काम पर ध्यान ही कहाँ देता था?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर नहीं आते थे परन्तु बाहर में ध्यान में पूछते थे सबको। कैसा बना है? समझ में आया? आहा..हा..! हमारे यह वजुभाई हैं, आये हैं या नहीं? ये इंजीनियर थे। धूल में भी (नहीं)। आहा..हा..! प्रभु! सुन तो सही! यह एक-एक परमाणु में जब उसकी पर्याय का उत्पादकाल है, तब उत्पन्न होता है। दूसरा उस पर्याय को उत्पन्न करा दे या पूर्व की पर्याय से बाद की पर्याय उत्पन्न हुई - ऐसा भी नहीं है। निमित्त से तो नहीं, परन्तु वह पर्याय जो उत्पन्न हुई, उसमें पहले की पर्याय की, उससे दूसरी हुई - ऐसा नहीं है। आहा..हा..! उस समय में वह पर्याय उस प्रकार उत्पन्न होने का जन्म अर्थात् उत्पत्ति का काल था तो उत्पन्न हुई है। दूसरा अभिमान करे कि मैंने बनाया है और मैंने किया है-बनाओ अभिमान। आहा..हा...!

यहाँ तो (कहते हैं) वह तो छोड़ दे - पर को मैंने किया, यह बात तो छोड़ दे परन्तु तू अन्दर में जैसा है, वैसा विकल्प अन्दर में आता है, शुभ-अशुभभाव को छोड़ दे... आहा..हा..! परन्तु जैसी वस्तु है, वैसा विकल्प आया, राग की मन्द वृत्ति में विचार आया कि यह भगवान शुद्ध है और परिपूर्ण है। आहा..हा..! वह राग की मन्दता की हद, अन्दर में जाने की उसकी ताकत नहीं है।

मुमुक्षु : द्वार तक पहुँचावे।

पूज्य गुरुदेवश्री : द्वार तो खुला है। पूर्णानन्द का नाथ व्यक्तरूप से प्रगट पड़ा है। आहा..हा..! अरे! बर्फ की.. होती है न मुम्बई में? शिला, पचास-पचास मण की बर्फ की शिला। हम तो जाते हैं, तब ट्रक में पचास-पचास मण की बर्फ की शिला, ऐसे दो-तीन ट्रक में पड़ी होती है। पचास-पचास मण की सफेद शिला। यह भगवान तो अनन्त गुण

की निर्मलानन्द शिला है। अरे रे! इसे कैसे जँचे? कभी विचार में आया नहीं, आहा..हा..! सुनने को मिले नहीं। आहा..हा..!

मुमुक्षु : बर्फ जैसी शीतल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ; बर्फ जैसी शीतल.. शीतल.. शीतल.. पचास मण की शिला पड़ी है; वैसे यह आत्मा अविकारी शीतलस्वभाव की शिला अन्दर स्थित है।

मुमुक्षु : बर्फ जैसी है?

पूज्य गुरुदेवश्री : बर्फ की शीतलता जड़ है और यह शीतलता चैतन्य है। आहा..हा..! आहा..हा..! इन देह के रजकणों से भिन्न, कर्म के रजकणों से भिन्न, पुण्य और पाप के भाव से भिन्न परन्तु मैं शुद्ध और अभेद अखण्ड हूँ – ऐसे विकल्प से भी भिन्न है। आहा..हा..! ऐसी बात है, भाई! मानो, न मानो; दुनिया अनादि से भटकती है। चौरासी के अवतार करके दु:खी होती है। आहा..हा..! इन जन्म-मरण के अन्त लाने की वस्तु, विकल्प को लेकर अन्दर जा सके ऐसी वस्तु नहीं है। आहा..हा..! उस गुफा तक वाहन आवे, फिर अकेले को अन्दर जाना पड़ता है। वैसे भगवान आत्मा अनन्त अगाध गुण की गुफा के अन्दर जाना हो तो विकल्प से नहीं जा सकता। आहा..हा..!

यह गुणी-भगवान-पूर्ण है और अनन्त-अनन्त गुण पूर्ण है – ऐसे भेद का विकल्प राग है। आहा..हा..! अन्दर में वस्तु में जाना हो, सम्यग्दर्शन प्राप्त करना हो.. आहा..हा..! अभी तो चौथा गुणस्थान, हों! समकित। पाँचवाँ, छठवाँ वह तो बापू! कोई अलौकि बाते हैं। आहा..हा..! समझ में आया?

वह यहाँ कहते हैं। **स्वयं अकेला अन्दर जाता है,...** आहा..हा..! चैतन्य की गुफा में जीव स्वयं अकेला अन्दर जाता है। **भेदवाद सब छूट जाते हैं।** क्या कहते हैं? विकल्प तो छूट जाता है परन्तु मैं गुणी हूँ और इसमें अनन्त गुण हैं – ऐसा भेद भी छूट जाता है। ऐसी बात! आहा..!

ग्यारहवीं गाथा में कहा है न? समयसार, भावार्थ में पण्डितजी ने (कहा) है कि भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो जीव को अनादि से है। पर्याय का भेद और राग का भेद तथा उससे लाभ होगा – ऐसा पक्ष तो अनादि से है। एक बात! परस्पर प्ररूपणा भी यह करते हैं। यह कहते हैं इससे लाभ होगा, राग से लाभ होगा, व्यवहार करते (करते लाभ) अन्दर

होगा। अच्छा, यह बात ठीक है। ऐसे अज्ञानी परस्पर ऐसी बातें करते हैं। दो बोल। तीसरा बोल – जिनवाणी ने भी निमित्त देखकर / हस्तावलम्ब देखकर व्यवहार का उपदेश बहुत आया है। है ? ग्यारहवीं गाथा। परन्तु तीनों का फल संसार है। आहा..हा..! समझ में आया ? आहा..हा..! जिनवाणी में भी व्यवहार कहने में आया है कि इसे राग होता है, व्यवहार होता है परन्तु उसका फल संसार है। आहा..हा..! समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं **भेदवाद सब छूट जाते हैं।** आहा..हा..! **पहिचानने के लिये...** यह सब आता है। पहले विकल्प आता है। अपने अब तेरहवीं गाथा में आयेगा – नयनिक्षेपप्रमाण। समझने के लिये ऐसे विकल्प आते हैं। आहा..हा..! **पहिचानने के लिये यह सब आता है कि 'चेतन कैसा है', 'यह ज्ञान है',...** चैतन्य में जानन.. जानन.. जानन.. जानन.. जानन.. गुण है। **'यह दर्शन है',...** दृष्टा-देखने का भाव दर्शन है। **'यह विभाव है',...** राग का विकल्प उठता है, वह विभाव; स्वभाव से विरुद्ध है। आहा..! **'यह कर्म है',...** जड़कर्म है। **'यह नय है',...** मैं शुद्ध हूँ – ऐसा विकल्प, वह नय है। **परन्तु** आहा..हा..! **जहाँ अन्दर प्रवेश करे...** आहा..हा..! ऐसी बातें! फिर लोगों को एकान्त लगे न ? सोनगढ़ एकान्त कहता है, एकान्तवादी है – ऐसा कहते हैं। कहे, कहे। हमें सब पता है। हैं ?

मुमुक्षु : एकान्तवादी का अर्थ ही...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे पता ही कहाँ है ? आहा..हा..! ऐसा कि यह व्रत और तप और भक्ति करे तो कल्याण होगा—ऐसा तो कहते नहीं और अकेले आत्मा के आश्रय से कल्याण होगा — ऐसा निश्चय से कहते हैं। इसलिए एकान्ती हैं – ऐसा कहते हैं। कहो, प्रभु! तुम्हें न बैठे, क्या करें ? आहा..हा..!

यहाँ तो कहते हैं **'यह नय है', परन्तु जहाँ अन्दर प्रवेश करे, वहाँ सब छूट जाते हैं।** बहुत सरस बात आयी है, भाई! चैतन्य आनन्दकन्द प्रभु की दृष्टि करके जब उसमें जाता है.. आहा..हा..! ये सब विकल्प छूट जाते हैं। विकल्प साथ में रहते नहीं। आहा..! तब इसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र होता है। गजब बातें, बापू! आहा..! यहाँ तो दो-चार लाख रुपये दे तो, बस! धर्म धुरन्धर! बहुत धर्म किया और धर्म की मदद की। धूल भी नहीं, सुन तो सही! यह अज्ञानियों का.. क्या कहलाता है वह ? सर्टिफिकेट। मैं काम करूँगा, अज्ञानी उसे सर्टिफिकेट दे कि ओहो! इसने बहुत धर्म किया। पागल

लोग तुझे तेरी रिपोर्ट देते हैं, वहाँ काम नहीं आती। ऐ देवचन्दजी! यहाँ तो ऐसा है। आहा..हा..!

यहाँ तो अन्दर में गुण-गुणी के भेद का विकल्प उठता है, वह भी छूट जाता है तब अन्दर जा सकता है, तब सम्यग्दर्शन पा सकता है। आहा..हा..! ऐसा मार्ग है, प्रभु! आहा..हा..! पुकार करते हैं। बहिन कहती है, वह भगवान कहते हैं और भगवान कहते हैं, वह बहिन कहती है। समझ में आया?

समयसार १४३ गाथा में नहीं कहते? कि व्यवहारनय का तो हम निषेध करते आये ही हैं परन्तु मैं आत्मा परिपूर्ण हूँ, शुद्ध हूँ, अभेद हूँ, अखण्ड हूँ—ऐसा निश्चयनय का जो विकल्प उठता है, उसका भी हम निषेध करते हैं, वह यह बात है। समझ में आया? १४३, समयसार। आहा..हा..!

मुमुक्षु : क्या लिखा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह लिखा है न, १४३ है न? यह १४३ आयी, लो! (गाथार्थ) **नयपक्ष से रहित जीव, समय से प्रतिबद्ध होता हुआ (अर्थात् चित्स्वरूप आत्मा का अनुभव करता हुआ), दोनों ही नयों के कथन को मात्र जानता ही है, परन्तु नयपक्ष को किंचित्मात्र भी ग्रहण नहीं करता।** यह कुन्दकुन्दाचार्य के शब्द हैं। अर्थ में तो ऐसा लिया है, देखो! व्यवहारनय तो कहते आये हैं, लिखा है, हों! आगे भावार्थ में है न? आगे विशेष है। व्यवहार आता है न? व्यवहार को छुड़ाते हैं। व्यवहार तो हम छुड़ाते आये ही हैं। पर्यायबुद्धि, रागबुद्धि निमित्तबुद्धि तो छुड़ाते आये ही हैं परन्तु केवल परिपूर्ण प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का दल; जैसे बर्फ की शिला है, वैसे अतीन्द्रिय आनन्द की शिला प्रभु अन्दर ध्रुव है। उसमें प्रवेश करने, उसका ध्यान करने, सम्यग्दर्शन प्राप्त करने में यह विकल्प काम नहीं करते। निश्चय का विकल्प भी हम छुड़ाते हैं - ऐसा कहते हैं। आहा..हा..!

मुमुक्षु : परन्तु उससे क्या - ऐसा आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उससे क्या? आता है न, १४२। यह पहले कह गये थे। पहले बहुत बार कहा है। देखो! क्या कहा? आहा..हा..! १४२, हों! गाथा है, **उससे क्या?** ऐसा (शीर्षक में) कहा है। अर्थात्? आत्मा अन्दर में शुद्ध हूँ, बुद्ध हूँ, निर्मलानन्द हूँ, परिपूर्ण हूँ—ऐसा विकल्प आया, परन्तु उससे क्या? ऐसा कहते हैं। तुझे उससे क्या लाभ हुआ?

समझ में आया ? डाह्याभाई ! १४२, पाठ है । '**किमात्मनि बद्धस्पृष्टं किमबद्धस्पृष्टं कर्मेति नयविभागनाह-**' आहा..हा.. ! ऐसे नयविभाग से काम क्या है ? आहा..हा.. ! '**किम**' आहा..हा.. ! '**किम**' आहा..हा.. ! शुभाशुभभाव का तो निषेध करते ही आये हैं परन्तु मैं परिपूर्ण शुद्ध अखण्ड आनन्दकन्द हूँ, परमात्मस्वरूप हूँ, मैं कारणपरमात्मा हूँ - ऐसा निश्चयनय के पक्ष का विकल्प आया, उससे क्या ? उससे क्या ? आहा..हा.. ! उससे क्या ? उससे तुझे आत्मा का लाभ क्या हुआ ? आहा..हा.. !

यहाँ यह कहा **परन्तु जहाँ अन्दर प्रवेश करे, वहाँ सब छूट जाते हैं ।** आहा..हा.. ! **एक-एक विकल्प छोड़ने जाये तो कुछ नहीं छूटता,...** यह व्यवहारनय के पक्ष का विकल्प है और यह नय का विकल्प है—ऐसे एक-एक को छोड़ने जाये तो नहीं छूटता । आहा..हा.. ! अन्दर ज्ञानानन्दस्वभाव में जहाँ एकाग्र होता है, तब सभी नय के विकल्प छूट जाते हैं.. आहा..हा.. ! ऐसा उपदेश ! इस शिक्षण-शिविर में लोग एकत्रित हुए, प्रभु ! मार्ग तो यह है । पहले इसका निर्णय तो करना चाहिए । समझ में आया ? यह कहा । **अन्दर प्रवेश करे वहाँ सब छूट जाते हैं ।** एक-एक विकल्प छोड़ना नहीं पड़ता । आहा..हा.. ! ज्ञायक भगवान आत्मा की ओर झुकने से ध्यान में आ जाता है, वहाँ सब विकल्प छूट जाते हैं, इसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र है । बाकी सब बातें बेकार है ।

विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

अरे ! जीवों का लक्ष्य बाहर में दौड़ता है परन्तु अन्तर में स्व तरफ लक्ष्य नहीं जाता; इसलिए अपनी महिमा भाषित नहीं होकर पर की ही महिमा भाषित होती है । सिद्ध भगवन्त कैसे महान् ! अरहन्त भगवन् महान् ! सन्त-मुनिवर और धर्मात्मा महान् ! ! इस प्रकार उनकी महिमा गाता है परन्तु हे भाई ! जिसकी महिमा तू रात-दिन गाता है, वह तू स्वयं ही है, क्योंकि सन्त कहते हैं कि जैसा हमारा आत्मा, वैसा ही तुम्हारा आत्मा है; इसलिए हे जीव ! तू अपने स्वभाव की महिमा को लक्ष्य में ले ।

(पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, आतम के हित पंथ लाग ! में से)

श्रावण शुक्ल-१४, गुरुवार, दिनाङ्क १७-०८-१९७८
वचनामृत-१८१ से १८३ प्रवचन-६७

निर्विकल्पदशा में 'यह ध्यान है, यह ध्येय है' ऐसे विकल्प टूट चुकते हैं। यद्यपि ज्ञानी को सविकल्प दशा में भी दृष्टि तो परमात्मतत्त्व पर ही होती है, तथापि पंच परमेष्ठी, ध्याता-ध्यान-ध्येय इत्यादि सम्बन्धी विकल्प भी होते हैं; परन्तु निर्विकल्प स्वानुभूति होने पर विकल्पजाल टूट जाता है, शुभाशुभ विकल्प नहीं रहते। उग्र निर्विकल्पदशा में ही मुक्ति है।—ऐसा मार्ग है॥१८१॥

१८१ बोल है, सूक्ष्म विषय है। अनन्त काल में अनन्त-अनन्त अवतार धारण करके कभी इसने सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, वह इसने प्रगट नहीं किया और वह इसे समझ में नहीं आया। अनन्त बार मुनिव्रत धारण किया तो भी आत्मज्ञान क्या चीज़ है, वह अमल में नहीं लाया। आहा..! पंच महाव्रत की क्रिया अनन्त बार (पालन की)। अनन्त बार पाँच समिति, गुप्ति ली। यह अनन्त बार हुआ परन्तु आत्मज्ञान, आत्मा क्या चीज़ (वस्तु) है - उसकी दृष्टि, उसका अनुभव कभी एक सेकेण्ड भी नहीं किया। आहा..हा..! उस वस्तु के बिना जन्म-मरण नहीं मिटेंगे, प्रभु! चौरासी के अवतार अनन्त-अनन्त करता है और अभी अनन्त करेगा, आत्मज्ञान और सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं करे तो परिभ्रमण में भटकेगा। आहा..हा..! यह बात जरा सूक्ष्म बात है।

जब आत्मा में सम्यग्दर्शन होता है.. आहा..हा..! धर्म की पहली सीढ़ी / सोपान आत्मा में जब होता है, तब क्या होता है? **निर्विकल्पदशा में...** आहा..हा..! अन्तर में आत्मा पूर्णानन्द स्वरूप की दृष्टि करके, उसके अनुभव में जब आत्मा आता है, तब **'यह ध्यान है, यह ध्येय है' ऐसे विकल्प टूट चुकते हैं।** आहा..हा..! सूक्ष्म बात है, भाई! कभी सुनी नहीं और कभी की नहीं। आहा..हा..! जब अन्तर में निर्विकल्प ध्यान, सम्यग्दर्शन

होता है.. आहा..हा..! समझ में आया? तब यह शुभाशुभभाव जो हैं, वे सब तो बन्ध का कारण है। मुनि को भी आत्मज्ञान होने के पश्चात् भी जो शुभराग आता है, वह संसार है। आहा..हा..! सूक्ष्म बात कभी यह समझा ही नहीं। जगत का व्यवसाय और जगत के धन्धे तथा धर्म के नाम से पुण्य का धन्धा करके अनादि से मर गया।

यहाँ कहते हैं कि जब आत्मा में सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है, तब अन्दर निर्विकल्प दृष्टि होती है। आहा..हा..! **निर्विकल्पदशा में 'यह ध्यान है, यह ध्येय है'...** आत्मा ध्येय है, मैं ध्यान करता हूँ—ऐसे राग का विकल्प टूट जाता है। आहा..हा..! शुभ-अशुभभाव की बात तो क्या करना प्रभु! वे तो संसार बन्ध का कारण है, परन्तु मैं आत्मा पवित्र हूँ, शुद्ध हूँ, अभेद हूँ, अखण्ड हूँ - ऐसे जो विकल्प, राग की वृत्ति उत्पन्न होती है, आहा..हा..! वह अन्तर में जब सम्यग्दर्शन पाता है तो निर्विकल्पदशा में मैं ध्याता, ध्यान - ऐसे विकल्प भी छूट जाते हैं। आहा..हा..! ऐसा मार्ग है। अरे रे! इसने जगत में भटकते अनन्त अवतार में कभी यह नहीं किया। समझ में आया? अरबोंपति अनन्त बार हुआ, मनुष्य होकर अरबोंपति (हुआ)। आहा..हा..!

अभी बात नहीं सुनी थी? डेढ़ वर्ष पहले एक शान्तिलाल खुशाल थे। गोवा.. गोवा, में दो अरब चालीस करोड़ रुपये। गुजराती थे, हमारे काठियावाड़ी, 'पाणासणा' के थे। गोवा.. गोवा है न, वहाँ उनका चालीस लाख का तो मकान है। बँगला है, दस-दस लाख के दो बँगले हैं, साठ लाख; और दो अरब चालीस करोड़ रुपये थे। आहा..हा..! वे डेढ़ वर्ष पहले उनकी स्त्री को वह हुआ था.. क्या कहलाता है? हेमरेज। भाई! तुम्हारे नाम भी भूल जाते हैं। हेमरेज हो गया था तो गोवा से मुम्बई दवा कराने को आये। हेमरेज हुआ था तो स्त्री तो बेसुध थी। उसमें दो-चार दिन पश्चात् रात्रि को खड़े हुए (और कहा) मुझे दुखता है, डॉक्टर को बुलाओ। जहाँ डॉक्टर आया वहाँ तो देह छूट गयी। आहा..हा..! कुछ सुनने का समय मिला नहीं कि तू कौन है? और कहाँ जायेगा? आहा..हा..! स्त्री बेसुध थी तो पति मर गया है, वह उसे कहा नहीं। महीने दो महीने में जरा होश आया तो कहा सेठ गुजर गये हैं। आहा..हा..! जगत को ऐसी अवस्था अनन्त बार हुई है। आहा..! यह कहीं नयी चीज़ नहीं है। दो अरब चालीस करोड़ किसे कहते हैं? दो सौ चालीस करोड़। आहा..हा..! धूल है। पाप में निमित्त है।

यहाँ तो कहते हैं कि उसे छोड़कर पुण्यभाव हुए.. आहा..हा..! वह भी संसार के

परिभ्रमण का कारण है और उससे रहित जब अपने आत्मा में सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के काल में अन्तर में निर्विकल्प रागरहित दशा होती है... आहा..हा..! तब तो मैं ध्यान करनेवाला हूँ और आत्मा का ध्यान करता हूँ – ऐसा राग भी नहीं रहता; छूट जाता है, तब सम्यग्दर्शन होता है। आहा..हा..! गजब बात है, भाई! इसने कभी सुनी नहीं। बाहर से सब बात मिली कि ऐसा करो और वैसा करो। मर गया। मन्दिर बनाओ और भगवान की प्रतिमा स्थापित करो। आहा..हा..! समझ में आया?

यहाँ यह कहते हैं, समयसार १४३ गाथा में आया है। वह बात यहाँ है। जब निर्विकल्पदशा अन्दर में सम्यग्दर्शन की दशा प्राप्त होने के काल में.. आहा..हा..! मैं ध्यान और ध्येय – ऐसा राग छूट जाता है। वह राग भी उसमें नहीं रहता। जुगलजी! आहा..हा..! **यद्यपि ज्ञानी को...** यद्यपि धर्मी को आत्मा का भान है, मैं आनन्द हूँ, मैं पूर्ण शुद्ध परमात्मतत्त्व ही हूँ – ऐसी दृष्टि होने पर भी ज्ञानी को सविकल्पदशा में राग आता है। शुभराग भी आता है और अशुभराग भी (आता है)। जब तक वीतराग न हो, तब तक ऐसा (राग) आता है। धर्मी को भी अशुभराग होता है परन्तु उस समय भी **दृष्टि तो परमात्मतत्त्व पर ही होती है,...** आहा..हा..! ऐसे काल में भी धर्मी जीव को अपना परमात्मतत्त्वस्वरूप, परमात्मा शुद्ध चिदानन्द (दृष्टि में वर्तता है)। परमात्मा (अर्थात्) पर परमात्मा नहीं। पर परमात्मा के ऊपर लक्ष्य जायेगा तो राग हो जायेगा। अपने परमात्मतत्त्व पर ही दृष्टि होती है। सूक्ष्म (बात) है, भाई! समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि जीव को... (सम्यग्दर्शन) कैसे प्राप्त करता है, वह बात तो की है। अन्तर्मुख होकर विकल्प छोड़कर निर्विकल्प अनुभव करे तो सम्यग्दर्शन होता है। आहा..हा..! वह होने के बाद भी विकल्प आता है। समझ में आया? धर्मी को आत्मज्ञान हुआ, आनन्द का भान है – ऐसे काल में भी, अन्तर में रह नहीं सकता तो शुभ–अशुभभाव आता है। शुभ भी आता है और अशुभ भी (आता है।) आहा..हा..! तथापि उस सविकल्पदशा में भी **दृष्टि तो परमात्मतत्त्व पर ही होती है,...** आहा..हा..! अरे! डाह्याभाई! ऐसा जैनधर्म। जैनधर्म अर्थात् वस्तु का धर्म, वह कोई पक्ष नहीं; वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है।

अपना परमात्मा पूर्णानन्द प्रभु, निमित्त का लक्ष्य छोड़कर, राग का लक्ष्य छोड़कर वर्तमान एक समय की पर्याय का लक्ष्य छोड़कर, मैं ध्याता, ध्यान और ध्येय हूँ.. यह

छहढाला में आता है, उस विकल्प को भी छोड़कर.. छहढाला है न ? ध्याता, ध्यान और ध्येय, उसमें आता है। जुगलजी ! परन्तु किसे खबर ? जयभगवान ! सम्यग्दर्शन में वह ध्यान जब (होता है, उसमें) मैं ध्याता, ध्यान का विकल्प तो नहीं परन्तु जब धर्मी को विकल्प आता है, राग आया, होता है... आहा..हा..! उस समय भी उसकी दृष्टि तो परमात्मतत्त्व पर ही होती है। उस राग पर नहीं, पर्याय पर नहीं, संयोग पर नहीं। आहा..हा..! समझ में आया ? यह तो सार में सार वस्तु है प्रियंकरजी ! आहा..हा..!

यद्यपि.. आहा..हा..! अपना स्वरूप शुद्ध चैतन्यपरमात्मा पर दृष्टि होने पर भी, दृष्टि का ध्येय वहाँ होने पर भी, **पंच परमेष्ठी,...** पंच परमेष्ठी की भक्ति का राग आता है। आहा..हा..! समझ में आया ? आहा ! पंच परमेष्ठी। अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु के स्मरण का, भक्ति का राग आता है परन्तु है राग। आहा..हा..! पंच परमेष्ठी का स्मरण करना, भक्ति करना, वह भी है तो शुभराग, भाई ! वह धर्म नहीं। धर्मी को आता है, परन्तु अनुभव होने के बाद की बात है। आहा..हा..! मिथ्यादृष्टि को जो अकेला विकल्प होता है, वह तो अकेला संसार है। उसमें तो कोई लाभ नहीं। जिसने अन्दर में जन्म-मरण का छेद कर दिया है, चौथे गुणस्थान में। श्रावक पंचम (गुणस्थान में), मुनि छठे (गुणस्थान में हैं)। उसके पहले की बात है। आहा..हा..! समझ में आया ? अरे ! इसने सुना नहीं। सुनने का समय मिला तो दरकार नहीं की। आहा..हा..!

समवसरण में अनन्त बार गया। महाविदेहक्षेत्र में यह आत्मा अनन्त बार जन्मा है। अनन्त बार मनुष्यरूप से हुआ है तो समवसरण में भी अनन्त बार गया था परन्तु वे क्या कहते हैं - यह लक्ष्य में लिया नहीं। आहा..हा..! समझ में आया ? अपने ध्यान पर वह बात नहीं ली। आहा..हा..! 'केवली आगल रह गयो कोरो' यह हमारी गुजराती भाषा है।

हम तो जब दुकान पर बैठते थे, तब एक सज्झाय (आती थी)। चार सज्झायमाला है। हम तो दुकान पर १७-१८ वर्ष की उम्र से शास्त्र का अभ्यास करते थे। छोटी उम्र से। दुकान घर की है। वहाँ यह पढ़ते थे। चार सज्झायमाला है। एक-एक सज्झायमाला में दो सौ-ढाई सौ सज्झाय है। एक-एक सज्झाय में दस-पन्द्रह श्लोक हैं। ऐसी चार है। यहाँ है। मैंने दुकान पर मँगायी थी। उसमें ऐसा आया था, छोटी उम्र में, १८-१९ वर्ष की उम्र थी। अन्दर देखा 'केवली आगल रह गयो कोरो' हमारी गुजराती भाषा है। उसमें आया,

क्या ? केवली के पास गया तो भी रूखा का रूखा, ऐसा का ऐसा रह गया। कोरा.. कोरा.. कोरे को हिन्दी में क्या कहते हैं ? 'केवली आगल रह गयो कोरो' परमात्मा तीन लोक के नाथ.. आहा..हा.. ! सुनने गया, अनन्त बार सुना परन्तु केवली के समक्ष रह गया कोरा। ऐसा का ऐसा अज्ञानी मिथ्यादृष्टि है, ऐसा का ऐसा रहा, ऐसा सज्झायमाला में आता है। छोटी उम्र से दो बात याद आयी थी।

दूसरी एक बात ऐसी आयी थी कि 'द्रव्यसंयम से ग्रैवेयक पायो, फिर पीछे पटक्यो' ऐसा उसमें आया था। क्या ? आत्मदर्शन और सम्यग्दर्शन बिना इसने द्रव्यसंयम-पंचम महाव्रतादि अनन्त बार लिये और हजारों रानियाँ छोड़कर मुनि हुआ, परन्तु वे पंचम महाव्रतादि के परिणाम बन्ध का कारण है; उनसे रहित आत्मा है, उसका ज्ञान नहीं किया तो द्रव्यसंयम-इस बाह्य की क्रियाकाण्ड से.. ऐसी क्रिया तो अभी है भी नहीं, नौवें ग्रैवेयक तक जाता है, जो क्रिया है, शुभभाव, शुक्ललेश्या, शुक्ललेश्या, हों ! शुक्लध्यान नहीं। ध्यान दूसरा है और लेश्या अलग चीज़ है। ऐसी शुक्ललेश्या थी कि चमड़ी उतारकर नमक छिड़के तो क्रोध न करे - ऐसी इसकी लेश्या थी, तथापि वह सम्यग्दर्शन नहीं है। आहा..हा... !

आत्मा अखण्डानन्द प्रभु परमात्मतत्त्व है, उसका वेदन नहीं, उसकी दृष्टि नहीं, उसका स्वीकार नहीं तो द्रव्यसंयम से ग्रैवेयक (पायो)। नौवाँ ग्रैवेयक है, वहाँ अनन्त बार गया। आहा..हा.. ! 'फेर पीछे पटक्यो' वहाँ से नीचे गिरा। नरक और निगोद में गया। आहा..हा.. ! समझ में आया ? यह भगवान का, सर्वज्ञ का त्रिलोकनाथ परमेश्वर का वचन है।

यह यहाँ कहते हैं - धर्मी की **दृष्टि तो परमात्मतत्त्व पर ही होती है,...** आहा..हा.. ! पंच परमेष्ठी का विकल्प आता है। **ध्याता-ध्यान-ध्येय इत्यादि सम्बन्धी विकल्प भी होते हैं; परन्तु निर्विकल्प स्वानुभूति होने पर विकल्पजाल टूट जाता है,...** आहा..हा.. ! अन्तर में भगवान आत्मा, स्व-अनुभूति - स्व के अनुभव के काल में वह विकल्प छूट जाता है, क्योंकि विकल्प है, वह बन्ध का कारण है। आहा..हा.. ! समझ में आया ? **परन्तु निर्विकल्प स्वानुभूति होने पर विकल्पजाल टूट जाता है,...** आहा..हा.. ! शुभाशुभ विकल्प नहीं रहते। आहा..हा.. ! शुभ और अशुभभाव / राग, अन्तर्दृष्टि में अनुभव करने के काल में वे नहीं रहते। आहा..हा.. ! है या नहीं ? यह समयसार की १४३ गाथा है, उसका यह अर्थ है। आहा..हा.. !

समयसार १४३ में ऐसा कहा, मैं शुद्ध हूँ, अभेद हूँ, अखण्ड हूँ—ऐसा जो विकल्प है, राग है, वह अन्तर्दृष्टि करने से छूट जाता है, तब सम्यग्दर्शन होता है। आहा..हा..! समझ में आया? ऐसा मार्ग है, भाई! अरे! बाकी तो जन्म-मरण करके अनन्त-अनन्त बार कचूमर निकल गया, प्रभु! आहा..हा..! आत्मा को कहीं शान्ति नहीं मिली। शान्ति जहाँ अन्दर में है, वहाँ दृष्टि नहीं की और अशान्ति जो पुण्य और पाप के भाव अशान्ति और विकल्प और दुःख है, वहाँ से दृष्टि छूटी नहीं। आहा..हा..!

शुभाशुभ विकल्प नहीं रहते। उग्र निर्विकल्पदशा में ही मुक्ति है। आहा..हा..! मोक्ष होता है, वह उग्र निर्विकल्प वीतरागदशा अन्दर में होती है, तब मुक्ति होती है। विकल्प का अंश नहीं रहता, अस्थिरता का अंश नहीं रहता। अस्थिरता का अंश, विकल्प सम्यग्दर्शन में होता है। अन्दर सम्यग्दर्शन हुआ तो भी अस्थिरता का विकल्प अन्दर है परन्तु उसका आश्रय नहीं और मुक्ति होती है, तब उग्र अस्थिरता का विकल्प भी नहीं रहता। आहा..हा..! ऐसा मार्ग! **उग्र निर्विकल्पदशा में ही मुक्ति है।—ऐसा मार्ग है।** ऐसा सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव परमेश्वर का यह मार्ग है, बाकी सब अमार्ग है। आहा..हा..! १८१ (बोल पूरा हुआ।)

'विकल्प छोड़ दूँ', 'विकल्प छोड़ दूँ'—ऐसा करने से विकल्प नहीं छूटते। मैं यह ज्ञायक हूँ, अनन्त विभूति से भरपूर तत्त्व हूँ—इस प्रकार अन्तर से भेदज्ञान करे तो उसके बल से निर्विकल्पता हो, विकल्प छूट जायँ॥१८२॥

१८२, वस्तु जो परमात्मस्वरूपी है, जिनस्वरूपी आत्मा है। कहा था न? जापानवाले ने भी इतिहास में शोध करके ऐसा कहा है कि आत्मा तो निर्वाणस्वरूपी है - ऐसा लिखा है। पढ़ा? पढ़ लेना। फिर रख देना। अन्दर है। उसने शोध की कि जैन परमेश्वर ऐसा कहते हैं कि आत्मा निर्वाणस्वरूप है - ऐसा कहते हैं। ऐसा उसने निकाला है। समझ में आया? निर्वाणस्वरूप का अर्थ? मुक्तस्वरूप है। वस्तु है, वह मुक्तस्वरूप ही है। वह मुक्तस्वरूप है, उसका अनुभव करने से, उसमें स्थिरता जम जाने से मुक्त में से सिद्ध की / मुक्ति की पर्याय आती है। बन्धभाव में तो बन्ध होता है, वह शुभ दया, दान, व्रत, भक्ति आदि राग तो बन्धभाव है। बन्धभाव में से तो बन्ध उत्पन्न होता है। मुक्तभाव में से मुक्ति उत्पन्न होती है। आहा..हा..!

यह पुण्य-पाप अधिकार में आया है, भाई! पुण्य-पाप अधिकार में आया है न? भाई! बन्ध में से बन्ध है, वह तो बन्धरूप है। शुभ-अशुभ जो विकल्प है, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध वह तो बन्धरूप है। बन्धरूप में से बन्धभाव ही उत्पन्न होता है। आत्मा मोक्षस्वरूप है। आहा..हा..! कैसे जँचे? अनन्त काल.. अनन्त काल.. अनन्त काल व्यतीत हुआ है। आहा..हा..!

ज्ञानी को रौद्रध्यान और आर्त्तध्यान आता है परन्तु उससे भेदज्ञान किया है। उस राग से मैं भिन्न हूँ - ऐसा अनुभव में, दृष्टि में भेदज्ञान किया है। अज्ञानी को राग में एकत्वबुद्धि है। आहा..हा..! राग और आत्मा दोनों एक हैं - ऐसी एकत्वबुद्धि है, वही मिथ्यात्व है और वही संसार तथा परिभ्रमण का मूल है। आहा..हा..! ऐसा है।

'विकल्प छोड़ दूँ', 'विकल्प छोड़ दूँ'—ऐसा करने से विकल्प नहीं छूटते। आहा..हा..! भगवान आत्मा निर्विकल्प परमात्मतत्त्वस्वरूप है, उसमें जाने के लिये मैं विकल्प छोड़ दूँ - ऐसा नहीं रहता। विकल्प छोड़ दूँ, यह भी राग आया। आहा..हा..! सूक्ष्म बात है, भाई! धर्म तो कोई अपूर्व चीज़ है। पूर्व में अनन्त काल में एक सेकेण्डमात्र भी नहीं किया। आहा..हा..! अनन्त बार द्रव्यश्रावक भी हुआ और श्रावक के भव में मन्दिर बनाये। ऐसे अनन्त-अनन्त बार अनन्त भव में अनन्त मन्दिर बनाये.. ऐ! द्रव्यश्रावक हुआ न? सम्यग्दर्शन बिना जैन कुल में जन्मा, इसलिए श्रावक कहलाया। धर्म नहीं, सम्यग्दर्शन नहीं। उसने एक-एक भव में करोड़ों रुपये खर्च करके भक्ति के लिए मन्दिर बनाये, ऐसा अनन्त-अनन्त भव में अनन्त बार किया। आहा..हा..! परन्तु वह सब तो शुभभाव है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अज्ञानी कहते हैं। क्या कहा रामजीभाई ने? जयपुर में एक इन्द्रलालजी पण्डित थे, इन्द्रलालजी, वे ऐसा कहते थे कि जो दिगम्बर में जन्मे हैं, वे तो सम्यग्दर्शन लेकर ही आये हैं। अरे रे! भाई! बोलते हैं, पता है, हमें पता है। अरे! दिगम्बर में तो अनन्त बार जन्मा है, अनन्त बार दिगम्बर साधु हुआ है। उसमें क्या आया? छहढाला में नहीं कहा? क्या कहा? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' छहढाला में आता है। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' स्वर्ग में गया। 'पै आतम ज्ञान बिन सुख लेश न पायो।' यह पंच महाव्रत के परिणाम भी दुःख है, राग है और आस्रव है। आहा..हा..! ऐसा कठिन!

यहाँ कहते हैं, आहा..हा..! चीज़ अन्दर निर्विकल्प परमात्मस्वरूप बिराजमान है, उसमें यह विकल्प / राग आया, यह छोड़ूँ, विकल्प छोड़ूँ – ऐसा करने से विकल्प नहीं छूटते। आहा..हा..! मार्ग ऐसा है। आहा..! **मैं यह ज्ञायक हूँ,...** आहा..हा..! मैं तो ज्ञायक जानन.. जानन.. जानन.. जाननस्वभाव, जाननस्वभावस्वरूप से भरपूर प्रभु मैं तो ज्ञायक हूँ। **अनन्त विभूति से भरपूर तत्त्व हूँ...** यह बाहर की धूल की विभूति है, वह तो जड़ की है। आहा..हा..! अनन्त विभूति से भरपूर तत्त्व भगवान आत्मा है, आहा..हा..! एक-एक ज्ञानगुण आदि विभूति, ऐसी अनन्त विभूति आत्मा में पड़ी हैं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ....संसार। आहा..हा..! पहले कहा न? आत्मज्ञान हुआ, फिर राग आता है, उस राग को तो जानता है; मेरा कर्तव्य है – ऐसा धर्मी नहीं मानता। आहा..हा..! सूक्ष्म बात है, भाई! अरे रे! इसने अनन्त-अनन्त काल में जैन का दिगम्बर साधु हुआ तो श्रावक तो अनन्त बार हुआ परन्तु वह बाह्य द्रव्यश्रावक हुआ, द्रव्यलिंगी द्रव्यसाधु हुआ परन्तु अपना स्वरूप राग से रहित चिदानन्द प्रभु पूर्णानन्द विभूति से भरपूर है, उसका अनुभव नहीं किया, उसकी दृष्टि नहीं की। समझ में आया? है?

मैं यह ज्ञायक हूँ, अनन्त विभूति से भरपूर तत्त्व हूँ—इस प्रकार अन्तर से भेदज्ञान करे... आहा..हा..! यह व्यवहार आदि का जो विकल्प आता है, उससे भेदज्ञान करे, भिन्नता करे। आहा..हा..! जैसे कंकड़ और गेहूँ भिन्न करते हैं, वैसे रागरूप मैल और भगवान आत्मा निर्मलानन्द प्रभु को राग से भिन्न करके, भेदज्ञान करके अपनी दृष्टि आत्मा में लगाकर राग से भिन्न होता है, तब उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान होता है। आहा..हा..! है?

अन्तर से **इस प्रकार अन्तर से...** क्या अन्दर से? कि वृत्ति जो विकल्प उठता है, वह (मैं) नहीं हूँ; मैं तो अनन्त ज्ञान आनन्दस्वरूप ज्ञायक हूँ – ऐसे राग से भगवान ज्ञायक को भिन्न करके, भेदज्ञान करके.. आहा..हा..! 'भेदज्ञान साबु भयो' आता है? फिर क्या आता है 'समरस निर्मल नीर, धोबी अन्तर आत्मा धोवे निजगुण चीर' समयसार नाटक, बनारसीदास। 'भेदज्ञान साबु भयो' राग के विकल्प से भिन्न करके अपने स्वरूप का भेदज्ञान किया, वह भेदज्ञान साबुन हुआ। 'समरस निर्मल नीर' उस राग से भिन्न हुआ और वीतरागी सम्यग्दर्शन हुआ। आहा..हा..! अभी चौथे गुणस्थान में, हों! समरस नीर, निर्मल

नीर। वीतरागी समता.. समता.. विकल्प से रहित ऐसा समरस निर्मल नीर। धोबी अन्तर आत्मा धोवे निजगुण चीर। अपने अनन्त गुण का चीर, उसमें राग है, उसे भिन्न करता है। आहा..हा..! ऐसा मार्ग है। समझ में आया?

समयसार में अमृतचन्द्राचार्य ने तो यहाँ तक कहा – सन्त दिगम्बर मुनि (ने ऐसा कहा) '**भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन**' '**भेदविज्ञानतः सिद्धाः**' अभी तक जो कोई मुक्ति को प्राप्त हुए, वे राग से भिन्न करके भेदज्ञान से मुक्ति को प्राप्त हुए हैं। '**भेदविज्ञानतः सिद्धाः अस्यैवाभावतो बद्धा**' और राग से भिन्न करने के अभाव से वह अनादि से बन्धन में पड़ा है। समयसार नाटक, अमृतचन्द्राचार्यदेव के कलश हैं, उनका बनारसीदासजी ने हिन्दी बनाया है। समझ में आया? '**भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन**' अभी तक जितने परमात्मपद को प्राप्त हुए हैं, अनन्त सिद्ध हुए हैं, वे सब राग से भेदज्ञान करके प्राप्त हुए हैं। आहा..हा..!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : है कहाँ? है कहाँ? दृष्टि में कहाँ स्वीकार है? सिद्ध समान सदा पद मेरो। आहा..हा..!

'चेतनरूप अनूप अमूरत, सिद्ध समान सदा पद मेरो,
मोह महातम आतम अंग कियो परसंग महातम घेरो,
ज्ञानकला उपजी अब मोकु, कहुं गुण नाटक आगम केरो,
तासु प्रसाद से सधे शिवमारग, वेगे मिटे घट वास वसेरो।'

आहा..हा..! क्या कहा? बनारसीदास, समयसार नाटक!

चेतनरूप अनूप अमूरत, सिद्ध समान सदा पद मेरो, आहा..हा..! मैं तो त्रिकाल सिद्धस्वरूपी, मुक्तिस्वरूपी त्रिकाल हूँ।

मुमुक्षु : मुक्त हो गये?

पूज्य गुरुदेवश्री : हो गये, अन्दर दृष्टि हुई तो मुक्त हो गये। आहा..हा..! **चेतनरूप अनूप..** अनूप प्रभु! क्या कहें? उसे कोई उपमा दे सकें (ऐसा नहीं है) कि अन्दर चैतन्य क्या है? अनूप, अमूरत। उसमें रंग, गन्ध, स्पर्श, मूर्तपना नहीं है। आहा..हा..! **सिद्ध समान सदा पद मेरो, मोह महातम आतम अंग कियो परसंग महातम घेरो,..** परन्तु राग की क्रिया

को अपनी मानकर मोह में घुस गया। आहा..हा..! **मोह महातम आतम अंग...** राग के मोहभाव को आत्मा के अंग के साथ जोड़ दिया। आहा..! यह तो तुम्हारी हिन्दी है। **मोह महातम आतम अंग कियो परसंग महातम घेरो,...** राग का, पर का संग किया, अज्ञान उत्पन्न किया। आहा..हा..! आहा..हा..!

ज्ञानकला उपजी अब मोकु,... अब तो राग से मेरी वस्तु भिन्न है, उसका ज्ञान हुआ है। आहा..हा..! **कहुं गुण नाटक आगम केरो,..** मैं समयसार नाटक को कहूँगा। आहा..हा..! मैं भगवान आत्मास्वरूप की बात कहूँगा। आहा..! आया न यह? **कहुं गुण नाटक आगम केरो, तासु प्रसाद से सधे शिवमारग,...** आहा..हा..! राग के विकल्प से भेदज्ञान करने से सिद्धपद की प्राप्ति होती है। उस ज्ञानकला से मुक्ति होती है। किसी राग की क्रिया से धर्म और मुक्ति होती है – ऐसा तीन काल में नहीं है। आहा..हा..! **ज्ञानकला उपजी अब मोकु, कहुं गुण नाटक आगम केरो, तासु प्रसाद से सधे शिवमारग,...** मोक्ष का मार्ग, राग से भिन्न करने से मोक्ष के मार्ग की सिद्धि होती है। **तासु प्रसाद से सधे शिवमारग, वेगे मिटे घट...** यह घट.. घट – शरीर – धूल–मिट्टी, इसमें बसना जल्दी से मिट जायेगा। आहा..हा..! नहीं तो यह घट अनन्त बार मिला और हड्डियाँ चमड़े के शरीर.. आहा..हा..! कलंक है, भव कलंक है – ऐसा योगीन्द्रदेव कहते हैं। आहा..हा..! इस भव का कलंक तो तब मिटेगा कि अपना स्वरूप राग से भिन्न करके अनुभव करना और भेदज्ञान से अन्त में भी राग की अस्थिरता से भिन्न पड़कर अन्दर जम जाना, उस निर्विकल्पदशा से मुक्ति होती है। समझ में आया? यह कहा, देखो!

इस प्रकार अन्तर से भेदज्ञान करे तो उसके बल से... देखो! आहा..हा..! यह विकल्प जो उठता है, उससे मेरी चीज़ भिन्न अनन्त ज्ञायक अनन्त विभूति से भरपूर प्रभु है। आहा..हा..! श्रेणिक राजा के हजारों रानियाँ थीं, हजारों राजा चँवर ढोलते थे, तथापि क्षायिक समकिती थे। वह आत्मज्ञान ऐसा हुआ था कि इतना राज और राग है, उससे मैं भिन्न हूँ – ऐसा अनुभव हुआ। समझ में आया? आहा..हा..! अरे! भरतेश्वर लो, छह खण्ड और बड़ा राज्य, चक्रवर्ती, परन्तु वे समकिती थे। आत्मज्ञान का अनुभव था। मैं तो आनन्दस्वरूप हूँ, यह राग आता है, वह भी मैं नहीं। यह देहादि, चक्रवर्ती पद मेरे नहीं हैं – ऐसे अनुभव में सम्यग्दृष्टि चक्रवर्ती पद में भी रह सकता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : दो भाई लड़े थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : लड़े थे। थोड़ा राग है। बाहुबली की (और भरत की) दोनों की लड़ाई हुई न? राग है न? परन्तु अन्दर में भान है। राग से मैं भिन्न हूँ, वह चीज़ मैं हूँ। आहा..हा..! यह बात, बापू! यह कहीं धारणा से प्रगट होती है – ऐसी वस्तु नहीं है। आहा..हा..! यह भरत चक्रवर्ती, जब ऋषभदेव भगवान अष्टापद पर्वत पर मोक्ष पधारते हैं, तब वहाँ गये थे। ऐसे देह छूटते देखा। अष्टापद पर्वत, भरत चक्रवर्ती, ऐसे गये और देखा, समकिती तीन ज्ञान, क्षायिक समकित है और पता है कि मैं इस भव से मोक्ष जानेवाला हूँ परन्तु राग आया, रुदन आया। अरे रे! प्रभु का विरह पड़ा। भरतक्षेत्र में सूर्य उगा था, वह सूर्य आज अस्त हो गया। आहा..हा..! समझ में आया? राग आता है। इन्द्र कहता है.. इन्द्र भी स्वर्ग में से साथ में आया। भगवान का मोक्ष हुआ, (इसलिए) इन्द्र आया। बत्तीस लाख विमान का (स्वामी), इन्द्र कहता है – भरत! क्यों रोते हो? तुम तो इस भव में मोक्ष जानेवाले हो। हमारे तो अभी एक भव करना है – इन्द्र कहता है। सुन, सुन इन्द्र! खबर है, समझ में आया? इन्द्र और भरत के बीच अष्टापद पर्वत पर चर्चा हुई। भगवान की देह ऐसे छूटते देखी, एक तो बाहर में पिता थे और एक तीर्थंकर थे, उनका विरह देखकर विकल्प / राग आया, राग आया, रुदन आया, अन्दर में भान है कि मैं राग नहीं, रुदन की क्रिया मेरी नहीं। आहा..हा..! यह तो कोई बात है! इन्द्र ने ऐसा कहा – अरे! भरतजी! तुम्हें तो यह अन्तिम देह है न! तुम्हें तो यह देह छोड़कर केवलज्ञान प्राप्त करना है। किसलिए रोते हो? सुन, सुन इन्द्र! इन्द्र से कहते हैं, सुन! मुझे अन्दर राग आया है (तो) ऐसा होता है। मैं जानता हूँ कि मैं इस भव में केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष जानेवाला हूँ, परन्तु राग आया है तो यह क्रिया हो गयी। परन्तु मैं इस क्रिया का भी कर्ता नहीं और राग आया उसका भी कर्ता नहीं। आहा..हा..! यह तो क्या बात होगी! जैनधर्म की बात ही लोगों को बेचारों को मिली नहीं। अन्य धर्म जैसी बातें सुनी और हम जैन हैं और जैनधर्म को प्राप्त हुए हैं (ऐसा मानकर सन्तुष्ट हो गये हैं)। आहा..हा..!

यहाँ कहते हैं **इस प्रकार अन्तर से भेदज्ञान करे तो उसके बल से निर्विकल्पता हो,...** आहा..हा..! राग तो है। धर्मी मुनि को भी पंच महाव्रत का राग आता है और समकिती श्रावक हो, आत्मज्ञान हुआ है, तथापि स्त्री के विषय का राग आता है। आहा..हा..! परन्तु उस राग को दुःख जानते हैं और राग से भिन्न मेरी चीज़ है, उसमें मैं हूँ। इस राग में

मैं नहीं। आहा..हा..! समझ में आया? आर्त्तध्यान हो जाता है। धर्मी को भी ऐसा राग तो आता है परन्तु काला सर्प जैसे देखे, वैसे राग को काला सर्प-नाग देखता है। आहा..हा..! यह भेदज्ञान की महिमा है। आहा..हा..!

यह कहते हैं **विकल्प छूट जायँ।** उसके बल से निर्विकल्पता होती है और विकल्प छूट जाते हैं। आहा..हा..! १८२ (बोल पूरा) हुआ।

चैतन्यदेव रमणीय है, उसे पहिचान। बाहर रमणीयता नहीं है। शाश्वत आत्मा रमणीय है, उसे ग्रहण कर। क्रियाकाण्ड के आडम्बर, विविध विकल्परूप कोलाहल, उस पर से दृष्टि हटा ले; आत्मा आडंबर रहित, निर्विकल्प है, वहाँ दृष्टि लगा; चैतन्यरमणता रहित विकल्पों के कोलाहल में तुझे थकान लगेगी, विश्राम नहीं मिलेगा; तेरा विश्रामगृह आत्मा है; उसमें जा तो तुझे थकान नहीं लगेगी, शान्ति प्राप्त होगी॥१८३॥

१८३ **चैतन्यदेव रमणीय है,...** क्या कहते हैं? अन्दर भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु है। 'निज पद रमै सो राम कहिये' आत्मा में आनन्द का बाग पड़ा है। आहा..हा..! वह रमणीय है। उसमें पुण्य और पाप के विकल्प उस वस्तु में नहीं हैं। ऐसा धर्म कहाँ से निकाला? कोई ऐसा कहता है। हम तो अभी तक सुनते आये हैं कि दया, दान, व्रत, भक्ति, धर्म है। यह नया धर्म कहाँ से निकाला? नया नहीं, प्रभु! अनादि काल की यह वस्तु है। आहा..! तुझे सुनने को मिली नहीं, इसलिए नयी है - ऐसा कौन कहे?

मुमुक्षु : अलग धर्म है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अलग धर्म है, सच्ची बात। अज्ञानियों ने माना है, उसकी अपेक्षा अलग चीज़ है। ये दरबार हैं, गरासिया हैं, यहाँ का रस है, पढ़ते हैं, दरबार है। आहा..हा..! अरे प्रभु! अनन्त तीर्थंकर, अनन्त केवली, अनन्त दिगम्बर सन्त हुए, उन्होंने यह मार्ग कहा है और इस मार्ग में आये थे। आहा..हा..! समझ में आया? यह तो रात्रि को कहा था, एक भावदीपिका ग्रन्थ है, दीपचन्दजी का (लिखा हुआ है)। दीपचन्दजी नहीं? अनुभवप्रकाश, चिद्विलास बनाया न? उन्होंने अध्यात्म पंचसंग्रह बनाया है। बड़ा ग्रन्थ है, यहाँ सब है। यह अध्यात्म पंचसंग्रह है। बहुत बात है, बहुत सूक्ष्म बात है। दीपचन्दजी हैं न? क्या कहना था?

भावदीपिका में ऐसा लिखा है, २०० वर्ष पहले (लिखा है)। मैं देखता हूँ तो आगम अनुसार श्रद्धावाले मुझे कोई दिखायी नहीं देते। २०० वर्ष पहले (लिखा है)। मैं देखता हूँ, लोगों के संग में आता हूँ तो किसी की आगम अनुसार श्रद्धा हो – ऐसा कोई दिखायी नहीं देता और आगम की श्रद्धा क्या चीज़ है, उसकी खबर नहीं और मैं जो बात करता हूँ तो सुनते नहीं; इसलिए लिख जाता हूँ – ऐसा भावदीपिका में लिखा है। ग्रन्थ है। समझ में आया?

मुमुक्षु : लोग सुनते नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : लोगों को कहाँ पड़ी है? दुनिया को राग का, जगत का रस है। वे राग के रसवाले अन्दर नहीं जा सकते। आहा..हा..! मुनि हुए, उन्हें भी पंच महाव्रत का राग है, उस राग के रस में पड़े हैं, वे भी मिथ्यादृष्टि हैं। आहा..हा..!

यहाँ तो राग अपने स्वरूप में है नहीं – ऐसे राग का जिसे रस है और उसका प्रेम है, उसे आत्मा का अनादर है, हेय है। जिसे राग उपादेय है, उसे आत्मा हेय है। परमात्मप्रकाश में कहा है। जुगलजी! जिसे आत्मा उपादेय है, उसे राग हेय है। धर्मी को अनन्त आनन्द का नाथ रमणीय है, वह उपादेय, आदरणीय है, उसे राग हेय है। चाहे तो भगवान की भक्ति का, नाम स्मरण का राग हो परन्तु वह हेय है। छोड़नेयोग्य है। अज्ञानी को राग उपादेय है, आदरणीय है उसे आत्मा हेय है। परमात्मप्रकाश में ३६ गाथा में कहा है। समझ में आया? बातें ऐसी है। वकील! यह वकील में तुम्हारे कानून में यह कुछ नहीं है, गप्प मारी है। सरकार ने कानून बाँधे हों। यह तो केवली के कानून हैं। आहा..हा..! क्या कहा?

चैतन्यदेव रमणीय है,... रमणीय है। आहा..हा..! जिसमें रमने से आनन्द आता है – ऐसी वह चीज़ है। राग में रमने से तो दुःख होता है, प्रभु! आहा..हा..! आहा..हा..! समकिती चक्रवर्ती को छियानवें हजार स्त्रियाँ होती हैं परन्तु राग आता है तो दुःख लगता है। छूट नहीं सकता तो जरा उसमें आ जाता है। आहा..हा..! यहाँ कहते हैं, चैतन्यदेव – देव आत्मा भगवान देवाधिदेव है। आहा..हा..! पहले कहा था न?

सत्रह वर्ष की उम्र में अन्दर से आया था, बहत्तर वर्ष पहले (ऐसा अन्दर से आया था) 'शिवरमणी रमनार तू, तू ही देवनो देव।' यह लाईन बनायी थी। मैं तो व्यापारी था, कोई कवि नहीं था परन्तु कौन जाने ऐसा आ गया। रामलीला देखने गये थे। रामलीला नहीं

आती ? दो दुकान थी। हमारे बुआ के लड़के की बहिन का विवाह था तो देश में गये थे। मैं और नौकर दो थे। फिर हम रामलीला देखने गये। रामलीला में ऐसे वैरागी मनुष्य। ऐसे शान्त.. शान्त.. शान्त। सुनकर मुझे छह लाईन आ गयी। यह लाईन याद रह गयी। बाकी की पुस्तक में लिखी थी, वह दुकान में पड़ी रही। लाईनवाले कागज होते हैं न ? उसमें लिखा था। अंकेला कागज। 'शिवरमणी रमनार तू, तू ही देवनो देव।' जुगलजी ! यह स्त्री तुझे नहीं। ऐसा अन्दर से आया था। तब से मैंने ब्रह्मचर्य ले लिया। शिवरमणी रमनार - मुक्तिरूपी रमणी का रमनेवाला प्रभु तू है न ! आहा..हा.. ! तू ही देव का देव। यह चैतन्यदेव कहा न ? आहा..हा.. ! हे प्रभु ! तू तो देवाधिदेव है। इन्द्र बड़ा देव है, उसका भी तू देव है। आहा..हा.. ! तेरी शक्ति में रमणता इतनी पड़ी है, एक-एक शक्ति में रमणता करने से भी आनन्द आता है तो अनन्त-अनन्त शक्ति का भण्डार भगवान में रमता है तो वह चैतन्य रमणीय पदार्थ है। आहा..हा.. ! समझ में आया ?

चैतन्यदेव रमणीय है, उसे पहिचान। आहा..हा.. ! सब शास्त्रों का ज्ञान करना, दूसरा करना - वह सब छोड़कर अन्दर चैतन्य रमणीय आनन्द प्रभु है, निर्मलानन्द नाथ है, उसे पहिचान। आहा..हा.. ! उसका ज्ञान कर। उस ओर झुक जा। उस रमणीय पदार्थ चैतन्य प्रभु की पहिचान कर। शास्त्र की पहिचान से भी तेरी पहिचान नहीं होती। आहा..हा.. ! है ? **चैतन्यदेव रमणीय है, उसे पहिचान।**

बाहर रमणीयता नहीं है। शरीर, वाणी, मन, पैसा - धूल में तो नहीं परन्तु पुण्य-पाप में रमणीयता नहीं है। आहा..हा.. ! समझ में आया ? **बाहर रमणीयता नहीं है।** भगवान चैतन्यदेव अनन्त आनन्द और अनन्त स्वभाव का सागर, अनन्त गुण का गोदाम है। आहा..हा.. ! गोदाम समझते हो ? बड़े गोदाम नहीं होते ? माल भरने के गोदाम होते हैं न ! हम तो मुम्बई माल लेने जाते थे न, बड़े गोदाम देखते थे। केसर के, केसर के डिब्बे होते हैं न ? हजारों डिब्बे ऐसे पड़े हों। छोटी उम्र में माल लेने जाते थे। हमारे यहाँ दुकान में भी तेरह गोदाम हैं। पालेज में अभी है। तेरह तो गोदाम हैं। एक-एक साठ-साठ हजार के। बुआ का लड़का भागीदार था, उसका लड़का है। तेरह गोदाम हैं। लाख-लाख के तीन मकान हैं। अभी है। तेरह गोदाम हैं। तीन भाई हैं, तो बँटवारा कर दिया। दो दुकान थी, तीन नहीं थी तो तेरह गोदाम में उसकी दुकान बनायी। माल भरने का गोदाम था। मनसुख ने दुकान बनायी है। यह दुकान तो दो भाईयों ने ले ली। तीन भाई हैं न ? तीनों ने बाँट ली।

बड़ा गोदाम है। यह आत्मा अनन्त गुण का गोदाम है। आहा..हा..! अनन्त शक्ति का संग्रहालय है। अनन्त शक्ति का संग्रह-आलय-स्थान है.. आहा..हा..! और अनन्त स्वभाव का सागर प्रभु है। अरे! इसे कहाँ कुछ पता है? आहा..! बाहर रमणीयता कुछ नहीं, प्रभु! आहा..हा..!

शाश्वत आत्मा रमणीय है,... भगवान तो शाश्वत् है न? त्रिकाल। आहा..हा..! कभी उत्पत्ति हुई और कभी नाश होता है - ऐसा नहीं है। वह तो शाश्वत् वस्तु अन्दर ज्ञायकभाव है। आहा..हा..! उसे पहिचान। **शाश्वत आत्मा रमणीय है, उसे ग्रहण कर।** आहा..हा..! राग आता है परन्तु ग्रहण न कर। आहा..हा..! **क्रियाकाण्ड के आडम्बर,...** दया, दान, व्रत, तप और क्रियाकाण्ड का आडम्बर, राग का (आडम्बर है)। **विविध विकल्परूप कोलाहल,...** आहा..हा..! भिन्न-भिन्न प्रकार के राग कोलाहल है। उससे दृष्टि हटा दे, आहा..हा..! तुझे कल्याण करना हो तो, हित करना हो तो, जन्म-मरण से रहित होना हो तो **क्रियाकाण्ड के आडम्बर, विविध विकल्परूप कोलाहल, उस पर से दृष्टि हटा ले;..**

आत्मा आडंबर रहित,... है। भगवान आत्मा, इस राग विकल्प का आडम्बर है, उससे रहित है। आहा..हा..! **निर्विकल्प है,...** अभेद वस्तु त्रिकाल आनन्द का नाथ है। **वहाँ दृष्टि लगा;...** वहाँ दृष्टि लगा। आहा..हा..! **चैतन्यरमणता रहित विकल्पों के कोलाहल में तुझे थकान लगेगी,...** आहा..हा..! चैतन्य की अन्तर्दृष्टि और रमणता में, चैतन्यरहित जो शुभविकल्प है, वह चैतन्यरहित है। चाहे तो शुभराग हो परन्तु चैतन्यरहित जड़ है। आहा..हा..! **चैतन्यरमणता रहित विकल्पों के कोलाहल में तुझे थकान लगेगी,...** तुझे थकान लगेगी। आहा..हा..! **विश्राम नहीं मिलेगा; तेरा विश्रामगृह आत्मा है;...** आहा..हा..! जिसमें अनन्त वीतरागता, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति भरी है, वह तेरा विश्राम घर है। आहा..! **उसमें जा तो तुझे थकान नहीं लगेगी,...** शुभाशुभभाव में तो थकान लगेगी। अन्दर में जा, थकान नहीं लगेगी। **शान्ति प्राप्त होगी।** आहा..हा..!

विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल-१५, शुक्रवार, दिनाङ्क १८-०८-१९७८
वचनामृत-१८४ से १८५ प्रवचन-६८

चैतन्य की ओर झुकने का प्रयत्न होने पर उसमें ज्ञान की वृद्धि, दर्शन की वृद्धि, चारित्र की वृद्धि-सर्ववृद्धि होती है; अन्तर में आवश्यक, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, व्रत, तप सब प्रगट होता है। बाह्य क्रियाकाण्ड तो परमार्थतः कोलाहल है। शुभभाव भूमिकानुसार आते हैं परन्तु वह शान्ति का मार्ग नहीं है। स्थिर होकर अन्तर में बैठ जाना वही कर्तव्य है॥१८४॥

वचनामृत १८४ बोल है। सूक्ष्म बात है। इसमें अकेला मक्खन तत्त्व चला है। **चैतन्य की ओर झुकने का प्रयत्न होने पर...** शुभ-अशुभभाव को भी छोड़कर चैतन्य भगवान जो अनन्त गुण के ओरडा (कमरे / भण्डार) अन्दर भरे हैं। ओरडा समझते हो? कमरा। आहा..हा..! भगवान आत्मा में चैतन्यस्वभाव, आनन्दस्वभाव, शान्तस्वभाव, स्वच्छत्वस्वभाव, प्रभुत्वस्वभाव—ऐसे अनन्त-अनन्त गुण के कमरे भरे हैं। आहा..हा..! ऐसे चैतन्यस्वरूप की ओर झुकने से.. भगवान! यह तो सार बात है। **प्रयत्न होने पर...** वस्तु जो भगवान परमानन्द मूर्ति प्रभु, ऐसे स्वभाव को ज्ञान में लेकर... आहा..हा..! उस ओर झुकना। प्रयत्न से उस ओर का झुकाव होना। है? **होने पर उसमें ज्ञान की वृद्धि,...** आहा..! क्योंकि ज्ञानसागर भगवान है, आहा..हा..! उसमें एकाग्र होने से, उसमें चैतन्य की ओर झुकने से सम्यग्ज्ञान की वृद्धि होती है। क्या कहा?

पहले जब चैतन्यस्वरूप भगवान पूर्णानन्द का अनुभव-दृष्टि करता है, तब तो शुद्धि-ज्ञान की शुद्धि, दर्शन की शुद्धि उत्पन्न होती है। अनन्त गुण की शुद्धि (उत्पन्न होती है)। चैतन्यस्वभाव महासागर, स्वयंभू प्रभु में अनन्त-अनन्त शान्ति, अनन्त आनन्द ऐसे अनन्त गुण का भण्डार भगवान है, आहा..हा..! उस ओर झुकने से, प्रयत्न करने से ज्ञान

की वृद्धि होती है। ज्ञान उत्पन्न हुआ है, अब उस ओर झुकने से ज्ञान की वृद्धि होती है– सम्यग्ज्ञान। शास्त्रज्ञान से कोई ज्ञान की वृद्धि नहीं होती – ऐसा कहते हैं। प्रभु सूक्ष्म बात है, भाई! शास्त्रज्ञान तो ग्यारह अंग का पढ़ना अनन्त बार हुआ परन्तु वह कोई ज्ञान नहीं क्योंकि शास्त्र परवस्तु है, उसका ज्ञान करना, वह तो अपनी पर्याय में परलक्ष्यी ज्ञान का अंश दिखता है परन्तु वह ज्ञान नहीं है।

जहाँ चैतन्य सागर भगवान अन्दर उछलता है। अरे! कैसे जँचे यह बात? जैसे समुद्र में, सागर में किनारे ज्वार आता है.. समुद्र के किनारे... काँठे कहते हैं न? किनारे। हिन्दी तो आती नहीं। किनारे ज्वार आता है, वैसे भगवान चैतन्य समुद्र प्रभु.. आहा..हा..! उस ओर झुकने से, झुकने का प्रयत्न करने से पर्याय में ज्ञान का ज्वार आता है। ऐसी बात है, प्रभु! समझ में आया? कोई शास्त्र पढ़ने से ज्ञान की वृद्धि नहीं होती। आहा..हा..!

मुमुक्षु : आप तो शास्त्र पढ़ते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : पढ़ते हैं, वह तो विकल्प आता है। वस्तु जो ज्ञान की–सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति और ज्ञान की वृद्धि, सम्यग्ज्ञान का टिकना, वह तो चैतन्यस्वभाव के अवलम्बन से ही होता है। आहा..हा..! क्योंकि जिसमें अनन्त ज्ञान, बेहद ज्ञान, प्रभु! वह ज्ञान क्या वस्तु है? वह ज्ञानस्वभाव है, वह बेहद अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. स्वभाव है। यह ज्ञान आदि अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उस ओर के प्रयत्न से झुकने से अन्दर की जो ज्ञानरूप शक्ति है, वह प्रगट / व्यक्ति–प्रगट पर्याय में ज्ञान की, सम्यग्ज्ञान की वृद्धि होती है। आहा..हा..! धन्नालालजी! ऐसी बात है, भाई!

मुमुक्षु : आगे की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले तो भान हुआ, अब फिर अन्दर एकाग्र होने से ज्ञान की वृद्धि, शुद्ध सम्यग्ज्ञान की वृद्धि होती है। उत्पत्ति तो पहले हो गयी। चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा.. आहा..हा..! यह तो ऐसी बात है कि भाई! दुनिया से अलग प्रकार है। आहा..हा..!

हम बहुत वर्ष पहले, १९–२० वर्ष की उम्र थी, तब भरूच गये थे। पालेज के पास भरूच है। साधु के लिये गये थे, हम तो स्थानकवासी थे न! स्थानकवासी साधु मुम्बई से आये थे तो उनकी सम्हाल करने गये थे। फिर समय मिला तो वहाँ मीराबाई का नाटक था। बाँकानेरवाले डाह्याभाई ढोलसा (थे)। बड़ा नाटक था। वे आठ दिन में तीन

नाटक करते थे। एक रात्रि के १५०० रुपये थे। डेढ़ हजार, उस समय, हों! आहा..हा..! यहाँ दूसरा कहना है।

मीराबाई का नाटक था। मीराबाई का विवाह राणा के साथ हुआ परन्तु मीराबाई की दृष्टि से उसे ईश्वर की भक्ति ऐसी लगी। राणा कहता है – हे मीरा! है न वहाँ? उसका गढ़ हमने देखा है। मीरा! मेरे बँगले में आ, मैं तुझे अपनी पटरानी बनाऊँगा। आहा..! रानी कहती है 'घेली थई रे राणा घेली थई, साधुडानी संगे हुं तो घेली थई।' मैं तो अब पागल हो गयी हूँ, मैं तेरे महल में आऊँ, यह अब मुझे रहा नहीं। मुझे साधु की संग में सत्संग है। भजन करती थी। बड़ा नाटक था। यह तो ७०-७२ वर्ष पहले की बात है। परन्तु वह ऐसा बोलती थी कि 'साधुडानी संगे राणा हूं घेली थई।'

इसी प्रकार यहाँ सम्यक्त्वी कहता है, आहा..हा..! मेरे आत्मा के संग से मैं तो पागल हो गया हूँ, दुनिया मुझे पागल कहो तो कहो। आहा..हा..! शास्त्र से ज्ञान नहीं होता, वाँचन से नहीं होता, श्रुत से नहीं होता – ऐसा मैं पागल हो गया हूँ। पण्डितजी! मेरा ज्ञान सागर अन्दर भरा है न, प्रभु! आहा..हा..! उसके अन्दर झुकने से ज्ञान आता है; बाकी सब बातें झूठ हैं। आहा..हा..!

ज्ञान की वृद्धि, दर्शन की वृद्धि,... देखने की शक्ति की पर्याय में-अवस्था में भी त्रिकाल का स्वभाव का आश्रय लेकर झुकने से दर्शन की वृद्धि होती है। आहा..हा..! **चारित्र की वृद्धि...** स्वरूप में-भगवान आत्मा में चारित्रगुण जो त्रिकाल पड़ा है, उस ओर झुकने से शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. वीतरागपर्याय जो चारित्रपर्याय है, वीतरागभाव है, वह अन्दर में झुकने से वृद्धि होती है।

मुमुक्षु : झुकने की विधि क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह परसन्मुख झुकता है, उसे छोड़कर स्वसन्मुख झुकना, यह विधि। आहा..हा..! जिसकी रुचि हो, उस रुचि अनुयायी वीर्य। जिसकी आवश्यकता लगे, उस ओर वीर्य झुके बिना नहीं रहता। संसार के वीर्य की-राग की रुचि है तो वीर्य वहाँ राग में झुक जाता है, अनादि से। आहा..हा..! जिसकी आवश्यकता लगे, जिसकी रुचि लगे, मैं तो पूर्णानन्दनाथ सहजात्मस्वरूप हूँ। आहा..हा..! ऐसी चीज़ की जिसे लगन लगे.. आहा..हा..! राग की लगन अनन्त काल से है। यह सूत होता है न? सूत, क्या कहते

हैं ? पींजण, सूत नहीं ? पींजण करते हैं न ? एक के बाद एक, एक के बाद एक डोरा लगा देते हैं। इसी प्रकार अज्ञानी अनादि से एक के बाद एक संकल्प-विकल्प राग, राग.. राग.. राग.. राग.. राग.. राग.. अनादि से करता है। आहा..हा..! समझ में आया ? जब इस राग की रुचि और रस छूट गया और भगवान पूर्णानन्द वीतरागमूर्ति जिनस्वरूप प्रभु की रुचि जम गयी तो उस ओर वीर्य का झुकना हो जाता है, यह विधि है। ऐ..ई!

बात तो सच्ची है परन्तु वे सामने विरोध करते हैं, वह भी हमारे प्रियंकरजी कहते थे। प्रियंकरजी है न ? जमादार है न वह ? बाबूलाल जमादार, यहाँ का बहुत विरोध करते हैं। इन्हें मिले, बातचीत हुई तो उन्होंने कहा। प्रियंकरजी! भाषण किया था बात तो उनकी सच्ची है परन्तु हमने अभी तक जो पक्ष लिया है, वह किस प्रकार छोड़े ? नरक-निगोद में जायेंगे परन्तु हम हमारा पक्ष नहीं छोड़ेंगे। आहा..हा..! प्रियंकरजी के साथ बात हुई थी। इन्होंने भाषण किया था, हमने भाषण लिया है, बापू! यह तो परमात्मा के घर की बात है, परमात्मा कहते हैं वह बात है, भाई! यह कोई पक्ष की, वाड़ा की बात नहीं है। वे स्वीकार करते हैं, बात तो सच्ची करते हैं परन्तु हमने पक्ष लिया है, वह हमसे छोड़ा नहीं जा सकता। नरक-निगोद में जायेंगे परन्तु हमसे छोड़ा नहीं जा सकता। अर..र..! दुनिया कहे - अभी तक तुमने क्या किया ? अभी तक हमें झूठे रास्ते चढ़ाया ? यदि सच्ची बात कबूल करे और बाहर प्रसिद्ध करे तो तुम पण्डित ने हमें क्या किया ? अरे..! भाई! इस दुनिया का मान क्या काम करेगा ? प्रभु! समझ में आया ? आहा..!

यहाँ तो प्रभु ऐसा कहते हैं.. आहा..हा..! वह तो एक शान्तिसागर है। दिल्ली, साधु बहुत नरम है, हमें मिले नहीं। पाँच वर्ष से दीक्षा ली है। यहाँ का वाँचन करके ऐसा कहा, कोई भाई है, वे बात करते थे, हमें तो किसी ने कहा। कानजीस्वामी कहते हैं, वह आचार्य की बात करके उन्होंने आचार्य का काम किया है, यह तो हमारी बात कहीं बाहर की नहीं, प्रभु! क्या कहें ? ***हम तो विदेह में थे, वहाँ से आये हैं। आहा..हा..! और बहिन भी विदेह से आये हैं।*** जैसे यह मोक्षमार्गप्रकाशक टोडरमलजी का बनाया हुआ पढ़ते हैं या नहीं ? तो यह इनकी पुस्तक है तो यह पढ़ते हैं, इसमें विरोध क्या ? आहा..हा..! भाई! मार्ग बहुत अलौकिक है। आहा..हा..!

यहाँ तो प्रभु ऐसा कहते हैं और ऐसा है। कहते हैं ऐसा है। भगवान चैतन्यस्वरूप अनन्त आनन्द के शान्ति आदि गुण से लबालब भरा हुआ है। आहा..हा..! उस ओर के

झुकाव से चारित्र की वृद्धि होती है। आहा..हा..! पंच महाव्रत पालने में कहीं चारित्र की वृद्धि नहीं होती। यह पंच महाव्रत के विकल्प तो अचारित्र हैं। आहा..हा..! यह कहा? चारित्र की वृद्धि होती है। अरे! **सर्ववृद्धि होती है;...** जितने गुण हैं, अनन्त गुण के पिण्ड प्रभु में एकाग्र होने से, झुकने से जितने गुण हैं, उन सबकी पर्याय में वृद्धि और शुद्धि होती है। यह मार्ग है, भाई! ज्ञानचन्दजी! आहा..हा..! बाबूभाई! अरे! प्रभु!

मुमुक्षु : साधन तो बताओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह साधन। राग से भिन्न करना, वह प्रज्ञा साधन है। कहा था न? राग, विकल्प से भिन्न करना, भेदज्ञान (करना), वह साधन है। वह प्रज्ञाछैनी में आ गया। प्रज्ञाछैनी श्लोक है न? १८१ में आ गया है। आहा..हा..! यहाँ तो बहुत वर्ष से चलता है। ४४ वर्ष में यह ४४ वाँ चातुर्मास चलता है। ४४ वाँ चातुर्मास चलता है। आहा..हा..!

यहाँ कहते हैं, भगवान आत्मा में शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. अर्थात् वीतरागता भरपूर.. भरपूर.. भरपूर लबालब भगवान में भरी है, उस ओर झुकने से ही चारित्र की वृद्धि होती है और सर्वगुण की वृद्धि होती है। है या नहीं?

मुमुक्षु : एक पक्ष की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही पक्ष की बात है। स्वभावसन्मुख की। पर्यायसन्मुख की बात का निषेध होता है। आहा..हा..!

अन्तर में आवश्यक,... है? आवश्यक अर्थात् सामायिक, चौबीसन्तों वन्दन, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान ये छह आवश्यक जो हैं, वह भी आत्मा अन्दर में आनन्द और पूर्णानन्दस्वरूप में झुकने से पर्याय में छह आवश्यक, सत्य छह आवश्यक (प्रगट होते हैं)। सामायिक अर्थात् समता। सामायिक अर्थात् समता का लाभ। चोबीसन्तों अर्थात् भगवान की स्तुति। वह अपने स्वभाव में झुकने से भगवान की सच्ची स्तुति होती है। आहा..हा..! समझ में आया? बाह्य के भगवान की स्तुति है, वह तो विकल्प और राग है। आहा..हा..! और वन्दन। छह आवश्यक है न? सामायिक, चौबीसन्तों-तीर्थंकर की स्तुति, वन्दन, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग, प्रत्याख्यान - ये छह बोल अपने शुद्ध चैतन्यघन भगवान की ओर झुकने से छहों आवश्यक की धर्मक्रिया उसमें से उत्पन्न होती है। आहा..हा..! जिनचन्दजी! समझ में आया? है?

अन्तर में आवश्यक, प्रतिक्रमण,... राग से हटकर स्वभाव में एकाग्रता-झुकने से प्रतिक्रमण की क्रिया (अर्थात्) वीतरागी दशा उत्पन्न होती है। आहा..हा..! यह प्रतिक्रमण है। **प्रत्याख्यान,...** पचक्खाण, प्रत्याख्यान कहते हैं न? वह भी स्वरूप को दृष्टि में लेकर इसमें झुकने से जो ज्ञान और शान्ति की वृद्धि हुई, वह प्रत्याख्यान है। ज्ञान, वह प्रत्याख्यान। आता है न कहाँ? ३४ गाथा, समयसार ३४ गाथा। ज्ञान, प्रत्याख्यान है। आहा..हा..! अर्थात् आत्मा पवित्र भगवान पूर्णानन्द की ओर झुकने से चैतन्य की दशा जो निर्मल होती है, उसे यहाँ प्रत्याख्यान कहने में आता है। आहा..हा..! ऐसा है। दुनिया को कठिन पड़े, निवृत्ति नहीं और प्रवृत्ति में पूरी जिन्दगी उसमें निकालते हैं। घण्टे-दो घण्टे का समय मिले तो श्रीमद् राजचन्द्र कहते हैं ....

राजचन्द्र, आत्मज्ञानी हुए। एक भव में मोक्ष में जानेवाले हैं। जवाहरात का धन्धा था। मुम्बई में झवेरी का (व्यापार था)। अगास आश्रम है न? अगास है, वढ़वा है। उनकी शक्ति बहुत थी। गृहस्थाश्रम में थे परन्तु आत्मज्ञान ऐसा हुआ और अनुभव में इतना आया कि उन्होंने कहा अरे! थोड़ा अशेष कर्म का भोग है, थोड़ा राग बाकी है, आता है। 'अशेष कर्म का भोग है, भोगववो अवशेष है।' राग का भाग अभी छूटता नहीं। स्वभाव का अनुभव होने पर भी पूर्ण वीतरागता आती नहीं, तो उस राग के भाव में हमारा भाव आ जाता है। अशेष कर्म का भोग है, भोगना अवशेष रे। इससे देह एक धारकर... इससे देह एक धारकर जाऊँगा स्वरूप स्वदेश। आहा..हा..! हमारा वतन जो शुद्ध चैतन्यघन आनन्दकन्दस्वरूप है। आहा..हा..!

यह तो उसमें से बताया था न? बहिन में से बताया था। आहा..हा..! हमारा वतन तो अन्दर असंख्य प्रदेशी भगवान अनन्त गुण का पिण्ड, वह हमारा स्वदेश है, वह हमारा वतन है, वह हमारा स्थान है, वह हमारा देश है। आहा..! उस देश में .... (हमारा) थोड़ा राग का भाव बाकी रह गया है तो राग का भोगना अभी थोड़े काल रहेगा - तो हम कहते हैं कि हमारे आत्मा में ऐसा आता है कि एक भव पश्चात् मैं केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष में जाऊँगा। 'इससे देह एक धारकर जाऊँगा स्वरूप स्वदेश रे... हम परदेशी पंखी साधु, इस देश के नाहीं रे।' पुण्य और पाप के राग के देश में हम नहीं हैं। 'हम परदेशी पंखी साधु' शुभ और अशुभराग उस पर के देश में हम नहीं हैं। आहा..हा..! 'हम परदेशी पंखी साधु इस देश के नाहीं रे। स्वरूप का साधन करि जाऊँगा स्वरूप स्वदेश रे, हम परदेशी पंखी

साधु।' राग जो दया, दान के विकल्प आते हैं, वह परदेश है। आहा..हा..! समझ में आया? वह बताया था न? कितने में है? ४०१, ४०१ बोल है। आहा..हा..! है? ४०१ बोल है। आहा..हा..! है ४०१?

ज्ञानी का परिणमन... धर्मी का स्वभाव की ओर का परिणमन। आहा..हा..! **विभाव से विमुख होकर...** पुण्य और पाप के विकारी भाव से विमुख होकर **स्वरूप की ओर ढल रहा है।** अपने स्वरूप की ओर झुक रहा है। आहा..हा..! **ज्ञानी निज स्वरूप में परिपूर्णरूप से स्थिर हो जाने को तरसता है।** मैं तो मेरे स्वरूप की स्थिति में पूर्ण हो जाऊँ - ऐसा तरसता है - भावना ऐसी है। '**यह विभावभाव हमारा देश नहीं है।** आहा..हा..! शुभ-अशुभराग आता है परन्तु वह हमारा देश नहीं है, प्रभु! आहा..हा..! गाँव-देश तो नहीं कि हमारा राजकोट है और हमारा पालनपुर है और हमारा... वह तो कहीं धूल में रहा परन्तु अन्दर में पुण्य के भाव, दया, दान, व्रत के विकल्प उठते हैं, वह हमारा देश नहीं, नाथ! हम जहाँ हैं, वहाँ वे नहीं और जहाँ वे हैं, वहाँ हम नहीं। आहा..हा..! कहाँ गये भाई? नहीं आये? प्रवीणभाई? वहाँ बैठे हैं, ठीक। समझ में आया? राजकोट में पढ़ते हैं। हमारे चन्दुभाई, बहुत अभ्यास है। यह भाई चार-चार घण्टे अभ्यास करते हैं। राजकोट के डॉक्टर हैं। ये तीनों बाहर के डॉक्टर हैं। अन्दर के डॉक्टर तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान होता है तब डॉक्टर होते हैं।

यहाँ कहते हैं '**यह विभावभाव हमारा देश नहीं है।** देखो! धर्मी की दृष्टि स्ववतन पर है। सिद्ध चैतन्य भगवान पर दृष्टि होने से, राग में आये तो वह हमारा देश नहीं। आहा..हा..! **इस परदेश में हम कहाँ आ पहुँचे?** आहा..हा..! इस राग में आये वह अरे रे! परदेश में हम कहाँ आ पहुँचे? हमारे देश से हम आगे गये। आहा..हा..! देखो! यह धर्मी। आहा..हा..!

मुमुक्षु : राग परदेश है?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग परदेश है। व्यवहाररत्नत्रय का जो विकल्प है, वह परदेश है; स्वदेश नहीं। प्रभु! स्वदेश में वह कहाँ है? है? **हमें यहाँ अच्छा नहीं लगता। यहाँ हमारा कोई नहीं है।** यहाँ हमें रुचता नहीं है। आहा..हा..! राग में आता है, समकिती को भी राग तो आता है। आहा..हा..! परन्तु हमें रुचता नहीं। शुभभाव भी अच्छा नहीं लगता - ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! लक्ष्मी और बाहर के धूल की बात तो कहीं रह गयी। आहा..!

हम एक बार 'कोलाबा' गये थे। माल लेने मुम्बई कोलाबा गये थे। फिर हुआ, कोलाबा में ये लोग क्या करते हैं ? सट्टे का बड़ा धन्धा और विलायत से वहाँ फोन आते थे। समुद्र नजदीक था तो वहाँ बहुत मारवाड़ी एकत्रित होते थे। यह तो बहुत वर्ष पहले की बात है। (संवत्) १९६६। हम तो देखने के लिये गये थे। वहाँ एक मारवाड़ी ऐसे लंगोटी पहनकर दिया-लिया, दिया-लिया (करता था)। पागल जैसा लगता था। सट्टा, दिया-लिया। मूढ़ है, परन्तु यह क्या है ? दिया-लिया समझे ? सट्टे के व्यापार में ऐसे दिया, ऐसे लिया। क्या लिया-दिया ? तुम्हें पता नहीं। तब ऐसा लगता था, यह क्या करता है ? पागल जैसा। मुम्बई में कोलाबा है। विलायत से फोन आते थे। फोन आने के बाद वे लोग धन्धा करते थे। इतना लेना, इतना देना। हमें तो पागल जैसे लगते थे। इसी प्रकार यह अज्ञानी अनादि से पर में, राग और पुण्य-पाप में आता है, पागल जैसा धन्धा करता है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : ज्ञानियों को पुण्य तो होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : होता है, कहा न! तो भी हमारा देश नहीं, हमारा यह परिवार नहीं। आहा..हा..! हम तो परदेश में आ गये। देवचन्दजी! आहा..हा..! जहाँ अमृत के सागर भरे हैं, अतीन्द्रिय आनन्द के थाल अन्दर में भरे हैं। आहा..हा..! अरे! कौन माने ? भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द के थाल.. थाल कहते हैं ? थाल। एक-एक गुण अनन्त आनन्द से भरपूर है। ऐसा अनन्त आनन्द का थाल आत्मा अन्दर है। अतीन्द्रिय आनन्द, हों! इस इन्द्रिय के विषय का जो आनन्द है, वह तो दुःख है। दुःख है, आकुलता है, राग है, व्यभिचार है। आहा..हा..! ऐसी बात है, प्रभु! निर्जरा अधिकार में कहा है न ? व्यभिचार है। राग आता है, वह व्यभिचार है। आहा..हा..! हमारे स्वरूप में तो वीतरागता और आनन्द भरा है। हमारे अनुभव में हमारा वतन तो वह है। हम कहाँ आ पहुँचे ?

जहाँ ज्ञान, श्रद्धा, चारित्र, आनन्द, वीर्यादि अनंतगुणरूप हमारा परिवार बसता है, अनन्त वह हमारा स्वदेश है। आहा..हा..! जहाँ अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता, अनन्त वीर्य जहाँ अन्तर में है, वह हमारा देश है। आहा..! धर्मी उसे अपना देश मानता है। अज्ञानी राग और पर को अपना देश, रहने का विश्रामस्थान मानता है। आहा..हा..! कठिन बातें हैं, भाई! क्या हो ? है ?

अब हम उस स्वरूपस्वदेश की ओर जा रहे हैं। आहा..हा..! स्वरूप जो अपना

स्वदेश पूर्णानन्द आदि ज्ञानस्वभाव है, उस ओर हम जा रहे हैं। **हमें त्वरा से अपने मूल वतन में जाकर...** उग्र पुरुषार्थ से अल्प काल में हमारा मूल वतन जो स्वरूप स्वदेश है, वहाँ जाकर **आराम से बसना है, जहाँ सब हमारे हैं।'** जहाँ सब हमारे हैं। आहा..हा..! ऐसी बातें सुनना कठिन पड़ती है। कहीं ख्याल नहीं मिलता अन्दर कौन है? प्रभु! परमात्मस्वरूप बिराजमान आत्मा है। आहा..हा..! 'घट-घट अन्तर जिन बसै' भगवान जिनस्वरूपी परमात्मा घट-घट में—देह मन्दिर में अन्दर भिन्न बसता है। आहा..! कैसे बैठे? दो बीड़ी-सिगरेट ठीक से पीवे तो दस्त उतरे ऐसे तो अपलक्षण। अब उसे ऐसी बात? सवेरे उठता है न? पाखाने जाये, तब दो बीड़ी, सिगरेट (पीवे), सवेरे उठकर उकाली, चाय पीवे। डेढ़ पाव सेर, उकाली कहते हैं न? चाय, उकाली पीवे, (फिर कहे) मस्तिष्क तर हो गया। सुनने आया हूँ परन्तु चाय पिये बिना आया हूँ, मेरा मस्तिष्क काम नहीं करता। पागल के लक्षण तो देखो!

मुमुक्षु : दुनिया...

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरी दुनिया पागल है। आहा..हा..!

यहाँ कहते हैं, यहाँ आया न? प्रत्याख्यान तप, व्रत सब अन्दर अपने से प्रगट होता है। व्रत का जो विकल्प है, वह नहीं। स्वरूप जो शुद्ध आनन्दस्वरूप है, उसमें एकाग्र होना, लिपट जाना, सम्पूर्ण चैतन्य में लिपट जाना, (वह व्रत है) विटाई जाना, उसे क्या कहते हैं? लिपट जाना, वह व्रत है। आहा..हा..! वह व्रत अन्दर शुद्ध चैतन्यघन भगवान की ओर झुकने से होता है और यह व्रत जो बाह्य के हैं, वे तो विकल्प, राग है। आहा..हा..! है?

तप... तप भी उग्र तप! शुद्ध चैतन्य में उग्र पुरुषार्थ से लीन होना, वह तप है। बाकी यह बाह्य के तप, अनशन, ऊनोदर आदि, वह तो शुभराग है। आहा..हा..! यह तप। आहा..हा..! **सब प्रगट होता है। बाह्य क्रियाकाण्ड तो परमार्थतः कोलाहल है।** आहा..हा..! बाह्य क्रियाकाण्ड का जो शुभभाव है, वह तो कोलाहल है। आहा..हा..! द्वेष है। **शुभ भाव भूमिकानुसार आते हैं...** शुभभाव आता तो है। मुनि को भी पंच महाव्रत के विकल्प आते हैं। सम्यग्दृष्टि को चौथे (गुणस्थान में) भक्ति, पूजा का भाव आता है। **परन्तु वह शान्ति का मार्ग नहीं है।** आहा..हा..! समझ में आया? वह तो राग है। अशुभ से बचने के लिये ऐसा भाव आता है परन्तु वह शान्ति का मार्ग नहीं है। आहा..हा..!

शान्ति का मार्ग तो प्रभु - पूर्ण शान्ति से भरपूर आत्मा... भजन में भी आता है न! 'उपशमरस बरसै रे प्रभु तेरे नयन में'। भजन में आता है। 'उपशमरस बरसै रे प्रभु' भगवान का शरीर उपशमरस के जल से मानो भरा हुआ है। आहा..! अन्दर उपशमरस का पिण्ड प्रभु है। बाहर में जगत के जितने शान्त परमाणु हैं, वे सब परमाणु शरीररूप परिणमे हैं। आहा..हा..! शान्ति का सागर, शान्ति की विशाल शिला अन्दर है। आहा..! उसका अवलम्बन लेना, वह शान्ति का मार्ग है। भूमिकानुसार शुभराग आता है परन्तु वह शान्ति का मार्ग नहीं है। समझ में आया?

स्थिर होकर अन्तर में बैठ जाना... आहा..! पहले उस चैतन्यस्वरूप का अनुभव-दृष्टि करके, फिर स्वरूप में अन्दर स्थिर हो जाना। आहा..हा..! अन्दर में विश्रामस्थान लेना। आहा..! यह क्या? अपने शुद्ध चैतन्य स्वदेश में विश्राम लेना। **वही कर्तव्य है।** है? **स्थिर होकर अन्तर में बैठ जाना, वही कर्तव्य है।** आहा..हा..! अब १८५

मुनिराज कहते हैं:—चैतन्यपदार्थ पूर्णता से भरा है। उसके अन्दर जाना और आत्मसम्पदा की प्राप्ति करना, वही हमारा विषय है। चैतन्य में स्थिर होकर अपूर्वता की प्राप्ति नहीं की, अवर्णनीय समाधि प्राप्त नहीं की, तो हमारा जो विषय है, वह हमने प्रगट नहीं किया। बाहर में उपयोग आता है, तब द्रव्य-गुण-पर्याय के विचारों में रुकना होता है, किन्तु वास्तव में वह हमारा विषय नहीं है। आत्मा में नवीनताओं का भण्डार है। भेदज्ञान के अभ्यास द्वारा यदि वह नवीनता—अपूर्वता प्रगट नहीं की, तो मुनिपने में जो करना था वह हमने नहीं किया॥१८५॥

वह नियमसार में आता है, वह बात यहाँ है। नियमसार में वे पद्मप्रभमलधारिदेव हैं न? पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि हैं। नियमसार (की टीका) कर्ता हैं। उन्होंने नियमसार की टीका बनायी है। बीच में कुन्दकुन्दाचार्यदेव हैं, ये अमृतचन्द्राचार्य हैं, इस ओर हैं, उन्होंने टीका बनायी है। उसमें अन्दर ऐसा कहा। **मुनिराज कहते हैं:—चैतन्यपदार्थ पूर्णता से भरा है।** आहा..! मेरी चीज़ तो पूर्ण गुण से पूर्णता से भरी है। मुझमें राग तो नहीं परन्तु मुझमें अपूर्णता भी नहीं। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं।

मुमुक्षु : आज रक्षा दिन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उस रक्षा का यह भाव है। रक्षा यहाँ बाँधी, उसमें क्या धूल आयी? अन्दर स्वभाव की रक्षा करना, वह रक्षाबन्धन है। आहा..हा..! त्रिकाली भगवान पूर्णानन्द की राग से रक्षा करना और स्वरूप की दृष्टि करना और स्थिरता करना, वह रक्षाबन्धन है। ऐसी बात है। देखो! यहाँ कहा।

मुनिराज कहते हैं:—चैतन्यपदार्थ पूर्णता से भरा है। उसके अन्दर जाना और आत्मसम्पदा की प्राप्ति करना, वही हमारा विषय है। आहा..हा..! नियमसार में पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं। हमारा विषय तो पूर्णानन्द में जाना, वह हमारा विषय है। रागादि, पुण्यादि हमारा विषय नहीं है। आहा..हा..! **आत्मसम्पदा की प्राप्ति करना, वही हमारा विषय है।** आत्मसम्पदा। प्रभु आत्मसम्पदा से भरपूर है। पुण्य और पाप के भाव तो आपदा है।

मुमुक्षु : रुपया मिले और आपदा?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ रुपये मिलते थे? धूल में? रुपया इसके पास आवे, तब मानता है कि मुझे मिले। यह तो इसे ममता मिली है। लक्ष्मी तो भिन्न है। आत्मा लक्ष्मी को तीन काल-तीन लोक में स्पर्श नहीं करता। लक्ष्मी आत्मा को तीन काल-तीन लोक में स्पर्श नहीं करती। अज्ञानी राग को स्पर्श करता है (कि) मुझे लक्ष्मी मिली और मैं अरबोंपति हुआ। आहा..हा..! समझ में आया? आहा..हा..! **आत्मसम्पदा की प्राप्ति करना, वही हमारा विषय है।** मुनि ऐसा कहते हैं। पंच महाव्रत आदि पालना, वह हमारा विषय नहीं, वह आता है। आहा..हा..! देखो! **चैतन्य में स्थिर होकर अपूर्वता की प्राप्ति नहीं की,...** आहा..हा..! भगवान पूर्णानन्द में स्थिर होकर, अपूर्वता-पूर्व में कभी नहीं की —ऐसी दशा की प्राप्ति नहीं की, **अवर्णनीय समाधि प्राप्त नहीं की,...** आहा..हा..! वर्णन में-कथन में नहीं आ सके—ऐसी शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. समाधि.. अर्थात् वे बाबा समाधि करते हैं, वह नहीं, हों! समाधि अर्थात् आधि, व्याधि, उपाधि से रहित समाधि। आधि, अर्थात् संकल्प और विकल्प; व्याधि, अर्थात् शरीर में रोग; उपाधि, अर्थात् बाह्य की क्रिया, वस्तु। आधि, व्याधि, उपाधि से रहित समाधि। अन्य बाबा समाधि लगाते हैं, वह नहीं। आहा..हा..! समझ में आया? ऐसा मार्ग है।

समाधि प्राप्त नहीं की, तो हमारा जो विषय है वह हमने प्रगट नहीं किया। देखो!

मुनिराज ऐसा कहते हैं, हों! आहा..हा..! जिन्हें तीन कषाय का तो अभाव हो गया है और पूर्णानन्द वस्तु का तो अन्दर अनुभव हो गया है परन्तु पर्याय में पूर्णता नहीं, तो कहते हैं, आहा..हा..! हमने जो पूर्णता नहीं की, हमारा वह विषय है। आहा..हा..! **बाहर में उपयोग आता है, तब द्रव्य-गुण-पर्याय के विचारों में रुकना होता है,...** बाहर में विकल्प आता है, वहाँ द्रव्य-गुण और पर्याय विचार में आते हैं, वह भी परमार्थ आवश्यक नहीं है। नियमसार में है। अपने द्रव्य-गुण-पर्याय का विचार करना, वह भी आवश्यक नहीं; वह अनावश्यक है। आहा..हा..! क्या हो?

भगवान पूर्णानन्द का नाथ जलहल ज्योति से बिराजमान है। अनन्त-अनन्त गुण के चैतन्य-चमत्कार से भरपूर है, वह हमारा विषय है, वह अपूर्व हमने प्राप्त नहीं किया तो हमारा विषय हमें मिला नहीं। आहा..हा..! हमारा विषय पंच महाव्रत पालना, वह नहीं है, वह तो परवस्तु है। आहा..हा..! समझ में आया? कठिन बात कहना और कहना (कि) समझ में आया! बात तो ऐसी है, भाई!

अरे रे! देह छूट जायेगी, प्रभु! कहाँ जायेगा तू? कहाँ जायेगा? तेरी वस्तु की दृष्टि नहीं की और राग का प्रेम, राग के रस में रह गया, प्रभु! कहीं चौरासी के अवतार में जाकर भटकेगा। क्योंकि आत्मा तो अनन्त काल रहनेवाला है, तो देह छूटने के पश्चात् कहीं रहेगा या नहीं? कहाँ रहेगा? जिसे राग का रस है, वह मिथ्यात्व में रहेगा और जिसे आत्मा का रस है, वह भविष्य में आत्मा में रहेगा। आहा..हा..!

बाहर में उपयोग आता है, तब द्रव्य-गुण-पर्याय के विचारों में रुकना होता है,... रुकना होता है, हों! आहा..हा..! अखण्डानन्द प्रभु अभेद की दृष्टि और एकाग्रता में से निकलकर जो विकल्प आया है तो द्रव्य-गुण-पर्याय के विचार करते हैं तो बाहर में रुक गये। एकरूप चीज़ की दृष्टि और स्थिरता में से बाहर आये.. आहा..हा..! **तब द्रव्य-गुण-पर्याय के विचारों में...** द्रव्य - मैं त्रिकाली द्रव्य हूँ, मुझमें अनन्त गुण हैं और वर्तमान उनकी पर्याय है—ऐसे तीन प्रकार के विचार में रुकना, वह राग में रुकता है। आहा..हा..!

नियमसार में कहा है, आवश्यक अधिकार है। गाथा है, श्लोक है। जो कुछ द्रव्य-गुण-पर्याय में भी आता है, वह पर आवश्यक है, वह अनावश्यक है, वह आवश्यक नहीं। आहा..हा..! नियमसार, भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं कि मैंने मेरी भावना के लिये

यह नियमसार बनाया है। (पद्मप्रभमलधारिदेव) टीका करनेवाले हैं। आहा..हा..! **'णियभावणाणिमित्तं'** पाठ है। नियमसार मेरी भावना के लिये मैंने बनाया है। उसमें ऐसा कहा। आहा..हा..! मैं बाहर आता हूँ तो द्रव्य-गुण-पर्याय के विचार आते हैं, वे भी पराधीन हैं। आहा..हा..! समझ में आया?

यह यहाँ आया है। **बाहर में उपयोग आता है, तब द्रव्य...** द्रव्य अर्थात् त्रिकाली वस्तु, गुण अर्थात् त्रिकाली स्वभाव, पर्याय अर्थात् वर्तमान हालत-दशा। आहा..हा..! अभी द्रव्य-गुण-पर्याय किसे कहना, (उसका पता नहीं होता)। इन तीन के विचार में रुकना भी राग है। आहा..हा..! भगवान एकरूप अभेद है—ऐसी दृष्टि और स्थिरता हुई, वह तो धर्म है परन्तु उसमें रह नहीं सकता और जो विकल्प आया तो द्रव्य-गुण-पर्याय तीन का विचार किया, वह भी बाहर रुक गया। आहा..हा..! अन्दर जाना था, उसे छोड़कर बाहर रुक गया। जुगलजी! ऐसी बात है। लोगों को कठिन लगता है। आहा..हा..!

किन्तु वास्तव में वह हमारा विषय नहीं है। क्या कहा? वस्तु जो भगवान आत्मा है.. मुनिराज ऐसा कहते हैं हमारे स्वरूप में हम रमते हैं, रहते हैं, वह हमारा कर्तव्य है परन्तु उसमें से निकलकर जब राग आया तो द्रव्य-गुण-पर्याय के विचार किया, वह हमारा विषय नहीं। है? **वास्तव में वह हमारा विषय नहीं है।** द्रव्य, गुण और पर्याय के विचार, वह भी हमारा विषय नहीं। आहा..हा..! बाहर धन्धे का विकल्प करना और स्त्री-पुत्र का और पैसे का (विकल्प), वह तो पाप है। यह तो अन्तर में द्रव्य-गुण-पर्याय के विचार शुभभाव है। आहा..हा..!

एकरूप त्रिकाली भगवान की दृष्टि करके स्थिर रहना, उतना तो धर्म है और उसमें से अभी वीतरागता पूर्ण न हो तो राग आता है। आहा..हा..! वहाँ रुक जाना,... वह राग कौन? यह द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों का विचार, वह राग है। आहा..हा..! **किन्तु वास्तव में वह हमारा विषय नहीं है। आत्मा में नवीनताओं का भण्डार है।** आहा..हा..! नवीन-नवीन आनन्द और शान्ति आदि का तो भण्डार है। पुण्य-पाप के भाव, वे कोई नवीन नहीं हैं। आहा..हा..! (वे तो) अनन्त काल से किये हुए क्लेशरूप भाव हैं। ऐसी बात! गृहस्थाश्रम में रहना और यह करना, दो बात चलती है या नहीं? नहीं; एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकती। समकिती अपने शुद्ध चैतन्य के विषय में रहता है। राग आता है

तो उसमें नहीं रहता। आहा..हा..! समझ में आया? वह हमारा विषय नहीं। आता है, परन्तु वह हमारा विषय नहीं। आहा..हा..!

पद्मनन्दि पंचविंशति, पद्मनन्दि मुनि ने एक श्लोक बनाया है। अरे! हमारा विषय तो पूर्णानन्द में रहना, वह है। उसमें से बाहर आ गये तो हम परदेश में आ गये। आहा..हा..! जहाँ हमारा परिवार नहीं। जहाँ हमारा परिवार अन्दर अनन्त गुण का परिवार है, वहाँ से हम हट गये। आहा..हा..! और द्रव्य-गुण-पर्याय के विचार करना, वह भी राग में रुकना है। आहा..हा..! कठिन बात है, प्रभु! क्या हो?

मुमुक्षु : रोग भी कठोर है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : महा कठोर रोग, बापू! मिथ्याश्रद्धा का महारोग - पागल है। आहा..हा...! राग आता है, उसमें प्रसन्नता, खुशी होता है, वह पागल है। बाहर की चीज़ से प्रसन्न होता है, वह तो बड़ा पागल है। हमारे पच्चीस लाख की आमदनी है, हमारे पास पाँच करोड़-दस करोड़ रुपये हैं। नहीं? हसमुखभाई! इसे तो घर की दुकान थी। ४२ वर्ष की उम्र है, मुम्बई में दुकान चलती है। दो-तीन लाख की आमदनी है। दुकान छोड़ दी, धन्धा छोड़ दिया। तीन भाई है तो मुझे चौथा भाग दे दे। अब मैं दुकान में नहीं आऊँगा। ४२ वर्ष की उम्र है। यह बैठा है। एक लड़की है, एक लड़का है। तेरह वर्ष का एक लड़का है, बारह वर्ष की लड़की है। दुकान बन्द कर दी है, व्यापार बन्द कर दिया है, भाईयों ने पाँच लाख दिये हैं। पाँच लाख, बस! सन्तोष करके बैठ गया। पाँच लाख का एक महीने में पाँच हजार ब्याज आता है। बस! इतने में सब खर्च निकालता है, शास्त्र में देता है। खर्च कर देता है। ४२ वर्ष की छोटी उम्र है। भावनगर (रहता है)। बोटाद के गाँधी हैं, यहाँ तो पच्चीस लाख और पचास लाख हो तो चैन नहीं पड़ती।

यहाँ कहते हैं **आत्मा में नवीनताओं का भण्डार है।** अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति जहाँ पर्याय में प्रगट होती है। आहा..हा..! अनन्त काल में कभी शान्ति प्रगट नहीं हुई - ऐसी शान्ति का तो भण्डार भगवान है। उस ओर झुकने से पर्याय में वर्तमान में भी शान्ति आती है। आहा..हा..! यह शान्ति आती है, वह धर्म है। आहा..हा..!

भेदज्ञान के अभ्यास द्वारा... है? राग आता है, उससे भेदज्ञान करके। आहा..हा..! राग से भिन्न प्रभु आत्मा है—ऐसा भेदज्ञान-भिन्न ज्ञान-करके। आहा..हा..! **यदि वह**

नवीनता—अपूर्वता प्रगट नहीं की,... अनन्त आनन्द में से आनन्द का नमूना बाहर नहीं आया.. आहा..हा..! अनन्त शान्ति के भण्डार भगवान की ओर का आश्रय लेकर पर्याय में अपूर्व नवीन शान्ति, वीतरागता नहीं आयी.. आहा..हा..! **भेदज्ञान के अभ्यास द्वारा यदि वह नवीनता—अपूर्वता प्रगट नहीं की, तो मुनिपने में जो करना था, वह हमने नहीं किया।** मुनिपने में तो यह करना था। नियमसार की गाथा है, उसका बहिन ने (यहाँ लिया है)। समझ में आया?

मुनिपना.. आहा..हा..! वह तो परमेश्वर पद है। जहाँ अतीन्द्रिय आनन्द में रमते.. रमते.. रमते, झूलते.. झूलते केवलज्ञान पाते हैं। आहा..हा..! वे मुनि कहते हैं। यह मुनि हैं, स्वयं आचार्य नहीं हैं। अमृतचन्द्राचार्य, आचार्य हैं। कुन्दकुन्दाचार्य, आचार्य हैं और पद्मप्रभमलधारिदेव, निमयसार की टीका करनेवाले मुनि हैं, आचार्य नहीं। वे मुनि ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! हमारा विषय जो अपूर्व था, अनन्त काल में कभी शान्ति और आनन्द सम्यग्दर्शन चारित्र प्रगट नहीं किया तो मुनिपने में जो करना था, वह हमने नहीं किया। आहा..हा..! मुनिपने में तो यह करना है। वस्तु के स्वरूप में अन्तर्दृष्टि लगाकर आनन्द में स्थिर हो जाना, वह मुनिपने का कर्तव्य है। वह मुनिपने का कार्य है। है? **जो करना था, वह हमने नहीं किया।** आहा..हा..! अन्तरवस्तु में जम जाना, वह हमारा कर्तव्य है और वह नहीं किया तो हमने कुछ नहीं किया। आहा..हा..!

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

छठवें गुणस्थान में मुनिराज को देव-शास्त्र-गुरु के प्रति भक्ति, विनय इत्यादि के उपरान्त पञ्च महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण आदि का विकल्प तथा तद्नुरूप प्रवर्तन होता है किन्तु किसी भी संयोग में चौथे, पाँचवें, छठे गुणस्थान में वर्तनेवाले समकिती की ज्ञान-वैराग्य-शक्ति कोई अलग ही रहती है। समयसार, निर्जरा अधिकार में कहा है कि भगवान ज्ञायक का यथार्थ ग्रहण, वह ज्ञान है और रागादि का अभाव वह वैराग्य है। अहो! ज्ञानी की यह ज्ञान-वैराग्यधारा कोई अलौकिक ही होती है।

(पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, वचनामृत प्रवचन, भाग 4)

भाद्र कृष्ण -१, शनिवार, दिनाङ्क १९-०८-१९७८
वचनामृत-१८६ से १८९ प्रवचन-६९

गृहस्थाश्रम में वैराग्य होता है परन्तु मुनिराज का वैराग्य कोई और ही होता है। मुनिराज तो वैराग्य-महल के शिखर के शिखामणि हैं॥१८६॥

१८६ बोल है ? इस वचनामृत में १८६ बोल है। १८५ बोल हो गया है। **गृहस्थाश्रम में वैराग्य होता है...** क्या कहते हैं ? गृहस्थ अवस्था है, वहाँ जिसे अन्तर में आनन्दस्वरूप भगवान का अनुभव हुआ हो तो उसे गृहस्थाश्रम में धर्मी कहा जाता है। आहा..हा..! चाहे तो चक्रवर्ती का राज हो, बलदेव आदि हो परन्तु अन्तर में आत्मा पूर्णानन्द प्रभु का स्पर्श करके आनन्द का वेदन आया हो, अनुभव हुआ हो, उसे समकिती साधक गृहस्थाश्रम में कहने में आता है। समझ में आया ? कोई व्रत और तप, भक्ति और पूजा करता है; इसलिए वह धर्मी और साधक है - ऐसा नहीं है। क्योंकि वह तो सब राग और विकल्प है। आहा..हा..! शुभभाव है। उससे भिन्न भगवान आत्मा पूर्णानन्द प्रभु एक समय में पूर्ण सामान्यस्वभाव, ध्रुवस्वभाव की दृष्टि होकर सम्यग्दर्शन होता है, तब उसमें अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव होता है। तब तो अभी उसे गृहस्थाश्रम में सम्यग्दृष्टि कहने में आता है। आहा..हा..! और उसे वैराग्य होता है। है ?

गृहस्थाश्रम में वैराग्य होता है... सम्यग्दर्शन हुआ तो निश्चय से तो शुभ-अशुभभाव से भी विरक्त है। आहा..हा..! सूक्ष्म बात है, भाई! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति प्रभु है, उसकी जहाँ दृष्टि और अनुभव हुए तो उसे पुण्य और पाप के विकल्प से वैराग्य, विरक्तता है। समझ में आया ? ज्ञान और वैराग्यशक्ति दोनों साथ प्रगट होती है। आहा..हा..! ज्ञान यह कि पूर्ण आनन्दस्वरूप का भान और वैराग्य यह कि शुभ-अशुभभाव से विरक्त। वैराग्य की दशा, वह शुभ-अशुभ, पुण्य से विरक्त वैराग्य है। बाहर के स्त्री,

कुटुम्ब, दुकान छोड़ी, वह वैराग्य, वैराग्य नहीं है। आहा..!

मुमुक्षु : सब पानी में...

पूज्य गुरुदेवश्री : पानी में नहीं, वस्तु ही नहीं है। आहा..हा..! बाहर की वस्तु छोड़ी तो (वह वैराग्य है - ऐसा नहीं)। अन्तर में आत्मा का स्वभाव त्यागोपादान शून्यत्वशक्ति है। सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहा..हा..! आत्मा में ऐसा एक त्रिकाली गुण है कि जो परवस्तु त्याग और ग्रहणरहित उसका गुण है। पानी का त्याग करूँ और पर का ग्रहण करूँ, यह बुद्धि ही मिथ्यात्व है। आहा..हा..! वस्तु जो भगवान आत्मा, ज्ञायकस्वभाव से आनन्द से भरपूर प्रभु है, उसमें एक शक्ति / गुण ऐसा है कि रजकण से लेकर किसी पर चीज़ का ग्रहण करूँ और छोड़ूँ, यह स्वरूप में नहीं है। आहा..हा..! ऐसी जहाँ अन्तर्दृष्टि होती है - धर्म की पहली सीढ़ी, आहा..! मैं राग से रहित और अनन्त आनन्द से सहित हूँ। आहा..हा..! एकत्व-विभक्त। तीसरी गाथा आती है। गाथा का आधार नहीं लेते, न्याय से (कहते हैं)।

मैं आत्मा अन्दर पूर्णानन्द अनन्त ज्ञान, अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय प्रभुता की शक्ति से भरपूर प्रभु हूँ। उसकी दृष्टि में, धर्मी की दृष्टि में परमात्मद्रव्य, वह मैं हूँ - ऐसा है। आहा..हा..! यह राग मैं हूँ और निमित्त में मैं हूँ और निमित्त तथा राग से मुझमें कुछ लाभ होगा, यह दृष्टि धर्मी को होती नहीं। ऐसी सूक्ष्म बात है, प्रभु!

भगवान आत्मा अखण्डानन्द प्रभु, शुद्ध परमात्मस्वरूप बिराजमान आत्मा है। यदि परमात्मस्वरूप न हो तो पर्याय में परमात्मा आयेगा कहाँ से? आहा..हा..! समझ में आया? लैंडी पीपर-छोटी पीपर होती है न? उसमें चौंसठ पहरी चरपराहट भरी है। जैसे चौंसठ पहर उसे घोंटने से जो अन्दर में है, वह बाहर आती है। चौंसठ अर्थात् पूर्ण। चौंसठ पैसा कहते हैं न? चौंसठ पैसा अर्थात् सोलह आना; सोलह आना अर्थात् रुपया; रुपया अर्थात् पूर्ण; पूर्ण अर्थात् सर्वस्व। आहा..हा..!

जैसे छोटी पीपर कद में छोटी, रंग में काली है, तथापि अन्दर में पूर्ण चरपराहट और हरा रंग पूरा भरा है। आहा..हा..! इसी प्रकार भगवान आत्मा पुण्य और पाप के विकल्प से मलिन दिखता है। समझ में आया? और अल्पज्ञपर्याय में दिखता है, वह उसका पूर्ण स्वरूप नहीं है। वह पूर्ण स्वरूप तो सर्वज्ञस्वभावी, सर्वदर्शीस्वभावी और पूर्ण वीतरागस्वरूप, वह उसका पूर्ण स्वरूप है। उसकी दृष्टि करने से, जैसे उस चौंसठ पहर पीपर को घोंटने

से, है उसमें से आती है, प्राप्त की प्राप्ति है। जो कुएँ में होता है तो हौज में आता है; इसी प्रकार अन्दर पीपर में शक्ति और सामर्थ्य है तो घोंटने से बाहर आती है। वह घोंटने से बाहर आयी है – ऐसा कहना, वह तो निमित्त से कथन है। यदि घोंटने से चरपराहट बाहर आवे तो लकड़ी और कोयले को चौंसठ पहर घोंटे तो उसमें नहीं है तो कहाँ से आयेगी? आहा..हा..! समझ में आया? लॉजिक से-न्याय से इसे समझना पड़ेगा। अनन्त काल से दु:खी प्राणी है और भटकते-भटकते चौरासी लाख योनि में.. एक योनि में अनन्त भव किये बिना नहीं रहा। अनन्त-अनन्त काल हुआ, प्रभु! तेरी वस्तु क्या है, उसका पता नहीं। (छोटी पीपर में) जैसे चौंसठ पहरी चरपराहट भरी है और हरा रंग भरा है; इसी प्रकार आत्मा में पूर्ण आनन्द और पूर्ण वीतरागता से भरपूर आत्मा है। वह पूर्णानन्द और पूर्ण वीतरागस्वरूप है, उसे एकाग्रता से घोंटने से, है उसमें से बाहर आता है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वीतरागता वह अन्दर शक्ति है, उसमें से आये हैं।

ऐसा कहते हैं गृहस्थाश्रम में वैराग्य होता है। सम्यग्दर्शनसहित पुण्य और पाप के राग से विरक्त होकर गृहस्थाश्रम में भी वैराग्य होता है परन्तु यह समकित (हुआ हो और) राग से रहित (हुआ हो तो)। **परन्तु मुनिराज का वैराग्य कोई और ही होता है।** आहा..हा..! मुनि किसे कहते हैं? जिन्हें अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द का भरती (ज्वार) आता है। भरती को क्या कहते हैं? बाढ़। समुद्र के किनारे जैसे बाढ़ (ज्वार) आती है न? आहा..हा..! इसी प्रकार मुनिराज को, सच्चे मुनि हैं उन्हें.. आहा..हा..! अतीन्द्रिय आनन्द जो परिपूर्ण भरा है, उसकी दृष्टि और स्थिरता से उनकी पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द उछालें मारता है। आहा..हा..! पर्याय अर्थात् किनारे, अतीन्द्रिय आनन्द आता है। आहा..हा..! उन मुनिराज का वैराग्य-राग से रहित कोई अलग ही वैराग्य होता है। आहा..हा..!

जिन मुनिराज को पंच परमेष्ठी में गिना जाता है, उनकी अन्तरदशा, अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में इतने घुस गये हैं कि जिन्हें पंच महाव्रत का शुभराग आता है, वह दु:ख लगता है। आहा..हा..! सूक्ष्म बात है, प्रभु! तू कैसा है, कैसे है? इसका तुझे पता नहीं। आहा..! मृग की नाभि में कस्तूरी है परन्तु मृग को कस्तूरी की खबर नहीं; इसी प्रकार मृग जैसे जीव अनादि से अन्तर में आनन्द की शक्ति पूर्णानन्द भरी है... भाषा समझ में आती है? मृग होता है न? मृग – हिरण.. हिरण। उसकी नाभि में कस्तूरी है परन्तु उसे ऐसा लगता है कि गन्ध कहीं बाहर से आती है, तो बाहर ढूँढ़ता है। इसी प्रकार भगवान आत्मा

में अतीन्द्रिय आनन्द भरा है। आहा..हा..! अज्ञानी बाहर से पैसे में से, स्त्री में से, परिवार में से, इज्जत में से, बड़ा अधिकार मिला उसमें से आनन्द आता है, ऐसा हिरण जैसा, मृग जैसा अज्ञानी, पर में सुखबुद्धि मानकर अपने आनन्दस्वरूप का अनादर करता है। आहा..हा..! समझ में आया?

मुनिराज को तो अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद (आया है)। सच्चे सन्त, हों! भावलिंगी। अकेले नग्न हो जाये, वे साधु हो गये - ऐसा नहीं है और अट्ठाईस मूलगुण पाले, महाव्रत पाले तो भी वे साधु नहीं हैं। साधु तो उनसे भिन्न होकर अतीन्द्रिय आनन्द की शक्ति जो अन्दर में पड़ी है, उसकी पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द की बाढ़ आती है। आहा..हा..! उस अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में पुण्य-पाप के राग से बहुत वैराग्य होता है। (समयसार के) पुण्य-पाप अधिकार में कहा है। वैराग्य उसे कहते हैं। वैराग्य यह स्त्री, पुत्र और दुकान छोड़ दी; इसलिए वैरागी हैं, वह वैरागी नहीं, भाई!

वैराग्य तो परमात्मा उसे कहते हैं (कि) अपना स्वरूप जो मौजूद चीज़ है, उसके आनन्द का अनुभव हुआ हो और राग तथा पुण्य-पाप के भाव से विरक्त दशा हुई हो, उसे वैराग्य कहते हैं। आहा..हा..! **मुनिराज का वैराग्य कोई और ही होता है। मुनिराज तो वैराग्य-महल के शिखर के शिखामणि हैं।** यह शास्त्र के शब्द हैं। आहा..हा..! वैराग्यरूपी महल, उसका शिखर, उसका शिखामणि। आहा..हा..! अन्तर के आनन्द की इतनी दशा (हुई है)... पद्मप्रभमलधारिदेव मुनिराज तो यहाँ तक कहते हैं कि उन्हें जरा राग का अंश है थोड़ा, परन्तु उनकी दशा जैसी सर्वज्ञ की दशा है, वैसी उनकी दशा है। उसमें हीनता देखें तो हम जड़ हैं - ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! सच्चे सन्त की बात है, हों! वैसे तो द्रव्यलिंग अनन्त बार लिया है। नग्न हुआ, पंच महाव्रत धारण किये, हजारों रानियाँ छोड़ी, वह कहीं वैराग्य नहीं है, वह कहीं त्याग नहीं है। आहा..हा..!

अन्तर भगवान पूर्णानन्द शक्ति के भण्डार में जाने से स्वभाव में आस्तिकता हुई और राग से आस्तिकता छूट गयी कि यह वस्तु मैं नहीं। ऐसा ज्ञान और वैराग्य जिन्हें अन्तर में वर्तता है, वे तो वैराग्य के महल के शिखर के शिखामणि हैं। आहा..हा..! बापू! मुनिराज तो ऐसे होते हैं। यह समझ में आया... पुस्तक आयी है। आयी है अभी? छोटी पुस्तक। धन्य मुनिदशा! हमें तो खबर है। बहुत पुस्तकें आयी हैं। उसमें सब बहिन के वचन हैं, उनका संग्रह करके किसी ने बनायी है। आहा..हा..!

प्रचुर स्वसंवेदन, वह मुनि का भावलिंग है। समयसार पाँचवीं गाथा (में) कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, मैं समयसार कहूँगा परन्तु मैं मेरे निज वैभव से कहूँगा। निज वैभव से कहूँगा। निज वैभव क्या ? अपने आनन्द में से जो अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट हुआ, और राग से विरक्तता जो अन्दर प्रगट हुई और ज्ञान की धारा अन्दर उत्पन्न हुई, समकित की धारा उत्पन्न हुई, वीतराग की धारा उत्पन्न हुई, वह हमारा निज वैभव है। यह धूल का वैभव है, वह तो मिट्टी का वैभव है। आहा..!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मिट्टी बाँधे तो क्या मिट्टी से मिट जाता है ? वह तो उसकी पर्याय जब मिटने की होगी, तब मिटेगा। आहा..हा..! मैंने एक बार कहा था न ? हम मुम्बई में आहार लेने गये थे। बड़ा गृहस्थ था, पाँच-छह करोड़ रुपये थे। वहाँ हम आहार लेने गये थे, वहाँ ऐसे कमरे में मखमल बिछाया हुआ था। मणिभाई ! एक लड़का था, वह बेचारा गुजर गया था। क्या नाम ? विजयकुमार। बहुत रुचि, विवाह करने से पहले भी बहुत रुचि थी। टाटा में नौकरी थी। वहाँ मुम्बई में टाटा है न ? है तो जमशेदपुर का, परन्तु वहाँ एक भाग है। वहाँ बड़ा नौकर था। छोटी उम्र। उसे हो गया था.. क्या कहलाता है वह ? किडनी। आहा..! एक वर्ष का विवाह। यहाँ विवाह से पहले आता था। विवाह के बाद भी आया था। बहुत रस था। तुम्हारे दर्शन करने हैं। अन्दर गये तो बेचारे को किडनी का दर्द था। हम सेठ के यहाँ आहार करने गये तो वहाँ गये थे। सेठ के यहाँ आहार करने गये, वहाँ कमरे में सबमें मखमल बिछाया हुआ था। पाँच लाख से ऊपर तो जिसका फर्नीचर है। क्या कहलाता है ? फर्नीचर। मैं तो चरण करने गया। मुझे ऐसा लगा, अरे ! यहाँ से निकलना मुश्किल पड़ेगा। आहा..! मणिभाई है। अपने शान्ताबेन है न ? उनकी बहिन की ननद है। आते हैं, सुनते हैं। पाँच-छह करोड़ रुपये हैं। बड़ी दुकान है, वहाँ अरबस्थान में। पैसा बहुत पैदा होता है। उसमें धूल में क्या आया ? आहा..हा..! वह वैभव तो जड़ का है, श्मशान में हड्डियाँ होती हैं, उनमें चमक उठती है। श्मशान में बहुत लोग मर गये हों तो हड्डियों में से चमक उठती है।

हम छोटी उम्र के थे तब बाहर निकलते थे। दस-बारह वर्ष की उम्र, कोमल शरीर। हम श्मशान में जाने को कहते तो वृद्ध कहते-वहाँ नहीं जाना। क्यों ? वहाँ भूत-व्यन्तर है।

वह चमक होती है न ? हड्डियों की चमक-फाँरफरस (होती है)। वहाँ व्यन्तर है - ऐसा कहकर बालक को जाने नहीं दे। फिर पूछा कि यह क्या है ? हड्डियों की फासफूस.. क्या कहते हैं। फॉरफरस (चमक); इसी प्रकार यह सब चीज़ श्मशान की फॉरफरस (चमक) है। आहा..हा..! बँगला, पैसा, स्त्री, कुटुम्ब, इज्जत-कीर्ति श्मशान के हड्डियों की चमक है। ऐसा अन्तर में भान होने पर.. आहा..हा..! अन्तर में जहाँ आनन्द की बाढ़ आती है। तो राग से वैराग्य है तो मुनिराज तो वैराग्य के महल के शिखर के शिखामणि हैं।

मुनि आत्मा के अभ्यास में परायण हैं। वे बारम्बार आत्मा में जाते हैं। सविकल्पदशा में भी मुनिपने की मर्यादा लाँघकर विशेष बाहर नहीं जाते। मर्यादा छोड़कर विशेष बाहर जायँ तो अपनी मुनिदशा ही न रहे॥१८७॥

१८७ **मुनि आत्मा के अभ्यास में परायण हैं।** आहा..हा..! मुनि तो अन्तर आनन्द स्वरूप के अभ्यास में तत्पर हैं। शास्त्र का अभ्यास भी विकल्प है। आहा..हा..! समझ में आया ? धर्मात्मा मुनिराज तो अपने आनन्दस्वरूप भगवान के अभ्यास में तत्पर-परायण हैं। आहा..हा..! समकिती गृहस्थाश्रम में हो, है तो अपने में तत्पर परन्तु राग बहुत आता है तो उसे जानता है, परन्तु मुनिराज को तो बहुत अल्प राग आता है। संज्वलन कहते हैं। संज्वलन - पंच महाव्रत के विकल्प उठते हैं, वह आत्मा की शान्ति जलाते हैं। आहा..हा..! संज्वलन शब्द है न ? चौथी चौकड़ी है। अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरणीय, प्रत्याख्यानावरणीय। शास्त्र भाषा अलग है। वह संज्वलन। मुनि को अन्दर आनन्द की धारा बहती है। पाताल में से जैसे धारा बहे, वैसे अन्तर में से ध्रुव पाताल में से (आनन्द की धारा बहती है)। दृष्टि वहाँ ध्रुव पर पड़ी है। आहा..हा..! और मुनि को तो ध्रुव का आश्रय बहुत है। समकिती को ध्रुव का आश्रय है परन्तु थोड़ा है। अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान में समीप में गया है तो अन्दर बहुत आनन्द और शान्ति का प्रवाह और धारा बहती है तो वह तो आत्मा के अभ्यास में तत्पर है। आहा..हा..! शास्त्र के अभ्यास में तत्पर है- ऐसा नहीं कहा क्योंकि शास्त्र परवस्तु है। उस ओर का लक्ष्य करने से तो विकल्प आता है। स्वरूप के लक्ष्य से अभ्यास करे, तब तो अन्तर एकाग्रता बढ़ती है। आहा..हा..!

भगवान आत्मा पूर्ण ज्ञानस्वरूप से भरपूर कलश है। अमृत से भरपूर कलश है।

आहा..! इसमें मुनिराज का अभ्यास तत्पर है। **वे बारम्बार आत्मा में जाते हैं।** आहा..हा..! आनन्द का स्वाद आया है न, तो वे बारम्बार अन्दर आत्मा का स्वाद लेने जाते हैं। आहा..हा..! सम्यग्दृष्टि गृहस्थदशा में बारम्बार अन्दर में नहीं जा सकता। उन्हें अन्तर में अनुभव है। मैं सम्यक् में पूर्णानन्द परमात्मतत्त्व हूँ, अल्पज्ञ नहीं, राग नहीं, निमित्त में मैं नहीं परन्तु उसे अभी राग की, तीन कषाय की तीव्रता है तो अन्दर में बारम्बार उपयोग जमता नहीं है, महीने-दो महीने, पन्द्रह दिन, किसी समय अन्तर्मुहूर्त में भी हो जाता है परन्तु मुनिराज तो बारम्बार अन्दर में जाते हैं। आहा..हा..! अतीन्द्रिय आनन्द का पाताल अन्दर भरा है। ऐसा धर्म! उसमें-आत्मा में बारम्बार जाते हैं।

सविकल्पदशा में भी... क्या कहते हैं? मुनि को पंच महाव्रत के विकल्प आते हैं, देव-गुरु-शास्त्र का विनय, भक्ति का भी राग आता है। उस राग की दशा में भी.. है? **मर्यादा लाँघकर विशेष बाहर नहीं जाते।** आहा..हा..! वे तो अकेले पंच महाव्रतादि के विकल्प आते हैं, उतने में जाते हैं, परन्तु उससे आगे नहीं जाते। मैं दूसरे का कल्याण करा दूँ, मैं पाठशाला चला दूँ - ऐसे विकल्प में आगे नहीं जाते। आहा..हा..! **विशेष बाहर नहीं जाते। मर्यादा छोड़कर विशेष बाहर जायँ...** आहा..हा..! **तो अपनी मुनिदशा ही न रहे।** बाहर की सम्हाल करने जाये तो अपनी अन्दर वीतरागदशा न रहे। आहा..हा..! यह १८७ (बोल पूरा हुआ)।

जो न हो सके, वह कार्य करने की बुद्धि करना मूर्खता की बात है। अनादि से यह जीव जो नहीं हो सकता, उसे करने की बुद्धि करता है और जो हो सकता है, वह नहीं करता। मुनिराज को पर के कर्तृत्व की बुद्धि तो छूट गयी है और आहार-विहारादि के अस्थिरतारूप विकल्प भी बहुत ही मंद होते हैं। उपदेश का प्रसंग आये तो उपदेश देते हैं, परन्तु विकल्प का जाल नहीं चलता ॥१८८॥

१८८, **जो न हो सके, वह कार्य करने की बुद्धि करना मूर्खता की बात है।** क्या कहते हैं? शरीर की क्रिया मैं करूँ, हिला सकूँ, मैं बोल सकूँ, मैं पैसा ले सकूँ, मैं पैसा दे सकूँ - यह सब क्रिया अपनी नहीं है, जड़ की क्रिया है। **न हो सके, वह कार्य करने की**

बुद्धि करना... आहा..हा..! कठिन बात है। यह अंगुली चलती है, वह जड़ के कारण चलती है, आत्मा से नहीं। उसमें ऐसी बुद्धि करना कि मैं बराबर शरीर की क्रिया कर सकता हूँ, देखकर पैर रख सकता हूँ, देखकर भाषा मैं कर सकता हूँ, वह मूर्ख है।

मुमुक्षु : भाषासमिति में आता है सावधानी से...

पूज्य गुरुदेवश्री : भाषासमिति में आता है, वह विकल्प है। वह विकल्प आता है, इतना बोले परन्तु है वह राग। आहा..हा..! समझ में आया? उस राग का कर्ता भी नहीं, प्रभु! सूक्ष्म बात है। राग आता है परन्तु ज्ञानी है, वह राग का कर्ता नहीं होता। राग, वह जहर है। आहा..हा..! वीतरागस्वरूप अमृत है। उस अमृत के सागर का जिसे अनुभव हुआ, उसे राग जहर जैसा दिखता है। आहा..हा..! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय अमृत का सागर है, उसका जिसे सम्यग्दर्शन, अनुभव हुआ, उस अनुभव के स्वाद के समक्ष, कमजोरी के कारण राग आता है परन्तु वह जहर जैसा लगता है। दुःख लगता है। आहा..हा..!

विषकुम्भ कहा है। समयसार, मोक्ष अधिकार। प्रतिक्रमण, प्रतिहार और भगवान के दर्शन और प्रतिमा के दर्शन, वह विकल्प है, जहर का घड़ा है-ऐसा कहा है। आहा..हा..! राग है न? अपना स्वरूप तो वीतरागी अमृतस्वरूप है। आहा..हा..! यह कैसे जँचे? आत्मा पवित्र अमृत का सागर है। एक-एक गुण में अमृत भरा है। ऐसे अनन्त अमृत का सागर भगवान का जिसके अन्तर अनुभव हुआ, धर्मदृष्टि हुई; विकारदृष्टि, पर्यायबुद्धि छूट गयी, उसे राग आता है, वह जहर जैसा लगता है। आहा..हा..! और सम्यग्दृष्टि को विषय वासना भी आती है परन्तु जैसे काला नाग देखे, वैसे उस वासना को काला नाग, जहर देखते हैं। आहा..हा..! वासना आती है। शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ चक्रवर्ती थे, तीर्थंकर थे, कामदेव थे - तीन पदवी थी। छियानवें हजार स्त्रियाँ थीं। तीन ज्ञान तो लेकर आये थे और आत्मा का अनुभव, सम्यग्दर्शन लेकर के तो माता के गर्भ में आये थे, फिर छियानवे हजार स्त्रियों के साथ विवाह किया। वह राग आया परन्तु जहर लगता था। आहा..! मैं विवाह करता हूँ तो मुझे सुख मिलेगा - ऐसी बुद्धि धर्मी को नहीं है परन्तु कमजोरी के कारण आत्मा का ज्ञान और आनन्द का स्वाद होने पर भी, राग आता है, उसे जहर देखते हैं। आहा..हा..! ऐसे मुनिराज अथवा कोई भी जीव..

पर का **कार्य करने की बुद्धि करता है...** आहा..हा..! मैं पर का मोक्ष करा दूँ, यह

बुद्धि भी मिथ्यात्व है। बन्ध अधिकार में आता है, चन्दुभाई! मैं पर को बाँधूँ, पर को छुड़ाऊँ – यह तो अज्ञान है। पर तो अपने वीतरागभाव से छूटेगा और रागभाव से बँधेगा। आहा..हा..! ऐसी बहुत कठिन बात है। समझ में आया? मैं पर को जिला सकता हूँ और पर से मैं जी सकता हूँ, यह बुद्धि महामूर्ख की मिथ्यात्व की है। आहा..हा..! क्योंकि पर को जिला सकता है तो तू पर को आयुष्य दे सकता है कि जिला सके? उसकी आयुष्य है, उस प्रमाण वह जियेगा, तू क्या जिला सकता है? और पर को मार सकता हूँ, आहा..हा..! उसकी आयुष्य पूर्ण हुए बिना मरेगा नहीं और तू कहता है कि मैं मार सकता हूँ। (यह) भ्रम अज्ञानी की भ्रमणा है। आहा..हा..!

कहते हैं कि **न हो सके, वह कार्य करने की बुद्धि करना...** आहा..हा..! **मूर्खता की बात है। अनादि से यह जीव, जो नहीं हो सकता उसे करने की बुद्धि करता है...** देश की सेवा करूँ.. मूर्ख है। पर की सेवा कौन कर सकता है? समझ में आया? हमारे व्याख्यान में तो गाँधीजी आये थे। मोहनलाल गाँधी। (संवत्) १९९५ राजकोट में आये थे, व्याख्यान में आये थे, उस समय कहा था कि मैं पर को सुखी कर सकता हूँ... तब चन्दुभाई नहीं थे। तभी कमाने में थे, पढ़ने में होंगे। ये बड़े डॉक्टर हैं। चार-चार घण्टे हमेशा पढ़ते हैं। बहुत अभ्यास और याददाश्त भी बहुत है। वे गाँधीजी आये थे तो मैंने तो ऐसा कहा था, बन्ध अधिकार में से (कहा था)। मैं पर को सुखी कर सकता हूँ, देश की सेवा कर सकता हूँ, जिला सकता हूँ, यह मान्यता मिथ्यादृष्टि अज्ञानी की है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मूर्ख-यह शब्द नहीं कहा था तब। इस शास्त्र का शब्द है न? शास्त्र का पाठ है। समयसार, बन्ध अधिकार। मैं पर को जिलाता हूँ, जिला सकता हूँ, मैं पर की दया पाल सकता हूँ, यह अज्ञान है, मिथ्यात्व है, वह विपरीत बुद्धिवाला है। समझ में आया? आहा..हा..! एक तिनके के दो टुकड़े करना भी मेरी शक्ति नहीं है – यह श्रीमद् कहते हैं। श्रीमद् राजचन्द्र, गृहस्थाश्रम में जवाहरात का धन्धा था। आत्मज्ञानी थे, मुम्बई में थे (संवत्) १९५७ में गुजर गये। १९२४ में जन्म था। ३३ वर्ष की उम्र में गुजर गये परन्तु आत्मज्ञान था, अनुभव था। धन्धा का विकल्प था तो जवाहरात का धन्धा करते थे परन्तु उस राग से भी भिन्न थे। समझ में आया? आहा..हा..! उन श्रीमद् राजचन्द्र के समय गाँधीजी का संयोग था परन्तु उनकी शक्ति को नहीं समझ सके। श्रीमद् की क्या दृष्टि है

और श्रीमद् की क्या दशा है, यह गाँधी नहीं समझ सके। उनका परिचय बहुत था। परदेश में जाकर ईसाई होने की गाँधीजी की तैयारी थी परन्तु इनका परिचय हुआ तो ओहो..! इतनी छोटी उम्र में इतनी बात करते हैं! विलायत से गाँधी उतरे और मिले। आहा..! उनका पानी उतर गया, ओहो..! हिन्दुस्तान में ऐसा बुद्धिवाला! छोटी उम्र में इतनी ताकत! तो ईसाई होने से रह गये। बाहर में नहीं, वहाँ धूल में कुछ नहीं।

ऐसी शक्ति देखकर ईसाई होने की दृष्टि उठ गयी, तथापि मैं पर का कर सकता हूँ, मैंने देश को स्वतन्त्र कर दिया... यह नहीं आया? १५ तारीख न? अगस्त, कितनी है आज? १९। कौन करे? अरे प्रभु! आहा..हा..! इस देश की क्रिया मैं कर सकता हूँ, मैं पर को स्वतन्त्र करा देता हूँ, यह बुद्धि मिथ्याभ्रम, अज्ञान है। समझ में आया?

यह कहते हैं **न हो सके, वह कार्य करने की बुद्धि करना मूर्खता की बात है। अनादि से यह जीव जो नहीं हो सकता उसे करने की बुद्धि करता है...** आहा..हा..! मैं पर को सुखी करूँ, पर को दुःखी करूँ, पर को बाँध दूँ, पर का मोक्ष करा दूँ... आहा..हा..! इस क्रिया का करना, वह अनादि से नहीं कर सकता। (तो भी करने की बुद्धि करे वह) मिथ्यात्वभाव है, महा झूठा-पाखण्डभाव है। समझ में आया? आहा..हा..! मैं यह मन्दिर बना सकता हूँ। यह आया न उसमें? **अनादि से यह जीव जो नहीं हो सकता उसे करने की बुद्धि करता है...** मैं मन्दिर बनाऊँ, ऐसा करूँ, आहा..! क्या बना सके?

मुमुक्षु : मन्दिर नहीं लिखा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब परद्रव्य की बात है। मन्दिर परद्रव्य आया नहीं? सोलहवीं गाथा में नहीं कहा? गाथा **परदव्वादो दुग्गई** मोक्षपाहुड़, कुन्दकुन्दाचार्यदेव दिगम्बर सन्त मुनि ने ऐसा कहा। स्वद्रव्य के अतिरिक्त परद्रव्य पर लक्ष्य जायेगा तो राग होगा, दुर्गति (होगी); तेरी चैतन्यगति नहीं होगी। ऐसी बात है। आहा..हा..! कहो हसमुखभाई! तुम्हारे करोड़ों का बड़ा व्यापार-धन्धा। यह मैंने किया और यह किया और यह किया और वह किया...।

यह तो अन्यमती में एक नरसिंह मेहता हुए हैं। नरसिंह मेहता भगत। उन्होंने कहा है 'हूँ करूँ हूँ करूँ..' नरसिंह मेहता जूनागढ़ के थे। अन्यमत में वैष्णव (थे)। 'हूँ करूँ हूँ करूँ ए ज अज्ञान छे, शटक नो भार जेम श्वानताणे।' गाड़ी होती है न? नीचे कुत्ता हो

तो उसकी गर्दन छूती है। गाड़ी तो बैल से चलती है। अभी तो दृष्टान्त देना है, परन्तु कुत्ता ऐसा जानता है कि मुझसे चलती है।

इसी प्रकार दुकान पैड़ी पर बैठकर यह व्यापार-धन्धे की क्रिया मैं कर सकता हूँ, वह कुत्ते जैसा है। मुनि को कहाँ पड़ी है कि तुम्हें ठीक लगेगा या नहीं लगेगा, तुम्हारी इच्छा। कहो, सेठ! इसे यही सेठाई का धन्धा है। क्या कहलाता है वह? सर्राफ.. सर्राफ। सर्राफ का धन्धा है। आहा..हा..! अरे! एक रजकण, तिनके के दो टुकड़े मैं कर सकता हूँ - यह अज्ञानी की भ्रमणा-मिथ्यात्व है। आहा..हा..!

यह कहते हैं **अनादि से यह जीव जो नहीं हो सकता, उसे करने की बुद्धि करता है और जो हो सकता है...** अपने आनन्द और ज्ञान का अनुभव हो सकता है। अपना ज्ञानस्वरूपी भगवान में जाकर एकाग्र हो सकता है, वह नहीं किया। आहा..हा..! 'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन स्वयं ज्योति सुखधाम' श्रीमद् का वाक्य है। श्रीमद् राजचन्द्र। 'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन' शुद्ध अर्थात् पवित्र, बुद्ध अर्थात् ज्ञान का सागर। चैतन्यघन अर्थात् असंख्य प्रदेशी। स्वयं ज्योति। अपनी ज्योति अपने से अनादि से है और सुखधाम-अतीन्द्रिय आनन्द का वह स्थान है। 'बीजु कहिये केटलु कर विचार तो पाम।' तुझे दूसरा क्या कहें? कहते हैं। श्रीमद् राजचन्द्र, आहा..हा..! उस समय हिन्दुस्तान में इतने क्षयोपशमवाला पुरुष दूसरा कोई नहीं था। इतना क्षयोपशम! बहुत बुद्धि, बहुत बुद्धि! ३३ वर्ष में देह छूट गया। २२ वर्ष में आत्मज्ञान हुआ था, २२ वर्ष में आत्मज्ञान हुआ था और १६ वर्ष की उम्र में ऐसा कहा 'बहु पुण्य पुंज प्रसंग से शुभदेह मानव का मिला।' शुभ, पूर्व के पुण्य के कारण तुझे देह मिला। आहा..! 'बहु पुण्य पुंज प्रसंग से शुभदेह मानव का मिला, तो भी अरे भवचक्र का फेरा नहीं एकहि टला।' आहा..हा..! प्रभु! तुझे ऐसा मनुष्यभव मिला तो भवचक्र का एक चक्र नहीं छोड़ा। आहा..हा..! एक छोड़े तो अनन्त छूट जाते हैं। मिथ्यात्व छूटने से, सम्यग्दर्शन होने से भवचक्र रुक जाता है। समझ में आया?

'लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी पर बढ़ गया क्या बोलिये।' गृहस्थाश्रम में देह की सोलह वर्ष की उम्र। देह की उम्र है न? आत्मा की उम्र (नहीं है)। आत्मा तो अनादि-अनन्त है। 'लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी पर बढ़ गया' लक्ष्मी बहुत बढ़ गयी, अधिकार मिला, महीने-महीने में पचास हजार का वेतन मिले, वैसा अधिकार हुआ। 'लक्ष्मी बढ़ी

अधिकार भी पर बढ़ गया क्या बोलिये।' प्रभु! यह तुझे क्या बढ़ा। आहा...!'बढ़ गया क्या बोलिये' आहा..हा..!'संसार का बढ़ना अरे नरदेह की यह हार है, नहीं एक क्षण उसका अहो तुझको विवेक विचार है।'—ऐसा कहते हैं। आहा..! आहा..हा..! क्या बढ़ा? अरबों रुपये मिले। आठ लड़के, आठ। एक लड़का पाँच-पाँच, दस-दस लाख की आमदनीवाला, और एक लड़के को करोड़ों, अरबोंपति की लड़की पच्चीस-पचास लाख लेकर आती है। तुझे क्या बढ़ा? आहा..! संसार बढ़ा। आहा..हा..! संसार में भटकना बढ़ा, भाई! भगवान तो इस प्रवृत्ति और राग की प्रवृत्ति से भी भिन्न है। आहा..हा..!

जो नहीं हो सकता, उसे करने की बुद्धि करता है और जो हो सकता है वह नहीं करता। आहा..हा..! **मुनिराज को पर के कर्तृत्व की बुद्धि तो छूट गयी है...** देखो! समकिती को भी पर के कर्तृत्व की बुद्धि तो छूट गयी है परन्तु राग विशेष आता है और मुनिराज को तो पर की कर्तृत्वबुद्धि छूट गयी है और राग बहुत मन्द हो गया है। आहा..हा..! वीतरागी बिम्ब हो गये हैं। जिनबिम्ब। ऐसे अन्तर में वीतरागी बिम्ब हो गये हैं। आहा..हा..! **और आहार-विहारादि के अस्थिरतारूप विकल्प भी बहुत ही मंद होते हैं।** आहार और विहार का विकल्प / वृत्ति बहुत मन्द होते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द में रमते, झूलते.. आहा..हा..! राग बहुत मन्द हो गया है और वीतरागी आनन्द की क्रीड़ा में (लीन हुए हैं)।

'निज पद रमै सो राम कहिये।' निज आनन्दस्वरूप में रमे, वह राम; बाकी राग में रमे, वह हराम। समझ में आया? आहा..हा..! कठिन बात है। आनन्दघनजी हुए हैं, उन्होंने गायन बनाया है। यहाँ तो सब देखा है न! करोड़ों श्लोक श्वेताम्बर के और भजन सब देखा है, बहुत देखा है। आनन्दघनजी में ऐसा एक पद आया है।'निज पद रमै सो राम कहिये।' अपने आनन्दस्वरूप में रमे, वह राम और आतमराम कहिये। बाकी राग में रमे वह हरामी, हराम कहिये।'कर्म कृषे सो कृष्ण कहिये।' कृष्ण किसे कहते हैं? जो राग को कस डाले, नाश कर डाले और अपनी शक्ति प्रगट कर दे, वह कृष्ण है। कृष्ण थे, वे समकिती थे। कृष्ण जो वासुदेव थे, वे आत्मज्ञानी थे। वे आत्मज्ञान में थे। अभी तीन कषाय रही थी और नरक गति की आयु बँध गयी, वह बात कुछ नहीं परन्तु वे आत्मा में हैं। अभी भी वहाँ हैं परन्तु आत्मा में हैं। आहा..हा..! वासुदेव कृष्ण कहते हैं न? अपने आनन्दस्वरूप में दृष्टि, अनुभव हुआ था। बाहुबली और भरत दोनों भाई, दोनों को आत्मज्ञान था, तथापि राग आया तो युद्ध में आ गये। तथापि वह युद्ध की क्रिया मैं कर सकता हूँ - ऐसा नहीं मानते थे। राग

आया, वह मेरा कर्तव्य है – ऐसा नहीं मानते थे। अरे! समझ में आया? यह वीतराग का मार्ग, भाई! लोगों को अभी सुनने को नहीं मिलता। अभी तो यह करो, व्रत करो, तप करो, भक्ति करो, पूजा करो, मन्दिर बनाओ, रथ निकालो और गजरथ निकालो (– ऐसा ही सुनने को लिता है)।

मुमुक्षु : जगह कम पड़ती है तो बड़ा मन्दिर बनाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह इससे बना है? वह तो अभी बैंगलोर में कहा नहीं? पन्द्रह लाख का ऐसा मन्दिर बना है। आज नहीं आये। गांगुली आनेवाला है। कलकत्ता, होम्योपैथी का बड़ा डॉक्टर है। ४९ वर्ष की उम्र है, बाल ब्रह्मचारी है, सुन्दर शरीर है, बहुत रूपवान है। यहाँ पाँच बार आ गया। खबर है? कलकत्ता, नहीं? कलकत्ता में (एक) गांगुली नाम का होम्योपैथी का वैद्य है, आज आनेवाला है ऐसा सुना है। वह है तो अन्यमति–वैष्णव परन्तु यहाँ सुना तो सुनकर ऐसा लगा, ओहो! यह क्या? बहुत पैसा कमाता है। ब्रह्मचारी है, स्त्री नहीं, पैसा बहुत कमाता है, राजकुमार जैसा शरीर है। सब पैसा दया और उसमें दे देता है। (हमने) कहा – पैसा देना, वह तुम्हारा अधिकार है? पैसे तुम्हारे हैं? और पैसे देने में कदाचित् राग मन्द हुआ तो वह पुण्य है, राग है, वह बन्ध का कारण है। आहा..हा..! सुनता था। पाँच बार आ गया है। उसने बैंगलोर में मन्दिर देखा। अभी पन्द्रह लाख का नया मन्दिर मुमुक्षु की ओर से बना है। एक भभूतमल नाम का श्वेताम्बर है, उसके पास दो करोड़ रुपये हैं। भभूतमल श्वेताम्बर था, अब दिगम्बर हो गया। अब तो बहुत हो गये हैं, विदेश में भी बहुत हो गये हैं। उसने आठ लाख रुपये डाले थे। बैंगलोर में आठ लाख और दूसरा एक स्थानकवासी जुगराजजी मुम्बई में है। उनका महावीर मार्केट है, वह करोड़पति है, स्थानकवासी है। उसने चार लाख दिये। बारह लाख का बना है। ऐसा दिखाव.. आहा...! वैद्य वैष्णव, (वह) देखकर प्रसन्न हो गया। ओहो..हो..! मैं एक हजार रुपया देता हूँ... परन्तु है वह शुभभाव। भगवान का स्मरण करना, वह भी शुभभाव है। उस शुभभाव में रंग जाये और मेरा कर्तव्य है (–ऐसा माने) तो मिथ्यादृष्टि है। सत्यदृष्टि नहीं, झूठीदृष्टि है। आहा..हा..! मैं ज्ञान जाननेवाला–देखनेवाला (हूँ); राग करूँ –वह मेरी वस्तु में है ही नहीं। आहा..हा..!

इसी प्रकार मुनिराज को **पर के कर्तृत्व की बुद्धि तो छूट गयी है और आहार–विहारादि के अस्थिरतारूप विकल्प भी बहुत ही मंद होते हैं। उपदेश का प्रसंग आये**

तो उपदेश देते हैं, परन्तु विकल्प का जाल नहीं चलता। विकल्प पर विकल्प, विकल्प पर विकल्प – ऐसा नहीं चलता। आहा..हा..! विकल्प शब्द से राग। राग.. राग.. राग.. राग.. ऐसा नहीं होता। अन्दर में घुस जाते हैं तो वीतरागता हो जाती है। उपदेश देते-देते भी अन्दर घुस जाते हैं। आहा..हा..! ऐसी बात! क्योंकि उन्हें छठवाँ सातवाँ गुणस्थान हजारों बार आता है। प्रमत्तदशा अनुभव में होवे तो विकल्प है, वह छूटकर तुरन्त अप्रमत्तदशा आनन्द में आ जाते हैं, लोग ऐसा देखे कि उपदेश देते हैं, परन्तु अन्दर आनन्द में आ गये होते हैं। पौन सेकेण्ड के आधे भाग में अन्दर जाते हैं और पौन सेकेण्ड के भाग में छठवें गुणस्थान में आते हैं। सूक्ष्म बात है, भाई! आहा..हा..! अभी मुनि की दशा क्या है, यह खबर नहीं। केवलज्ञानी कैसे होते हैं, इसकी खबर नहीं। मैं मेरी वस्तु में कैसा हूँ, इसकी खबर नहीं। आहा..हा..!

मुमुक्षु : नींद नहीं आती?

पूज्य गुरुदेवश्री : नींद पौन सेकेण्ड। छहढाला में नहीं आया? छहढाला में 'पिछली रयनि में एक आसन...' छहढाला में आता है? है न? 'पिछली रयनि में एक आसन' बस! आसन बदलता नहीं। छठे गुणस्थान में पौन सेकेण्ड जितनी नींद आ जाती है परन्तु तुरन्त जागृत-अप्रमत्तदशा हो जाती है। एक मिनिट भी यदि नींद आ जाये तो मुनिपना नहीं रहता, बापू! यह चीज़ किसे कहें! लोगों को कहाँ कुछ खबर है? मुनि कौन? समकित कौन? आहा..हा..!

मुमुक्षु : परन्तु लोग करें क्या? उन्हें उपदेश ऐसा मिला?

पूज्य गुरुदेवश्री : उपदेश मिला परन्तु स्वयं की पात्रता अज्ञान था तो ऐसा उपदेश मिला न? भगवान बिराजते हैं, वहाँ क्यों नहीं गया? महाविदेह में साक्षात् परमात्मा बिराजते हैं। आहा..हा..! स्वयं की योग्यता नहीं है.. उपदेश मिला अज्ञान का तो उसने स्वीकार लिया। तप करो, व्रत करो, भक्ति करो, तुम्हारा कल्याण होगा। यह उपदेश ही मिथ्यात्व का है। समझ में आया?

उपदेश का प्रसंग आये तो उपदेश देते हैं,... धर्म के लोभी जीव को देखकर (उपदेश देते हैं)। मोक्षमार्गप्रकाशक में टोडरमलजी ने कहा है।

आता है? मोक्षमार्गप्रकाशक, टोडरमलजी। धर्म के लोभी देखकर, मुनि को जरा

शुभराग आता है। आहा..हा..! अपनी कमजोरी के कारण (आता है) परन्तु उसे छोड़कर तुरन्त अन्दर घुस जाते हैं। आहा..हा..! उपदेश से मुझे लाभ होगा और दूसरे को मुझसे लाभ होगा – ऐसी मान्यता नहीं है। आहा..! बात में बहुत अन्तर है। बात-बात में अन्तर है। भगवान त्रिलोक के नाथ, जिनेश्वरदेव का मार्ग कोई अलौकिक है, भाई! यहाँ कहते हैं **विकल्प का जाल नहीं चलता।** आहा..हा..!

अपनी दृष्टि की डोर चैतन्य पर बाँध दे। पतंग आकाश में उड़ायें परन्तु डोर हाथ में रहती है, उसी प्रकार दृष्टि की डोर चैतन्य में बाँध दे, फिर भले उपयोग बाहर जाता हो। अनादि-अनन्त अद्भुत आत्मा का—परम पारिणामिक भावरूप अखण्ड एक भाव का—अवलम्बन ले। परिपूर्ण आत्मा का आश्रय करेगा तो पूर्णता आयेगी। गुरु की वाणी प्रबल निमित्त है परन्तु समझकर आश्रय तो अपने को ही करना है॥१८९॥

१८९ **अपनी दृष्टि की डोर चैतन्य पर बाँध दे।** तात्विक बात आयी है। भगवान चैतन्य ध्रुवस्वरूप भगवान आत्मा... है? **अपनी दृष्टि की डोर...** जैसे पतंग की डोर, (पतंग) उड़ती है परन्तु डोर अपने हाथ में रखता है। इसी प्रकार धर्मी जीव अपनी दृष्टि की डोर चैतन्य पर बाँध लेता है। अपनी दृष्टि ध्रुव पर बाँधी है। ध्रुव पर जोड़ दी है। आहा..हा..! सम्यग्दृष्टि उसे कहते हैं कि जिसने ज्ञायकभाव ध्रुव है, उस पर दृष्टि लगा दी है। चाहे तो विकल्प आता हो परन्तु दृष्टि ध्रुव पर है, वह हटती नहीं। खसती नहीं, उसे हिन्दी में क्या कहते हैं? हटती नहीं। आहा..हा..!

अपनी दृष्टि की डोर चैतन्य पर बाँध दे। प्रभु! यदि तुझे कल्याण करना हो तो। आहा..हा..! संयोग से लक्ष्य छोड़ दे, दया, दान का विकल्प आता है, उससे भी लक्ष्य छोड़ दे, एक समय की पर्याय का अस्तित्व है, उसका लक्ष्य छोड़ दे। आहा..हा..! त्रिकाली चैतन्य भगवान पर डोर लगा दे।

मुमुक्षु : किस प्रकार लगाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : अपनी पर्याय को वहाँ जोड़ दे।

मुमुक्षु : किस प्रकार से?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तर्मुख होकर जोड़ दे।

मुमुक्षु : अन्तर्मुख किस प्रकार से होवे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तर्मुख तो करनेवाले को पता पड़े या दूसरा कर दे ? अपनी पर्याय जो वर्तमान में चलती है, वह परसन्मुख के लक्ष्यवाली है, वह छोड़ दे और त्रिकाली ज्ञायकभाव पर दृष्टि जोड़ दे। जोड़ दे, यह कैसे करना ? आहा..हा..!

कलश टीका में कहा है, क्या कहें ? अनुभव कैसे करना, यह बात चलती नहीं परन्तु इतना कहते हैं कि ज्ञान का परिणमन होता है, वह अनुभव है। कलश टीका में है। समझ में आया ? आहा..हा..! ज्ञान शब्द से आत्मा। भगवान पूर्ण आनन्द और ज्ञान की जो वस्तु है, उसकी अन्तर्मुख होकर दृष्टि होना, अनुभव होना, उस स्वभाव सन्मुख डोर लगा दी। त्रिकाली ज्ञायकभाव पर दृष्टि जोड़ दी। आहा..हा..! सूक्ष्म बात है, भाई! यह धर्म कोई ऐसी वस्तु नहीं है कि ऐसे का ऐसा हो जाये कि मैं दया पालता हूँ और मैं व्रत करता हूँ। दया मण्डली का नायक हूँ; इसलिए धर्म हुआ। धूल में भी कहीं नहीं है। समझ में आया ? अन्तर आनन्द का नाथ निर्विकल्प चैतन्यवस्तु पड़ी है, वर्तमान पर्याय को वहाँ जोड़ दे। पर्याय-अवस्था परसन्मुख है, उसे स्वसन्मुख कर दे। आहा..हा..! भाषा में क्या आवे ? है ?

दृष्टि की डोर चैतन्य पर बाँध दे। पतंग आकाश में उड़ायें परन्तु डोर हाथ में रहती है, उसी प्रकार दृष्टि की डोर चैतन्य में बाँध दे,... आहा..! ज्ञायकस्वभाव त्रिकाल है, वहाँ दृष्टि लगा दे। पर्याय में जो बुद्धि है, वह मिथ्याबुद्धि है, क्योंकि एक समय में पूरा आत्मा आ नहीं जाता। एक समय के अंश को आत्मा मानना, वह मिथ्यात्व है। उसे छोड़कर, त्रिकाली ज्ञायकभाव ध्रुवस्वभाव पर दृष्टि / पर्याय को लगा दे। फिर भले विकल्प आवें, परन्तु दृष्टि ध्रुव पर है, वह हटती नहीं। आहा..हा..! उसका नाम धर्मी और सम्यग्दृष्टि कहने में आता है।

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण -२, रविवार, दिनाङ्क २०-०८-१९७८
वचनामृत-१८९ - १९० प्रवचन-७०

१८९, एक लाईन चली है। भगवन्तस्वरूप ऐसी वस्तु है, वह वस्तु अन्दर द्रव्य जो स्वभाव त्रिकाल ध्रुव रहनेवाली चीज़, उस पर दृष्टि दे तो तेरे ध्रुव का स्वीकार यथार्थ होगा और तेरा कल्याण मार्ग का पन्थ खुलेगा। सूक्ष्म है, भाई! कभी अभ्यास किया नहीं। है? **अपनी दृष्टि की डोर चैतन्य पर बाँध दे।** आहा..हा..! चैतन्यरस ज्ञायकभाव—जो निमित्त से भी भिन्न, राग के विकल्प से, दया-दान के विकल्प से भी भिन्न और एक समय की वर्तमान अवस्था से भी भिन्न ऐसी चीज़ आत्मा है। पूर्णानन्द पूर्ण ज्ञानघन अभेद एक ध्रुव है, वहाँ दृष्टि लगा दे। बाकी सब बातें हैं। आहा..हा..! सूक्ष्म बात है, भाई! इसने कभी किया नहीं और कहा, वह इसने माना नहीं। आहा..हा..!

जिसे आत्मा का कल्याण करना हो तो पहले तो अपनी दृष्टि की डोर चैतन्य पर बाँध दे। आहा..हा..! चैतन्य जो ध्रुव वस्तु अन्दर है, उसकी वर्तमान अवस्था पलटती है परन्तु कायम रहनेवाली जो चीज़ है, अविनाशी अनादि अनन्त नित्य प्रभु.. आहा..हा..! उस पर दृष्टि लगा दे-ऐसा कहते हैं। है? डोर, **दृष्टि की डोर चैतन्य पर बाँध दे।** आहा..हा..! यह काम है।

पतंग आकाश में उड़ायें परन्तु डोर हाथ में रहती है,... पतंग उड़ती है परन्तु डोर हाथ में रहती है। इसी प्रकार आत्मा में पुण्य और पाप आदि विकल्प हों, तथापि डोर, जो ध्रुव है, उसकी दृष्टि नहीं छूटती। आहा..! ऐसी बात भारी कठिन! जो पूर्णानन्द प्रभु है, उस पर डोर लगा दी, फिर भले वह शुभभाव में आवे परन्तु द्रव्य में दृष्टि लगा दी, वहाँ से दृष्टि हटती नहीं। सूक्ष्म है, भगवान! आहा..हा..!

उसी प्रकार... पतंग उड़ती है, तथापि डोर तो हाथ में रहती है। **उसी प्रकार दृष्टि**

की डोर चैतन्य में बाँध दे,... आहा..हा..! श्रद्धा का विषय जो चैतन्यस्वरूप भगवान पूर्ण है, वहाँ दृष्टि की डोर लगा दे। आहा..! कठिन काम, भाई! क्रियाकाण्ड के जितने परिणाम हैं... भाषा सरल है, भाई! वस्तु अलौकिक है। आहा..हा..! अनन्त काल में कभी किया नहीं और जो किया, वह तो सब पुण्य और पाप के भाव किये। वह तो दुःख का वेदन है। उस दुःख के वेदन में वर्तमान दुःख है और भविष्य में भी उसका फल दुःख का वेदन है। आहा..हा..! इस कारण से प्रभु! अन्दर कोई पूर्ण चीज़ आत्मा है या नहीं? आत्मतत्त्व है या नहीं? वह तत्त्व है, वह त्रिकाली ध्रुव है, चाहे भले वर्तमान पर्याय-अवस्था पलटती हो, पर्याय में हलचल हो परन्तु वस्तु ध्रुव है, उसमें हलचल नहीं। हलचल नहीं अर्थात् वह पलटती नहीं और पलटती दशा में हलचलरहित चीज़ आती नहीं। आहा..हा..! ऐसी बात है, प्रभु! महँगा लगे परन्तु वस्तु तो यह है, बाकी तो सब संसार के रास्ते अनादि से कर रहा है, भाई! वह कहीं नयी वस्तु नहीं है। आहा..हा..! आहा..!

चैतन्य में बाँध दे, फिर भले उपयोग बाहर जाता हो। आहा..हा..! फिर भले पर्याय में-शुभभाव में आता हो परन्तु डोर दृष्टि बँधी है, वह हटती नहीं। चाहे तो अशुभभाव भी आते हैं, तथापि दृष्टि की डोर जो द्रव्य पर लगी है, वह हटती नहीं। आहा..! समझ में आया? **फिर भले उपयोग बाहर जाता हो।** आहा..हा..! पर की क्रिया करता है, यह बात तो यहाँ है नहीं परन्तु अपनी पर्याय में उपयोग शुभाशुभभाव में जाता है, तथापि दृष्टि में विषय पुण्य-पाप भाव नहीं है और उसकी पर्याय जो जाननेवाला ज्ञान है, वह भी दृष्टि का विषय नहीं है। आहा..हा..! दृष्टि की डोर ध्रुव पर बाँध दे। गांगुली जी यह ऐसी कोई अलग वस्तु है। ये तीन डॉक्टर बैठे हैं। दाँत का डॉक्टर है, बत्तीसी का। मुम्बई का बड़ा डॉक्टर है, यह बैठा है न लालचन्द भाई के पास? बड़ा डॉक्टर है, हों! वैसे दिखता है शान्त परन्तु यह संसार का डॉक्टर है। आहा..हा..!

प्रभु! तू ध्रुव वस्तु अन्दर है या नहीं? कायम रहनेवाला आत्मतत्त्व है या नहीं? या वर्तमान पर्याय पलटती है, उसमें ही पूरा तत्त्व आ जाता है? आहा..हा..! उस पर्याय को त्रिकाल ध्रुव में लगा दे। बात तो भाषा सादी है परन्तु भाई! यह चीज़ अनन्त पुरुषार्थ माँगती है, अनन्त पुरुषार्थ। आहा..हा..! चाहे तो शास्त्र का ज्ञान किया हो और शुभभाव इतने किये हों कि लाखों-करोड़ों रुपये खर्च किये, दान, दया पालन किये हों, व्रतादि पालन किये हों परन्तु वह सब राग, क्लेश और दुःख है। युगलजी! ऐसी बात है।

तुझे आत्मा का हित करना हो तो दृष्टि ध्रुव पर लगा दे। आहा..हा.. ! भाषा तो बहुत (सादी है)। भूतार्थ-ग्यारहवीं गाथा में आता है न ? यह तो सादी गुजराती भाषा है।

मुमुक्षु : लोग ऐसा कहते हैं कि आपकी वाणी पचाना और सोनगढ़ का पानी पचाना दोनों कठिन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे भाई कहते थे। यहाँ का पानी थोड़ा भारी है। लोह.. लोह.. लोह.. लोहवाला पानी है। पत्थर में से पानी आता है न, इसलिए जरा लोह है। खबर है। परन्तु यह तो वस्तु भगवान.. आहा.. !

यह प्रश्न उठा था, (संवत्) १९८६ के साल में। १९८६, अमरेली। यहाँ थे न रामजीभाई कामाणी थे ? उस समय तो दस लाख थे अभी तो उनके लड़के को सात, आठ-दस करोड़ रुपये हो गये हैं। हमारा चातुर्मास था तो तीनों भाई आये थे। रामजीभाई, उससे छोटा.. क्या नाम ? नरभयरामभाई उससे छोटा गिरधरभाई। अब तो तीनों गुजर गये। वहाँ चातुर्मास था तो आये थे। उस समय १९८६ के साल। कितने वर्ष हुए ? ४८ वर्ष, ५० में २ कम। उनके पास उस समय दस-पन्द्रह लाख थे। अब तो आठ-दस करोड़ हो गये। वे सुनने आये थे। उस समय के दस लाख अर्थात् ? अभी के पच्चीस गुने गिनना। वे तीनों भाई बैठे थे। व्याख्यान चलता था। व्याख्यान में ऐसा कहा, भाई ! यह राग की क्रिया भी दुःखरूप है। इससे भिन्न भगवान अन्दर है। हम बड़े पैसे वाले हैं और पैसा खर्च करते हैं... उस समय पैसा बहुत खर्च करते थे। लाखों रुपये दान में देते थे। लाखों रुपये। अन्तिम स्थिति में आये थे, तब कह गये थे—महाराज ! मुझे यहाँ रहने का भाव है परन्तु पैसा बहुत खर्चते थे। लोगों ने बाँध दिया, निवृत्ति नहीं। लाखों रुपये देते थे। खोजने में, इसमें-उसमें... अन्तिम स्थिति में तो बहुत करोड़ हो गये थे।

यह बात सुनकर ऐसा कहा - महाराज ! यह बात पचती नहीं। पचना मुश्किल है। ४८ वर्ष पहले (ऐसा कहा)। तो मैंने ऐसा कहा - प्रभु ! हमेशा रोटी खाते हो। बाजरे की, गेहूँ की, उस समय मेसूर आ जाये, चार सेर घी पिलाया हुआ मेसूर आ जाये तो इनकार करते हो कि मुझे नहीं पचेगा ? तीनों सेठ बैठे थे। १९८६ के चातुर्मास में हमने सब दिगम्बर शास्त्र रखे थे तो मैंने सब दिगम्बर शास्त्र पढ़े। वहाँ रखे थे। क्योंकि जहाँ महाराज हो, वहाँ शास्त्र दिगम्बर होंगे तो महाराज अधिक रहेंगे। पुस्तकें अलमारी में भर दी थीं।

बड़े गृहस्थ थे। वहाँ साथ में चितड़ है, वहाँ भी रहे हैं। महीने में पन्द्रह दिन जाते थे। वहाँ भी दिगम्बर पुस्तकें रखी थीं। जहाँ दिगम्बर शास्त्र होंगे, वहाँ महाराज अधिक रहेंगे।

उसने कहा, महाराज! यह पचता नहीं, हों! रागरहित वस्तु शुद्ध चैतन्यघन की दृष्टि करना, वह पचता नहीं। प्रभु! हमेशा रोटी खाते हो और बाजरे की रोटी, गेहूँ की रोटी, पूड़ी आदि (खाते हो), उसमें मेसूर आ जाये तो इनकार करते हो कि मुझे नहीं पचता? भले थोड़ा खाये। मेसूर समझे? चने का आटा एक सेर और चार सेर घी पिलाकर बनावे, उसे मेसूर कहते हैं। चने का आटा। उसे क्या कहते हैं? और एक गेहूँ का बनता है। गेहूँ होता है न? गेहूँ, एक सेर गेहूँ का आटा और चार सेर घी पिलावे, उसे शक्करपारा कहते हैं। हमने तो सब देखा है।

हमारे (संवत्) १९८१ का चातुर्मास गढ़डा में था, संवत् १९८१, वहाँ जीमणवार किया था तो वहाँ शक्करपारा बनाया था। शक्करपारे का अर्थ - एक किलो आटा और चार किलो घी पिलाकर बनावे, उसे शक्करपारा कहते हैं। और एक सेर चने का आटा और चार सेर घी पिलावे, उसे मेसूर कहते हैं। ऐसी कोई शक्करपारा जैसी चीज़ आ जाये तो इनकार करते हो कि मुझे नहीं पचता? भले थोड़ा, परन्तु मुझे पचेगा, पचेगा, लाओ, लाओ। तीनों सेठ बैठे थे। तीनों बहुत पैसेवाले थे। नरभयराम भाई जमशेदपुर, रामजीभाई मुम्बई, गिरधरभाई जमशेदपुर रहते थे। तीनों गुजर गये। आहा..!

भाई! नहीं पचे, ऐसा नहीं होता। अनुकूल चीज़ मिली.. अरे! रसगुल्ला मिले, दूध का रसगुल्ला आता है न? रोटी न मिले और रसगुल्ला आवे तो इनकार करता है? भले थोड़ा परन्तु खायेगा, पचेगा। इसी प्रकार यह चीज़ ऐसी है, प्रभु! कभी सुनी नहीं, कभी अनुभव नहीं किया। आवे तो इनकार नहीं करना। थोड़ा भी पचेगा, ऐसा कहना। यह तो १९८६ की बात है। कितने वर्ष हुए? पचास में दो कम। हमारे तो पहले से यह चलता है। करोड़पति आते हैं, अरबपति आते हैं। बात तो यह है, भाई! बाकी सब तुम्हारी धूलधाणी है। हमारे वैद्यराज डॉक्टर ने पकड़ा न? राग से भिन्न, राग तो ज्ञेय है। उन्होंने पकड़ लिया। अभी तो राग किसे कहा जाता है, इसकी खबर नहीं। पर की दया का भाव, पाँच-पचास लाख धर्म के नाम से खर्च करने का भाव, यह सब राग है, यह सब विकल्प है, राग है, वृत्तियाँ है; यह आत्मा का स्वरूप नहीं है। आहा..हा..!

यहाँ कहते हैं, आहा..! यह तो बहिन के शब्द हैं। **फिर भले उपयोग बाहर जाता हो।** चैतन्यमूर्ति अन्तर ध्रुवभगवान, अनन्त गुण का अद्भुत सागर पड़ा है, प्रभु! तुझे खबर नहीं है। आहा..हा..! कैसा है आत्मा? **अनादि-अनन्त अद्भुत आत्मा...** आहा..हा..! आदि नहीं, अन्त नहीं—ऐसा प्रभु अनादि-अनन्त ध्रुव नित्यानन्द नाथ, ऐसा जो आत्मा, आहा..हा..! **परम पारिणामिक भावरूप अखण्ड एक भाव...** जरा शास्त्र भाषा है। परम पारिणामिक अर्थात् परम सहजात्मस्वरूप। आहा..हा..! सहजस्वरूप त्रिकाली, जिसमें पलटना नहीं, जिसमें राग नहीं, जिसमें संयोग नहीं - ऐसा जो सहजस्वभाव, उसे यहाँ पारिणामिक कहते हैं। ऐसी भाषा! सहज परम पारिणामिकभावरूप भगवान अखण्ड एक भाव। आहा..हा..! धर्मी जीव की दृष्टि में तो उसे यह अखण्ड आत्मा परम स्वभावभाव वह दृष्टि में आता है। आहा..हा..! और वह दृष्टि न हो और चाहे तो शास्त्र ज्ञान करे तथा दया, दान, व्रतादि करे, सब मिथ्यात्व है। यह कहा?

अनादि-अनन्त प्रभु अन्दर वस्तु जो आत्मतत्त्व है, अद्भुत आत्मा है। आहा! वह चैतन्य-चमत्कार से शक्ति के गुण से भरपूर प्रभु है परन्तु यह अन्तर्मुख दृष्टि करे तो ख्याल में आता है। समझ में आया? ऐसी बात है, भाई! आहा..हा..! अद्भुत आत्मा का परम स्वभावभावरूप अखण्ड एक भाव का अवलम्बन ले। आहा..हा..! नित्यानन्द के समीप जा। उसके पक्ष में जा। पर्यायबुद्धि का पक्ष (छोड़ दे)। पड़खा का तो क्या कहते हैं? पक्ष। इस ओर जो पर्यायबुद्धि का (झुकाव) है, उसे छोड़कर द्रव्यबुद्धि में जा। जैसे दायीं बाजू सोता है न? फिर थकान लगे तो यह बाजू (बदलता है)। बायीं बाजू बहुत सोवे तो दायीं बाजू फिरता है। वापस पहलू बदलता है। इसी प्रकार तेरी पर्याय-अवस्था राग पर दृष्टि है, वह मिथ्यादृष्टि है। उस दृष्टि का विषय, सम्यग्दर्शन जो है, उस सम्यग्दर्शन का विषय अखण्ड परमात्मस्वभाव है, वहाँ पर्याय को ले जा। अरर..! ये क्या है? करना क्या इसमें? ऐई! हसमुखभाई! यह तुम्हारे करोड़ों के व्यापार-फ्यापार सब धूल धाणी है - ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! वह तो जड़ की पर्याय है। प्रभु! वह तेरी नहीं और तुझसे होती नहीं। तुझसे यह होता है कि अपना स्वरूप भूलकर शुभ और अशुभभाव / राग का विकार होता है, वह अज्ञानभाव और मिथ्यात्वभाव है। आहा..हा..!

परिभ्रमण में चौरासी के अवतार करना छोड़ना हो तो तेरी वर्तमान दृष्टि अन्तरतत्त्व में ले जा। आहा..! जहाँ पाताल में अनन्त ज्ञान-अनन्त दर्शन-अनन्त आनन्द (भरे हैं)।

वर्तमान पर्याय में ज्ञायक.. ज्ञायक.. ज्ञायक.. ज्ञायक.. आहा..हा..! वहाँ दृष्टि ले जा। तुझे सम्यग्दर्शन होगा। धर्म की पहली सीढ़ी प्रगट होगी, बाकी तो भटकने का भाव है। आहा..! समझ में आया?

अवलम्बन ले। परिपूर्ण आत्मा का आश्रय करेगा... परिपूर्ण स्वरूप है, द्रव्य जो चीज़ है, वह तो परिपूर्ण चीज़ है। अन्यमत में भी वेदान्त में ऐसा कहते हैं, पूर्णम् इदम्, त्रिकाली स्वरूप है, वह पूर्ण इदम् - पूर्ण है। समझ में आया? आहा..! **परिपूर्ण आत्मा का...** परिपूर्ण-सम्पूर्ण / समस्त प्रकार से ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि शक्ति की पूर्णता से (भरपूर है)। आहा..हा..! **परिपूर्ण आत्मा का आश्रय करेगा...** त्रिकाली ज्ञान और आनन्द प्रभु का आश्रय करेगा, उसका अवलम्बन लेगा, उसका पर्याय में आधार लेगा.. आहा..हा..! **तो पूर्णता आयेगी।** क्या कहते हैं? जो पूर्ण स्वरूप अन्दर है, उसके आश्रय से पूर्ण पर्याय उत्पन्न होगी। केवलज्ञान, परिपूर्ण अनन्त आनन्द जो परिपूर्ण पर्याय है, वह परिपूर्ण स्वभाव के आश्रय से होगी। आहा..हा..! यहाँ तो ऐसा कहना है कि परिपूर्ण वस्तु जो है, उसके आश्रय से परिपूर्ण पर्याय होगी। वर्तमान मोक्षपर्याय, सिद्ध की केवल (ज्ञान पर्याय) होती है, उससे पहले जो मोक्ष का मार्ग है, उसके आश्रय से भी मोक्ष नहीं होगा। पण्डितजी! यहाँ तो सीधा..

जैसे परिपूर्ण पूर्णिमा होती है, पूर्णिमा। पूनम-पूर्णता। सोलह कला से चन्द्र खिलता है परन्तु उसका स्वरूप ही सोलह कला शक्तिवान है; इसी प्रकार भगवान आत्मा अनन्त ज्ञान-अनन्त दर्शन आदि सोलह कलारूप परिपूर्ण प्रभु है। अरे! कैसे जँचे? कभी नजर की नहीं। कभी लक्ष्य में लिया नहीं। अन्दर प्रभु पूर्णानन्द का नाथ, एक समय की पर्याय के पास पूरा पाताल पड़ा है। आहा..! उस पर दृष्टि देने से अथवा परिपूर्ण तत्त्व का आश्रय करने से परिपूर्ण पर्याय होगी। इसमें तो ऐसा भी कहा कि मोक्षमार्ग की पर्याय है तो मोक्ष होगा - ऐसा भी नहीं। क्योंकि मोक्षमार्ग की पर्याय निज द्रव्य के अल्प आश्रय से उत्पन्न हुई है और केवलज्ञान, वह उग्र आश्रय से केवलज्ञान उत्पन्न होता है। अरे! ऐसी बातें अब। लालचन्दभाई! केवल परिपूर्ण पर्याय पूर्ण के आश्रय से उत्पन्न होती है। मोक्ष के मार्ग से भी नहीं, भाई! पचाना कठिन है, परन्तु जन्म-मरण मिटाने का यह मार्ग है, भाई! बाकी तो परिभ्रमण करके (कचूमर निकल गया है)। आहा..हा..!

अभी एक का पिता आया था। नैरोबी से, नैरोबी। उसका २२ वर्ष का लड़का था।

उसे ऐसा हुआ कि खून में कैंसर हुआ। खून में कैंसर। खून समझे ? रुधिर – खून में कैंसर। ऐसा कैंसर हुआ। २२ वर्ष का युवक, ...भाई ! तुम्हारे आये थे न वे ? उन्होंने कहा था। महाजन है। आहा..हा.. ! ऐसा खून निकले। लन्दन, डॉक्टर के पास ले गये। डॉक्टर ने कहा – चौबीस घण्टे रहेगा। डॉक्टर बचा नहीं सकता परन्तु थोड़ा खून निकाला और दूसरा खून चढ़ाया। आठ दिन रहा परन्तु इतना आयुष्य था, हों ! आठ दिन रहा। २२ वर्ष का युवक। फिर आँख में से, कान में से खून निकले। आहा..हा.. ! यह शरीर तो वेदना की मूर्ति है। एक अंगुल में छियानवें रोग परमात्मा कहते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य पाहुड़ में ऐसा कहते हैं, प्रभु ! एक तसु.. तसु समझें ? अंगुल ऐसा। एक रोम में इतने में छियानवे रोग हैं ऐसा पाठ है। कुन्दकुन्दाचार्यदेव ऐसा कहते हैं कि एक रोम में छियानवे रोग है तो पूरे शरीर में कितने ? ऐसे शब्द हैं। कितने ? ऐसा शब्द लिया है। तू विचार तो कर। आहा..हा.. ! यह तो वेदना की मूर्ति, प्रभु ! यह तो जड़ है। भगवान आत्मा आनन्द की मूर्ति चैतन्य है। आहा..हा.. !

चैतन्य चमत्कार महाप्रभु, जिसकी एक समय की पर्याय में तीन काल–तीन लोक ज्ञात हो, ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड जो ज्ञानगुण; ऐसी अनन्त श्रद्धा–पर्याय का श्रद्धा–गुण; ऐसी अनन्त स्थिरता–चारित्र की पर्याय का चारित्रगुण; ऐसे अनन्त आनन्द की अनन्त पर्याय का एक आनन्दगुण। ऐसे अनन्त–अनन्त गुण परिपूर्ण भगवान में पड़े हैं। आहा..हा.. ! गुण क्या और परिपूर्ण क्या ? आहा..हा.. ! उस परिपूर्ण प्रभु के अवलम्बन से परिपूर्ण केवलज्ञान की पर्याय होगी। जो अपूर्ण पर्याय मोक्षमार्ग है, उसके आश्रय से भी परिपूर्ण पर्याय नहीं होगी। आहा..हा.. !

सर्वज्ञ पर्याय.. आहा..हा.. ! सर्वज्ञस्वरूप प्रभु, सर्वज्ञस्वरूप.. आहा..हा.. ! परिपूर्ण ज्ञानस्वरूप। वह ज्ञान और आनन्द की शीतल शान्त शिला। पूर्णानन्द की शिला अन्दर पड़ी है। आहा..हा.. ! उसका आश्रय लेगा तो सम्यग्दर्शन होगा; उसका उग्र आश्रय लेगा तो चारित्र होगा; उसका पूर्ण आश्रय लेगा तो केवलज्ञान होगा। आहा..हा.. ! ऐसा है, भाई ! छूटने का स्वद्रव्य का आश्रय एक कारण; बन्धन के कारण अनन्त–अनन्त हैं। आहा..हा.. ! शुभभाव भी असंख्य प्रकार के हैं, अशुभभाव भी असंख्य प्रकार के भगवान कहते हैं। आहा..हा.. ! और उनकी तारतम्यता के भाव, शुभ के भी अनन्त हैं और अशुभ के भी अनन्त हैं। समझ में आया ? इन दोनों से पार परमात्मा है।

विकार है, उसकी सीमा है। पुस्तक में आता है। सीमा का अर्थ मर्यादित है। विकृत अवस्था मर्यादित है और जो पूर्ण स्वभाव है, (वह) अमर्यादित त्रिकाल है। आहा..हा..! विकृत अवस्था की सीमा है तो मर्यादित है तो छूट जायेगी। आहा..हा..! कहो ताराचन्दभाई! ऐसा वहाँ कहीं कलकत्ता में कहीं नहीं मिलेगा। नहीं? आहा..हा..! परन्तु यह वस्तु क्या है? इसे अभी लक्ष्य में लेना कठिन। अन्दर परिपूर्ण वस्तु है। जैसे पाताल में पानी पूरा भरा है, वैसे आत्मा के ध्रुव में पूर्ण आत्मा का तत्त्व / शक्ति पूर्ण भरी है। उस पूर्ण तत्त्व के आश्रय से पूर्ण पर्याय होगी। यह वस्तु का स्वरूप है। आहा..हा..! है? **पूर्णता आयगी।**

पूर्णता आयगी। गुरु की वाणी प्रबल निमित्त है... भले निमित्त है **परन्तु समझकर आश्रय तो अपने को ही करना है।** सर्वज्ञ की, तीन लोक के नाथ तीर्थंकर की वाणी हो परन्तु उस वाणी के आश्रय से कहीं सम्यग्दर्शन नहीं होता। वाणी के आश्रय से कहीं केवलज्ञान नहीं होता। वास्तव में तो परमात्मा (समयसार) ३१ वीं गाथा में ऐसा कहते हैं, जैसे यह जड़ इन्द्रियाँ हैं, यह जड़ मिट्टी और भावेन्द्रियाँ हैं, जो क्षयोपशम, एक-एक विषय को जाननेवाली इन्द्रियाँ और उनका जो विषय है, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, देश, देव, गुरु, और शास्त्र सबको इन्द्रिय कहा गया है। वह पर, इन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय, और भावेन्द्रिय - तीनों का लक्ष्य छोड़कर अनीन्द्रिय भगवान जो आत्मा है, उसकी श्रद्धा कर, उसका स्वीकार कर तो तुझे सम्यग्दर्शन होगा। गंगवालजी! ऐसा है, बापू!

पैसेवाले को मानो ऐसा हो जाता है.. आहा..हा..! ऐ हसमुखभाई! पोपटभाई का पुत्र है बहुत पैसेवाला है, करोड़पति कितने करोड़! ऐसा कोई कहता है। धूलपति है। यहाँ तो जिसे आत्मा का पति होना हो, (उसके लिये बात है)। आहा..हा..! पत्नी का पति आत्मा नहीं। नरपति-नरेन्द्र, नरपति कहते हैं न? मनुष्य का पति। धूल में भी नहीं, सुन तो सही! आहा..हा..! आहा..हा..! लक्ष्मीपति - ऐसा कहते हैं न? लक्ष्मीपति? मूढ़-जड़। आहा..हा..! लक्ष्मीपति, उद्योगपति। यह उद्योग बहुत करता है न? गृहस्थ बड़ा साहूजी! चालीस करोड़ है। पहले साधारण थे। नौ-नौ तो बड़े कारखाना है। कलकत्ता में है। उनका बड़ा पुत्र है न? हम वहाँ गये थे तो कहा महाराज! एक बार चरण करो। तो (एक-एक) करोड़ के बड़े कारखाने हैं। तीन बार गये। कहा, भाई! अब नहीं जाते। एक-एक करोड़ के कारखाने। ऐसे तो नौ करोड़ से ऊपर के कारखाने हैं। धूल में भी नहीं। यह थैलियाँ बनती है न? कोथला को क्या कहते हैं? शण का वारदान। परन्तु वह वारदान ऐसा बनता है कि

ऐसे सिलकर बनावे ऐसे नहीं, ऐसे गोल बनते हैं। सिवाय को क्या कहते हैं ? सिलना। वारदान। ऐसे कारखाने हैं। सब शण बिना बाँधते हैं, गाँठ लगाये बिना वारदान होता है। समझे या नहीं ? समझ में आया ? शण में गाँठ बाँधे न ? वहाँ तो एक ऐसा कारखाना है कि बाँधे बिना पूरा (वारदान बनता है)। वहाँ हमें ले गये थे। धूल है, कहा। हमें तो कुछ विस्मयता और आश्चर्य कुछ लगता नहीं, प्रभु! आहा..हा..!

विस्मय तो प्रभु यह आत्मा आश्चर्यकारी वस्तु है, नाथ! तुझे खबर नहीं। आहा..हा..! अन्दर में अद्भुत-अद्भुत चैतन्य चमत्कार से भरपूर भगवान (बिराजता है)। गुरु की वाणी कहे, तीर्थंकर की वाणी कहे **परन्तु समझकर आश्रय तो अपने को ही करना है।** आश्रय करना, वह गुरु करा देते हैं ? ब्राह्मण गुरु होकर विवाह करा देते हैं, फिर गुरु उसका घर चलायें ? ब्राह्मण होते हैं न ? इसी प्रकार गुरु.. आहा..हा..! वाणी द्वारा इसे सत्य की बात कहते हैं परन्तु आश्रय लेना है, वह आश्रय करा दे ? आहा..हा..! यह बात बहिन (कहती हैं)।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : लाभ में शुभभाव (होता है), दूसरा कुछ लाभ नहीं। परद्रव्य को मानने में राग आता है। चाहे तो तीन लोक के नाथ तीर्थंकर ऐसा कहते हैं कि मुझे तू मानेगा कि हम सर्वज्ञ हैं तो तुझे विकल्प, राग होगा। स्वद्रव्य के आश्रय बिना कल्याण कभी (तीन काल में नहीं होता)। समझ में आया ? आहा..हा..! कठिन बात है।

यह यहाँ कहते हैं। तीर्थंकर, सर्वज्ञ परमात्मा, (की) दिव्यध्वनि अभी महाविदेहक्षेत्र में निकलती है। ऐसे महाविदेह में अनन्त बार जन्मा था। आहा..! वहाँ समवसरण में अनन्त बार सुना है। सुना, वह तो निमित्त है। आश्रय करना, वह कहीं निमित्त करा देता है ? आहा..हा..!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहते हैं परन्तु उपादान करे कौन ? इसका आत्मा। उपादान-निमित्त के सैंतालीस दोहों में आता है न ? फिर निमित्त हार गया। निमित्त कहता है कि मैं हूँ तो तुझे क्षायिक समकित होता है। अरे! तू क्या, तू तो भटकानेवाला है - ऐसा कहते हैं। है उसमें ? निमित्त-उपादान के सैंतालीस दोहे हैं। भैया भगवतीदास (द्वारा रचित हैं)। यहाँ तो सभा में निमित्त-उपादान के सब व्याख्यान हो गये हैं। वस्तुविज्ञानसार पुस्तक है। बहुत वर्ष पहले (प्रकाशित हो गयी है)। (संवत्) २००० के साल।

यहाँ कहते हैं **परन्तु समझकर आश्रय तो अपने को ही करना है।** आहा..हा..! अन्तर में झुकना, वह कहीं गुरु करा देते हैं? सर्वज्ञ करा देते हैं? आहा..हा..! अपनी वर्तमान दशा का त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप में झुकना, आश्रय लेना, वह तो पुरुषार्थ से आत्मा कर सकता है। कोई दूसरे गुरु करा दे या गुरु की कृपा हो जाये तो अन्दर आश्रय हो जाये, ऐसी कोई वस्तु नहीं है।

मुमुक्षु : उनकी कृपा हो और न हो–ऐसा बने किस प्रकार?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कृपा कहना किसे? उस वीतरागस्वरूप का आश्रय करे तो भगवान की कृपा हुई – ऐसा कहने में आता है। श्रीमद् में आता है 'करुणा हम पावत है तुमकी, यह बात रही गुरुगम की।' श्रीमद् राजचन्द्र, ३३ वर्ष में गुजर गये थे। आत्मज्ञानी सम्यग्दृष्टि अनुभवी (थे)। जवाहरात का लाखों का धन्धा था परन्तु नैतिक जीवन, बहुत नैतिक और आत्मज्ञानी। ३३ वर्ष की उम्र में देह छूट गयी। संग्रहणी रोग हुआ था। (संवत्) १९५७ में चैत कृष्ण पंचमी। आहा..हा..! वे ऐसा कहते थे 'करुणा हम पावत है तुमकी,' हे नाथ! हे सर्वज्ञ प्रभु! है इसमें? 'करुणा हम पावत है तुमकी, यह बात रही सुगुरुगम की।' करुणा का अर्थ – हे नाथ! तुम्हारे ज्ञान में, मुझे इस समय में सम्यग्दर्शन होगा – ऐसा आया, वह आपकी करुणा है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भी यह। सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ के ज्ञान में (आया कि) यह जीव इस समय में धर्म प्राप्त करेगा, वह भगवान के ज्ञान में आ गया है। वह ज्ञान में जैसे आया, वैसे यहाँ हुआ, उसे भगवान की करुणा कहने में आता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करे? आहा..हा..! इसके लिये तो अर्थ किया है।

यम नियम संयम आप कियो,
पुनी त्याग वैराग्य अथाग लह्यो,
वनवास रह्यो मुख मौन रह्यो,
दृढ़ आसन पद्म लगाय दियो,
सब शास्त्रन के नय धारी हैये,

मत खंडन मंडन भेद लिये,
वह साधन बार अनंत कियो,
तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो।

'यम नियम संयम' यम अर्थात् पंच महाव्रत और नियम अर्थात् ऐसा अभिग्रह धारण किया कि मैं भिक्षा लेने जाऊँ तो बहिन का नाम लक्ष्मी हो, उसकी साड़ी में लक्ष्मी का चित्र हो, मोती नाम हो, मोतीचूर का लड्डू खाती हो और मोती के कपड़े पहने हो तो उसके हाथ से लूँ। इसके बिना नहीं लूँ, ऐसा मेरा नियम है। ऐसे नियम भी अनन्त बार लिये। 'यम नियम संयम आप कियो' संयम लिया, इन्द्रिय दमन किया। 'यम नियम संयम आप कियो।'

'पुनी त्याग वैराग्य अथाग लह्यो', त्याग, वैराग्य, अथाग (लिया)। नग्नपना, अन्दर एक वस्त्र का धागा नहीं। आहा..! पर से वैराग्य, वह कृत्रिम वैराग्य है, वह मूल वैराग्य नहीं। है? 'यम नियम संयम आप कियो, पुनी त्याग वैराग्य अथाग लह्यो',

'वनवास रह्यो मुख मौन रह्यो, दृढ़ आसन पद्म लगाय दियो,' और श्रुतज्ञान किया। श्रुतज्ञान पढ़कर 'मत खंडन मंडन भेद लिये' परन्तु इसने भेदज्ञान नहीं किया। आहा..हा..! ऐसा करने पर भी वह साधन नहीं है। चौबीस वर्ष की उम्र में यह पद बनाया है। थे तो गुजराती परन्तु हिन्दी में बनाया है। क्षयोपशम बहुत था। क्षयोपशम अर्थात् ज्ञान का विकास बहुत था। छोटी उम्र से... आहा..हा..! सोलह वर्ष की देह की उम्र में ऐसा लगा था 'लक्ष्मी बड़ी अधिकार भी पर बढ़ गया क्या बोलिये।' लक्ष्मी बढ़ी, कुटुम्ब बढ़ा, इज्जत बढ़ी, तुझे क्या बढ़ा? 'परिवार और कुटुम्ब है क्या वृद्धिनय पर तौलिये, संसार का बढ़ना अरे! नर देह की यह हार है, नहीं एक क्षण तुझको अहो इसका विवेक विचार है।' इसका विचार तूने एक पल भी कभी नहीं किया। आहा..हा..! समझ में आया? थोड़ा गुजराती था, परन्तु गुजराती भाषा सादी है।

यहाँ कहते हैं, **समझकर आश्रय तो अपने को ही करना है।** आहा..हा..! १८९ (बोल पूरा) हुआ।

मैंने अनादिकाल से सब बाहर-बाहर का ग्रहण किया—बाहर का ज्ञान किया, बाहर का ध्यान किया, बाहर का मुनिपना धारण किया, और मान लिया कि मैंने बहुत किया। शुभभाव किये परन्तु दृष्टि पर्याय पर थी। अगाध शक्तिवान जो चैतन्यचक्रवर्ती उसे नहीं पहिचाना, नहीं ग्रहण किया। सामान्यस्वरूप को ग्रहण नहीं किया, विशेष को ग्रहण किया॥१९०॥

१९०, **मैंने अनादिकाल से सब बाहर-बाहर का ग्रहण किया...** आहा..हा..! शुभभाव और अशुभभाव और परवस्तु मैंने ग्रहण की थी, परवस्तु मैंने छोड़ी—ऐसा अनादि से बाहर-बाहर का किया। **बाहर का ज्ञान किया,...** परवस्तु का ज्ञान किया, स्व का ज्ञान नहीं किया। यह डॉक्टरपना और एलएलबी वकालात और एम.ए. की (पढ़ाई की)। यह सब पर का ज्ञान, अज्ञान है। समझ में आया? रामजीभाई ३०-३५ वर्ष पहले पाँच घण्टे के २०० रुपये लेते थे। कोर्ट में जाते थे। ३० वर्ष से वकालात छोड़ दी है। पहले कोर्ट पाँच घण्टे जाते तो २०० रुपये लेते थे। उस समय, हों! २०० अर्थात् अभी पच्चीस गुने हुए। परन्तु वह ज्ञान था, सो कुज्ञान था। यह रामजीभाई स्वयं कहते हैं, कुज्ञान था। वैसे जज को पानी भरा दे, जज बैठा हो न? जज को ऐसी दलील दे। हमारे एक मणिभाई उदाणी थे, वे राजकोट में वकील थे। उन्होंने मुझे एक बार कहा - महाराज! यह आपके रामजीभाई ऐसे हैं कि जज को पानी भराते हैं। जज को बोलने नहीं देते। सबमें प्रसिद्ध थे न! उस समय के सभी वकीलों में रामजीभाई प्रसिद्ध थे। परन्तु वह प्रसिद्धि अज्ञान की थी। समझ में आया? वह सब कुज्ञान था। पर के आश्रय से हुआ, वह कुज्ञान है। डॉक्टर! यह तुम्हारी होम्योपैथी.. ऐ.. भाई! यह तुम दाँत के-बत्तीसी के बहुत होशियार हो, वह सब कुज्ञान है।

मुमुक्षु : कुज्ञान रुपया देता है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी रुपया नहीं देता। वह तो पुण्य के कारण आते हैं। हमने तो बहुत देखे हैं न! एक बेरिस्टर नहीं? मोरबी का बेरिस्टर था। तो उसे कोई असील ही आती नहीं। नाम भूल गये। राजकोट रहता था। हमने तो सबको देखा है न! वह कोई बेरिस्टर नहीं था, फिर भी घर में पैसा देने आते थे। इतना करो, रामजीभाई! हमारा इतना काम कर दो। अन्त में छोड़ा तब तो पाँच सौ (रुपया लेता था)।

मुमुक्षु : उसके ऊपर चौकड़ी मारते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : चौकड़ी है। बड़ा बेरिस्टर था, कोई असील आता नहीं था। असील, ग्राहक ही नहीं आता था। वह कोई बेरिस्टर नहीं था, फिर भी ग्राहक घर में आते थे। दो सौ रुपये लो, पाँच घण्टे हमारे में आओ। उसमें क्या है ? वह तो पुण्य के कारण ऐसी प्रसिद्धि होती है। धूल में उसमें क्या आया ? आहा..हा..!

भगवान अन्दर अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान की लक्ष्मी से भरपूर है। आहा..हा..! वह कहते हैं, देखो! **बाहर का ज्ञान किया, बाहर का ध्यान किया,...** क्या (कहा) ? राग का ध्यान किया और भगवान का ध्यान किया। वह तो सब बाहर का ध्यान है। **बाहर का मुनिपना धारण किया,..** आहा..हा..! साधु अनन्त बार पंच महाव्रत धारण करके नग्न (दिगम्बर मुनि) अनन्त बार हुआ। उसमें क्या हुआ ? वह तो श्रीमद् में आया नहीं ? 'यम नियम संयम आप कियो, पुनी त्याग वैराग्य अथाग लह्यो,' परन्तु वस्तु कहाँ ? सम्यग्दर्शन बिना, स्वद्रव्य के आश्रय बिना वह सब व्यर्थ है। जुगलजी! ऐसा है, भगवान!

आठ वर्ष का बालक होता है.. आहा..हा..! जब आत्मा का ज्ञान होता है और सम्यग्दर्शन में आत्मा (का) रस आता है, आहा..हा..! उस आनन्द के रस के समक्ष अरबों पति हो, चक्रवर्ती का पुत्र हो, मकान में नीचे नीलम की टाईल्स हो, नीलम की टाईल्स, स्फटिक की टाईल्स हो और हजारों रानियों के साथ विवाह किया हो परन्तु जो आत्मज्ञान हुआ, अन्दर में आत्मा का स्व का डोर बाँधकर आनन्द (आया).. आहा..हा..! (वह कहता है,) माता! मुझे आज्ञा दे, माँ! मुझे मेरे आनन्दस्वरूप का आनन्द आया है। उस आनन्द की मुझे साधना करनी है। विशेष आनन्द प्रगट करना है। मुझे वनवास जाना है। आहा..हा..! माँ! माता रोती है। आज्ञा नहीं दे सकती। माता! एक बार रोना हो तो रो ले, परन्तु मैं आनन्दस्वरूप को साधने जाता हूँ, फिर से माँ नहीं बनाऊँगा, माँ! दूसरी माता नहीं बनाऊँगा – ऐसा वायदा करता हूँ। मुझे अब भव नहीं। आहा..हा..! समझ में आया ? आहा..हा..!

एक बार ध्रुव का नाटक होता है। हमने तो सब देखा है न! फिल्म देखी है, नाटक देखा है, दुकान थी। बड़े-बड़े नाटक आते थे, सर्कस आते थे, सब आता था। एक बार यहाँ भावनगर में... मैं पालेज में देश में आया था, ध्रुव का नाटक था, अन्यमत में ध्रुव आता

है। ध्रुव और प्रह्लाद अविचल पद लिया – ऐसा उसमें आता है। ध्रुव, राजा का कुँवर था। ध्रुव राजकुमार था। छोटी उम्र में उसकी माता गुजर गयी तो पिताजी ने दूसरी स्त्री के साथ विवाह किया। उसमें ध्रुव को वैराग्य हुआ। उस प्रकार का, तत्त्व तो कहाँ था? वैराग्य आया तो जंगल में चला गया। जंगल में लकड़ी होती है न? ऐसे हाथ रखने की पावडी.. पावडी..।

वनवास में बैठा था। बड़ा नाटक था। (संवत्) १९६६ की बात है। दो इन्द्राणी ऊपर से ललचाने आयी थी। ध्यान में बैठा था। राजकुमार, परन्तु दीक्षित हो गया। अन्यमति का बाबा, जैन साधु नहीं। वन में हरा पर्दा (लगाया हुआ था)। छपा हुआ पर्दा होता है। पर्दा खुले तो मानो वन में गहरा बैठा हो, ऐसा दिखता है। दो इन्द्राणी ऊपर से (उतरती है)। लकड़ी पर पैर रखकर नीचे आयी। उसे समझाने के लिये, स्त्री का भोग लेने के लिये। अरे! राजकुमार! हमारा यह शरीर तो देख! इन्द्राणी, कोमल शरीर, मुलायम शरीर – ऐसा बहुत बखान किया।

तब ध्रुव कहता है, माता! तेरा शरीर बहुत सुन्दर है, बात सत्य है परन्तु माता! मैं ऐसा कहता हूँ कि यदि मुझे एकाध भव करना होगा तो तेरे गर्भ में आऊँगा; दूसरी बात नहीं। मुझे एकाध भव बाकी हो.. डॉक्टर! ध्रुव का नाटक है। ध्रुव नहीं? ध्रुव, प्रह्लाद... आता है न? सब देखा है। हमने तो सब शास्त्र देखे हैं। वेदान्त के देखे हैं, सबके देखे हैं। नाटक भी सबके देखे हैं। बड़े-बड़े नाटक, मुम्बई में बड़ी फिल्म देखी है। आहा..हा..! परन्तु उस समय बोलती फिल्म नहीं थी, बोलती नहीं थी। अब बोलती फिल्म हुई।

उस ध्रुव को शरीर दिखाकर दो इन्द्राणियाँ ललचाती हैं। कोमल शरीर (दिखाती है)। माता! तेरा शरीर कोमल, बहुत सुन्दर है। माता! तू आशा रखती है – यह नहीं। परन्तु मुझे कदाचित् एकाध भव करना होगा तो मैं तेरे गर्भ में आऊँगा, तेरा पुत्र होऊँगा; दूसरी बात नहीं। आहा..हा..! उस समय वे लोग वैरागी नाटक (करते थे)। अभी तो सब बदल गया है। अभी तो फिल्म-बिल्म में सब... स्त्री ऐसे खड़ी हो और हाथ ऐसे डाले, अरर..! ऐसे प्रदर्शन। अनीति का प्रदर्शन। लोगों की बुद्धि बिगड़े अभी तो ऐसे निमित्त हैं। आहा..हा..!

मुमुक्षु : सब राग पैदा करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग पैदा करता है। बाहर में फिल्म के फोटो आते हैं न? एक

स्त्री को उसने ऐसे हाथ डाला था। अरर्र ! ऐसे अनीति के प्रदर्शन ? खबर है न हमें। वहाँ देखने जाने के लिये लाईन लगी हो। सैंकड़ों लोग टिकट लेने (खड़े हों)। मूर्ख है, पागल है। आहा..हा.. !

यहाँ तो कहते हैं तू पर के नाटक देखता है तो तेरा नट-आत्मा का नाटक अन्दर से देख। तुझमें प्रभु ! तुझे पता नहीं, प्रभु ! तुझमें तो पूर्ण आनन्द, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण शान्ति, पूर्ण स्वच्छता, पूर्ण प्रभुता - ऐसी अनन्त शक्ति की पूर्णता तुझमें भरी है, नाथ ! नाथ क्यों कहा ? निज स्वरूप की रक्षा करे और जो नहीं प्राप्त है, उसे प्राप्त करने का पुरुषार्थ करे। जोग, क्षेम के करनेवाले को नाथ कहते हैं। थोड़ी लम्बी बात है। आहा..हा.. ! जो अन्तर का स्वरूप आत्मा के आश्रय से प्राप्त हुआ धर्म, उसका रक्षण करे और केवलज्ञान आदि नहीं प्राप्त है, उसका प्रयत्न करके प्राप्त करे, उसे यहाँ नाथ कहने में आता है। पत्नी का पति नाथ, वह तो कृत्रिम, कृत्रिम, कृत्रिम झूठा है। आहा..हा.. ! यह नाथ आत्मा। आहा..हा.. ! अपनी शक्ति का सागर जो पूर्ण भरा है, उसकी दृष्टि, सम्यग्दर्शन हुआ तो उसकी रक्षा करे। सम्यग्दर्शन से नीचे न जाये - न गिरे और सम्यग्दर्शन होने के बाद केवलज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न है। उस जोग-क्षेम के करनेवाले को नाथ कहने में आता है। प्राप्त हुई चीज़ का रक्षण करे और नहीं प्राप्त पूर्णता की प्राप्ति करे। आहा..हा.. ! यहाँ तो ऐसी बात है, दुनिया से अलग है, बापू ! आहा..हा.. !

बाहर का ध्यान किया, बाहर का मुनिपना धारण किया, और मान लिया कि मैंने बहुत किया। शुभभाव किये परन्तु दृष्टि पर्याय पर थी। आहा..हा.. ! दृष्टि तो वर्तमान राग और पुण्य और पर्याय पर थी। मिथ्या थी। **अगाध शक्तिवान जो चैतन्यचक्रवर्ती...** प्रभु, चैतन्यचक्रवर्ती भगवान ! आहा..हा.. ! **उसे नहीं पहिचाना,...** तूने पहिचान नहीं की। बाहर का ज्ञान आदि सब किया। **नहीं पहिचाना, नहीं ग्रहण किया। सामान्यस्वरूप को ग्रहण नहीं किया,...** सामान्यस्वरूप को ग्रहण नहीं किया। एकरूप त्रिकाल को ग्रहण नहीं किया और **विशेष को ग्रहण किया।** पर्याय को और राग को ग्रहण किया, वह तेरी मिथ्यादृष्टि है। आहा..हा.. ! सामान्य जो त्रिकाली ध्रुव है, उसे ग्रहण कर तो तुझे सम्यग्दर्शन होगा, इसके बिना सम्यग्दर्शन-धर्म होगा नहीं। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

भाद्र कृष्ण-३, सोमवार, दिनाङ्क २१-०८-१९७८
वचनामृत-१९१-१९२ प्रवचन-७१

दृष्टि की डोर हाथ में रख। सामान्य स्वरूप को ग्रहण कर, फिर भले ही सब ज्ञान हो। ऐसा करते-करते अन्तर में विशेष लीनता होगी, साधक दशा बढ़ती जायेगी। देशव्रत और महाव्रत सामान्यस्वरूप के आलम्बन से आते हैं; मुख्यता निरन्तर सामान्य स्वरूप की—द्रव्य की होती है॥१९१॥

१९१, १९१ कहते हैं न? सूक्ष्म बात है। जिसे अपना कल्याण करना हो, उसे त्रिकाल ज्ञायक सामान्यस्वभाव जो है, उस पर दृष्टि लगाना चाहिए।

मुमुक्षु : उसका उपाय क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उपाय। उपाय दूसरा क्या होगा? जो दृष्टि निमित्त पर है, राग पर है, पर्याय पर है, वह दृष्टि तो मिथ्यात्व है। सूक्ष्म विषय है, भाई! यह विशेष जो पर्याय है, उसकी दृष्टि भी छोड़कर... संयोगी चीज़ जो भगवान देव-शास्त्र-गुरु या परवस्तु का लक्ष्य तो छोड़ना, परन्तु उनकी श्रद्धा आदि जो राग है, उसका भी लक्ष्य छोड़ना और वर्तमान पर्याय जो विशेष है, उसका भी लक्ष्य छोड़ना। आहा..हा..! ऐसी बात है, भाई!

अब कहते हैं कि **दृष्टि की डोर हाथ में रख।** है? १९१ है न? जो दृष्टि है, उसे ध्रुव पर लगा दे। आहा..हा..! तब तुझे सम्यग्दर्शन होगा। धर्म की शुरुआत तब होगी। बाकी लाख बात-क्रियाकाण्ड करे, दया, व्रत, भक्ति और पूजा, वह सब व्यवहार राग है। उससे आत्मा का कल्याण नहीं होता। आहा..हा..! विशेष अपनी जो पर्याय है, उस पर लक्ष्य करने से भी सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहा..हा..!

दृष्टि की डोर हाथ में रख। सामान्यस्वरूप को ग्रहण कर,... आहा..हा..! एकरूप जो त्रिकाल ध्रुव ज्ञानसामान्य स्वभाव, जिसमें पर्याय की विशेषता भी नहीं (ऐसे)

सामान्यस्वरूप को ग्रहण कर,... आहा..हा..! त्रिकाली ज्ञायक ध्रुवस्वरूप, जो एक समय की पर्याय से भी भिन्न है, उस पर दृष्टि लगा दे और त्रिकाली ध्रुव ज्ञायकस्वभाव को श्रद्धा में, ज्ञान में ग्रहण कर। आहा..हा..! कठिन बात है।

धर्म किस प्रकार होता है, वह कभी यथार्थरूप से सुना ही नहीं। आहा..हा..! धर्म इस प्रकार से होता है कि त्रिकाली शुद्ध चैतन्यघन द्रव्यस्वभाव को ज्ञान में ग्रहण करने से, उसे श्रद्धा में लेने से सम्यग्दर्शनरूपी धर्म की पहली शुरुआत होती है। आहा..हा..! समझ में आया? **सामान्यस्वरूप को ग्रहण कर,..** सामान्य क्या? ध्रुव जो एकरूप वस्तु जो त्रिकाल पड़ी है, उस पर दृष्टि लगा दे और ज्ञान की वर्तमान पर्याय में उसे ग्रहण कर। पर्याय में निमित्त को ग्रहण नहीं करना, राग को ग्रहण नहीं करना, एक समय की पर्याय को पर्याय में ग्रहण नहीं करना। सूक्ष्म बात है, भाई! अनन्त काल से इसमें किया नहीं, यह अपूर्व बात है।

यहाँ तो कहते हैं कि यदि तुझे सम्यग्दर्शन-धर्म की पहली सीढ़ी... अभी सम्यग्दर्शन (की बात है)। पाँचवाँ-छठवाँ गुणस्थान तो कोई अलौकिक वस्तु है। प्रथम सम्यक् अर्थात् सत्यदर्शन है पर्याय; सत्यदर्शन, वह है पर्याय परन्तु पर्याय को सामान्य में लगा दे। विशेष में सामान्य को ग्रहण कर ले। यह क्या बात है? आहा! पदमचन्दजी! अलौकिक बात है। वहाँ तुम्हारे (कुछ नहीं है)? तुम्हारा गाँव क्या कहलाता है? जयपुर। आहा..हा..! उस पैसे में कोई धर्म नहीं है, ऐसा कहते हैं। लाखों-करोड़ों रुपये खर्च कर दे, इसलिए धर्म हो जाये (ऐसा नहीं है) और वह भी पैसा मेरा है-ऐसा मानकर दे तो मिथ्यात्व होता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसे कहाँ इसके पिता के थे। पैसे तो जड़ के थे। पैसा तो अजीव है। भगवान आत्मा तो चैतन्य अरूपी जीव है। जीव का अजीव हो जाता है?

मुमुक्षु : दोनों का निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध तो होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध का अर्थ क्या? दोनों पदार्थ स्वतन्त्र हैं। 'सर्व सम्बन्ध निषेध:' आहा..हा..! समयसार कलश २००। '**नास्ति सर्वोऽपि सम्बन्धः**' अरे..! कुछ सुना नहीं। अन्दर सत्य प्रभु कौन है? एक समय में पूर्णानन्द नाथ सामान्य अर्थात् विशेष-पर्यायरहित, रागरहित, संयोगरहित तो है परन्तु वर्तमान विशेष पर्याय है, उससे भी रहित है। आहा..हा..! उसे ग्रहण कर। सामान्य पर लक्ष्य दे तो तेरी विशेष पर्याय में सम्यग्दर्शन होगा। समझ में आया? है?

फिर भले ही सब ज्ञान हो। फिर अनेक जीव, अजीव, जगत की पर्याय है, उसका जानना हो, परलक्ष्यी ज्ञान हो परन्तु अन्तर में शुद्ध ध्रुवस्वरूप है, उसकी दृष्टि हुई, वह दृष्टि उसमें से हटती नहीं। फिर चाहे जिस प्रकार का ज्ञान करे, राग आया उसे जाने, शरीर की क्रिया होती है, उसे जाने; करे नहीं, करता नहीं। जानता है परन्तु दृष्टि ध्रुव पर लगायी होने से जो सम्यग्ज्ञान हुआ, उस ज्ञान में दूसरी चीज़ें चाहे जो जाने। आहा..हा..! यह बारहवीं गाथा में कहा न? जाना हुआ प्रयोजनवान है। उसमें बड़ा विवाद है न? '**सुद्धो सुद्धादेसो णादव्वो**' यह तो केवली को है। नीचे चौथे, पाँचवें, छठवें में तो व्यवहार होता है-ऐसा (अभी) कहते हैं। आहा..हा..!

मुमुक्षु : निश्चय के बिना व्यवहार...

पूज्य गुरुदेवश्री : नीचे व्यवहार ही होता है, शुद्धनय ऊपर सातवें, आठवें, दसवें के बाद होता है। आहा..हा..! यहाँ तो पहले से.. जुगलजी! आहा..हा..! जिसे आत्मा का कल्याण करना हो, जन्म-मरणरहित होना हो तो पहले दर्जे त्रिकाली ज्ञायकभाव को पकड़। आहा..हा..! कि जिसमें अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान और अनन्त शान्ति, अनन्त अनन्त अमर्यादित प्रभुता अन्दर भरी है.. आहा..हा..! वह चैतन्यरत्नाकर प्रभु, चैतन्य के रत्नों का आकर अर्थात् समुद्र भरा हुआ भगवान अन्दर है। आहा..हा..! कहाँ पता है! वहाँ दृष्टि लगा दे। **फिर भले ही सब ज्ञान हो।** फिर दया-दान का राग आता है, उसका ज्ञान हो, ज्ञान हो। बहुत कठिन बात, बापू! क्या हो? (समयसार) ११ वीं (गाथा में) भूतार्थ का निश्चय ज्ञान हुआ, फिर १२ वीं (गाथा में) जाना हुआ (प्रयोजनवान) है। यह सिद्धान्त यहाँ कहा है। आहा..हा..! देवचन्दजी!

अन्दर वस्तु जो सामान्य एकरूप निर्विकल्प प्रभु है। सामान्य अर्थात् ध्रुव सदृशस्वभाव धारक प्रभु है, वहाँ दृष्टि की डोर लगा दे। फिर सम्यग्ज्ञान होता है, उस ज्ञान में, परचीज़, रागादि, व्यवहाररत्नत्रय आता है, आता है उसे जान। आहा..! मैं व्यवहार, दया-दान करता हूँ - ऐसा नहीं। मैं विकल्प तो करता हूँ (- ऐसा लगता है), तब तक तो मिथ्यादृष्टि है। सत्यदृष्टि में तो पूर्ण सत्य प्रभु आता है, तब उसे सम्यग्ज्ञान होता है। उस ज्ञान में फिर अपूर्ण ज्ञान है, निज स्वभाव का आश्रय अल्प है, इसलिए अन्दर राग की मन्दता का भाव आता है और शरीर की क्रिया शरीर के कारण से होती है, उसे जान। आहा..हा..! ऐसी बातें समाज में (अभी चलती नहीं है)।

ऐसा करते-करते.. आहा..हा..! **अन्तर में विशेष लीनता होगी,...** स्वरूप जो

ध्रुवचैतन्य सामान्य एकरूप भेदरहित वस्तु है। विशेष पर्याय जो है, उससे भी सामान्य भिन्न है। अरे! यह किस प्रकार की बात? उस पर दृष्टि देने से तुझे सम्यग्ज्ञान होगा, सम्यग्दर्शन होगा, सुख की दशा की प्राप्ति होगी। फिर ज्ञान में कोई रागादि या परचीज़ हो, स्व को जाना तो पर को जानना – ऐसा स्व-पर प्रकाशक स्वभाव है तो भले जाने। आहा..हा..! कठिन काम है, भाई! ऐसा स्वरूप जो ध्रुव चैतन्यभगवान है, उसे ग्रहण किया, आदर किया, सत्कार किया, स्वीकार किया.. आहा..हा..! तब अन्दर में स्वीकार करते-करते अन्दर में रमते, रमते.. है न? **ऐसा करते-करते अन्तर में विशेष लीनता होगी,...** आनन्दस्वरूप में विशेष लीनता होगी। चारित्र अर्थात् चरना, रमना, जमना। अपने शुद्ध चैतन्यघन को अनुभव में दृष्टि में लिया, फिर स्वरूप में-आनन्दकन्द में विशेष-विशेष लीनता होना, ऐसी लीनता होगी। **साधकदशा बढ़ती जायेगी।** आहा..हा..! शुद्धचैतन्यस्वरूप को दृष्टि में लिया तो इसका आश्रय बढ़ते-बढ़ते साधकदशा बढ़ जायेगी। व्यवहार करते-करते साधकदशा होगी – ऐसा तो तीन काल में नहीं है।

मुमुक्षु : व्यवहार का तो आप जोर से निषेध करते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार राग है, वह अपने स्वरूप में है ही नहीं, अपनी चीज़ ही नहीं न! आहा..हा..! वास्तव में तो नियमसार की अपेक्षा से तो एक समय की निर्मल पर्याय है, उसे भी परद्रव्य कहा है। ऐई! क्यों? कि जैसे परद्रव्य में से नयी शुद्धि की पर्याय उत्पन्न नहीं होती, वैसे पर्याय में से निर्मल पर्याय उत्पन्न नहीं होती। आहा..! निर्मल पर्याय उत्पन्न हुई और विशेष निर्मल पर्याय उत्पन्न होती है, उस पर्याय में से निर्मल पर्याय उत्पन्न नहीं होती। उस त्रिकाली ज्ञायकभाव के आश्रय से निर्मल पर्याय उत्पन्न होती है। आहा..हा..! ऐसा है, भाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह परमपारिणामिक कहो या सामान्यस्वभाव कहो या ज्ञायकभाव कहो, सहजभाव कहो, ध्रुवभाव कहो, नित्यभाव कहो, एकरूप भाव कहो – सब एक ही है। आहा..हा..! भगवान अन्दर ध्रुवस्तम्भ पड़ा है। जैसे वज्र का स्तम्भ होता है, वैसे भगवान ध्रुवस्तम्भ अन्दर पड़ा है। आहा..हा..! इसका आश्रय लेने से, दृष्टि में उसका स्वीकार करने से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान होगा। धर्म की शुरुआत वहाँ से होगी। बाकी लाख क्रियाकाण्ड और व्रत, तप, भक्ति, पूजा करे, वह सब बन्ध का कारण है, उससे

सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहा..हा..! अरे! राग के कारण तो सम्यग्दर्शन नहीं होता परन्तु राग को जाननेवाली जो ज्ञान की पर्याय है, उसके आश्रय से भी सम्यग्दर्शन नहीं होता। यह बात महँगी है, भाई! अभी तो बहुत गड़बड़ चली है। आहा..हा..! सेठ मानो व्यवहार के व्यवसाय में घुस गये। ऐई!

जापानवाले ने लिखा है, हों! जापान में एक बड़ा ऐतिहासिक शोधक है। लेख आया है। उसने लिखा है कि जैनधर्म अर्थात् क्या? उसने बहुत शोध की। हजारों शास्त्र जानने के लिये (पढ़े), बड़ा लेख आया है। जगन्मोहनलालजी ने प्रकाशित किया है। जैनधर्म अर्थात् अनुभूति, वह धर्म है। आत्मा ज्ञायक त्रिकाल है... इतनी अधिक तो उसे खबर नहीं होगी, परन्तु शास्त्र खोजकर इतना निकाला कि जैनधर्म वह अनुभूति धर्म है। आनन्दस्वरूप भगवान का अनुभव करना, वह जैनधर्म है। उसने ऐसा लिया है, अभी यह जैनधर्म बनियों के हाथ में आया है और बनिये व्यवसाय में घुस गये हैं। व्यवसाय.. व्यवसाय.. यह करना और यह करना.. शरीर को ठीक न हो, क्या कहलाता है? कुछ आता है। क्या कहलाता है? हार्ट.. हार्टअटैक आवे तो भी परदेश में भटकने के लिये घूमता है। बाहर के व्यवसाय के कारण निवृत्त नहीं होता, ऐसा कहते हैं। जापानी ऐतिहासिक शोध करते-करते बड़ा लेख लिखा है, वह आया है। लेख किसमें है? अहिंसावाणी। अहिंसावाणी निकलती है न, उसमें लेख है। जगन्मोहनलालजी ने लेख पढ़ा तो फिर वहाँ लेख लिखा है। जापानी व्यक्ति ऐसा कहता है।

तेरी चीज़ अन्दर शुद्ध पूर्णानन्द है। उसने यह भी कहा कि आत्मा निर्वाणस्वरूप है, ऐसा कहा है। निर्वाणस्वरूप अर्थात् मोक्षस्वरूप है। मोक्षस्वरूप अर्थात् अबद्ध, जो १४-१५वीं गाथा में आया न? अबद्धस्पृष्ट। आत्मा, राग के बन्ध के सम्बन्ध से रहित है। इसकी इतनी अधिक दृष्टि न गयी हो, परन्तु मुक्तस्वरूप है। निर्वाणस्वरूप है - ऐसा उसने लिया है। निर्वाण - मोक्षस्वरूप जो आत्मद्रव्य है, त्रिकाल मोक्षस्वरूप है। आहा..हा..! ऐसे मोक्षस्वरूप भगवान आत्मा के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। उसके आश्रय से चारित्र होता है, उसके आश्रय से शुक्लध्यान होता है, उसके आश्रय से केवलज्ञान होता है। आहा..हा..! देवचन्दजी! निवृत्ति नहीं मिलती। सिर पर पण्डित जो कुछ कहे.. जयनारायण!

मुमुक्षु : भगवान की गद्दी पर बैठा है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु भगवान की गद्दी में क्या कहते हैं, उसकी तुलना तो करनी

पड़ेगी या नहीं ? बाहर से कहे कि हम कुछ समझते नहीं, वह तो पण्डित लोग कहते हैं, वह बराबर है। जयनारायण! व्रत करो, तप करो, भक्ति करो कल्याण होगा, जय-जय नारायण! धूल में भी नहीं, सुन न! समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं कि अन्तरस्वरूप जो ध्रुव है, उसे पकड़कर सम्यग्दर्शन हुआ, फिर उसमें लीन होते-होते.. आहा..हा..! है ? **साधकदशा बढ़ती जायेगी।** बीच में दया, दान, व्रत आदि का राग, विकल्प आता है परन्तु ज्ञानी तो उसके जाननेवाले रहते हैं, करता नहीं। आहा..हा..! कठिन बातें। क्योंकि वह तो ज्ञायक चैतन्य सर्वज्ञस्वरूपी प्रभु है। भगवान आत्मा तो सर्वज्ञस्वरूपी आत्मा है। त्रिकाली में तीन लोक तीन काल को स्पर्श किये बिना जाने। लोक और अलोक को स्पर्श किये बिना अपने स्वभाव में जाने - ऐसी उसकी शक्ति और ताकत है। समझ में आया ? आहा..हा..! परमेश्वरस्वरूप है। यह आया है न ? मेरे परमेश्वरस्वरूप को भूल गया था। ३८ वीं गाथा, (समयसार), है न, सब है समयसार में तो ढेर पड़ा है, पूरा समुद्र है। अभी समयसार.. आहा..! प्रभु की सर्वज्ञ की साक्षात वाणी है।

कुन्दकुन्दाचार्य २००० वर्ष पहले भगवान के पास गये थे। वहाँ जाकर आठ दिन रहे थे। वर्तमान में वे ही भगवान बिराजते हैं। समवशरण में बिराजते हैं। ५०० धनुष की देह है, करोड़ पूर्व की आयु है। एक पूर्व छप्पन लाख करोड़ सत्तर लाख करोड़ छप्पन हजार करोड़ वर्ष जाते हैं। ऐसा-ऐसा करोड़पूर्व का प्रभु का आयुष्य है। आहा..हा..! यहाँ २० वें मुनिसुव्रत भगवान हो गये, तब तो उनका जन्म और दीक्षा (कल्याणक) हुए हैं, आगमी चौबीसी में यहाँ तेरहवें तीर्थंकर होंगे, तब वे मोक्ष जायेंगे। भगवान बिराजमान हैं, अरिहन्त पद में बिराजमान हैं। भगवान महावीर आदि (सिद्धपद में बिराजमान हैं)। पूर्व में हैं - पूर्व विदेह में हैं। आहा..हा...!

मुमुक्षु : समयसार में तो ऐसा कहीं लिखा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें लिखा है। प्रवचनसार में लिखा है कि मैं एक-एक तीर्थंकर को वन्दन करता हूँ और महाविदेह में बिराजते हैं, उन्हें मैं वन्दन करता हूँ। प्रवचनसार में है।

मुमुक्षु : प्रवचनसार में कहाँ लिखा है, यह हमें पता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह लिखा है। सब बताने के लिये समय (चाहिए)। पहली

पाँच गाथाओं में है। समझ में आया? और जयसेनाचार्य की टीका में है। जयसेनाचार्यदेव हुए। पहली टीका अमृतचन्द्राचार्यदेव ने की है, दूसरी टीका जयसेनाचार्यदेव ने की है। उनकी दूसरी टीका में है कि महाविदेह में कुन्दकुन्दाचार्यदेव गये थे और फिर शिवकुमार राजा को सम्बोधन करने के लिये यह शास्त्र बनाये हैं। पंचास्ति (काय) है यहाँ? संस्कृत है। यहाँ नहीं। समझ में आया? और देवसेन आचार्य का दर्शनपाहुड़ है, दर्शनसार। पाहुड़ तो आठ है। पाहुड़ में भी अन्त में है। श्रुतसागर (की टीका में है।) भगवान महाविदेह में गये थे, वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाया। आहा..हा..! दर्शनसार में तो ऐसा लिखा है.. देवसेन आचार्य दिगम्बर सन्त हैं, अहो! यहाँ सब ग्रन्थ हैं। यहाँ तो हजारों देखे हैं न? यहाँ तो (संवत्) १९६५-६६ के साल से सब शास्त्रों का अभ्यास किया है। घर की दुकान थी। समझ में आया?

यहाँ से ग्यारह मील दूर उमराला है, वहाँ जन्म हुआ। तेरह वर्ष वहाँ रहे और नौ वर्ष दुकान में, भरूच और बड़ोदरा के बीच पालेज है। वहाँ दुकान थी। नौ वर्ष वहाँ रहे थे। अन्तिम पाँच वर्ष तो मैंने दुकान चलायी थी १७ से २२ वर्ष तक। हम तो एकान्त में पढ़ते थे। बाकी सब धन्धा करते थे। हमारे भागीदार थे, वे पैढ़ी पर बैठे हम तो अन्दर बैठकर श्वेताम्बर के शास्त्र पढ़ते थे। श्वेताम्बर थे न? छोटी उम्र से। उसमें पहली पुस्तक आयी अध्यात्म कल्पद्रुम। अठारह वर्ष की उम्र में। अभी तो नब्बे हुए हैं। अध्यात्म कल्पद्रुम श्वेताम्बर का है। श्वेताम्बर का है परन्तु उसमें कोई तत्त्व की बात नहीं है। वैराग्य की बात थी। यह समयसार जब (संवत्) १९७८ में आया, वह जब देखा... आहा..हा..! ओहो! सेठ को कह दिया कि यह शास्त्र शरीररहित होने की चीज़ है, सिद्ध होने की यह चीज़ है। स्थानकवासी के बत्तीस सूत्र सिद्धान्त हैं, उसमें यह वस्तु नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं था, कहा नहीं था, परन्तु यह वस्तु है - ऐसा कहा था। समझ में आया? फिर यह बात तो (संवत्) १९७८ के साल में जब समयसार मिला, फिर बड़े भाई को मैंने पूछा, बड़ी दीक्षा ली थी। तेईस-साढ़े तेईस वर्ष की उम्र में बड़े भाई ने हाथी के हौदे ६५-६६ वर्ष पहले १८००-२००० खर्च करके। घर में दीक्षा दी थी। दो दुकानें थीं। अभी दुकान चलती है, पालेज में बड़ी दुकान है। पैंतीस-चालीस लाख रुपये हैं। तीन-चार लाख की आमदनी है। यही छियासठ वर्ष पहले की दुकान है। भागीदार का पुत्र है। परन्तु यह सब धूलधाणी है। फिर भाई को कहा - मैं साधु नहीं हूँ। यह मार्ग भी

नहीं है, मैं तो छोड़ दूँगा। फिर भाई ने कहा ... बड़े भाई को मेरे प्रति बहुत प्रेम था। हम साथ रहते थे न! भाई! आपकी प्रसिद्धि बहुत है और एकदम छोड़ोगे तो खलबलाहट हो जायेगी। बड़े भाई ने कहा – खलबलाहट हो जायेगी। महाराज! धीरे-धीरे छोड़ना, ऐसा कहा। धीरे-धीरे समझे, हलवे-हलवे (धीरे-धीरे का गुजराती शब्द)। बड़े भाई ने बात तो हमें संवत् १९८७ के साल में कही थी। १९८७। (संवत्) १९७० में दीक्षा (ली थी)। १९८७ के बाद चार वर्ष निकाले, धीरे-धीरे, भाई! महाराज!

यहाँ उनकी हाजरी थी। यहाँ 'स्टार आफ इण्डिया' नाम का एक मकान था। स्टार ऑफ इण्डिया – हिन्दुस्तान का चमकता तारा, ऐसा एक मकान है। जंगल में है। वहाँ पड़ाव डाला। वहाँ भाई की उपस्थिति में मुँहपत्ती छोड़ दी। एक समाचारपत्रवाला आया था। बड़ा समाचारपत्र अहमदाबाद का है। अक्कलभाई है न? वह आया उससे कहा – मैं अब स्थानकवासी का साधु नहीं हूँ। उसे सुनकर लोगों में खलबलाहट हो गयी। बहुत लोग यहाँ आते थे। हजारों लोग। मार्ग बापू! दूसरा है। दिगम्बर धर्म वही धर्म है, दूसरा कोई धर्म नहीं है। आहा..! दिगम्बर धर्म के सम्प्रदाय में भी खबर नहीं। बाहर की क्रिया, व्रत, तप और मुनिपना ले लो। बारह व्रत करो और प्रतिमा ले लो। सेठ कर नहीं सकते और वे करे, इसलिए कहे आहा..! इन्होंने बहुत किया। ऐसा तो अनन्त बार किया है। सुन!

मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो
पै निज आतम ध्यान बिना सुख लेश न पायो।

ऐसा द्रव्यलिंगी मुनि अनन्त बार हुआ परन्तु आत्मदर्शन जो सम्यक् है, उस त्रिकाल का आश्रय करना चाहिए, वह नहीं किया। समझ में आया? आहा..हा..!

भगवान एक समय की पर्याय के सन्मुख पूर्णानन्द का नाथ पड़ा है और ४९ गाथा में तो कहा है, पर्याय की अपेक्षा से जो अव्यक्त वस्तु है, वह वस्तु, व्यक्त को स्पर्श नहीं करती। यह क्या कहा? अव्यक्त वस्तु जो त्रिकाली ज्ञायकमूर्ति भगवान ध्रुव है, अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अमर्यादित गुण का पिण्ड प्रभु है, वह ध्रुव वस्तु जो सामान्य है, वह वर्तमान पर्याय को स्पर्श नहीं करती। उसकी पर्याय जो है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान में भान हुआ, परन्तु वह द्रव्य है, उस पर्याय को स्पर्श नहीं करता। आहा..! क्या कहते हैं यह? पण्डितजी! ४९, अव्यक्त, अव्यक्त के छह बोल हैं। छह द्रव्यस्वरूप लोक, छह द्रव्यस्वरूप

लोक में अनन्त सिद्ध और केवली सब आ गये। वे जाननेयोग्य हैं, व्यक्त हैं, बाह्य हैं। भगवान आत्मा... यह पहला बोल है। ४९ (गाथा) अव्यक्त। सब कण्ठस्थ है न! (संवत्) १९७१ के साल में श्वेताम्बर के छह-सात हजार श्लोक कण्ठस्थ किये थे। छह-सात हजार श्लोक। फिर तो यह मिला, सम्प्रदाय में अपने सब दिगम्बर शास्त्र देखे थे। समझ में आया? उसमें यह आया है, देखो! ४९ है न? गुजराती है, देखो! ***छह द्रव्यस्वरूप लोक जो ज्ञेय है...*** आहा..हा..! आत्मा के ज्ञानस्वरूप में छह द्रव्यस्वरूप (लोक) तो ज्ञेय है। पररूप से ज्ञेय है। अरिहन्त, सिद्ध आदि अनन्त सिद्ध भी अपने ज्ञान में परज्ञेयरूप से ज्ञेय है। आहा..हा..! ***व्यक्त है, उनसे जीव अन्य है...*** समझ में आया? आहा..! देखो!

व्यक्तता और अव्यक्तता... वर्तमान पर्याय व्यक्त-प्रगट है और त्रिकाली, पर्याय में आया नहीं, इस अपेक्षा से अव्यक्त है, तो पर्याय का और सामान्य का ज्ञान एक साथ होता है, ऐसा होने पर भी... है? ***व्यक्तता तथा अव्यक्तता एकमेक मिश्रितरूप से उसे प्रतिभासित होने पर भी व्यक्तता को स्पर्श नहीं करता।...*** सामान्य जो यह समकित का विषय कहा है, वह पर्याय को स्पर्श नहीं करता। आहा..हा..! परद्रव्य को तो कभी स्पर्श ही नहीं करता। जो पर्याय है, वह कर्म को स्पर्श नहीं करती। जो पर्याय है, वह शरीर को स्पर्श नहीं करती, परन्तु पर्याय को द्रव्य स्पर्श नहीं करता। आहा..हा..! यह क्या बात? है? ***व्यक्तता को स्पर्श नहीं करता, इसलिए अव्यक्त है।...*** आहा..हा..! एकरूप जो ध्रुव.. ध्रुव.. ध्रुव.. ध्रुव.. सामान्य, वह ध्रुव है, वह नित्य है, वह शाश्वत् असली वस्तु है, वह पर्याय को स्पर्श नहीं करती क्योंकि पर्याय एक विशेष अंश है, वह (ध्रुव तो) सामान्य है। ऐसी व्याख्या! कहो, सेठ! तुम तो वहाँ सब सीखे हो, व्याकरण और संस्कृत सीखे हो, यह तो वहाँ कहाँ था? कारंजा में पढ़े हुए हैं। कारंजा... आहा..हा..!

व्यक्त जो पर्याय चीज़ है... आहा..हा..! अपनी वस्तु जो त्रिकाली ज्ञायकभाव का स्वीकार किया, सम्यग्दर्शन हुआ तो यह सम्यग्दर्शन की पर्याय, अव्यक्त जो द्रव्य / वस्तु है, उसे स्पर्श नहीं करती। यह क्या कहते हैं? अन्दर मोक्ष का मार्ग प्रगट किया, त्रिकाल ज्ञायक के अवलम्बन से वीतरागी पर्याय उत्पन्न हुई, उस वीतरागी पर्याय को वीतरागस्वरूप त्रिकाली ध्रुव स्पर्श नहीं करता। आहा..हा..!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : एकमेक कहा न? दोनों का ज्ञान होने पर भी... दोनों का ज्ञान

साथ में होता है परन्तु जो अव्यक्त वस्तु है, वह व्यक्त को स्पर्श नहीं करती। ज्ञान एक साथ होता है। आहा! पण्डितजी! ये सब पण्डित बैठे हैं। आहा..हा..! ऐ, ज्ञानचन्दजी!

मुमुक्षु : आपका स्वीकार करने के लिये ही यह...

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वीकार नहीं, इसे बैठता है, तब हाँ करते हैं। इसके ख्याल में आता है कि यह बात बराबर है, तो हाँ करते हैं। आहा..हा..!

यहाँ कहते हैं कि अपनी **साधकदशा बढ़ती जायेगी।** क्या (कहा)? अपने द्रव्यस्वरूप सामान्य की दृष्टि करने से और तत्पश्चात् उसमें लीन होने से साधकदशा.. शुद्धता बढ़ती जायेगी। पाँचवाँ, छठवाँ, सातवाँ गुणस्थान आदि बढ़ते जायेंगे परन्तु उस त्रिकाली ज्ञानस्वरूप भगवान में लीन होने से, साधकदशा बढ़ती जायेगी। कोई व्यवहारक्रिया बीच में आती है, इसलिए साधकदशा बढ़ती जाती है – ऐसा नहीं है। आहा..हा..! तथापि कहते हैं **देशव्रत और महाव्रत सामान्य स्वरूप के आलम्बन से आते हैं;...** अर्थात् सामान्यस्वरूप में दृष्टि है, तथापि भूमिकाप्रमाण पंचम गुणस्थान, छठवें गुणस्थान में व्रत का विकल्प आता है। (सामान्यस्वरूप के) अवलम्बन से नहीं परन्तु अवलम्बन के काल में। आहा..हा..! शब्द तो ऐसे पड़े हैं, भाई! **देशव्रत और महाव्रत सामान्य स्वरूप के आलम्बन से...** इसका अर्थ यह है कि ध्रुव जो चिदानन्द भगवान का आलम्बन जिस दृष्टि में हुआ, उस आलम्बन के काल में शुद्धि आगे बढ़ती है, तब महाव्रत और अणुव्रत के विकल्प आते हैं, और आते हैं उन्हें जानता है। 'स्वपरप्रकाशक शक्ति हमारी, तातै (वचन) भेदभ्रम भारी, ज्ञेय शक्ति विविध प्रकाशी, निजरूपा पररूपा भासी।' समयसार नाटक, आहा..हा..!

इस सामान्य का अवलम्बन लेकर जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुए, उसमें लीनता होकर चारित्र हुआ.. आहा..हा..! वह साधकदशा शुद्धि की वृद्धि हुई, बढ़ती गयी.. आहा..हा..! उसे देशव्रत और महाव्रत के विकल्प, सामान्य के अवलम्बन के काल में, सामान्य का अवलम्बन पूर्ण नहीं, पूर्ण आश्रय नहीं (तो विकल्प आते हैं)। आहा..हा..! भाई! यह तो तीन लोक के नाथ सीमन्धर भगवान की वाणी है। यह बहिन वहाँ से आयी है और वहाँ की वाणी कहती हैं। आहा..! समझ में आया? यह बात सूक्ष्म, बापू! व्यक्तिगत बात बैठना कठिन है। व्यक्तिगत न बैठे, पर तत्त्व की बात तो सुनो। आहा..हा..!

कहते हैं कि श्रावक के देशव्रत, परन्तु सामान्य का अवलम्बन है, उसे साधकदशा बढ़ गयी, तब व्रत के विकल्प आते हैं। उस सामान्य की जिसे दृष्टि ही नहीं, उसे व्रतादि

आते हैं, वह तो मिथ्याव्रत और अज्ञान है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : बालव्रत, बालतप।

पूज्य गुरुदेवश्री : बालव्रत और बालतप। आहा..हा..! परन्तु जिसे पूर्ण स्वरूप भगवान आत्मा.. वेदान्त में भी कहते हैं, 'पूर्णमिदम' परन्तु उन्हें पर्याय और द्रव्य की कुछ खबर नहीं है। ऐसे के ऐसे अकेले बातें करते हैं। वेदान्त है न? एक सर्व व्यापक शुद्ध है (-ऐसा मानते हैं)। वे निश्चयाभासी मिथ्यादृष्टि हैं। समझ में आया? यह तो सर्वज्ञ से सिद्ध हुई (बात है)। पर्याय और द्रव्य दो वस्तु है। समझ में आया? अनन्त द्रव्य हैं, अनन्त आत्मायें हैं, अनन्त सिद्ध हैं। वेदान्त में ऐसा है ही नहीं।

यहाँ कहते हैं, आहा! अपनी चीज़ जो शुद्ध चैतन्यघन है, दृष्टि की डोर वहाँ लगा दी और फिर उसमें लीन होते-होते साधकदशा की शुद्धता बढ़ती है, वहाँ साधकदशा चौथे से पाँच में आयी। लीन होने से साधकदशा बढ़ी न? वहाँ बारह व्रत का विकल्प आता है। उसे भी जानता है। आगे जाने पर छठे-सातवें में मुनि की दशा हुई। साधकपना स्व के आश्रय से बढ़ता है। बढ़ते-बढ़ते छठा-सातवाँ आया। मुनि को पहले सातवाँ आता है, सातवाँ गुणस्थान। पहले छठवाँ नहीं आता, सप्तम आता है। फिर सातवें में से हट जाये, तब छठवाँ आता है। यह छठे और सातवें गुणस्थानवर्ती सच्चे मुनि की बात है। वे अन्तर्मुहूर्त में हजारों बार छठे-सातवें में आते हैं। जिन्हें पौन सेकेण्ड के अन्दर निद्रा आती है, उन्हें सच्चे मुनि कहते हैं। आहा..हा..! उन मुनि को अन्दर में शुद्धचैतन्य के अवलम्बन से साधकदशा बढ़ी, उसमें जो महाव्रत का विकल्प आया, उसे वे जानते हैं। है? सामान्यरूप के अवलम्बन के काल में आते हैं।

मुख्यता निरन्तर सामान्य स्वरूप की... देखो! व्रत का विकल्प आया परन्तु दृष्टि के विषय में द्रव्य की ही मुख्यता होती है। आहा! त्रिकाली ज्ञायक भगवान की दृष्टि से हटते नहीं। साधकजीव धर्मी को त्रिकाल ज्ञायकभाव की दृष्टि है, वह कभी हटती नहीं। समझ में आया? आहा..हा..! ऐसी बातें! अब क्या कहें? यह एक बात हुई। १९१ बोल (पूरा हुआ) तुम्हारे पुस्तक आयी है या नहीं? यहाँ पुस्तक आयी है या नहीं? पढ़ी है। एक बार? दो बार? पूरा नहीं। थोड़ा-थोड़ा पढ़ा होगा। नाम तो पूर्णचन्द्र है। एक पुस्तक पूरी नहीं पढ़ी? अभी तो उलाहना देते हैं। यह पुस्तक बहुत अच्छी आ गयी है। पचास हजार पुस्तक लगभग प्रकाशित हो गयी है। ताड़पत्र में आयी है, छोटे-छोटे पत्र में आयी है, छोटी

पुस्तक में आयी है। समझ में आया ? यह पुस्तक है न ? यह पुस्तक नहीं आयी। फिर ले जाना। समझ में आया ? यहाँ ऐसा कहते हैं, प्रभु ! चैतन्यघन अनन्त आनन्द का सागर, समुद्र है। भगवान आत्मा अनन्त गुण का गोदाम है। तुम्हारे सब गोदाम धूल के हैं, भले करोड़ों रुपये हों। ऐई ! हसमुखभाई ! ये सब करोड़पति हैं। तुम्हारे पास बैठे हैं न ये ? छह भाई हैं, बहुत पैसा है।

मुमुक्षु : बहुत मजा होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी मजा नहीं, दुःख है। परद्रव्य के प्रति लक्ष्य जाता है तो ***परदव्वादो दुग्गई।*** आहा..हा.. ! भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव मोक्षपाहुड़ में १६ वीं गाथा में ऐसा कहते हैं। ***परदव्वादो दुग्गई*** तू याद रख, तेरी चीज़ के अतिरिक्त दूसरी चीज़ पर तेरा लक्ष्य जायेगा तो चैतन्य की गति छूटकर विकार की गति होगी, दुर्गति होगी। आहा..हा.. ! अरे ! देह, लक्ष्मी के प्रति तो ठीक, स्त्री के प्रति तो ठीक, वह तो दुर्गति-राग है परन्तु तीन लोक के नाथ कहते हैं, मैं तेरे लक्ष्य में आऊँगा तो तुझे राग होगा, तेरी दुर्गति होगी। ऐई ! १६ वीं गाथा है। मोक्षपाहुड़। है यहाँ ? है, है मोक्षपाहुड़। कौन सी गाथा ? १६, १६, ***परदव्वादो दुग्गई*** शब्द है परन्तु मुझे तो दूसरा कहना है कि पंच महाव्रत का विकल्प है वह मुनि को जगपंथ है। यह समयसार नाटक में है। यह बताया था। यह ***परदव्वादो दुग्गई*** —परद्रव्य से दुर्गति होती है। कुन्दकुन्दाचार्यदेव बाहर में भगवान के पास गये थे और अन्तर में भगवान आत्मा के पास गये थे।

मुमुक्षु : परद्रव्य अर्थात् क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अपनी आत्मा के अतिरिक्त देव-शास्त्र-गुरु, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, पैसा-धन्धा सब परद्रव्य है।

मुमुक्षु : पैसा मेरा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल है तेरी। पैसा मेरा माने, वह मूढ़ है। पैसा जड़ वस्तु है। जड़ वस्तु जीव की कहाँ से हो गयी ? अजीव है, वह जीव का हो गया ? मूढ़ है, वह ऐसा मानता है। राग का भाव भी मेरा माने तो मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। अपनी पर्याय में जो विकृत अवस्था होती है, वह भी अपनी माने तो मूढ़ मिथ्यादृष्टि है तो परचीज़ मेरी है, यह मेरी स्त्री और मैं इसका पति हूँ और लक्ष्मीपति हूँ और उद्योगपति हूँ.. आहा..हा.. ! सूक्ष्म बात है, भाई ! यह तो वीतराग का मार्ग है। देखो।

परदव्वादो दुग्गई सद्दव्वादो हु सुग्गई—अपना चैतन्य ध्रुवस्वरूप के आश्रय से पर्याय होती है, वह सुगति है। आहा..हा..! त्रिलोकनाथ भगवान परमानन्द प्रभु अनन्त-अनन्त गुण का गोदाम परमात्मा है। उसका आश्रय करने से जो दृष्टि हुई, वह ***सद्दव्वादो हु सुग्गई***—वह सुगति-चैतन्य की परिणति है, वह सुगति है। आहा..हा..! और जितना परद्रव्य के आश्रय से राग होता है, वह चैतन्य के स्वभाव से विरुद्ध दुर्गति है, उसमें सिद्धगति नहीं होती। स्वर्ग आदि मिले तो वह स्वर्ग दुर्गति है। आहा..हा..! समझ में आया? अरबोंपति, अरबों रुपये मिले, दुर्गति है। वह चीज़ तो पर है, तेरी कहाँ से हो गयी? आहा..!

वे भाई गुजर गये न? यह तो दो अरब चालीस करोड़, शान्तिलाल खुशाल वे भाई! गुजर गये। उनके भाई अभी गुजर गये, भाई ने कहा। पुरुभाई है न? इनके साले थे। शान्तिलाल खुशाल था, उसका साला उनके पास दो अरब चालीस करोड़। कितने? दो अरब चालीस करोड़। दो सौ चालीस करोड़। गोवा, ये पुरुभाई बैठे हैं न? इनके साले हैं। वे साले गुजर गये। दूसरा साला था, उसने आज बात की। दूसरे भागीदार थे न? भाई! भागीदार न? वे भी अभी गुजर गये। भाई ने आज कहा। ये बैठे हैं इनके साले, सगे साले। इनकी बहिन उनकी पत्नी है। उनके पास दो अरब चालीस करोड़। पुरुभाई की दो लड़कियाँ हैं। अरबोंपति की बहिन की दो लड़कियाँ अपने यहाँ बालब्रह्मचारी हैं। ६४ में बालब्रह्मचारी है। बहिन के नीचे ६४ लड़कियाँ हैं न? बालब्रह्मचारी हैं। दोनों लड़कियाँ ब्रह्मचारी हैं। वे इनके बहनोई हैं। दो अरब और चालीस करोड़। धूल में वहाँ कुछ नहीं।

मुमुक्षु : अम्बाजी को मानते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : अम्बाजी को मानता था, खबर है न? वह तो मूढ़ जीव था। स्थानकवासी जैन होने पर भी अम्बाजी को मानता था। दो अरब और चालीस करोड़ हुए तो भी, और पाँच मिनिट में गुजर गया एकदम। उसकी स्त्री को हेमरेज हुआ था। हेमरेज, हेमरेज हुआ तो बेहोश हो गयी थी तो इलाज कराने बम्बई लाये, वहाँ तो बड़ा चालीस लाख का मकान है। दस-दस लाख के दो हैं, साठ लाख के तीन मकान गोआ में हैं। यहाँ इलाज कराने लाये थे। दो-चार दिन से बेहोश थी। उसमें इसे कुछ हुआ। रात्रि को कहा-मुझे दु:खता है। डॉक्टर को बुलाओ। जहाँ डॉक्टर आया, वहाँ भाईसाहब परगति-दुर्गति में चला गया। ढोर में कहीं गया होगा।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : गुजर गया। आहा! दो मिनिट में, पाँच मिनिट में। धूल में तेरा पैसा (पड़ा रहा)। चालीस लाख का बँगला और... फिर मुर्दा वहाँ ले गये, क्योंकि बड़े गृहस्थ हैं न? वहाँ से धूमधाम से निकाल ले गये परन्तु मर गया कहीं दुर्गति में ढोर में गया होगा। क्योंकि माँस, शराब आदि तो बनिया नहीं खाता, इसलिए नरक में तो नहीं जायेगा परन्तु तिर्यंच में.. तिर्यंच समझे? यह गाय-भैंस है न? तिर्यंच क्यों कहते हैं? मनुष्य का शरीर ऐसा खड़ा है और पशु गाय-भैंस, गिलहरी का शरीर आड़ा / तिरछा है। आड़े को तिर्यंच कहते हैं। गोम्मटसार। ऐसे तिर्यंच क्यों हुए? कि पूर्व में आत्मा के स्वभाव से विरुद्ध वक्रता बहुत की थी। गोम्मटसार में पाठ है। वक्रता की थी। राग और द्वेष, पुण्य और पाप और विकार... पुण्य तो थोड़ा परन्तु पाप के विकार की वक्रता बहुत थी। मरकर गति में गया, वहाँ इसका शरीर आड़ा हो गया। आत्मा तो आड़ा हो गया (परन्तु शरीर भी आड़ा हो गया)। आहा..हा..! नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती (कृत) गोम्मटसार में यह है। वह आड़ा हो गया। तिर्यंच शरीर ऐसा आड़ा हो गया। यह चूहा, बिल्ली, कुत्ता, हाथी, घोड़ा सब ऐसा है न? आहा..हा..! वह तो जैसे परिणाम हैं, वैसी गति हो जायेगी। आहा..हा..! जहाँ धर्म क्या वस्तु है, उसकी खबर नहीं और सत्समागम में दो-चार घण्टे निकालना, वह पुण्य भी नहीं। समझ में आया? तो उसे पुण्य का भी ठिकाना नहीं। बाईस-तेईस घण्टे मात्र पाप के धन्धे में लढ़न (एकाकार हो जाना) लढ़न को क्या कहते हैं? लढ़न कहते हैं? धन्धे के पाप के परिणाम घोंटना। अरे रे! भगवान! बापू! उसे तो दुर्गति है। आहा..हा..!

यहाँ तो परमात्मा की वाणी है, वह कहते हैं।

आत्मा तो निवृत्तस्वरूप—शान्तस्वरूप है। मुनिराज को उसमें से बाहर आना प्रवृत्तिरूप लगता है। उच्च से उच्च शुभभाव भी उन्हें बोझरूप लगते हैं—मानों पर्वत उठाना हो। शाश्वत् आत्मा की ही उग्र धुन लगी है। आत्मा के प्रचुर स्वसंवेदन में से बाहर आना नहीं सुहाता॥१९२॥

१९२, **आत्मा तो निवृत्तस्वरूप...** भगवान आत्मा तो राग से भी निवृत्तस्वरूप है। आहा! जिसे आत्मा कहते हैं, अन्दर सत्चिदानन्द प्रभु है, वह तो राग और पर से निवृत्तस्वरूप है क्योंकि जो नौ तत्त्व हैं, उसमें शरीरादि, लक्ष्मी आदि तो अजीवतत्त्व है।

कर्म, वह अजीवतत्त्व है। दया, दान के परिणाम पुण्यतत्त्व है। हिंसा-झूठ के परिणाम पापतत्त्व है। दोनों मिलकर आस्रवतत्त्व है। राग में रुक जाना, वह बन्धतत्त्व है और पूर्णदशा प्रगट होना, वह मोक्षतत्त्व है और यह भगवान ज्ञायकतत्त्व उनसे भिन्न है। आहा..हा..! समझ में आया?

आत्मा तो निवृत्तस्वरूप... शान्तस्वरूप है, अकेला अकषायस्वभाव का पिण्ड प्रभु है। अकषाय कहो या शान्त कहो। निर्विकल्प शान्तस्वरूप भगवान आत्मा, जिसमें विकल्प की वृत्ति का उत्थान भी नहीं। आहा..हा..! ऐसा शान्तस्वरूप है। **मुनिराज को उसमें से बाहर आना प्रवृत्तिरूप लगता है।** आहा..हा..! जो सच्चे मुनि हैं.. आहा..हा..! आनन्द के नाथ में अन्दर घुस गये हैं। उसमें से बाहर विकल्प आता है, विकल्प वह बाहर है, बाहर आना तो प्रवृत्तिरूप लगता है, प्रवृत्तिरूप लगता है। आहा! अरे! हम परदेश में कहाँ आ गये? पंच महाव्रत के परिणाम में आते हैं तो परदेश में आ गये। हमारा स्वदेश तो अन्दर रह गया। आहा..हा..! है? **बाहर आना प्रवृत्तिरूप लगता है।**

उच्च से उच्च शुभभाव भी... उच्च से उच्च शुभभाव, जिससे तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भी बोझरूप लगता है। राग है न! राग से निवृत्तस्वरूप भगवान है। उसे राग आता है, वह बोझ लगता है। आहा..हा..! बोझा समझते हो? भार लगता है। आहा..हा..! भगवान आत्मा विकल्प के राग से निवृत्तस्वरूप है-ऐसा भान हुआ, ऐसे समकिती को और मुनिराज बाहर विकल्प में आते हैं तो बोझा लगता है। आहा..हा..! राग है, क्लेश है, दुःख है। आहा! **मानों पर्वत उठाना हो।** आहा..हा..! पर्वत उठाना हो, वैसे शुभभाव आता है परन्तु ऐसा बोझ लगता है। आहा..! शुभराग को तो मोक्ष अधिकार में ऐसा कहा है- विषकुम्भ - जहर का घड़ा है। भगवान अमृतस्वरूप है, राग जहर का घड़ा है। धर्मी को- मुनिराज को राग आता है परन्तु बोझ लगता है। आहा..हा..! **मानों पर्वत उठाना हो।**

शाश्वत् आत्मा की ही उग्र धुन लगी है। आहा..हा..! मुनि को तो शाश्वत् त्रिकाली की धुन लगी है। **आत्मा के प्रचुर स्वसंवेदन में से बाहर आना नहीं सुहाता।** अन्तर के आनन्द के वेदन में से बाहर आना नहीं रुचता है परन्तु कमजोरी से आना पड़ता है तो उसे जानते हैं परन्तु उसे बोझ जानते हैं, दुःखरूप जानते हैं, इसका नाम सम्यग्दृष्टि और ज्ञानी कहते हैं।

विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण-४, मंगलवार, दिनाङ्क २२-०८-१९७८
वचनामृत-१९३, १९४, १९५ प्रवचन-७२

सम्यग्दृष्टि जीव ज्ञायक को ज्ञायक द्वारा ही अपने में धारण कर रखता है, टिकाए रखता है, स्थिर रखता है—ऐसी सहज दशा होती है।

सम्यग्दृष्टि जीव को तथा मुनि को भेदज्ञान की परिणति तो चलती ही रहती है। सम्यग्दृष्टि गृहस्थ को उसकी दशा के अनुसार उपयोग अन्तर में जाता है और बाहर आता है; मुनिराज को तो उपयोग अति शीघ्रता से बारम्बार अन्तर में उतर जाता है। भेदज्ञान की परिणति—ज्ञातृत्वधारा—दोनों के चलती ही रहती है। उन्हें भेदज्ञान प्रगट हुआ तब से कोई काल पुरुषार्थ रहित नहीं होता। अविरत सम्यग्दृष्टि को चौथे गुणस्थान के अनुसार और मुनि को छठवें-सातवें गुणस्थान के अनुसार पुरुषार्थ वर्तता रहता है। पुरुषार्थ के बिना कहीं परिणति स्थिर नहीं रहती। सहज भी है, पुरुषार्थ भी है॥१९३॥

वचनामृत (बोल) १९३, तात्त्विक बात है, भाई! बहिन की वाणी में तो मक्खन तत्त्व भरा है। **सम्यग्दृष्टि जीव...** जिसे प्रथम ज्ञायकभाव के अनुभव में प्रतीति हुई है। ज्ञायक शुद्धचैतन्य आनन्द, देवस्वरूप चैतन्य-चमत्कार परमात्मा, यह **सम्यग्दृष्टि जीव ज्ञायक को ज्ञायक द्वारा ही...** जो अपना स्वरूप ज्ञायक नित्यानन्द प्रभु है, उस **ज्ञायक द्वारा ही अपने में धारण कर रखता है,...** आहा..हा..! यह दया, दान, व्रतादि भाव से ज्ञायकभाव धारण नहीं होता। आहा..हा..! ज्ञायक देवाधिदेव जो वस्तुस्वभाव, उसके अनुभव में जो प्रतीति हुई है। उस **ज्ञायक द्वारा ही अपने में धारण कर रखता है,...** ज्ञायक को ज्ञायकभाव में धारण कर रखता है। आहा..हा..! क्या कहते हैं? सूक्ष्म है, भाई! **ज्ञायक द्वारा ही अपने में धारण कर रखता है,...** ज्ञायकस्वभाव द्वारा, पर्याय में उसका भान हुआ अनुभव में कि यह तो ज्ञायकस्वरूप है, ध्रुव है, नित्य है। आहा..हा..! जिसमें आवरण

नहीं, अशुद्धि नहीं, हीनता अर्थात् कमी नहीं—ऐसा पूर्ण ज्ञायकभाव, वह दृष्टि में आया, अनुभव में आया। ज्ञायकभाव द्वारा ज्ञायक को धारण कर रखता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : समझ में नहीं आता? स्पष्टीकरण कराते हैं। चैतन्य ज्ञायक-चैतन्य ज्ञायकस्वरूप के अनुभव में जो दृष्टि हुई, तो इस ज्ञायकभाव को ज्ञायकभाव में ही धारण कर रखते हैं। ज्ञायक में टिकना, यह ज्ञायकभाव से टिकते हैं, राग से टिकना और व्यवहार से टिकना - ऐसा है नहीं, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! **ज्ञायक को...** - जाननस्वभाव को **ज्ञायक द्वारा ही...** अपने स्वभाव की शुद्धपरिणति द्वारा ही **अपने में धारण कर रखता है,...** आहा..हा..! यह सम्यक् दृष्टि ऐसी चीज़ है। **टिकाए रखता है,...** ज्ञायकभाव के अवलम्बन से जो ज्ञायक का अनुभव हुआ, वह ज्ञायकभाव को धारण करता है - ज्ञायकपने को टिका रखता है। **टिकाए रखता है,...** मैं त्रिकाल ज्ञायक हूँ - ऐसे टिका रखता है। आहा! और **स्थिर रखता है...** ज्ञायक में ज्ञायकभाव द्वारा स्थिर रहता है। सूक्ष्म बात है, भाई! चैतन्य प्रकाश का पुंज प्रभु, ऐसा जब दृष्टि में-अनुभव में आया तो वह ज्ञायकभाव द्वारा ज्ञायकभाव में टिकता है, ज्ञायकभाव द्वारा ज्ञायक में स्थिर रहता है, ज्ञायकभाव ज्ञायक में टिका रखता है। अपना स्वरूप ज्ञायक द्वारा... है तो त्रिकाल रहा हुआ, परन्तु पर्याय में अनुभव आया, उस निर्मल (पर्याय) द्वारा ज्ञायकभाव में ज्ञायक टिका रखता है। राग में नहीं, निमित्त में नहीं, संयोग में नहीं। सूक्ष्म बात, प्रभु! आहा..हा..!

ऐसी सहज दशा होती है। आहा..हा..! स्वाभाविक ज्ञायकस्वरूप जहाँ अनुभव में आया, तो सहज ज्ञायकभाव द्वारा ही अन्दर में स्थिरता होती है - ऐसी सहज दशा है। उसको कोई राग, व्यवहाररत्नत्रय आता है; इसलिए ज्ञायकभाव में स्थिर रहता है - ऐसा नहीं है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल आश्रय नहीं। कहते हैं, ख्याल में आया था अभी। वे छोटा भाई कहते थे, छोटा लाल, इन्दौर के आश्रम में रहते थे न? छोटालाल, (उन्हें) पहले यहाँ बात बराबर जँची थी, फिर वहाँ गये (तो उन्होंने कहा)-तुम सोनगढ़ गये हो, बदल जाते हो। आहा..हा..! ऐसा है। प्रभु! तुझे खबर नहीं। तेरी चीज़ ही... आहा..हा..! तू ही

देव का देव। तेरी अन्दर दिव्यशक्ति के अवलम्बन में किसी राग की, निमित्त की अपेक्षा नहीं। नियमसार में कहा है - दूसरी गाथा में (कहा है) कि अपना स्वरूप जो अनुभव में आया था, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय में पर की कोई अपेक्षा थी तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ - ऐसा नहीं है। क्या कहा ? कि कोई राग की मन्दता हुई - इतनी अपेक्षा से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ - ऐसा नहीं है। आहा..हा..! पाटनीजी! अन्तर निरपेक्ष भगवान आत्मा (है)। अन्तर के अवलम्बन से जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुए, उसका दर्शन-ज्ञान-चारित्र में किसी दूसरे की अपेक्षा है-तो मोक्षमार्ग हुआ - ऐसा है नहीं। आहा..हा..! बहुत सूक्ष्म बात है, बापू! अभी तो बहुत विपरीतता (चलती है) बहुत फेरफार-फेरफार (हो गया है)।

भगवान तीन लोक का नाथ परमात्मास्वरूप के अनुभव में, जो भगवान पूर्णानन्द है - वह आया, तो इस ज्ञायकभाव की प्रतीति और अनुभव हुआ, उसमें कोई व्यवहार रत्नत्रय की अपेक्षा थी - तो हुआ - ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : सहकारी है...

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त है। सहकारी अर्थात् अपने स्वरूप का आश्रय लेकर जो अनुभव हुआ, वह यथार्थ निश्चय है; साथ में राग आता है, उसे आरोप करके - सहचार (अर्थात्) साथ में देखकर-निमित्त देखकर उपचार से व्यवहार कहने में आता है। ऐसी बात है, भाई! आहा..हा..! वह है नहीं, उसे व्यवहार कहने में आता है। अपने स्वरूप के अवलम्बन से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुए, वह तो सत्यार्थ है और उससमय में जो रागादि, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, पंच महाव्रत का परिणाम, शास्त्र का ज्ञान, (हुआ), उसे व्यवहारसमकित, व्यवहारज्ञान, व्यवहारचारित्र (कहा जाता है।) यहाँ ज्ञायक का निश्चय हुआ, वहाँ उसे (रागादि को) व्यवहार का आरोप दिया। वह है नहीं। सम्यग्दर्शन, व्यवहार है नहीं, वह तो राग है परन्तु सहचर / साथ में देखकर उपचार से व्यवहार कहने में आया है। ऐसी बात है, बापू! आहा..हा..! समझ में आया ?

सम्यग्दृष्टि जीव को तथा मुनि को भेदज्ञान की परिणति तो चलती ही रहती है। आहा..हा..! राग से भिन्न जो अनुभव हुआ, ऐसी भेदज्ञान की परिणति / दशा तो चलती ही रहती है। आहा..हा..! समय-समय में राग से भिन्न करना - ऐसा रहता नहीं। **भेदज्ञान की परिणति तो चलती ही रहती है।** आहा..हा..!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न ? करना अर्थात् पहले शुरुआत में भेदज्ञान करना - ऐसा कहा न ? राग से भिन्न करो, स्वरूप की दृष्टि-अनुभव करो-ऐसा भेदज्ञान करना, आहा..हा..! परन्तु (यह) करना तो द्रव्य के आश्रय से होता है या राग के आश्रय से होता है ? उससे - राग से तो भेद करना है। (जिस) राग से भेद करना (है), उस राग की अपेक्षा से भेदज्ञान होता है ? आहा..हा..! बहुत कठिन बात! प्रथम धर्म की शुरुआत ही बहुत अलौकिक और अपूर्व है। बाकी फिर... आहा..हा..! वस्तु ज्ञायक चैतन्यघन चैतन्य-चमत्कार देवाधिदेव प्रभु... आहा..हा..! उसका भेदज्ञान तो ज्ञानी को निरन्तर रहता है। करना नहीं पड़ता। पुरुषार्थ में पर से भिन्न का ज्ञान-भेदज्ञान - की परिणति निरन्तर रहती है। आहा..हा..! कहा गये दूसरे तुम्हारे भाई थे न ? गये है। समझ में आया ? आहा..हा..! सूक्ष्म बात है, भाई!

सम्यग्दृष्टि जीव को तथा मुनि को भेदज्ञान... विकल्प से भेदज्ञान की परिणति अर्थात् निर्मल पर्याय तो चलती ही रहती है। आहा..हा..! अभी कोई खबर ही नहीं, क्या चीज़ है ? बाहर की भक्ति, पूजा, व्रत और तपस्या... हो गया धर्म! धूल में भी धर्म नहीं है। धूल में धर्म नहीं —यह क्या कहा ? उसको पुण्यानुबन्धी पुण्य भी नहीं होगा। धूल जो बँधी है, वह पुण्यानुबन्धी पुण्य भी नहीं होगा। आहा..हा..! अपने स्वरूप की दृष्टि और अनुभव होने के बाद राग आता है, उसे पुण्यानुबन्धी पुण्य का बन्धन पड़ता है। यह पुण्यानुबन्धी पुण्य है। परन्तु जिसकी दृष्टि-अनुभव में है नहीं और राग तथा पर्याय पर दृष्टि है, उसे तो पापानुबन्धी पुण्य बँधता है। शुभभाव आता है तो बँधता है। बहुत कठिन बात! पण्डितजी आये नहीं ? फूलचनदजी ?... आहा..हा..!

सम्यग्दृष्टि गृहस्थ को... अन्तर में आत्मा आनन्दस्वरूप का अनुभव हुआ—ऐसे **सम्यग्दृष्टि गृहस्थ को उसकी दशा के अनुसार उपयोग अन्तर में जाता है...** क्या कहते हैं ? जिसमें राग से भिन्न अपने आत्मा का अनुभव हुआ—ऐसे गृहस्थी सम्यग्दृष्टि को अन्तर में ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय के भेद को भूलकर उपयोग अन्दर में जाता है। किसी समय जाता है। समझ में आया ? **सम्यग्दृष्टि गृहस्थ को उसकी दशा के अनुसार...** दशा (में) तो दो कषाय का अभाव है, मिथ्यात्व का अभाव है, सम्यग्दृष्टि है।—(यह) पाँचवें गुणस्थान की बात है। चौथे (गुणस्थान में भी) सम्यग्दृष्टि है, तो उसे भी अन्तर में उपयोग,

उसकी दशा के अनुसार अन्तर में जाता है। अभेद उपयोग हो जाता है। आहा..हा..! समझ में आया? ज्ञाता-ज्ञान और ज्ञेय का भेद भी छूट जाता है। ध्याता-ध्यान और ध्येय—ऐसा भेद भी छूट जाता है, परन्तु उसकी दशा के अनुसार होता है। आहा..हा..!

और बाहर आता है;... दशा के अनुसार उपयोग अन्दर जाता है, बाद में बाहर आता है, विकल्प उत्पन्न होता है। क्या कहते हैं?*

सम्यग्दृष्टि को चौथे गुणस्थान में या पाँचवें गुणस्थान में आत्मा के आनन्द का सच्चा अनुभव है, उसका उपयोग उसकी दशा के अनुसार अन्दर जाता है और बाहर आता है। तुरन्त बाहर आता है क्योंकि दशा न्यून है। जैसी मुनि की दशा है, वैसी दशा नहीं है। आहा..हा..! अन्तर के उपयोग में एकाकार के अनुभव में से निकलकर किसी समय विकल्प बाहर आता है। आहा..हा..! ऐसा मार्ग!

मुनिराज को तो उपयोग अति शीघ्रता से बारम्बार अन्तर में उतर जाता है। सन्त जो आत्मा के आनन्द के अनुभवी, भावलिंगी हैं, उनका उपयोग तो क्षणभर बाहर रहता है और दूसरे क्षण अन्तर में चला जाता है। समझ में आया? गृहस्थ को निर्मलता की जो दशा उत्पन्न हुई, परन्तु जैसी मुनि की दशा है, वैसी दशा नहीं है। उनकी दशा के अनुसार किसी समय उपयोग अन्तर में एकाकार होता है। पश्चात् बाहर विकल्प में आता है। और मुनिराज को तो शीघ्र-शीघ्र (निर्विकल्पता होती है)। आहा..हा..! जो विकल्प आया, उससे छूटकर निर्विकल्प में दूसरे सेकेण्ड अन्दर में चले जाते हैं।

मुमुक्षु : विकल्प को उल्लंघ जाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उल्लंघ जाते हैं। आहा..हा..! क्षणभर में मुनिराज को तो अन्दर (उपयोग आ जाता है)। सच्चे सन्त, हों! जिन्हें आत्मज्ञानसहित दर्शन-चारित्र प्रगट हुए हैं, ऐसे मुनि को बाहर में तो थोड़ा विकल्प आता है, फिर तुरन्त अन्दर में चले जाते हैं। आहा..हा..! छठवें में आते हैं तो विकल्प है, फिर तुरन्त सातवें में अन्दर चले जाते हैं। उन्हें क्षणभर में सप्तम (गुणस्थान) आता है। आहा..! गृहस्थ को इतना क्षणभर में उपयोग अन्दर में एकाकार नहीं होता। समझ में आया? शुद्धपरिणति चलती है, तथापि गृहस्थ को

* गुजराती अमृत प्रवचन में इस प्रवचन का 18 मिनिट का प्रवचन नहीं है, जिसे यहाँ सी.डी. से सुनकर दिया गया है।
—अनुवादक / सम्पादक

अन्दर में उपयोग कभी आता है और मुनिराज को तो बाहर आये कि उपयोग **अति शीघ्रता से बारम्बार अन्तर में उतर जाता है।** आहा..हा..! सच्चे सन्त हैं, उन्हें तो उपदेश के समय भी अन्तर (में) उपयोग चला जाता है। कठिन बात! बहुत शीघ्रता निर्मलदशा उत्पन्न होती है; इस कारण से विकल्प में आये तो भी बहुत शीघ्रता से अन्दर में चले जाते हैं। आहा..हा..! समझ में आया? इसका ज्ञान तो लोगों को करना पड़ेगा न? कि मुनिपना कैसा है? और गृहस्थपने में समकिती कैसे होते हैं? आहा..हा..! है?

अति शीघ्रता से बारम्बार... (बहुत) शीघ्रता से और बारम्बार। आहा..हा..! परमेश्वर पद पर्याय में प्रगट हुआ है। जैसा परमेश्वर शक्तिरूप से था, वैसा व्यक्तरूप से परमेश्वर पद प्रगट हुआ है। मुनि पंच परमेष्ठी है न? आहा..हा..! इन्हें बाहर विकल्प आया, छठवीं (गुणस्थान की) भूमिका में प्रमाद के कारण महाव्रत आदि का (विकल्प आया) परन्तु तत्काल बहुत शीघ्रता से आनन्द के नाथ में उपयोग चला जाता है। ऐसी बातें हैं।

मुमुक्षु : ऐसी बात चलती नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : चलती नहीं, बहुत कठिन काम, भाई! जन्म-मरणरहित की श्रद्धा, वह कोई अलौकिक बातें हैं, भाई!

मुमुक्षु : अजैन को जैन मान लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : जैनपना क्या है, इसकी खबर नहीं। आहा..हा..!

भेदज्ञान की परिणति—ज्ञातृत्वधारा... जानन-देखन की धारा। आहा..हा..! **दोनों के चलती ही रहती है।** चाहे तो गृहस्थाश्रम में हो और चाहे तो मुनि हो, दोनों को ज्ञातृत्वधारा-जानन-देखन धारा तो हमेशा चलती रहती है। आहा..हा..! भले गृहस्थाश्रम में रागादि विशेष आते हैं, तथापि ज्ञातृधारा तो सदा चलती है। समझ में आया? आहा..हा..! ऐसी बात है।

उन्हें भेदज्ञान प्रगट हुआ, तब से कोई काल पुरुषार्थ रहित नहीं होता। अन्तर्मुख में पुरुषार्थ तो चलता ही है। जबसे राग के विकल्प से भिन्न पड़कर निर्विकल्प आनन्द का अनुभव-भेदज्ञान हुआ, तब से अन्तर्मुख में पुरुषार्थ तो चलता ही है। आहा..हा..! **तब से कोई काल पुरुषार्थ रहित नहीं होता।** आहा..हा..! ये लोग ऐसा कहते हैं न (कि) काललब्धि होगी तब होगा। परन्तु वह काललब्धि कब होगी? अपने स्वभाव-सन्मुख

पुरुषार्थ करेगा, तब काललब्धि होगी। तब तो काललब्धि का ज्ञान होता है। बहुत बार कहा है न? ऐसे काललब्धि, काललब्धि कहे (-ऐसा नहीं)। आहा..!

यह तो हमारे (संवत्) १९७२ में यह प्रश्न सम्प्रदाय में बहुत चला है। १९७२ - कितने वर्ष हुए? ६२। ६० और २। प्रश्न बहुत चला कि केवलज्ञानी ने देखा होगा, वैसे होगा, हम क्या पुरुषार्थ कर सकें? ऐसा प्रश्न उठा। तुम्हारे जन्म से पहले की बात है। ६२ वर्ष हुए। बहुत करते थे। सम्प्रदाय के हमारे गुरुभाई थे, वे बहुत बोलते थे। एक बार कहा कि तुम ऐसा कहते हो कि केवलज्ञानी ने देखा होगा, वैसा होगा, परन्तु केवलज्ञान जगत में है और एक समय की ज्ञान की सत्ता में तीन काल-तीन लोक देखता है - ऐसी केवलज्ञान की पर्याय / सर्वज्ञपर्याय जगत में है—ऐसा स्वीकार करने के बाद केवलज्ञानी ने देखा होगा, वैसा होगा (वह यथार्थ है)। न्याय समझ में आया?

मुमुक्षु : जब केवलज्ञान की श्रद्धा होती है...

पूज्य गुरुदेवश्री : जो (प्रवचनसार की) ८० गाथा में आता है—**जो जाणदि अरहंतं।** उस समय तो कहाँ पढ़ा था? परन्तु अन्दर से आया था। ८० गाथा में जो बात है, वही बात (संवत्) १९७२ में आयी थी। समझ में आया? प्रवचनसार और समयसार तो बाद में (संवत्) १९७८ में देखा परन्तु १९७२ में सम्प्रदाय में बहुत चर्चा चली। हम क्या करें? भाई! केवलज्ञानी ने देखा होगा, तब सच्चा मुनिपना होगा। भाई! तुम यह क्या कहते हो कहा? समझ में आया?

उस समय तो मैंने गजसुकुमार का दृष्टान्त दिया था। गजसुकुमार का दृष्टान्त दिया था। १९७२... गजसुकुमार कृष्ण के भाई थे, वे हाथी के हौदे उनकी गोद में बैठकर भगवान के दर्शन करने जा रहे थे। गजसुकुमार, श्रीकृष्ण के छोटे भाई। उस समय एक सोनी की पुत्री बहुत सुन्दर रूपवान थी। सोने की गेंद से खेल रही थी। हाथी के हौंदे बैठे हुए कृष्ण ने देखी। देखकर कहा इस कन्या को गजसुकुमार के साथ विवाह दो। कन्या को अन्त:पुर में ले जाओ। ले गये और गजसुकुमार भगवान के पास जाते हैं और यह देशना सुनकर अन्दर में से एकदम पावर प्रस्फुटित हुआ। प्रभु! मैं आत्मा में रमणता करने के लिए दीक्षा अंगीकार करना चाहता हूँ। आहा..हा..! वह वाणी कैसी होगी वहाँ! प्रभु! आपकी आज्ञा हो... वहाँ श्वेताम्बर में ऐसा पाठ है... ऐसा पाठ है। सब याद है। मैं तो दीक्षा

अंगीकार करना चाहता हूँ। भगवान कहते हैं, आहा..! सोहऽम्। भगवान की वाणी ओम् है - ऐसा श्वेताम्बर में नहीं है। जैसे सुख उपजे वैसा करो।

माता के समीप गये (कहते हैं), माता! मैं तो मेरे आनन्दस्वरूप में रमने के लिए दीक्षा अंगीकार करना चाहता हूँ, माँ! मुझे आज्ञा दे। कृष्ण की माँ देवकी। आहा..हा..! श्रीकृष्ण ने अठ्ठम करके ध्यान किया था। देवकी उदास हो गयी कि अरे! छह-छह पुत्र चले गये, उनका मैंने ल्हावा नहीं लिया और तुम श्रीकृष्ण को जन्म से बाहर गोकुल में ले गये तो मैंने तो किसी पुत्र का बालपन देखा नहीं। ऐसा बहुत खेद हुआ तो श्रीकृष्ण ने देव को बुलाया और कहा, मेरी माता को पुत्र दे। देव ने आकर कहा, एक आत्मा स्वर्ग में है, वह आयेगा। वह गजसुकुमार का जीव आया और जन्म हुआ। छोटी उम्र के थे, तब भगवान के दर्शन करने गये। नेमिनाथ परमात्मा के समवसरण में गये। नेमिनाथ और (इनका) परिवार एक था न? आहा..हा..! वाणी सुनने पर अन्दर में ऐसी बात हो गयी। प्रभु! मैं सम्यग्दृष्टि तो ठीक, परन्तु मैं तो स्वरूप में रमणता करने के लिये दीक्षा लेकर वनवास में जाता हूँ।

माता को कहा, माता! मुझे दीक्षा दे, माँ! दीक्षा का अर्थ —अन्दर स्वरूप में रमणता करना, वह दीक्षा। माता इनकार करती है कि बेटा! तू मेरा इकलौता पुत्र है, तेरा बालकपन तो मैंने थोड़ा ही देखा है। माता! मेरा मन कहीं नहीं लगता। मेरा (मन) भगवान देवाधिदेव आत्मा के समीप जाने के लिए अभिलाषी हुआ है। आहा..हा..! मैं स्त्री के समीप में नहीं, राग के समीप में नहीं, पर्याय के समीप में नहीं... आहा..हा..! मेरा नाथ प्रभु पूर्णानन्द है, उसके पास मैं जाना चाहता हूँ। फिर अनुमति दी। दीक्षा हुई। दीक्षा ली और अन्दर से एकदम पावर प्रस्फुटित हुआ। प्रभु! मैं तो द्वारिका के श्मशान में बारहवीं प्रतिमा लेकर चला जाता हूँ। श्वेताम्बर में प्रतिमा का अधिकार बहुत है। अपने दिगम्बर में बारहवीं प्रतिमा आती है, परन्तु वह सामायिक का पाठ है, उसमें आती है। सब सामायिक यहाँ है। आती है न पाठ में? बारह प्रतिमा आती है। बारहवीं प्रतिमा में अन्त में ध्यान में रहकर उपसर्ग और परीषह हो, उसे सहन करे तो केवलज्ञान उत्पन्न हो जाता है और सहन न करे तो भ्रष्ट हो जाता है।

भगवान के समीप दीक्षा ली। आहा..हा..! वे राजकुमार गजसुकुमार। गजसुकुमार अर्थात् क्या? गज अर्थात् हाथी का तालु जैसे एकदम लाल मुलायम होता है, वैसे उनका

शरीर लाल मुलायम था। गजसुकुमार आहा..! थोड़ी धूप लगे तो शरीर लाल हो जाता था—ऐसे सुकोमल ने प्रभु के समीप दीक्षा ली। प्रभु! मैं तो द्वारिका के श्मशान में जाता हूँ। मैंने ध्यान करने बारहवीं प्रतिमा धारण करता हूँ। आहा...हा..! मैंने दृष्टान्त दिया कि यह भगवान ने किस प्रकार कहा होगा और किस प्रकार पुरुषार्थ उठाया होगा? हम देखते हैं, तब तुम्हें होगा – ऐसा वहाँ कहा था? आहा..हा..! भाई! यह तो (संवत्) १९७२ की बात है। मैंने तो कहा, मुझे बैठेगी वह बात मानूँगा, मैं ऐसा का ऐसा बात नहीं मानूँगा।

अन्दर में जहाँ अनुभव और ज्ञान हुआ और जहाँ दीक्षा ली... आहा..हा..! मैं तो स्वरूप में अन्दर में जाने का शीघ्र पुरुषार्थ करके बारहवीं प्रतिमा धारण करता हूँ। आहा..हा..! वहाँ उसके श्वसुर... क्या नाम? भूल गये। सोनी की पुत्री। सोमिल... सोमिल...। उसके पिता को पता पड़ा कि यह तो पुत्री को ले गये अन्तःपुर में और इसने तो दीक्षा ले ली। श्मशान में वह भाई गया, उसका श्वसुर। मनुष्य को जलाते हैं, उसकी रखा थी, वह ली। पानी डालकर उसकी पाल बाँधी, पाल। उसमें डाली अग्नि। एकदम अन्दर उतर गये और उतरे वहाँ केवलज्ञान हुआ। जिस दिन दीक्षा, उसी दिन केवलज्ञान। आहा...हा..! कितना पुरुषार्थ होगा वह!

मुमुक्षु : ऐसी काललब्धि थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु काललब्धि का ज्ञान कब होता है? अपने स्वभावसन्मुख पुरुषार्थ करे, तब काल पक गया – ऐसा ज्ञान होता है। पहले कहा था। समझ में आया? अरे! प्रभु! तू कौन है? क्या ऐसी मन्द पुरुषार्थ की बात करता है? आहा..! तेरे स्वरूप में अन्दर जाने का पुरुषार्थ तो तुझे करना ही पड़ेगा और करने के पश्चात् काललब्धि हुई तो ख्याल आया कि इस काल में, इस समय यह दशा होनी थी। आहा..हा...! (वही हुई है)।

यहाँ यह कहते हैं **उन्हें भेदज्ञान प्रगट हुआ, तब से कोई काल पुरुषार्थ रहित नहीं होता।** आहा..हा..! श्मशान में ऐसे खड़े हैं। वहाँ उनके सिर में अग्नि लगायी। अपने यहाँ स्वाध्यायमन्दिर में फोटो है। चैतन्य की जागृतदशा में अकेला पुरुषार्थ अन्दर किया... आहा..हा..! भेदज्ञान तो था ही; राग से भिन्नता की धारा तो थी ही परन्तु अन्दर में ज्ञान की धारा को द्रव्यस्वभाव के समीप ले गये और लीन हो गये तो केवलज्ञान प्रगट हो गया। आहा..हा..! सबेरे राजकुमार और सायं को केवलज्ञान! आहा..हा..! ऐसा पुरुषार्थ करके

स्वभाव-सन्मुख होते हैं, फिर स्वभाव सन्मुख का पुरुषार्थ हमेशा चलता ही है। आहा..हा..! सूक्ष्म बात है, भाई! दुनिया से अलग प्रकार है। आहा..हा..!

एक दिन तो छोड़ दिया, सम्प्रदाय छोड़ दिया, गुरु को-सबको छोड़ दिया। मुझे अन्दर में जँचेगी, वह बात मानूँगा, कोई सम्प्रदाय की नहीं। गुरु कहे या शास्त्र कहे। एक दिन तो (छोड़ दिया)। छोटी उम्र, पच्चीस वर्ष की उम्र थी। एक दिन चला गया था। पालियाद के पास काडियार गाँव है। फिर सब बड़े-बड़े सेठ आये। पहले तो दो वर्ष में हम कभी बोले नहीं थे परन्तु ऐसा हुआ तो अकेले (बोलना पड़ा)। फिर आये। मेरी उम्र पच्चीस वर्ष थी। वे लोग आये और कहा महाराज! पधारो, फिर से पधारो, सम्प्रदाय में आ जाओ। गये थे। फिर मुझे कोई गुरु की श्रद्धा नहीं रही, सम्प्रदाय की कोई श्रद्धा नहीं रही। (संवत्) १९७२ में। आहा.. हा..!

यहाँ कहते हैं कि ज्ञानी को राग से भिन्न भेदज्ञान हुआ, तब से कोई काल पुरुषार्थ रहित नहीं होता। आहा..हा..! अपना वीर्य स्वरूप-सन्मुख झुका, वह झुका सो झुका। आहा..हा..! समझ में आया? और उस वीर्य का कार्य है - स्वरूप की शुद्धि की रचना करना, वह वीर्य का कार्य है। समझ में आया? यह क्या कहा? आत्मा में एक वीर्य नाम का गुण है। यह वीर्य जिस रेत से पुत्र हो, वह रेत तो धूल है, वह नहीं। आत्मा में एक वीर्य नाम का-बल नाम का गुण है। भगवान आत्मा में वीर्य नाम की एक शक्ति है, सामान्य त्रिकाल है। उस शक्ति का कार्य क्या? यह सैंतालीस शक्ति में आया है। स्वरूप रचना करना, वह वीर्य का कार्य है। राग की रचना करना-दया, दान की रचना करना, वह वीर्य का कार्य नहीं। आहा..हा..! राग की रचना होती है, वह नपुंसकता का कार्य है। प्रभु! ऐसा मार्ग है, भाई! व्यवहाररत्नत्रय का शुभराग आता है, वह वीर्यगुण का कार्य नहीं। आहा..हा..! वीर्यहीन नपुंसकता का कार्य है।

जैसे, नपुंसक को वीर्य नहीं होता तो पुत्र नहीं होता; इसी प्रकार शुभभाव में धर्म की प्रजा नहीं होती। आहा..हा..! समझ में आया? सैंतालीस शक्ति है न? समयसार में वह है। स्वरूप की रचना करना, वह वीर्य का कार्य है। समयसार में पीछे है। यहाँ तो सब चल गया है, बहुत चला है। यहाँ तो चौवालीसवाँ चातुर्मास है। यह चौवालीसवाँ चातुर्मास है। ४-४ दो चौकड़े। समझ में आया? आहा..हा..!

कहते हैं पुरुषार्थ तो चलता ही है। आहा..हा..! **अविरत सम्यग्दृष्टि को...** चौथे गुणस्थान में हो। अभी संवर / चारित्र की दशा प्रगट न हुई हो, अविरत है। आहा..हा..! ऐसे सम्यग्दृष्टि को **चौथे गुणस्थान के अनुसार और मुनि को छठवें-सातवें गुणस्थान के अनुसार पुरुषार्थ वर्तता रहता है।** सम्यग्दृष्टि को स्वभाव-सन्मुखता का पुरुषार्थ चलता ही रहता है। मुनि को मुनि के अनुसार, गृहस्थ समकिती को समकित के अनुसार। आहा..! यह बात भी ली है।

अध्यात्म पंचसंग्रह एक पुस्तक है। दीपचन्दजी द्वारा रचित है। उसमें ऐसा बहुत लिया है, तुम ऐसा कहते हो निश्चय होगा, निश्चय होगा, काललब्धि होगी, तब होगा, तो भगवान ने तो पुरुषार्थ करने को कहा है। वह निरर्थक जाता है। उसमें बहुत लेख है। समझ में आया? सब लम्बी-लम्बी बात है। सब देखा है। निश्चय-निश्चय मानो परन्तु पुरुषार्थ, व्यवहार अन्दर है। यह पुरुषार्थ करना, वह व्यवहार है। आहा..हा..! पर्याय परमुख है, उस पर्याय को स्वसन्मुख करना, यह पुरुषार्थ है। आहा..हा..! पुरुषार्थ के बिना भेदज्ञान नहीं रहता। आहा..हा..!

नियमसार में तो ऐसा लिया है कि गृहस्थाश्रम में जो समकिती श्रावक है, उसे दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों हैं। पण्डितजी! भक्ति का अधिकार है। नियमसार में ऐसी गाथा है, नियमसार है यहाँ? यह तो निमयसार लगता है। भक्ति अधिकार, देखो! आया, १३४ गाथा है। '**सम्मत्तणाणचरणे जो भत्ति कुणइ सावगो**' तीनों—दर्शन, ज्ञान के साथ चारित्र भी है। भले वह मुनि का चारित्र नहीं परन्तु उसकी योग्यतानुसार चारित्र है। '**सम्मत्तणाणचरणे जो भत्ति कुणइ सावगो समणो**'—सच्चे श्रावक उसे कहते हैं कि जिसे दर्शन-ज्ञान-चारित्र की अन्दर भक्ति अर्थात् परिणति हुई हो। चारित्र लिया है। '**सम्मत्तणाणचरणे जो भत्ति कुणइ**' भक्ति अर्थात् भजन, अन्दर एकाकारता। बाहर की भक्ति राग है और अन्तरस्वरूप की भक्ति निर्विकल्पदशा है। आहा..हा..! '**तस्स दु णिव्वुदिभत्त**' उसे निवृत्ति भक्ति कहते हैं। '**होदि त्ति जिणेहि पण्णत्तं**' जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा की दिव्यध्वनि में ऐसा आया है कि सच्चे श्रावक जिसे कहते हैं, उसे अन्दर में दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों उत्पन्न हुए हैं। समझ में आया?

सब ऐसा कहते हैं न कि गृहस्थाश्रम में चारित्र नहीं है, गृहस्थाश्रम में चारित्र नहीं है परन्तु वह चारित्र तो पूर्ण चारित्र है, वह नहीं है परन्तु दो कषाय का अभाव है, उतना

चारित्र तो पंचम गुणस्थान में भी है। आहा..हा..! चौथे गुणस्थान में स्वरूपाचरणचारित्र है और पाँचवें में विशेष स्थिरतारूप चारित्र है। आहा..हा..! मुनि की तो क्या बात करना! वे तो चारित्र-अन्दर रमणता उग्र है। आहा..हा..!

यहाँ कहते हैं **अविरत सम्यग्दृष्टि को चौथे गुणस्थान के अनुसार और मुनि को छठवें-सातवें गुणस्थान के अनुसार पुरुषार्थ वर्तता रहता है।** आहा..हा..! **पुरुषार्थ के बिना कहीं परिणति स्थिर नहीं रहती।** आहा.. हा..! जो वीर्य स्थिरता के लिये अन्तर में गया, वह स्थिरता बिना वीर्य वहाँ रहता नहीं। अन्दर में वीर्य का पुरुषार्थ अन्तर्मुख सदा चलता है। **सहज भी है,...** परिणति स्थिर नहीं रहती अर्थात् **सहज भी है, पुरुषार्थ भी है।** सहज स्वभाव-सन्मुख पुरुषार्थ है और सहज भी है, दोनों बात है। देखो! यह वचनामृत। १९३ (बोल पूरा) हुआ।

पूज्य गुरुदेव ने मोक्ष का शाश्वत मार्ग अन्तर में बतलाया है, उस मार्ग पर जा॥१९४॥

१९४ वें में (हमारा) नाम दिया है। **मोक्ष का शाश्वत मार्ग अन्तर में बतलाया है, उस मार्ग पर जा।**

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो बहिन ने विनय से बात की है। **गुरुदेव ने मोक्ष का शाश्वत मार्ग अन्तर में बतलाया है,...** विकल्प में मोक्षमार्ग नहीं, निमित्त में नहीं; अन्दर में दिखाया है। पूर्णानन्द का नाथ प्रभु की ओर दृष्टि, ज्ञान और रमणता, वह मोक्षमार्ग है। व्यवहारमोक्षमार्ग, वह बन्ध का कारण है। आहा..हा..! समझ में आया?

मुमुक्षु : पूज्य गुरुदेव ने बताया - ऐसा है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : बताया परन्तु यह समझा, तब बतलाया कहलाये न? समझ में आया? बताया कब कहलाये? कि अन्दर से समझे, तब बताया—ऐसा निमित्त से कहने में आता है। बताया तो अनन्त बार समवसरण में भगवान ने बताया। अन्तर्मुख पुरुषार्थ करे नहीं और बताया - ऐसा कहाँ आया? बताया तब कहलाता है कि अन्तर्मुख पुरुषार्थ कर, वीतराग की आज्ञा, गुरु की आज्ञा यह है कि वीतरागता प्रगट कर। वीतरागता किस प्रकार

प्रगट होती है ? कि त्रिकाली द्रव्य वीतरागस्वभाव के आश्रय से होती है। यह आज्ञा है। समझ में आया ?

आत्मावलोकन नामक एक पुस्तक है। आत्मावलोकन - उसमें एक गाथा दी है कि सन्त-मुनि क्या कहते हैं ? बारम्बार वीतरागभाव, वीतरागभाव (बताते हैं)। मुहु.. मुहु.. ऐसा शब्द है। मुहु.. मुहु.. बारम्बार वीतरागभाव, वीतरागभाव वह धर्म है; वीतरागभाव, वह मोक्षमार्ग है। वीतरागभाव प्रगट करो - इसका अर्थ (यह कि) भगवान और गुरु की आज्ञा यह है कि वीतरागता (प्रगट करो)। वीतरागता कब होती है ? वीतरागस्वरूप प्रभु आत्मा, वीतराग जिनस्वरूपी आत्मा है। 'घट-घट अन्तर जिन बसे, घट-घट अन्तर जैन; मत मदिरा के पान सौ, मतवाला समझे न'। आहा..हा..! अपने अभिप्राय का मतवाला पागल, अन्दर जिनस्वरूप है उसे समझता नहीं। समझ में आया ? कहो, पूनमचन्दजी! यहाँ तो पूनमपुर की बात है। आहा..हा..! वह कहते हैं। है ?

पंचास्तिकाय की १७२ गाथा है। उसमें लिया है कि चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है। चार अनुयोग। चरणानुयोग हो, करणानुयोग हो, द्रव्यानुयोग हो, प्रथमानुयोग हो। १७२ में दो प्रकार का तात्पर्य लिया है। एक सूत्र तात्पर्य—प्रत्येक गाथा में कहा, वह सूत्र तात्पर्य और सम्पूर्ण शास्त्र का तात्पर्य वीतरागता है। आहा..हा..! चाहे जिस प्रकार से करणानुयोग में, चरणानुयोग में विधि कथन हो परन्तु वहाँ वीतरागता प्रगट करने की ही बात है और वह वीतरागता, सम्यग्दर्शन भी वीतरागी पर्याय है। सराग समकित कहना, वह तो राग के दोष की अपेक्षा से (कहा है)। बाकी समकित तो वीतरागी पर्याय है। आहा..हा...! वीतरागी पर्याय, वीतरागपना चारों अनुयोगों का सार है। इसका अर्थ—चारों अनुयोग में ऐसा कहा है कि वीतरागस्वरूप भगवान का आश्रय ले। समझ में आया ? आहा..हा..! समझ में आया ?

मुहु... मुहु... - मुनि बारम्बार वीतरागता का उपदेश देते हैं - ऐसा पाठ है। मुनि, राग से लाभ होगा—ऐसा उपदेश कभी नहीं करते और करें तो वे मुनि नहीं हैं। तुम व्रत करो, तपस्या करो, भक्ति करो, पूजा करो, दान करो, उससे तुम्हारा कल्याण होगा—यह प्ररूपणा ही मिथ्यादृष्टि की है। चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता तो उसमें आयी नहीं। आहा..हा..! वीतरागता (रूप) तात्पर्य कहाँ से उत्पन्न होता है ? कि वीतरागमूर्ति प्रभु, अकषायस्वभाव स्वरूप प्रभु है। आहा..हा..!

ज्यों निर्मलता रे स्फटिक तकी, त्यों ही जीव स्वभाव रे..

निर्मलता रे स्फटिक... स्फटिक देखा है? हमने तो इतना स्फटिक देखा है। जामनगर में।

मुमुक्षु : अपने मन्दिर में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपने मन्दिर में है, वह तो प्रतिमा है। वह तो इतना स्फटिक। वहाँ एकबार गये थे (संवत्) १९९१ वें के साल। बहुत बड़ा डॉक्टर था। सब व्याख्यान में आते थे। समयसार की १०० वीं गाथा चलती थी। दीवान भी आया था। सब आते थे। डॉक्टर-वॉक्टर सब व्याख्यान में तो आते हैं। नाम प्रसिद्ध है न! उसमें १०० वीं गाथा चली थी। एक डॉक्टर था, उसका ढाई हजार का वेतन। महाराज! मेरे दवाखाने आओ, छह लाख का एक-एक सोलेरियम है। सोलेरियम नामक एक मशीन छह लाख रुपये की है। उस समय की बात है, हों! (संवत्) १९९१ की बात है। देखने गये। उसने बताया कि देखो! यह स्फटिक रत्न है। इसी प्रकार भगवान आत्मा...

ज्यों निर्मलता रे स्फटिक, तकी त्यों ही जीव स्वभाव रे

श्री जिन वीर ने धर्म प्रकाशियो...

तीन लोक के नाथ तीर्थंकरों ने धर्म को प्रकाशित किया।

श्री जिन वीर ने धर्म प्रकाशियो, प्रबल कषाय अभाव रे। राग के अभाव-स्वभाव की वीतरागता भगवान ने प्रकाशित की है। आहा..हा..! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! मार्ग.. आहा..हा..! अभी उसकी विधि का पता नहीं होता कि किस विधि से सम्यग्दर्शन होता है? सम्यग्दर्शन बिना क्या? आहा..हा..!

यह कहते हैं, **मार्ग अन्तर में बतलाया है,...** आहा...हा..!

सबको एक ही करना है:—प्रतिक्षण आत्मा को ही ऊर्ध्व रखना, आत्मा की ही प्रमुखता रखना। जिज्ञासु की भूमिका में भी आत्मा को ही अधिक रखने का अभ्यास करना॥१९५॥

१९५, **सबको एक ही करना है:—** आहा..हा..! क्या? **प्रतिक्षण आत्मा को ही**

ऊर्ध्व रखना,... प्रत्येक समय में भगवान ध्रुवस्वरूप को मुख्य रखना। आहा..हा..! **सबको एक ही करना है:—प्रतिक्षण आत्मा को ही...** आत्मा को ही। आत्मा को ही। त्रिकाली आनन्दकन्द का नाथ मेरा प्रभु, उसे मुख्य रख। समझ में आया? आहा..हा..! **प्रतिक्षण आत्मा को ही ऊर्ध्व रखना,..** ऊर्ध्व अर्थात् मुख्य। आहा..हा..! **आत्मा की ही प्रमुखता रखना।** प्रमुखता भी मात्र आत्मा की ही रख। पर्याय की प्रमुखता, राग की प्रमुखता नहीं। आहा..हा..! ऐसी बात। चाहे जिस प्रसंग में हो, राग के शुभभाव में या अशुभभाव में (हो) परन्तु उसकी ऊर्ध्वता जो भगवान वीतरागस्वरूप है, उसकी प्रमुखता मुख्य रहे। आहा..हा..! उसका ध्येय छूट जाये तो सम्यग्दर्शन नहीं रहता। आहा..हा..! **प्रमुखता रखना।**

जिज्ञासु की भूमिका में भी... आहा..हा..! **आत्मा को ही अधिक रखने का अभ्यास करना।** अधिक अर्थात् भिन्न। '**णाणसहावाधियं**' ३१ गाथा में आता है न? '**णाणसहावाधियं**' द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय, और इन्द्रिय का विषय भगवान आदि सब। इन सब इन्द्रियों से लक्ष्य छोड़कर '**णाणसहाव**' ज्ञानस्वभाव '**अधियं**' भिन्न। आत्मा भिन्न है – ऐसा जानना, इसका नाम सम्यग्दर्शन और ज्ञान है। ३१ में है। '**णाणसहावाधियं मुणदि आदं**' भगवान ज्ञानस्वरूपी प्रभु को राग तथा पर्याय और पर से भिन्न, भिन्न / पृथक् रखना। दृष्टि में पृथक् करना, उसका नाम जिन है और उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहा..हा..! मुख्यता जहाँ ऊर्ध्वरूप से स्वभाव की है, वह यदि छूट जाये तो मिथ्यादृष्टि हो जाये। चाहे तो पंच महाव्रत की क्रिया करता हो, नग्न हो परन्तु द्रव्य की मुख्यता यदि न रहे और पर्याय तथा राग की मुख्यता हो जाये तो मिथ्यादृष्टि हो जाये। ऐसी बात है।

आत्मा को ही अधिक रखने का अभ्यास करना। आहा..हा..! यह अभ्यास करना। राग करना और अमुक करना – ऐसा नहीं। आहा..हा..! ऊर्ध्व अर्थात् पहले, पहले दर्जे में आत्मा को रखना। पहला नम्बर किसी को देना नहीं। आहा..हा..! १९५ (बोल पूरा) हुआ।

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण-५, बुधवार, दिनाङ्क २३-०८-१९७८
वचनामृत-१९६-१९७ प्रवचन-७३

स्वरूप तो सहज ही है, सुगम ही है; अनभ्यास के कारण दुर्गम लगता है। कोई दूसरे की संगत में पड़ गया हो तो उसे वह संग छोड़ना दुष्कर मालूम होता है; वास्तव में दुष्कर नहीं है, आदत के कारण दुष्कर मानता है। परसंग छोड़कर स्वयं स्वतंत्ररूप से अलग रहना उसमें दुष्करता कैसी? वैसे ही अपना स्वभाव प्राप्त करना उसमें दुष्करता कैसी? वह तो सुगम ही होगा न?१९६॥

१९६ हो गया न? **स्वरूप तो सहज ही है,...** क्या कहते हैं? शुद्ध सहजात्मस्वरूप, शुद्ध चैतन्यघन तो सहज-सहज है। वह कहीं कृत्रिम नहीं है। समझ में आया? अन्तरस्वरूप जो शुद्धचैतन्यघन अस्तित्व जो मौजूदगी चीज़ है, वह तो सहज है। आहा..हा..! **सुगम ही है;...** आहा..हा..! अपनी चीज़ प्राप्त करना सुगम है, परन्तु अनादि काल से परसंग के प्रेम में अपने असंग चैतन्य का संग नहीं किया। समझ में आया? आहा..! **सुगम ही है; अनभ्यास के कारण दुर्गम लगता है।** सहजात्मशुद्ध चैतन्यघन परमात्मस्वरूप निर्विकल्पस्वरूप सहज और सुगम है। आहा..हा..!

पाँचवीं गाथा में कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं, मैं जो एकत्व-विभक्त (आत्मा) दर्शाऊँ, राग से पृथक् और स्वभाव की शुद्धता से अपृथक् अभेद दिखाऊँ '**तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण। जदि दाएज्ज**' वापस दूसरा शब्द लिया। यदि दिखाऊँ तो, प्रभु! प्रमाण करना, हों! आहा..हा..! अनुभव से प्रमाण करना- ऐसा सीधा कहा। सुनकर ऐसे के ऐसे हाँ ठीक है—ऐसी यह चीज़ है नहीं। कुन्दकुन्दाचार्य पंचम काल के सन्त और पंचम काल के श्रोताओं को कहते हैं, प्रभु! तेरी चीज़ अन्दर मौजूद पड़ी है न! आहा..हा..!

वह चीज़ सहज है, सुगम है, मैं तुझे मेरे वैभव से दिखाऊँगा तो तू प्रमाण करना। प्रमाण की व्याख्या-अनुभव से प्रमाण करना - ऐसा लिया है। आहा..हा..!

सहजात्मस्वरूप... यह तो सज्झाय थी, वह सज्झाय याद आ गयी। एक सज्झायमाला है, ऐसी चार है। हम दुकान पर पढ़ते थे, उसमें आया था 'सहजानन्दी रे आत्मा सूतो कंई निश्चिन्त रहे।' प्रभु! तू सहजात्म आनन्द का नाथ परमात्मा है न! तू इस अज्ञान अन्धकार में क्यों सो गया? आहा..! उस समय यह तो (संवत्) १९६६-६७ की बात है। 'सहजानन्दी रे आत्मा...' सहज स्वरूप आनन्दमूर्ति है न! आहा..हा..! 'सूतो कंई निश्चिन्त' तू क्यों निश्चिन्त होकर सो गया? आहा...! तेरी चीज़ अन्दर है, निर्विकल्प चीज़ है न, प्रभु! आहा..हा..! जिसमें विकल्प की सहायता नहीं - ऐसी चीज़ अन्दर सहज पड़ी है और सुगम है। राग को अपना करना हो तो वह दुर्गम है। राग, विकल्प जो है, उसे अपना करना हो और रखना हो तो वह दुर्गम है क्योंकि राग कभी अपना नहीं हो सकता। आहा..हा..! इसी प्रकार एक परमाणु को भी अपना करना हो तो नहीं हो सकता। परन्तु अपनी चीज़ है, वह तो सहज है न! आहा..हा..! सुगम है न!

अनभ्यास के कारण दुर्गम लगता है। है? अभ्यास नहीं, उस ओर का जोर, झुकाव नहीं। आहा..हा..! रागादि विकल्प से परद्रव्य की महिमा (लगती है), उसमें तुझे विस्मयता लगी परन्तु तेरी वस्तु की विस्मयता तूने छोड़ दी। आहा..हा..! समझ में आया?

कोई दूसरे की संगत में पड़ गया हो... दृष्टान्त देते हैं। कोई प्राणी दूसरे की संगत में पड़ गया हो **तो उसे वह संग छोड़ना दुष्कर मालूम होता है;...** दुष्कर मालूम होता है। दुष्कर मालूम होता है, वास्तव में दुष्कर नहीं है। पर का संग किया, वह छोड़ना वास्तव में दुष्कर नहीं है। आहा..हा..! समझ में आया? **आदत के कारण दुष्कर मानता है।** पर के संग में ऐसी आदत पड़ गयी, इसलिए उसे छोड़ना दुष्कर लगता है। **परसंग छोड़कर स्वयं स्वतंत्ररूप से अलग रहना...** परसंग छोड़कर। पहले बाह्य की बात है। **स्वयं स्वतंत्ररूप से अलग रहना, उसमें दुष्करता कैसी?** आहा..हा..!

वैसे ही... यह तो दृष्टान्त हुआ। **वैसे ही अपना स्वभाव प्राप्त करना...** आहा..हा..! वीतरागस्वरूप प्रभु आत्मा, परमात्मस्वरूप ही आत्मा है। है, उसे प्राप्त करना। श्रीमद् भी एक बार कहते हैं - सत् सरल है, सर्वत्र है, सरल है, सर्वत्र है, जहाँ देखो वहाँ सर्वत्र नित्यानन्द प्रभु अन्दर विद्यमान ही है। आहा..हा..! वहाँ इतना लिया है कि बतलानेवाला

चाहिए। गुरु बताते हैं न? कि देख! यह तेरी वस्तु अन्दर पूर्णानन्द से भरी पड़ी है। आहा...! उसे अशुद्धता का संग नहीं, अल्पता का संग नहीं—ऐसी असंग वस्तु अन्दर पड़ी है, प्रभु! आहा...!

कहते हैं, **वैसे ही अपना स्वभाव प्राप्त करना...** जैसे परसंग छोड़ना दुष्कर है—ऐसा मानता है परन्तु परसंग तो (स्वयं ने) अभ्यास से किया है, उसे छोड़कर अकेले स्वतन्त्र रहना हो तो रह सकता है। **वैसे ही अपना स्वभाव प्राप्त करना...** आहा..हा..! स्थायी अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त स्वच्छता, अनन्त प्रभुता—ऐसा अपना जो शाश्वत असली स्वभाव है, (उसे प्राप्त करने में) **उसमें दुष्करता कैसी?** आहा..हा..!

मुमुक्षु : ...परन्तु कठिन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन (लगता) है, इसका अर्थ कि संग बहुत किया है तो उसे छोड़ना कठिन लगता है। आहा..हा..! यह तो बोधिदुर्लभ भावना कही न? दूसरी वस्तु प्राप्त करना सुलभ है क्योंकि अनन्त बार मिली है। इस अपेक्षा से अपनी वस्तु दुर्लभ है - ऐसा कहने में आया है। बारह भावना है न? बोधिदुर्लभभावना। आहा..हा..! वह तो परपदार्थ अनन्त बार मिले, वह सुलभ है, उसमें कोई नवीनता नहीं परन्तु अपना भगवान आत्मा अमृत का सागर.. आहा..हा..! निर्विकल्प वस्तु जो संगरहित है, उसे प्राप्त करना सुगम है। परसंग छोड़े तो सुगम है। रागादि का विकल्प चाहे तो व्यवहार दया, दान आदि का विकल्प हो, (उसका संग छोड़े तो सुगम है)। आहा..हा..!

मुमुक्षु : वस्तु सहज है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वतन्त्र है, सहज है। आहा..हा..! बात सूक्ष्म है।

वैसे ही अपना स्वभाव प्राप्त करना... है, उसे प्राप्त करना है। न हो, उसे प्राप्त करना दुष्कर है। आहा..! **वैसे ही अपना स्वभाव प्राप्त करना, उसमें दुष्करता कैसी?** आहा..हा..! **वह तो सुगम ही होगा न?** वह तो सुगम है न, प्रभु! तेरी असंग चीज़ है। संग का लक्ष्य छोड़कर असंगता प्राप्त करना, वह तेरी वस्तु तो सहज है। आहा..हा..! समझ में आया? १९६ बोल सूक्ष्म है। समझ में आया? आहा..!

भगवान पूर्णानन्द अन्दर अस्तिरूप विद्यमान है। सत् है, ध्रुव है, सच्चिदानन्द प्रभु सत् है, चिद् और ज्ञान -आनन्द से परिपूर्ण भरा है। तूने पर का संग किया तो असंग वस्तु

को तूने प्राप्त नहीं किया। व्यवहाररत्नत्रय... आहा..हा..! ऐसा आता है न? कि व्यवहार से निश्चय की प्राप्ति होती है – ऐसा है ही नहीं। समझ में आया? यहाँ तो निश्चय से निश्चय को प्राप्त होता है। सूक्ष्म बात है, भाई!

वर्तमान में तो बड़े पण्डित भी वहाँ चले गये हैं कि व्यवहार बराबर हो तो व्यवहार निश्चय तक पहुँचा सकता है। परन्तु व्यवहार कब कहलाता है? जब राग से भिन्न पड़कर अनुभव हुआ, पश्चात् राग आता है, उसे व्यवहार कहते हैं। पहले व्यवहार कहाँ से आया? आहा..हा..! समझ में आया? अभी तो समयसार आदि बड़ी-बड़ी पुस्तकें निकलती हैं, उनमें अन्दर यह घुसा देते हैं। आज को पूछता था कि फूलचन्दजी ने उसमें कैसे लिखा कि यह ठीक है? कहा, फूलचन्दजी को सब पता है। पण्डितजी! अमृतधारा पुस्तक है न? अमृतधारा, जगन्मोहनलालजी (ने लिखी है)। कल प्रश्न किया। मैंने कहा – उसमें फेरफार है। श्रद्धा की स्पष्ट वस्तु उसमें नहीं है, क्योंकि व्यवहार से निश्चय प्राप्त होता है – ऐसी बात वहाँ बहुत है। पण्डितजी ने भी एक बार एकान्त में लिखा था कि उनकी श्रद्धा की स्थिति स्थिर नहीं रहती। उनकी श्रद्धा एकरूप नहीं रहती परन्तु उसमें पहले लिखा है, ऐसा जानकर यह जानना, ऐसा पण्डितजी ने लिखा है। पर से नहीं होता – ऐसा लक्ष्य रखकर पढ़ना। पता है? भाई! बहुत बारीक-सूक्ष्म बात है, प्रभु! लोगों को व्यवहार राग है, उसका रस है और उस व्यवहारक्रिया से अन्दर निश्चय में पहुँचा जाता है – ऐसा लेख जयसेनाचार्य की टीका में आता है। व्यवहार से निश्चय (प्राप्त होता है)।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु वह किस अपेक्षा से? वह तो व्यवहार है, उसकी रुचि छोड़कर स्वयं से उत्पन्न हुआ तो व्यवहार से उत्पन्न हुआ – ऐसा आरोप दिया जाता है। क्या करे? आहा..हा..!

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! अखण्डानन्द नाथ तेरा चैतन्य अमृत का सागर भरपूर है न! आहा..हा..! राग का-जहर का संग तूने किया। विकल्प जो राग है, उसके संग में तुझे जहर का संग हुआ। ऐसे संग में तूने अमृत का संग छोड़ दिया। आहा..हा..! समझ में आया? कर्ता-कर्म अधिकार में ६९-७० गाथा में आया है। कर्ता-कर्म अधिकार में ६९-७० गाथा है न? अपनी उदासीन अवस्था छोड़कर – ऐसा लिया है। संस्कृत टीका में है। उसका अर्थ क्य? कि वास्तव में तो प्रभु जो आत्मा आनन्द और ज्ञायकस्वरूप है, उसकी

अवस्था होनी चाहिए। समझ में आया? ६९-७०, कर्ता-कर्म। है? (अधिकार की) पहली गाथा। देखो! कर्ता-कर्म में देखो, **यह आत्मा अपने अज्ञानभाव के कारण, ज्ञानभवनमात्र...** ज्ञानभवन, आनन्दभवन, स्वभावभवनमात्र। आहा..हा..! **जो सहज उदासीन (ज्ञातादृष्टामात्र) अवस्था का त्याग करके...** इसका अर्थ कि इसकी अवस्था ज्ञातादृष्टा की होना चाहिए। कर्ता-कर्म है न? परन्तु उस अवस्था का त्याग करके। अवस्था थी और त्याग किया - ऐसा यहाँ नहीं कहना है।

मुमुक्षु : उत्पन्न नहीं करता।

पूज्य गुरुदेवश्री : उत्पन्न नहीं करता, उसे अवस्था का त्याग किया - ऐसा कहने में आता है। आहा..हा..! पाटनीजी! लोगों को यहाँ की बात ऐसी लगती है... यहाँ की बात नहीं, प्रभु! अन्तर तेरी वस्तु की बात है, भाई! भगवान! तेरी वस्तु क्या है? आहा..! यह तो सबेरे चलता है न? अबद्धस्पृष्ट। तेरी वस्तु अन्दर अबद्धस्पृष्ट पड़ी है, मुक्तस्वरूप है। आहा..हा..! जापानवाले ने ऐसा कहा कि आत्मा तो निर्वाणस्वरूप है। जापानवाले ने शोध करके ऐसा शब्द लिया है। जैन ऐसा कहते हैं—निर्वाणस्वरूप है अर्थात् अपनी भाषा में मोक्षस्वरूप है। मोक्षस्वरूप है तो मोक्ष की पर्याय मोक्षस्वरूप में से आती है। बन्धभाव में से मोक्ष की पर्याय नहीं आती। आहा..हा..! समझ में आया?

यहाँ क्या कहा? **अपने अज्ञानभाव के कारण...** कर्म के कारण नहीं। कर्म का उदय दर्शनमोह का है तो हमें अज्ञान हुआ - ऐसा नहीं है। अपने स्वरूप के अज्ञानभाव के कारण **ज्ञानभवनमात्र...** आत्मा का शुद्धपना होना, पर्याय में दर्शन-ज्ञान-चारित्र की शुद्धता होना - ऐसी सहज उदासीन अवस्था। आहा..हा..! **(ज्ञातादृष्टामात्र) अवस्था का त्याग करके...** उसका त्याग करके-इसका अर्थ क्या? कि ज्ञातादृष्टा की अवस्था उत्पन्न नहीं करके - उसका त्याग करके, आहा..हा..! **अज्ञानभवन व्यापारमात्र अर्थात् क्रोधादि व्यापाररूप प्रवर्तता हुआ प्रतिभासित होता है...** क्रोधादि का अर्थ - स्वरूप का प्रेम छोड़कर राग का प्रेम (करता है), उसे आत्मा के प्रति क्रोध है। आहा..हा..! समझ में आया? द्वेष अरोचकभाव। भगवान आनन्दस्वरूप रुचे नहीं और राग रुचे, उसे आत्मा के प्रति द्वेष है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न! राग का प्रेम है। परमात्मप्रकाश में कहा है कि जिसे

राग का प्रेम है, उसे आत्मा हेय है और जिसे आत्मा उपादेय है, उसे राग हेय है। बात गुलांट खाती है। आहा..हा..! परमात्मप्रकाश की ३६ गाथा। राग / विकल्प, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का जिसे प्रेम है, उसे आत्मा हेय हो गया। आहा..हा..! तो आत्मा के प्रति उसे द्वेष हो गया। राग के प्रति प्रेम और स्वभाव के प्रति द्वेष हुआ। आहा..हा..! उसे यह क्रोध कहते हैं। समझ में आया? जिसे राग का प्रेम है... शुभराग, हों! यह दया, दान, व्यवहाररत्नत्रय जिसे कहते हैं, ऐसा राग का जिसे प्रेम है, उसे त्रिकाली स्वभाव के प्रति क्रोध अर्थात् द्वेष है। द्वेष के दो भाग हैं न? द्वेष के दो भाग – क्रोध और मान। राग के दो भाग – माया और लोभ। यहाँ कर्ता-कर्म में क्रोध क्यों कहा है? कि उसे द्वेष है। आहा..हा..! गजब बात है, प्रभु!

जिसे (जो) व्यवहार करते-करते निश्चय होगा, ऐसा कहते हैं, उसके सामने भगवान की, सन्तों की, यह दलील है। आहा..हा..! राग का प्रेमी व्यभिचार में चढ़ गया है तो अपना त्रिकाली ज्ञायकभाव, उसकी अवस्था ज्ञातादृष्टा होनी चाहिए, उसे छोड़कर अज्ञानभाव से स्वभाव के प्रति अरुचिभाव से क्रोधभाव का कर्ता होता है। आहा..हा..! समझ में आया? ऐसा मार्ग है। वह कर्ता है, यह लम्बी बात है। कर्ता-कर्म अधिकार चलता था, तब चला है।

यहाँ कहते हैं **दुष्करता कैसी?** ओहो! राग के संग का प्रेम है, जैसे पर का संग था, उसे छोड़ने में दुष्करता कैसी? स्वतन्त्र अपने स्वभाव-सन्मुख जाना है, उसमें पर का (प्रेम) छोड़ने में दुष्करता कैसी? आहा..! वैसे भगवान आत्मा, राग के प्रेम में-व्यभिचार में चढ़ गया है.. आहा..हा..! उसको उसे छोड़ने में दुष्करता कैसी? ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! और जिसकी आवश्यकता दृष्टि में आती है, वहाँ वीर्य / पुरुषार्थ हुए बिना नहीं रहता। यह क्या कहा? रुचि अनुयायी वीर्य। यदि राग की रुचि है तो वीर्य, राग के कर्तापने का काम करता है और आत्मा आनन्दस्वरूप की रुचि है तो रुचि अनुयायी वीर्य। पुरुषार्थ उस ओर ढलता है। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं। लोगों को ऐसा लगता है कि यह क्या? अभी तक सुना.. यह गोदिकाजी! पैसा खर्च करना और ऐसा करना, और वैसा करना – उसमें हो गया धर्म। धूल में भी धर्म नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसा कहाँ इसके पिता के थे? वे तो जड़ हैं। पैसा इसका भी कब

था ? पिता के का अर्थ कि इसके कहाँ थे ? आहा..हा.. ! समयसार में निर्जरा अधिकार में तो कहा है कि यदि मैं राग को मेरा करूँ तो मैं अजीव हो जाऊँ। है ? निर्जरा अधिकार में है। मूल गाथा है। आहा..हा.. ! शरीर मेरा है, कर्म मेरे हैं, पैसा मेरा है – ऐसा यदि मानूँ तो मैं अजीव हो जाऊँ।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं। कहाँ पैसा ? पैसा तो जगत की चीज़ है। वह तो पुद्गल की पर्याय है, वह कहीं जीव की पर्याय है और जीव का है – ऐसा तो है नहीं। आहा..हा.. ! बहुत कठिन काम। बड़े गजरथ चलाना और रथ चलावे.. आहा..हा.. !

मुमुक्षु : जयपुर में चलाया था।

पूज्य गुरुदेवश्री : जयपुर में चलाया था, खबर है न ! पूरणचन्दजी के घर उतरे थे न, इक्कीस तो हाथी रथयात्रा में थे। चालीस हजार लोग। पूरा जयपुर उछल गया था। हम तो रथ में बैठे थे। लोग देखने आये थे कि यह है कौन ? इक्कीस हाथी और चालीस हजार लोग। लोग... क्या कहलाता है तुम्हारे ? कमरा, उसके ऊपर लाखों लोग देखते थे। चालीस हजार तो साथ में थे। कोई दिखाव नहीं, कहाँ हाथी और कहाँ क्या है ? उसे खबर है न, क्या परन्तु, वह क्रिया तो जड़ की और पर की है। आहा..हा.. ! आत्मा ने वह रथ चलाया, यह बात तीन काल में सत्य नहीं है।

मुमुक्षु : अब फिर से जयपुर पधारना।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें कदाचित शुभभाव हो तो वह राग है। आहा..हा.. ! राग के प्रेमी को भगवान के प्रति द्वेष हो गया। आहा..हा.. ! ऐसी बात है, भाई ! समझ में आया ?

यह यहाँ कहते हैं, **वह तो सुगम ही होगा न ?** भगवान जो स्वत: सिद्ध वस्तु है, वह तो प्राप्त करने में सुगम ही होगी न ? आहा.. ! मात्र दृष्टि का पलटा होना चाहिए। राग के ऊपर रुचि का प्रेम है तो पूरे संसार का प्रेम है और राग का कर्ता हुआ, वह पूरी दुनिया का कर्ता हूँ – ऐसा माना। आहा..हा.. ! यह मान्यता परसंग से हुई है तो परसंग छोड़ सकता है। स्वरूप अपना है, असंग चीज़ है, उसका संग करना। आहा.. ! है, उसका संग करना। रागादि तो अपनी चीज़ में है ही नहीं। आहा..हा.. ! १९६ (बोल पूरा हुआ)।

प्रज्ञाछैनी को शुभाशुभभाव और ज्ञान की सूक्ष्म अन्तःसन्धि में पटकना। उपयोग को बराबर सूक्ष्म करके उन दोनों की सन्धि में सावधान होकर उसका प्रहार करना। सावधान होकर अर्थात् बराबर सूक्ष्म उपयोग करके, बराबर लक्षण द्वारा पहिचानकर।

अभ्रक के पर्त कितने पतले होते हैं, किन्तु उन्हें बराबर सावधानीपूर्वक अलग किया जाता है, उसी प्रकार सूक्ष्म उपयोग करके स्वभाव-विभाव के बीच प्रज्ञा द्वारा भेद कर। जिस क्षण विभावभाव वर्तता है, उसी समय ज्ञातृत्वधारा द्वारा स्वभाव को भिन्न जान ले। भिन्न ही है परन्तु तुझे नहीं भासता। विभाव और ज्ञायक हैं तो भिन्न-भिन्न ही;—जैसे पाषाण और सोना एकमेक दिखने पर भी भिन्न ही हैं तदनुसार।

प्रश्न :—सोना तो चमकता है, इसलिए पत्थर और सोना—दोनों भिन्न ज्ञात होते हैं, परन्तु यह कैसे भिन्न ज्ञात हों ?

उत्तर :—यह ज्ञान भी चमकता ही है न ? विभावभाव नहीं चमकते किन्तु सर्वत्र ज्ञान ही चमकता है—ज्ञात होता है। ज्ञान की चमक चारों ओर फैल रही है। ज्ञान की चमक बिना सोने की चमक काहे में ज्ञात होगी ?

जैसे सच्चे मोती और खोटे मोती इकट्ठे हों तो मोती का पारखी उसमें से सच्चे मोतियों को अलग कर लेता है, उसी प्रकार आत्मा को 'प्रज्ञा से ग्रहण करना'। जो जाननेवाला है, सो मैं; जो देखनेवाला है, सो मैं—इस प्रकार उपयोग सूक्ष्म करके आत्मा को और विभाव को पृथक् किया जा सकता है। यह पृथक् करने का कार्य प्रज्ञा से ही होता है। व्रत, तप या त्यागादि भले हों, परन्तु वे साधन नहीं होते, साधन तो प्रज्ञा ही है।

स्वभाव की महिमा से परपदार्थों के प्रति रसबुद्धि—सुखबुद्धि टूट जाती है। स्वभाव में ही रस आता है, दूसरा सब नीरस लगता है। तभी अन्तर की सूक्ष्म सन्धि ज्ञात होती है। ऐसा नहीं होता कि पर में तीव्र रुचि हो और उपयोग अन्तर में प्रज्ञाछैनी का कार्य करे॥१९७॥

१९७, **प्रज्ञाछैनी को...** आहा..हा..! राग से आत्मा स्वभाव और राग तो भिन्न ही है।

समझ में आया ? पत्थर होता है न ? बड़ा पत्थर होता है। हम तो राजकोट में एक बार जंगल में गये थे, बहुत पत्थर थे, लाखों मण। उस पत्थर में एक सूक्ष्म सन्धि होती है। सफेद और सूक्ष्म सन्धि। वहाँ ऊपर के पत्थर में और नीचे के पत्थर में सन्धि है, सांध है, एक नहीं हुए। वहाँ आगे रुई की बाँट करके बारुद डालते हैं, हजारों मण पत्थर ऊपर से छूट जाते हैं। सपाटीवाले, हों! ऊपर से फेरफार होता है परन्तु नीचे से निकले वे सपटीवाले पत्थर निकलते हैं, क्योंकि दोनों के बीच सन्धि थी तो सांध में डालने से दोनों भिन्न पड़ जाते हैं।

इसी प्रकार भगवान आत्मा और राग के बीच सन्धि है। अहा..हा..! असन्धि कभी हुई नहीं। राग और त्रिकाल स्वभाव कभी एक नहीं हुए। आहा..हा..! समझ में आया ? यह प्रज्ञाछैनी में है। सन्धि है, असन्धि नहीं हुए। कलश टीका है न ? क्या कहते हैं। आहा..हा..! जैसे उस पत्थर और दूसरे पत्थर के बीच सन्धि है, एक नहीं। साँध है, भिन्न है। अपना चैतन्यदल और राग के विकल्प का शुभभाव चाहे तो तीर्थंकरगोत्र का हो, दोनों के बीच सन्धि है। आहा..हा..! ऐसी बात है। जुगलजी! ऐसी बात है। राग और त्रिकाली वीतरागस्वभाव कभी एक हुए ही नहीं। विभाव के अभ्यास से इसे ऐसा लगता है कि यह मेरी चीज़ है, परन्तु दोनों वस्तु एक हुई नहीं, माने तो भी हुई नहीं। आहा..हा..! ऐसा है।

प्रज्ञाछैनी को... यह साधन कहते हैं। राग और स्वभाव के बीच प्रज्ञाछैनी डाल दे। आहा..हा...! **प्रज्ञाछैनी को शुभाशुभभाव...** शुभ और अशुभ दोनों भाव। आहा..हा..! **और ज्ञान की सूक्ष्म अन्तःसन्धि में पटकना।** ज्ञान शब्द से आत्मा शुद्धस्वभाव। ज्ञायक चैतन्यस्वभाव और राग के बीच सन्धि है, एक नहीं है तो **ज्ञान की सूक्ष्म अन्तःसन्धि...** राग से सूक्ष्म भिन्न ऐसा आत्मा, उसकी **अन्तःसन्धि में पटकना।** अर्थात् राग की एकता तोड़कर स्वभाव की एकता करना, यह प्रज्ञाछैनी अन्दर पटकी-ऐसा कहने में आता है। अरे! ऐसी बातें हैं।

जैसे लोहे की छैनी तीक्ष्ण होती है न ? तीक्ष्ण, तो लोहे के दो टुकड़े हो जाते हैं। लकड़ी के तो होते हैं परन्तु लोहे के हो जाते हैं। इसी प्रकार भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप प्रभु है और राग, वह दुःखस्वरूप है; दोनों के बीच अनादि से एकता हुई नहीं। आहा..हा..! क्योंकि दुःख और आनन्द दोनों विपरीत है। राग है, वह दुःख है। आहा..! है न ?

'राग आग दाह दहै सदा तातै समामृत सेईये' आहा..हा..! चाहे तो दया, दान, व्रत

का राग हो, वह 'राग आग दाह दहै सदा' आहा..हा..! तो कमाना और धन्धे के राग की तो क्या बात करना? आहा..हा..! यह तो शुभराग है, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का प्रेम है, वह राग अग्नि है, कषाय अग्नि है। भगवान आत्मा शीतल अकषायस्वरूप है। जिसे आत्मा कहते हैं, वह तो अकषाय वीतराग शीतल शान्तस्वरूप का पिण्ड है और राग है, वह विकृत अवस्था की अग्नि दाह है। आहा..हा..! 'राग आग दाह दहै सदा तातै समामृत सेईये।' आहा..हा..! इस विकल्प से जो राग हुआ, चाहे तो परमात्मा की भक्ति हो और पंच परमेष्ठी का स्मरण हो, वह सब राग है। आहा..हा..! वह आग है। वह शान्ति को जलाता है, सुलगाता है। आहा..हा..! पर्याय की, हों! त्रिकाली शान्ति को स्पर्श नहीं करता। आहा..हा..! कहते हैं, **शुभाशुभभाव और ज्ञान की सूक्ष्म अन्तःसन्धि...** राग—शुभाशुभभाव और आत्मा अर्थात् ज्ञान की सूक्ष्म अन्तःसन्धि में प्रज्ञाछैनी पटकना। आहा..हा..! अर्थात् जो ज्ञान, राग के साथ एकत्व है, वह तो वहाँ रहा। अब बाद की जो ज्ञानपर्याय है, उसे राग से भिन्न करके, पर्याय में राग और स्वभाव का एकत्व था - ऐसा माना था, वह मान्यता छोड़ दे और राग तथा स्वभाव के बीच ज्ञान की प्रज्ञाछैनी पटक। आहा..हा..! जैसे करोंत से लकड़ी के दो टुकड़े होते हैं, इसी प्रकार भेदज्ञान की तलवार से - करोंत से (राग और आत्मा भिन्न ज्ञात होते हैं।) समझ में आया?

मुमुक्षु : सूक्ष्म सन्धि किस प्रकार दिखायी दे?

पूज्य गुरुदेवश्री : ये कहा न? (आत्मा) ज्ञान लक्षण है, राग दुःख लक्षण है। दोनों की व्याख्या वहाँ प्रज्ञाछैनी में आयी है। बन्ध का लक्षण राग है, भगवान का लक्षण आनन्द और ज्ञान है। दोनों के लक्षण जानकर राग से भिन्न अपनी प्रज्ञाछैनी डाल दे। आहा..हा..! सूक्ष्म बात है।

मुमुक्षु : यह तो हमें याद हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : याद हो गया, उसमें क्या? पहले इसे धारणा में तो याद रहे कि मार्ग तो यह है। समझ में आया? आहा..हा..! करना बाद में, परन्तु धारणा में तो बात ऐसी लेना कि राग से भिन्न पड़ना, वह प्रज्ञाछैनी और साधन है; दूसरा कोई मार्ग नहीं है। इस प्रकार जिसे ज्ञान में, परलक्ष्यी ज्ञान में भी सत्यता नहीं, उसे राग से भिन्न होने की योग्यता नहीं है। आहा..हा..! रंगुलालजी! वहाँ कहीं सुना नहीं। एक तो हो..हा.. संसार की और

उसमें से जाये तो यह करो... यह करो.. बस! व्रत किये, इतने उपवास किये, रस का त्याग किया, अनार के रस का त्याग किया... गन्ने के रस का...

मुमुक्षु : वह तो करना पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या करना पड़ता है? राग के रस को भी छोड़ दे। पर के रस का त्याग (कहते हैं परन्तु) पर का ग्रहण-त्याग तो आत्मा में है ही नहीं। आहा..हा..! रस का त्याग करूँ, परन्तु अन्दर में रस का त्याग है ही। रस को कब ग्रहण किया था कि त्याग करे? अपने राग को जो एकत्व में ग्रहण किया था, उस राग के रस को छोड़ दे। आहा..हा..! और आनन्द के रस में एक बार आ जा। आहा..हा..! ऐसी बात है, भाई!

मुमुक्षु : आत्मा का रस मौसम्बी जैसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा का आनन्दरस है।

मुमुक्षु : आत्मा का रस मौसम्बी जैसा होता होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : मौसम्बी तो जड़ है। मौसम्बी का स्वाद आत्मा को नहीं आता। मौसम्बी के काल में मौसम्बी के प्रति लक्ष्य जाता है (कि) यह ठीक है, ऐसे राग का स्वाद इसे आता है। आहा..हा..! स्त्री के विषय में रमने में स्त्री के शरीर के भोग का वेदन नहीं है, वह तो जड़ है परन्तु अपने आनन्द का लक्ष्य छोड़कर 'यह ठीक है' ऐसे राग की उत्पत्ति करता है, उस राग का भोक्ता है। पर का भोक्ता तो अज्ञानी भी कभी नहीं है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : पूरी दुनिया राग में धर्म मानती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरी दुनिया राग में घुस गयी है। इसलिए तो बात करते हैं। आहा..हा..!

यहाँ कहते हैं, **अन्तःसन्धि में पटकना।** १८१ कलश में प्रज्ञाछैनी आता है। आहा..हा..! त्रिकाली स्वभाव ज्ञान लक्षण, ज्ञान की मुख्यता से लिया है और राग स्वभाव आकुलता, दोनों के लक्षण भिन्न-भिन्न जानकर राग से प्रज्ञा को हटा ले, इसका नाम राग और ज्ञान - आत्मा के बीच प्रज्ञाछैनी पटकी - ऐसा कहने में आता है। अरे! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : साधन क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह साधन कहा न! राग से भिन्न प्रज्ञा साधन है अथवा राग से भिन्न अनुभव, वह साधन है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : अनुभव हो, तब राग तो होता नहीं, भिन्न किस प्रकार होगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : बस, इसलिए कहा न, ज्ञातृधारा पकड़ी तो राग धारा छूट गयी। आहा..हा..! जैसे पानी प्रपात गिरता है न ? इसी प्रकार आत्मा का ज्ञान प्रवाह ध्रुव ऐसे चलता है। उस प्रवाह में राग से भिन्न पड़कर घुस जा। आहा..हा..! ऐसी बात है, बापू! भाषा क्या करे ? यह तो कहा था न ? प्रज्ञाछैनी। निर्विकल्प की बात क्या करना ? यह कहा था। समझ में आया ? कल कहा था। ज्ञान को ज्ञानरूप से परिणमाता है-ऐसा कहना। भाषा दूसरी क्या करे ? रागरूप जो परिणमता है तो अपनी ज्ञातादृष्टा की अवस्था छोड़ दी। आहा..हा..! जिसे छोड़ दिया है, उसे ग्रहण कर ले और जिसे ग्रहण किया है, उसे छोड़ दे। आहा..हा..! ऐसी बात है। भाषा में कितनी बात आवे ? आहा..हा..! यह अनुभवगम्य है।

'अनुभव रत्न चिन्तामणि, अनुभव है रसकूप, अनुभव मारग मोक्ष का'—ऐसा नहीं कहा कि व्यवहाररत्नत्रय मोक्ष का मार्ग है। राग से भिन्न करके प्रज्ञाछैनी द्वारा आत्मा को ग्रहण किया... आहा..हा..! तो अन्दर दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय हुई, वह अनुभव और वह मोक्ष का मार्ग है। आहा..हा..! बाहर के सेठ बड़े मजदूर उसमें घुस गये, उसमें यह कहाँ समझे ? हमारे पास एकबार दरबार आये थे। भावनगर दरबार। करोड़ रुपये का तालुका है। एक वर्ष की करोड़ की आमदनी है। दरबार व्याख्यान में आये थे। मानस्तम्भ के समय (आये थे)। कृष्णकुमार थे। एक वर्ष की करोड़ की आमदनी थी। सुनते थे, नरम व्यक्ति थे। हमारी बात सुनने तो आये थे। भावनगर से यहाँ व्याख्यान में आये थे। लोग बहुत थे। तो कहा - दरबार! जिसे एक महीने में लाख रुपये चाहिए, वह माँगनेवाला है - भिखारी है और करोड़ रुपये की चाहना करता है तो वह भिखारी में भिखारी है। ऋषभकुमारजी! यह कृषि पण्डित है। वह तो दरबार, बड़ा राजा था, उसका पुत्र है, कृष्णकुमार (नाम है) आया था। पालीताणा के दरबार आये थे। वे दरबार आये थे। डूंगरपुर के दरबार हैं, राजा हैं। यहाँ तो व्याख्यान में (आते हैं)। बाहर में नाम है तो आते तो हैं परन्तु बेचारे समझते नहीं। क्या करे ? आहा..हा..! ऐसा कहा - जिसे करोड़ की चाहना है, वह माँगनेवाला अर्थात् भिखारी है। सत्य बात महाराज! हमें कहाँ उससे पैसे लेने थे कि यह दरबार है तो इसे ठीक लगे तो पैसा... क्या कहलाता है ? फण्ड-चन्दा कर दे। यहाँ हमारे फण्ड - चन्दे का क्या काम है ? समझ में आया ?

एक बार जामनगर दरबार के पास गये थे, उन्हें ठीक नहीं था। हम जंगल जाते थे, वहाँ पास में बंगला था। उन्हें पता पड़ा कि महाराज मेरे बंगले के पास आते हैं। वे आ नहीं सकते थे, आँख की पीड़ा बहुत थी। ऐसे हाथ रखते थे, नहीं तो गाँव में आवे। महाराज! मुझे ठीक नहीं है। एक करोड़ रुपये की वर्ष की आमदनी थी। जामनगर, बड़े दरबार तो सब व्याख्यान में आते थे। वे आ नहीं सकते थे तो कहा महाराज! आप मेरे बंगले के समीप जंगल आते हो, एक खेत दो खेत दूर मेरे बंगले में पधारो - ऐसा कहलवाया। उनकी रानी तो बहुत पैसे की याचक / भिखारी थी। सामने बैठे और जंगल गये थे, समीप में बंगला था। क्या कहलाता है बड़ा? रंगोली, रंगोली की थी। राजा-रानी नीचे उतरे थे। बाहर आये। रानी तो नजदीक आयी। अन्दर गये और बैठे, पाव घण्टे बात की। सबेरे की बात है। (मैंने) कहा - यह राज नहीं, दरबार! यह साम्राज्य तो भिखारी का है। साम्राज्य तो उसे कहते हैं कि अनन्त आनन्द का नाथ साम्राज्य जो पड़ा है, उसे दृष्टि में ले तो वह साम्राज्य और वह राजा कहलाता है। बाकी सब भिखारी है। दस मिनिट, पाव घण्टे बैठे थे। सबेरा था। दूध भी नहीं पिया था। एक हजार रुपये रखे, एक हजार दिये। ज्ञान खाते देता हूँ। अपने यहाँ मोक्षमार्गप्रकाशक शास्त्र में डाले। परन्तु वह बेचारे गरीब लोग। अपनी चैतन्य लक्ष्मी से गरीब है। आहा..हा..! नाम प्रसिद्ध है कि 'कानजी मुनि' आये हैं और लोगों में बहुत इज्जत है और बहुत लोग आते हैं। आहा..हा..!

मुमुक्षु : उसने हजार रुपये दिये वे कहाँ.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हजार में क्या भला हुआ? हमारे क्या है? लाख दे तो क्या है? यह तो कहा न, आज.... आये थे। लालचन्दभाई लेकर आये थे। हमारे ढाई लाख देना है। आज दोपहर को (आये थे)। इन गोदिका को मकान नहीं बनाना है, जमीन ली है, क्योंकि इन्हें तो भटकने का बहुत है न? बाहर जाना और.. जमीन ली, तब तो विचार होगा, परन्तु अब.. तो उस जमीन में हमारे मकान बनाना है। अभी मेरे पास आये थे। मैंने तो किसी को कहा नहीं और कहता नहीं। परन्तु यह बात करने आये। अभी आये थे। कहा- मुझे ढाई लाख देना है और दूसरे पाँच-सात लाख के मकान, सोसाइटी बनाना है। दस हजार के मकान बनावे, उसमें उसका नाम रखूँगा - ऐसा कहते थे। यहाँ तो किसी को कुछ कहते नहीं। हमें इसकी विस्मयता ही नहीं लगती कि ढाई लाख देता है और ऐसा है। उसमें क्या है?

मुमुक्षु : ढाई लाख...

पूज्य गुरुदेवश्री : ढाई लाख है तो क्या हुआ ? यह तो एक बार नहीं कहा था ? इसका उद्घाटन था न ? यह छब्बीस लाख का मकान (परमागम मन्दिर) है। तीस हजार लोग आये थे। एक सेठ मेरे पास आये थे। पैसेवाले पाँच-छह करोड़ रुपये। हम तो अन्दर बैठे थे, वहाँ आये। दो भाई थे। थोड़े पैसे दिये। मुझे ऐसा कि दो-चार हजार होंगे। ऐसे देखा तो दस हजार के पाँच नोट - पचास हजार। कहा - मैं तो एक पाई भी रखता नहीं। यहाँ तो चार रोटी जीमते हैं। जैसे आये वैसे रामजीभाई को दे दिये। पचास हजार दस मिनिट में! सेठ का नाम नहीं देते, परन्तु उसमें क्या है ? पचास हजार क्या, पाँच करोड़ दे तो उसमें है क्या ? कदाचित् राग की मन्दता की हो तो वह पुण्य, शुभराग है, जहर है। आहा..हा..! गोदिकाजी!

इसलिए तो कहते हैं, इस राग से भी भिन्न पड़ जा। राग जहर है, आकुलता है, दुःख है, अग्नि है। आहा..हा..! भगवान शीतल स्वभाव शान्तरस है। आहा..! भक्ति में भी आता है न ?

उपशम रस बरसे रे प्रभु तेरे नयन में
उपशम रस बरसे रे प्रभु तेरे नयन में

आहा..हा..! हे नाथ! तेरा उपशमस्वभाव अन्दर पूर्ण प्रगट हुआ। शान्त.. शान्त.. शान्त.. शान्त..। जहाँ विकल्प का जरा भी उत्थान नहीं। आहा..हा..! तो तुम्हारी आँख में हमें तो उपशम रस दिखता है और भगवान के शरीर के परमाणु भी ऐसे हैं, जितने शान्तरस से परिणमते परमाणु हैं, सब उनके पास आ गये हैं। यह भक्तामर में आता है। शान्तरस के जितने परमाणु हैं, वे सब तुम्हारे शरीर में आ गये हैं। भक्तामर में आता है। यह तो सब देखा है न! भक्तामर तो गृहस्थाश्रम में देखा था, कण्ठस्थ किया था, फिर अब तो भूल गये। हे नाथ! आपकी शान्तदशा, वीतरागदशा, शान्तदशा है। प्रभु! आपकी वाणी में भी शान्तरस झरता है। आहा..हा..!

वचनामृत वीतराग के परम शान्तरस मूल
वचनामृत वीतराग के परम शान्तरस मूल
औषध जो भवरोग के कायर को प्रतिकूल

जिसे शुभभाव छोड़ना कठिन पड़ता है, उसे नपुंसक कहते हैं। समयसार (के) पुण्य-पाप अधिकार में संस्कृत में क्लीव (शब्द) है। क्लीव का अर्थ नपुंसक किया है। शुभभाव छोड़ना कठिन है, पुरुषार्थ नहीं, वह तो नपुंसक है। आहा..हा..! शुभभाव करनेवाले सब पावैया, हिजड़ा है। यहाँ तो ऐसी बात है, भगवान! सेठ! समयसार में पुण्य-पाप अधिकार में दो बार आया है। समझ में आया? एक अजीव अधिकार में आया है और एक पुण्य-पाप अधिकार में आया है। नपुंसक कहा है। शुभभाव के प्रेमवाले, रुचिवाले नपुंसक है। जैसे नपुंसक को वीर्य नहीं तो पुत्र नहीं होता; इसी प्रकार शुभभाव की रुचिवाला नपुंसक है, उसे धर्मपर्याय उत्पन्न नहीं होती - धर्म प्रजा उत्पन्न नहीं होती। शुभभाव से-नपुंसकता में से शुद्धधर्म की पर्याय उत्पन्न नहीं होती। आहा..हा..! हसमुखभाई! ऐसा है, बापू! यहाँ तो। वे तो मानो करोड़ों रुपये ऐसे हो गये न... आहा..हा..! क्या हुआ? अरबोंपति देखे हैं न! आहा..हा..! शान्तिलाल खुशाल बेचारे गुजर गये, उनके भाई अभी गुजर गये। सुना है। यह उनके बहनोई बैठे हैं। दो अरब चालीस करोड़। डेढ़-दो वर्ष पहले पाँच मिनिट में गुजर गये। मुम्बई, अभी उनके भाई गुजर गये। उसमें धूल में क्या है?

यहाँ कहते हैं, आहा..हा..! **ज्ञान की सूक्ष्म अन्तःसन्धि में पटकना। उपयोग को बराबर सूक्ष्म करके उन दोनों की सन्धि में सावधान होकर उसका प्रहार करना।** आहा..हा..! समय वर्ते सावधान, यह विवाह में आता है। इसी प्रकार समय वर्ते, समय अर्थात् आत्मा, उसमें वर्तने में सावधान हो जा। विवाह करते हैं न? तब ब्राह्मण बोलता है - समय वर्ते सावधान। समय हो गया, आठ और पच्चीस मिनिट में लगन है। समय वर्ते, समय पूरा हो गया। सावधान हो जाओ, कन्या को यहाँ लाओ। यहाँ समय वर्ते सावधान। समय अर्थात् अपना आत्मा। आहा..हा..! समय कहते हैं न? सम+अय = सम्यक् प्रकार से, अय - आनन्द और ज्ञान में परिणमन करता है, वह समय है। उसमें सावधान हो जा। राग की सावधानी छोड़ दे।

विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण-६, गुरुवार, दिनाङ्क २४-०८-१९७८
वचनामृत-१९७ प्रवचन-७४

सम्यग्दर्शन प्रगट करना हो तो उसकी विधि क्या ? उसकी रीति क्या ? सूक्ष्म भाव है। यहाँ प्रज्ञाछैनी को... कोई तो ऐसा कहता है कि क्रमबद्धपर्याय होगी, तब होगी, वस्तु का स्वभाव ऐसा है। सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार में आया है कि प्रत्येक द्रव्य की पर्याय क्रमबद्ध (होती है)। जब जो होनेवाली है, वह होगी, आगे-पीछे होगी नहीं। उसमें यह पुरुषार्थ कहाँ आया ? और 'जो-जो देखी वीतराग ने सो-सो होसी वीरा रे, अनहोनी कबहुँ न होसी काहे होत अधीरा रे।' वीतराग ने देखा होगा, तब होगा, उसमें पुरुषार्थ कहाँ आया ? सुनो!

वीतराग ने देखा वैसा होगा और सर्वज्ञ ने जैसा देखा वैसा होगा, परन्तु क्रमबद्ध में जैसा होना होगा, वैसा होगा - इसका निर्णय कौन करे ? अन्तर भगवान आत्मा सर्वज्ञ -स्वभावी वीतरागमूर्ति की ओर दृष्टि करे तो वह पुरुषार्थ आया; स्वभाव के ऊपर दृष्टि करे तो स्वभाव आया; काललब्धि भी उस समय पकी है तो अपनी पर्याय में निर्मलता प्रगट हुई; भव्यता भी उस समय में वैसा भाव होना था, वह हुआ; और निमित्त का भी उस समय में अभाव है तो होता है। पाँचों समवाय साथ में हैं। अरे रे! समझ में आया ? क्रमबद्ध में यह प्रश्न उठता है कि यह क्रमबद्ध है तो नियत हो गया। नियतिवाद तो मिथ्यात्व है। अरे! एकान्त नियति मिथ्यात्व है। सुन तो सही! नियत तो नियत समय में ही होगा परन्तु उसके पुरुषार्थ से और स्वभाव-सन्मुख होने से उस समय में कर्म का अभाव भी वहाँ निमित्तरूप से है। उस काल में वहाँ पर्याय निर्मल सम्यग्दर्शन षट्कारक की परिणति से उत्पन्न होगी। क्या कहा ?

सम्यग्दर्शन की पर्याय, वह पर्याय स्वयं कर्ता, पर्याय कर्म / कार्य, पर्याय करण /

साधन, पर्याय अपादान, पर्याय सम्प्रदान – स्वयं रखती है, स्वयं से-पर्याय से पर्याय हुई, पर्याय के आधार से पर्याय हुई। सूक्ष्म बात है। आहा..हा..! ऐसी बात है। ऐसी ही बात है।

जैनदर्शन में (तत्कालीन सामाजिक समाचार पत्र) आज बहुत विरोध आया है। नियत है, जब होना होगा, तब होगा... अरे! सुन तो सही! आहा..हा..! क्रमबद्ध का भी विरोध। यह तो (पहले भी) क्रमबद्ध का विरोध वर्णी जी के समय भी था। अब कैलाशचन्दजी ने स्वीकार किया है कि क्रमबद्ध है और निमित्त है परन्तु निमित्त से पर में कुछ होता नहीं। यह दो बोल अभी 'जैनसन्देश' में स्वीकार किया है। उस समय तो विरोध था। सूक्ष्म बात है, भाई!

सर्वज्ञ है, उन्होंने देखा वैसा होगा, यह तो हमारे (संवत्) १९७२ के साल में प्रश्न हुआ था। ६२ वर्ष हुए। ६०+२=६२ वर्ष। कितनों का ही तो तब जन्म भी नहीं था, उस समय प्रश्न हुआ था। हमारी दीक्षा (सम्प्रदाय में) हुई थी। दीक्षा को दो वर्ष हुए थे। (संवत्) १९७० में दीक्षा ली थी। ६५ वर्ष दीक्षा को हुए परन्तु दो वर्ष पश्चात् यह प्रश्न बहुत चला। सम्प्रदाय के हमारे जो गुरुभाई थे, वे ऐसा कहते थे कि केवलज्ञानी ने देखा वैसा होगा, हम क्या करें? सर्वज्ञ ने देखा वैसा होगा, हम क्या करें? दो वर्ष तो सुना। नवदीक्षित थे न? साढ़े तेईस वर्ष में दीक्षा ली थी। डेढ़ वर्ष हुआ था। पच्चीस वर्ष की उम्र थी। फिर एक बार ऐसा कहा – तुम कहते हो, उसमें विरोध क्या है, वह समझो। सर्वज्ञ ने देखा, वैसा होगा – यह बात तो ऐसी ही है, परन्तु सर्वज्ञ जगत में हैं, ज्ञान की एक समय की पर्याय तीन काल-तीन लोक को जानती है – ऐसी पर्याय जिसकी श्रद्धा में आती है तो उसकी दृष्टि द्रव्य पर जाती है। द्रव्य पर जाती है, इतने शब्द तो उस समय नहीं थे, परन्तु उस समय ऐसा कहा था कि इस जगत में सर्वज्ञ है, सर्वज्ञपर्याय है, जो प्रवचनसार की ८० वीं गाथा में चलता है न? **जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं** यह भाव अन्दर से आया था। उस समय प्रवचनसार देखा नहीं था। भगवान अरिहन्त के द्रव्य-गुण और पर्याय जो कोई जानता और मानता है, वह उसके पर्याय और गुण को द्रव्य में अभेद करके निर्णय करता है, तब सर्वज्ञ ने देखा – ऐसी सर्वज्ञ की उसे प्रतीति आती है। चन्दुभाई! ६२ वर्ष पहले बहुत चर्चा चली थी।

सर्वज्ञ ने देखा होगा, वैसा होगा, हम क्या करें? कहा – यह तुम क्या मानकर बैठे? बापू! सर्वज्ञ है। सर्वज्ञ ने देखा, भाई! सर्वज्ञ ने देखा ऐसा है। 'जो जो देखी वीतराग ने सो

सो होसी वीरा, अनहोनी कबहूँ न होसी, काहे होत अधीरा।' परन्तु उसकी दृष्टि कहाँ है ? जिसने, वीतराग ने देखा ऐसा माना, उसकी वीतराग की पर्याय की प्रतीति हुई या नहीं ? और वीतराग पर्याय की प्रतीति होती है, वह पर्याय के आश्रय से पर्याय की प्रतीति नहीं होती। आहा..हा..! उस वीतराग पर्याय की प्रतीति, वीतरागस्वरूप त्रिकाल है, उसके आश्रय से प्रतीति होती है। सूक्ष्म बात है, भाई! मुद्दे की वस्तु है, बापू! यह तो ६२ वर्ष पहले अन्दर से चर्चा आयी थी। बहुत चर्चा हुई। एक बार तो सम्प्रदाय छोड़ दिया। मैं सत्य को माननेवाला हूँ, ऐसी कोई गड़बड़ मनावे, इसमें आ गया इसलिए मानूँ – ऐसा मुझे नहीं है। एक सेठ ने कहा था – ऐसी बात करते हैं तो बिना डोर की पतंग उड़ती है। हमारे गुरु ने कहा नहीं, शास्त्र में ऐसा है नहीं और इन्होंने यह कहाँ से निकाला ? यह पतंग जहाँ पड़नी होगी वहाँ पड़ेगी। सोनगढ़ आ गयी। उसमें जरा सूक्ष्म (भाव) है, भगवान!

सर्वज्ञ ने देखा वैसा होगा, क्रमबद्ध होगा। परन्तु क्रमबद्ध होगा, इसके ऊपर लेख (उपोद्घात) ऐसा है कि मैं अकर्तापने को बतलाता हूँ। सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार। क्रमबद्ध बताने से पूर्व अमृतचन्द्राचार्य (कहते हैं) मैं अकर्तापने को 'आख्याति'। मैं अकर्तापने को बतलाता हूँ। इसका अर्थ यह हुआ कि क्रमबद्ध होता है, उसे राग को, पर्याय को मैं करता हूँ – ऐसी बुद्धि उड़ जाती है। आहा..हा..! सूक्ष्म बात है, बापू! अभी तो मूलमार्ग को छोड़कर इतनी अधिक सब गड़बड़ चली है।

जिसने, वीतराग जगत में है – ऐसी वीतरागी पर्याय की सत्ता अर्थात् अस्ति जगत में मौजूद है, उस पर्याय की प्रतीति किसे होती है ? अपनी पर्याय के अवलम्बन से वीतरागी पर्याय की प्रतीति नहीं होती। वह वीतरागी पर्याय पर है परन्तु वह वीतरागी पर्याय भगवान को प्रगट हुई है, वह कहाँ से प्रगट हुई ? बाहर से आयी ? वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा है, जिनस्वरूप है। आहा..हा..!

घट-घट अन्तर जिन बसै, घट-घट अन्तर जैन,
मत मदिरा के पान सौ, मतवाला समझे न।

सूक्ष्म बात है भगवान! पूरी दुनिया को जानते हैं, हों! यहाँ तो ६५ वर्ष हुए। हम तो दुकान पर भी शास्त्र पढ़ते थे। १८ वर्ष की उम्र से। अभी तो ९० हुए। पूर्व के संस्कार थे न! यह जरा सूक्ष्म बात है, भगवान! अन्दर की व्यक्तिगत बात है।

दुकान चलती थी। पाँच वर्ष मैंने भी दुकान चलायी। १७ वर्ष से २२ (वर्ष तक)।

अर्थात् (संवत्) १९६३ से १९६८ (तक)। १९६८ के वैशाख में दुकान छोड़ दी। अभी भी बड़ी दुकान है। भरूच और बड़ोदरा के बीच पालेज (में) है। अभी दुकान में ३५-४० लाख रुपये हैं, तीन-चार लाख की आमदनी है। वह तो पाप की दुकान है।

मुमुक्षु : उसके बिना....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में कुछ नहीं। मैंने तो दुकान चलानेवाले हमारे एक भागीदार थे, उन्हें भी कहा था। उस समय संवत् १९६६ के साल, बीस वर्ष की देह की उम्र थी। देह की न? आत्मा तो अनादि-अनन्त है। उस समय हमारे भागीदार को कहा था। मुझसे चार वर्ष बड़े थे। कहा - क्या तुम यह पूरे दिन-रात दुकान.. दुकान.. दुकान.. याद रखो.. गोदिकाजी! याद रखो.. मरकर तुम तिर्यंच में जाओगे क्योंकि मुझे ऐसा लगता है कि तुम देव तो नहीं होओगे। नरक में तुम जाओगे नहीं, क्योंकि अपन बनिया हैं, इसलिए अण्डा, माँस, शराब का खुराक तो नहीं है, इसलिए नरक में नहीं जाओगे। देव में जाओगे, यह लक्षण मुझे तुम्हारे दिखते नहीं। १९६६ के साल में, बीस वर्ष की उम्र थी- ६८ वर्ष पहले की बात है। ६८ वर्ष पहले की। अभी ८९ हुए... और मनुष्य होने की योग्यता मुझे दिखती नहीं। नरक में जाओगे नहीं, मनुष्य होने की योग्यता दिखती नहीं, याद रखो! मुझसे चार वर्ष बड़े थे। सुनते थे। हमें तो भगत कहते थे। भगत के सामने नहीं बोलना। (मैंने कहा) याद रखो, तिर्यंच होओगे। कहा, हों! बड़ा-बड़ा व्यापार और दो-दो लाख की आमदनी... मरकर ढोर होओगे / पशु होओगे, याद रखो। क्योंकि अपनी वस्तु क्या है, उसकी तो खबर नहीं परन्तु सत्समागम में दो-चार घण्टे हमेशा निकालना, वह समय भी नहीं। तुम्हारे पुण्य का भी ठिकाना नहीं और पाप.. पाप.. पूरे दिन यह कमाना और और कमाना, यह लिया और यह दिया... उसमें - धूल में क्या आया तुम्हें? दो लाख की आमदनी एक वर्ष की। अब तो तीन-चार लाख की पैदाश है। पैदाश समझे? आमदनी। क्या हुआ उसमें? यह बाईस घण्टे उसमें... सन्त समागम आवे तो घण्टे भर सुनने जाये, वह तो रात्रि में एक घण्टे जाये। फिर साधु कहे राताड़िया। दिन में तो सामने देखे नहीं। धन्धा.. धन्धा..। अर..र! पाप, पाप और पाप पूरे दिन। यह किया और यह किया और यह लिया और यह दिया। स्त्री, पुत्र को सम्हालना और उनके भोग... यह सब अकेला पाप है। धर्म तो नहीं परन्तु वहाँ तो पुण्य भी नहीं। ऐ..ई! दो-चार, चार-चार घण्टे प्रतिदिन हमेशा सच्चा सत्समागम हो। सच्चा सत्समागम, हों! उसके समागम में आवे, शास्त्र

तीन-चार घण्टे पढ़े तो इसे पुण्य तो होगा। धर्म तो बाद में। यह निवृत्ति भी नहीं मिलती। आहा..हा..! उस समय मैंने तो कहा था। यहाँ ऐसा कहते हैं।

यह प्रश्न फिर (संवत्) १९७२ में चला कि सर्वज्ञ ने देखा वैसा होगा, हम क्या करें? अरे! प्रभु! सुन तो सही, प्रभु! पण्डितजी! जो ८० वीं गाथा में आया—**जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं** अरिहन्त की पर्याय केवलज्ञान। उस पर्याय को जो जाने, वह अपनी पर्याय को गुण में मिलाकर, गुण, द्रव्य में मिलाकर अनुभव करे, उसे अरिहन्त की पर्याय की प्रतीति व्यवहार से यथार्थ आयी। आहा..हा..! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई!

यहाँ यह कहते हैं, देखो! **प्रज्ञाछैनी को शुभाशुभभाव...** जहाँ पुण्य और पाप का भाव... जहाँ सम्यग्दर्शन करने जाता है और क्रमबद्ध का निर्णय करने जाता है और सर्वज्ञ ने देखा वैसा होगा—ऐसी सर्वज्ञ की पर्याय की प्रतीति करने जाता है, तब प्रज्ञाछैनी राग से भिन्न कर डालती है। ऐई!

मुमुक्षु : एक समय में बहुत काम किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक समय में। कल बताया था। '**रभसा**' राजमलजी की कलश-टीका है। '**रभसा**' १८१ कलश है। आहा..!

प्रज्ञाछैनी को शुभाशुभभाव... क्या कहते हैं? आहा..हा..! यह प्रज्ञा अर्थात् ज्ञान की वर्तमान दशा जो साधन है, उसे शुभाशुभभाव से भिन्न करके। आहा..हा..! क्योंकि सर्वज्ञ की पर्याय है और उन्होंने देखा, वैसा होगा तो वह सर्वज्ञ की पर्याय से नियत ही है, जिस समय में होना है वह। ऐसा अपने में भी सर्वज्ञ ने देखा, उस समय में होगा, परन्तु उसका निर्णय किसने किया? राग से मेरा सर्वज्ञस्वभाव भिन्न है.. समझ में आया? सर्वज्ञ की प्रतीति करना हो तो सर्वज्ञस्वभाव की ओर घुसना पड़ेगा। जिसमें से सर्वज्ञ पर्याय आयी है, वह सर्वज्ञ पर्याय आयी कहाँ से? सर्वज्ञस्वभाव है, उसमें से आती है। किसी पूर्व की पर्याय से नहीं, निमित्त से नहीं, व्रजनाराचसंहनन है और मनुष्यपना है तो केवलज्ञान हुआ-ऐसा कभी नहीं है। वह केवलज्ञान की पर्याय / सर्वज्ञपर्याय, सर्वज्ञस्वरूपी जो भगवान आत्मा है, उसमें से आती है। जब सर्वज्ञ का निर्णय करने जाते हैं, क्रमबद्ध का निर्णय करने जाते हैं, तब प्रज्ञाछैनी शुभाशुभभाव से भिन्न.. आहा..हा..!

और ज्ञान की सूक्ष्म अन्तःसन्धि... आहा..हा..! यह शुभ-अशुभ विकल्प राग है

और भगवान वीतरागस्वरूप प्रज्ञाब्रह्म, ज्ञानब्रह्म, ज्ञान और आनन्द का पूर्णरूप है। प्रभु ज्ञानानन्द पूर्णरूप है। उसे राग से भिन्न करके प्रज्ञाछैनी द्वारा स्वभाव-सन्मुख होता है, तो **अन्तःसन्धि में पटकना।** आहा..हा...!

सर्वज्ञस्वरूपी प्रभु में सर्वज्ञशक्ति है। आत्मा में जैसे ज्ञानगुण है, दर्शनगुण है, आनन्दगुण है, अस्तित्वगुण है, ऐसा एक सर्वज्ञ नाम का गुण है। आहा..हा..! सैंतालीस शक्ति में सब आया है। समयसार में पीछे है। वह सर्वज्ञस्वभाव जो है, उसकी दृष्टि करने से राग से भिन्न होना पड़ता है। आहा..हा..! सूक्ष्म बात है, भाई! प्रज्ञाछैनी द्वारा शुभ-अशुभ विकल्प-राग और ज्ञान अर्थात् आत्मा की सूक्ष्म अन्तःसन्धि में (पटकना)। दोनों एक तो है ही नहीं। राग और स्वभाव, भगवान ज्ञायकस्वभाव दोनों कभी एक हुए ही नहीं। एक इसने माने हैं। दो के बीच सन्धि है, सांध है, भिन्नता की सन्धि है। आहा..हा..! समझ में आया?

ज्ञान की सूक्ष्म अन्तःसन्धि... ज्ञानस्वभाव वस्तु राग से-विकल्प से—चाहे तो दया, दान हो, चाहे तो देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा हो, परन्तु वह सब राग है। आहा..हा..! उस राग से भगवान सर्वज्ञस्वभावी प्रभु ज्ञानस्वरूपी (भिन्न है)। ज्ञानस्वरूपी कहो, सर्वज्ञस्वरूपी कहो, ज्ञ स्वभावी कहो, 'ज्ञ' और सर्वज्ञस्वभावी कहो, एक ही बात है। आहा..हा..! अन्दर में **अन्तःसन्धि में पटकना।**

उपयोग को बराबर सूक्ष्म करके... आहा..हा..! जाननेवाला जो उपयोग है, उसे सूक्ष्म करके धीरज से, सूक्ष्म करके। आहा..हा..! **उन दोनों की सन्धि में सावधान होकर...** दोनों की एकता नहीं और वहाँ सांध है। पत्थर का दृष्टान्त दिया था। बड़े लाखों मण के पत्थर होते हैं न? उसमें बीच में रग होती है, सूक्ष्म रग होती है। उसमें सुरंग डालते हैं। लाखों मण के पत्थर ऊपर से टूट जाते हैं; इसी प्रकार आत्मा और विकल्प-राग के बीच सन्धि है-रग है-सन्धि है, एक नहीं। यदि एक हो तो भिन्न नहीं पड़ सकते, भिन्न पड़ते हैं तो एक हुए ही नहीं। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं। समझ में आया?

बराबर सूक्ष्म करके उन दोनों की सन्धि में... स्वभाव ज्ञान और राग दोनों के लक्षण भिन्न हैं। ऐसी सन्धि में अर्थात् जहाँ एकता नहीं, वहाँ **सावधान होकर...** आहा..हा..! ज्ञान की दशा को स्वरूप-सन्मुख झुकाने से राग से भिन्न होता है, यह प्रज्ञाछैनी को सावधान

होकर पटका – ऐसा कहने में आता है। पाटनीजी! ऐसी बातें, बापू! क्या हो? अन्तरभगवान आत्मा पूर्णानन्द का दल और राग जो विकृत पर्याय, दोनों के बीच एकता कभी नहीं हुई। बीच में सन्धि है, एकता है नहीं, एकता मानी है। समझ में आया? वह एकता तोड़ने में ज्ञान की वर्तमान प्रज्ञाछैनी; जैसे लोहे की छैनी से दो टुकड़े हो जाते हैं; वैसे ज्ञान की पर्याय को राग से भिन्न करके अन्दर ले जाते हैं तो राग और भगवान दोनों भिन्न हो जाते हैं। आहा..हा..! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : राग कहाँ चला जाता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग चला जाता है, भिन्न रह जाता है, अपने स्वभाव में नहीं। फिर अस्थिरता रहती है तो स्वरूप में स्थिरता करने से अस्थिरता का नाश होता है। पहले तो एकता तोड़ता है। आहा..हा..! ऐसी बात। ज्ञानचन्दजी! जुगलजी! ऐसा स्वरूप है, प्रभु! क्या करे? आहा..! यह कोई पण्डिताई की चीज़ नहीं। ग्यारह अंग तो अनन्त बार पढ़ा। यह तो अन्तर की पण्डिताई की चीज़ है।

शरीर तो इसमें है ही नहीं, इसलिए यहाँ उसकी बात नहीं की और राग है परन्तु एकत्व नहीं, सन्धि है। आहा..हा..! बन्ध का लक्षण राग; भगवान का लक्षण ज्ञान और आनन्द–ऐसे दोनों के लक्षण भिन्न जानकर दोनों के बीच सन्धि है, वहाँ ज्ञान की एकाग्रता को पटकना। अरे! यह ऐसी बात है। है? **सावधान होकर... बराबर सूक्ष्म उपयोग करके, बराबर लक्षण द्वारा पहिचानकर** पटकना। आहा..हा..! चैतन्यलक्षण से लक्षित प्रभु और राग लक्षण, वह बन्ध लक्षण–दोनों के लक्षण भिन्न जानकर दो के बीच प्रज्ञाछैनी पटकना। आहा..हा..! ऐसी बात है। यह तो अभी प्रथम सम्यग्दर्शन होने की बात है। चारित्र और ज्ञान वह तो बहुत अलौकिक बातें हैं, बापू! आहा..हा..! इसलिए लोगों को लगता है न? सोनगढ़ का एकान्त है। सोनगढ़ का नहीं, यह तो भगवान के घर का है। समझ में आया? अब दृष्टान्त देते हैं।

अभ्रक के पर्त कितने पतले होते हैं,... अभ्रक.. अभ्रक। उसके पर्त होते हैं न? बहुत पतले, बहुत पतले (होते हैं)। अभ्रक कहते हैं तुम्हारे में। उसके पर्त बहुत पतले होते हैं। **किन्तु उन्हें बराबर सावधानीपूर्वक अलग किया जाता है, उसी प्रकार...** आहा..! पतले हैं परन्तु सावधानीपूर्वक पर्त अलग करें तो अलग पड़ जाते हैं। पतले बहुत होते हैं,

उन्हें एकदम जोर करने जाये तो टुकड़े हो जायें। पतले पर्त को सावधानी से-धीरे से भिन्न करते हैं। इसी प्रकार भगवान आत्मा को.. आहा..! अरे! समय कहाँ है? सावधानी कहाँ? दुनिया के क्रियाकाण्ड में घुस गया। अरे! प्रभु! तेरी बात रह गयी। जो करना था, वह रह गया। आहा..हा...!

विकल्प जो दया, दान आदि, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का भी हो, वह राग है। परदिशा तरफ की दशा, वह राग है। स्वदशा की दिशा स्व है। यह क्या कहा? जो कुछ पुण्य और पाप राग है, उस दशा का लक्ष्य परदिशा की ओर है। पर की दिशा से वह दशा उत्पन्न होती है और वीतरागदशा स्व की दिशा से वीतरागदशा उत्पन्न होती है। अरे! क्या कहते हैं यह? समझ में आया? चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति का राग हो, वह विकार की दशा है, उसकी दिशा परसन्मुख है। पर के लक्ष्य से विकृति उत्पन्न होती है और सम्यग्दर्शन, वीतरागदशा, वह स्व की दिशा में, स्वदेश में दृष्टि जाती है तो वह दशा उत्पन्न होती है, क्योंकि स्वयं का स्वदेश वीतराग स्वदेश है। आहा..हा..! समझ में आया? अरे रे! जो करना था, वह किया नहीं और जिन्दगी चली जा रही है। आहा..! शोभालालजी की दशा नरम है - ऐसा कहा। सीरियस नहीं। डॉक्टर ने ऐसा कहा। आज डॉक्टर आया था। सीरियस नहीं। पहले कोई सीरियस कहता था, नरम है, कमजोरी है। शोभालाल सागरवाले बीड़ीवाले करोड़पति हैं। बहुत प्रेम है। यहाँ महीने-दो महीने आते हैं। दो लाख का मकान बनाया है। आते हैं। अभी कमजोर पड़ गये हैं। आहा..! शरीर तो कमजोर हो या न हो, वह तो शरीर की दशा है। आत्मा में कमजोरी नहीं आती। वह वृद्धावस्था तो जड़ की दशा है। बालपन, वृद्धावस्था, जवानी यह तो जड़ की-पुद्गल की दशा है, प्रभु! यह तेरी दशा नहीं। तेरी बाल, युवा, और वृद्धदशा तो उसे कहते हैं कि राग की एकत्वबुद्धि रखना, वह बालबुद्धि, बाल अवस्था है आहा..हा..! और राग से भिन्न करके अन्तरात्मा की दृष्टि हुई, वह युवा अवस्था है और राग की अस्थिरता से बिल्कुल छूटकर वीतरागदशा उत्पन्न हो, वह आत्मा की वृद्धावस्था है। आहा..हा..! बात तो ऐसी है, प्रभु! क्या करें? क्या कहना?

मुमुक्षु : यह तो बिल्कुल नयी बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नयी नहीं, अनादि से है। न सुनी हो, इसलिए नयी लगती है। परमात्मा तीन लोक के नाथ सीमन्धर भगवान तो कह रहे हैं। आहा..हा..!

यहाँ यह कहते हैं **अभ्रक के पर्त...** पर्त.. पर्त.. **पतले होते हैं, किन्तु उन्हें बराबर...**

धीरे से **सावधानीपूर्वक अलग किया जाता है, उसी प्रकार...** यह तो दृष्टान्त हुआ। **सूक्ष्म उपयोग करके...** आहा..हा..! **स्वभाव-विभाव के बीच प्रज्ञा द्वारा भेद कर।** प्रभु! आहा..हा..! और वह ध्यान में होता है। द्रव्यसंग्रह की ४७ गाथा है न? ४७, ४ और ७। वहाँ नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने लिया है **'दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।'** आहा..हा..! नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती सन्त-दिगम्बर कोई भी हो, सब एक ही बात करनेवाले हैं। समझ में आया? निश्चयमोक्षमार्ग ध्यान में प्राप्त होता है। इसका अर्थ **'दुविहं पि मोक्खहेउं'** निश्चय और व्यवहार दो प्रकार के मोक्षमार्ग ध्यान में (प्राप्त होते हैं)। अन्तर में राग से भिन्न पड़कर आत्मा अनुभव में आया.. आहा..हा..! आनन्द का और ज्ञान का वेदन हुआ, उसे निश्चयमोक्षमार्ग कहते हैं और बाकी राग रहा, उसे आरोप से व्यवहारमोक्षमार्ग कहते हैं। आहा..हा..! वह बाहर से नहीं होता, ऐसा कहते हैं। अन्दर ध्यान में निश्चयमोक्षमार्ग होता है। आहा..हा..! आहा..हा..!

उसी प्रकार सूक्ष्म उपयोग करके... अन्तर-सन्मुख का ध्येय बनाकर, स्वरूप की पूर्णता का ध्येय बनाकर, ध्यान की पर्याय में ध्येय बनाकर, पर्याय में विषय (बनाकर)। त्रिकाली ज्ञायक को विषय बनाकर। आहा..हा..! **जिस क्षण विभावभाव वर्तता है,...** हो राग का विकल्प वहाँ, **उसी समय ज्ञातृत्वधारा द्वारा स्वभाव को भिन्न जान ले।** आहा..हा..! ज्ञान की पर्याय को राग और स्वभाव के बीच डाली तो ज्ञानधारा; राग होने पर भी ज्ञानधारा में राग ज्ञात होता है परन्तु राग मेरा है - ऐसा ज्ञानधारा में ज्ञात नहीं होता। आहा..हा..! राग का विकल्प है और स्वभाव के बीच भेद है, उस भेद के भाव का ज्ञानलक्षण द्वारा और राग को बन्ध लक्षण द्वारा भिन्न करके, स्वरूप की दृष्टि अन्दर हुई। आहा..! **ज्ञातृत्वधारा द्वारा स्वभाव को भिन्न जान ले।** आहा..हा..! स्वभाव को भिन्न जान ले। विभावपना भले प्रगट हो परन्तु ज्ञाताधारा स्वयं को राग से भिन्न जान लेती है। आहा..! यह ज्ञानधारा, ध्रुवधारा.. आहा..हा..! ऐसी बात है।

भिन्न ही है... दोनों भिन्न ही हैं **परन्तु तुझे नहीं भासता।** आहा..हा..! राग का विकल्प और स्वभाव भगवान दोनों भिन्न ही हैं। तुझे पर्यायदृष्टि होने से भिन्न भासित नहीं होते। राग की रुचि से स्वभाव का भाव भिन्न है - ऐसा तुझे अन्तर में भासित नहीं होता। आहा..हा..! है? **विभाव और ज्ञायक हैं तो भिन्न-भिन्न ही;...** विकल्प जो राग है और भगवानस्वभाव जो त्रिकाल है, वे हैं तो भिन्न-भिन्न। आहा..हा..! है?

जैसे पाषाण और सोना... सोने का पत्थर होता है न? सोने के रजकणसहि। यह तो खबर है। तुम नीलमणि का करते हो न? नील का पत्थर। पत्थर और सोना खान में एक साथ दिखता है परन्तु सोना और पत्थर दोनों वस्तु ही भिन्न है। आहा..हा..! समझ में आया? **जैसे पाषाण और सोना एकमेक दिखने पर भी भिन्न ही हैं, तदनुसार।** विकल्प जो रागादि, गुण-गुणी के भेद का भी जो विकल्प है, उससे भगवान भिन्न ही है। भगवान अर्थात् आत्मा। आत्मा को भगवान कहकर ही बुलाया है - कर्ता-कर्म अधिकार की ७२ गाथा। भगवान आत्मा। आहा..हा..! आचार्य ने ऐसा कहा। पुण्य-पाप के भाव अशुचि हैं, प्रभु! चाहे तो भगवान की भक्ति और तीर्थंकरगोत्र बाँधने का भाव भी है तो अशुचि है। शरीर अशुचि की बात नहीं, वह तो हड्डियाँ, पिंजर, माँस है परन्तु पुण्य के परिणाम को भी प्रभु ने अशुचि कहा है। ७२ गाथा। भगवान आत्मा तो निर्मलानन्द ज्ञायक अन्दर है। आहा..हा..! अशुचि से भगवान शुचि भिन्न है। आहा..हा..! अरे!

मुमुक्षु : कितना भिन्न है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अत्यन्त भिन्न है। सोलह-सोलह आने भिन्न है। सूक्ष्म बात है। राग से तो भिन्न है परन्तु राग से भिन्न जो सम्यग्दर्शन हुआ, उस पर्याय से भी द्रव्य तो भिन्न है। पर्याय में द्रव्य नहीं आता। द्रव्य का जितना सामर्थ्य है, उतना श्रद्धा में आता है। परन्तु वह द्रव्य नहीं आता। द्रव्य, पर्याय में नहीं आता। पर्याय, पर्याय में है; द्रव्य, द्रव्य में है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यहाँ यह बात कहते हैं। यहाँ तो मात्र विभाव से भिन्न बतलाना है, परन्तु विभाव से भिन्नता हुई—ऐसी जो सम्यग्दर्शन की पर्याय हुई, उस पर्याय से भी द्रव्य तो भिन्न है। पर्याय में-एक समय की दशा में ध्रुव आया नहीं। ध्रुव का जितना सामर्थ्य है, उतना श्रद्धा में आया है परन्तु वह चीज़ आयी नहीं, चीज़ भिन्न रहती है। आहा..हा..! ऐसी बात अब। कभी सुनी नहीं होगी।

(समयसार) ४९ गाथा में कहा, नहीं? ४९ गाथा में। व्यक्त-अव्यक्त। व्यक्त अर्थात् पर्याय; अव्यक्त अर्थात् द्रव्य, दो का एक साथ ज्ञान होने पर भी.. आहा..हा..! व्यक्त, अव्यक्त को स्पर्श नहीं करता। अव्यक्त अर्थात् द्रव्य, वह व्यक्त को स्पर्श नहीं करता - पर्याय को स्पर्श नहीं करता। पाँचवाँ बोल है। बताया था। अव्यक्त के छह बोल हैं, उनमें

पाँचवाँ बोल यह है। व्यक्त, अव्यक्त का एक साथ ज्ञान होने पर भी व्यक्त को अव्यक्त स्पर्श नहीं करता। आहा..हा..! राग तो भिन्न ज्ञेय ही है। आहा..हा..! अब यहाँ पुकार यह चलती है कि दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, अपवास करो, राग मन्द करो, मन्द राग से अन्दर निश्चय प्राप्त होगा – यह दृष्टि विपरीत है। बापू! क्या हो? भाई! तुझे इसमें नुकसान है, बापू! तू उत्साह करके जगत को बतलाता है कि हम जानते हैं कि आहा..हा..! व्यवहार और निश्चय दोनों हम मानते हैं। व्यवहार से भी लाभ है, निश्चय से भी लाभ है, यह अनेकान्त है और दुनिया भी प्रसन्न-प्रसन्न हो जाती है। आहा..!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! यह अनेकान्त नहीं, एकान्त है, सुन तो सही! अनेकान्त तो यह है कि स्वभाव के आश्रय से लाभ होता है और राग से लाभ नहीं होता। आहा..हा..! क्या हो? सप्तभंगी चलती है न? अस्ति-नास्ति। तो स्व से अस्ति है और पर से नास्ति है। वहाँ भी द्रव्य से अस्ति है और राग से नास्ति है। आहा..हा..! राग से नास्ति भिन्न है अस्ति, राग से नास्ति भिन्न से अस्ति। आहा..! अरे प्रभु! तेरी लीला ऐसी है, भाई! आहा..हा..!

अनुभवप्रकाश में तो लिया है कि तेरी शुद्धता की तो क्या बात करें परन्तु तेरी अशुद्धता भी बड़ी। ऐसा दीपचन्दजी ने अनुभवप्रकाश में लिया है। क्योंकि अनन्त बार समवसरण में गया, सुना परन्तु अशुद्धता छोड़ी नहीं। राग से लाभ होगा, राग से लाभ होगा, भगवान की भक्ति से लाभ होगा... भगवान सुनाते हैं तो मुझे लाभ होगा – ऐसी तेरी दृष्टि पर के ऊपर रही है। गोदिका जी! यह सूक्ष्म बात है। वहाँ नीलमणि में और अमुक में नहीं है। क्या कहलाता है वह? नीलम... नीलम। बताया था। एक बार नीलम बताने के लिये लाये थे। उसमें से फिर पैसा इकट्ठा करे। एक मुसलमान नौकर है। महीने के तीन हजार देते हैं। घिसने के महीने के तीन हजार। वह मुसलमान आया था। सेठ के पास से तीन हजार महीने मिलते हैं। अन्यत्र जाऊँ तो अधिक मिले परन्तु सेठ के पास बहुत वर्षों से हूँ। मुसलमान था। एक महीने के तीन हजार देते हैं। तीन हजार, मात्र घिसने के। धूल (घिसने के) आहा..हा..!

मुमुक्षु : यह तो .... व्यापारी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह धूल है, अधर्म का व्यापारी है। गोदिकाजी! ऐसी बात है, प्रभु! क्या कहें? अरे रे! देह की स्थिति पूरी होगी, प्रभु! तू कहाँ जायेगा? राग और पुण्य

मेरा है – ऐसा मानेगा तो तू भविष्य काल में मिथ्यात्व में रहेगा। आहा..हा..! और मिथ्यात्व के कारण तुझे चारगति में भटकना पड़ेगा। आहा! यह अवसर तुझे मिला है, प्रभु! आहा..!

गोम्मटसार में मनुष्य का अर्थ किया है – मनुष्यते-जायते इति मनुष्यः। जो जाननेवाले को जाने, वह मनुष्य है। आहा..! राग को भिन्न करके प्रभु की / आत्मा की पहिचान करे। यहाँ तो प्रभु आत्मा भगवान है। अशुचि कहा न? रागादि अशुचि है, प्रभु शुचि है। राग है.. आहा..हा..! जड़ है। राग, दया, दान, व्रतादि के परिणाम जड़ हैं क्योंकि चैतन्य के प्रकाश का अंश उनमें नहीं है, वह राग स्वयं को नहीं जानता, राग समीप में प्रभु आत्मा है, उसे नहीं जानता; राग, ज्ञान द्वारा ज्ञात होता है; इसलिए राग को जड़ कहने में आया है। आहा..हा..! और भगवान आत्मा विज्ञानघन है। आहा..हा..! तीन बोल लिये हैं। तीसरा बोल—शुभ-अशुभभाव दुःखरूप है। आहा..हा..! चाहे तो तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव दुःखरूप है। आहा..हा..! पुरुषार्थसिद्ध्युपाय में लिया है, पण्डितजी! अपराध लिया है। अपराध है। आहा..हा..! वहाँ प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। शुभभाव तो समकित को आता है। मिथ्यादृष्टि को ऐसा तीर्थंकरगोत्र का शुभभाव होता ही नहीं, आहा..हा..! तथापि ऐसा होने पर भी, सम्यग्दृष्टि को शुभभाव आता है परन्तु दुःखरूप लगता है। आहा..हा..! समझ में आया? ऐसी बात है।

यहाँ यह कहते हैं, देखो! **पाषाण और सोना एकमेक दिखने पर भी भिन्न ही हैं...** ऐसे भगवान आत्मा आत्मतत्त्व है न? राग वह तो पुण्यतत्त्व और पापतत्त्व है। आत्मतत्त्व, राग—पुण्य-पापतत्त्व से भिन्न तत्त्व है। वरना नौ तत्त्व नहीं रहेंगे। आहा..हा..! भगवान आत्मा ज्ञायकतत्त्व, पुण्य-पाप तत्त्व से भिन्न हैं। ज्ञायकतत्त्व भिन्न है और पुण्य-पापतत्त्व भिन्न है। आहा..हा..!

प्रश्न :—सोना तो चमकता है, इसलिए पत्थर और सोना—दोनों भिन्न ज्ञात होते हैं,... सोने की चमक आती है, चमक। पत्थर में चमक नहीं है; इसलिए दोनों भिन्न ज्ञात होते हैं। **परन्तु यह कैसे भिन्न ज्ञात हों?** परन्तु भगवान आत्मा ज्ञान की चमक कहाँ है अन्दर? राग नहीं चमकता और ज्ञान चमके – ऐसा किस प्रकार भिन्न ज्ञात हुआ? सुनो तो सही।

उत्तर :—यह ज्ञान भी चमकता ही है न? चमकता है वह ज्ञान ही है। राग को

जाने, अपने को जाने – ऐसी चमकती चीज़ तो चैतन्यमात्र चमकती चीज़ है। आहा..हा..! जैसे सोना चमकती चीज़ है तो लोहे से, पत्थर से भिन्न पड़ जाता है। तो कहते हैं इसमें कहाँ चमकता है? सुन तो सही! आहा..हा..! यह चैतन्य चमकती चीज़ है। जो अपने में रहकर अपने को जाने और अपने में रहकर राग आया, उसे भिन्न जाने – ऐसी चैतन्य चमकती चीज़ अन्दर है। आहा..! समझ में आया?

विभावभाव नहीं चमकते... जैसे पत्थर नहीं चमकता, सोना चमकता है। उसी प्रकार भगवान चैतन्य चमकता है। स्वयं को जाने—ऐसा चैतन्य चमत्कार है और चमत्कार का अर्थ ऐसा है कि एक समय में लोकालोक को स्पर्श किये बिना जाने—ऐसा चैतन्य चमत्कार तू है। आहा..हा..! लोकालोक को जानता है – ऐसा कहना, वह तो असद्भूत व्यवहारनय है क्योंकि जिसमें तन्मय न हो, उसे जानता है—ऐसा कहना वह असद्भूत व्यवहारनय है परन्तु अपनी पर्याय में लोकालोक सम्बन्धी ज्ञान जो अपना ज्ञान है, वह अपनी पर्याय को –ज्ञान को जानता है। आहा..हा..! ऐसी चैतन्य चमकती चीज़, प्रभु है न! आहा..हा..! तेरी चमक...

आँख इतनी है और अन्दर ज्ञान की जो पर्याय है, क्षेत्र तो अल्प है। यात्रा में (पर्वत के ऊपर) चढ़ते हैं, तब पच्चीस-पच्चीस गाँव तक दिखते हैं तो इतने क्षेत्र में हैं तो इतना ही क्षेत्र – देखे ऐसा नहीं। वह तो पच्चीस-पचास योजन का क्षेत्र ज्ञात होता है। गिरनार चढ़ते समय हमने तो देखा है न! यह चैतन्य चमत्कार है। जिसे स्पर्श किये बिना पच्चीस-पच्चीस योजन का, पच्चीस-पच्चीस गाँव का ज्ञान अपने में रहकर अपने को भी जानता है और पर को भी जानता है। आहा..हा..! समझ में आया?

विभावभाव नहीं चमकते... विकल्प जो राग है, वह नहीं चमकता, उसमें ज्ञान का अंश कहाँ है? आहा..हा..! व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प तो ज्ञानी को भी आता है परन्तु वह नहीं चमकता। उसमें ज्ञान नहीं, वह अन्धा है। आहा..हा..! अरे! ऐसी बातें अब। सोने का और पत्थर का दृष्टान्त दिया है। **सर्वत्र ज्ञान ही चमकता है—ज्ञात होता है।** उसे ही ख्याल आता है। ऐसा कहते हैं न? मैं मुझे नहीं देखता। प्रभु! यह देखता नहीं-ऐसा किस सत्ता में तूने निर्णय किया? मैं नहीं देखता, मैं नहीं देखता, मैं मुझे नहीं देखता-यह किस सत्ता में निर्णय किया? राग की सत्ता में? या ज्ञान की सत्ता में? समझ में आया? यह देखता नहीं, वही देखता है। ऐसी वस्तु है। सूक्ष्म बातें बहुत, भाई! अभी तो व्यवहार के पक्ष के रसिकों ने

ऐसे सब दम्भी विपरीत आगे हो गये कि सत्य बात को मिथ्या बात स्थापित कर स्वयं की बात सत्य है - ऐसा सिद्ध करते हैं। है, यह कहीं नवीन वस्तु नहीं है। अनादि से चलता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो पहले कहा नहीं ? २२-२३ घण्टे तो यह कमाना और भोग और स्त्री, पुत्र, परिवार को सम्हालना। पाप, पाप और पाप। ऐई!

मुमुक्षु : कर्तव्य निभाता है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसका कर्तव्य था ? पाप का कर्तव्य है इसका ? पर की रक्षा कर सकता है आत्मा ? पुरुषार्थसिद्धिय्युपाय शास्त्र तो ऐसा कहता है कि पर की दया तो कर नहीं सकता क्योंकि परपदार्थ उसकी पर्याय से पर रहता है। अपनी पर्यायसहित- कार्यसहित रहता है तो उस कार्य को - पर कार्य को किस प्रकार करे ? परन्तु पर की दया पालने का भाव आया.. पुरुषार्थसिद्धिय्युपाय कहता है कि तेरी हिंसा है। आहा..हा..! वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा, उस राग में अपनी वीतरागता घाती जाती है - ऐसा मार्ग है, बापू! दुनिया के साथ कहीं मेल खाये, ऐसा नहीं है।

हस्तिनापुर के लड़के हैं या नहीं ? आये हैं न ? हस्तिनापुर के नहीं आये ? उन्हें प्रेम है। सब लड़के हैं न ? हैं, हैं। पाँच-छह लड़के हैं। यहाँ आये थे। अभी चार बजे वहाँ आना। सब लड़कों को लेकर आना। अभी व्याख्यान पूरा होने के बाद आना। तुम भी आना। कहाँ गये ? अभयकुमार। अभयकुमार कहते थे, मैं चार बजे आऊँगा। आहा..हा..! लोग रख जाते हैं, हम तो कुछ खाते नहीं। लोग रख जाते हैं तो हम लड़कों को बुलाकर दे देते हैं। पेड़ा रख जाते हैं, केला रख जाते हैं, क्या कहलाता है ? सेब, सौ-सौ रख जाते हैं। लड़कों को दे देते हैं, हम तो कुछ (खाते नहीं)। हम तो चार पतली रोटी जीमते हैं। आहा..हा..! समझ में आया ? लोग बहुत प्रेम से रख जाते हैं। अन्दर बहुत इकट्ठा हो जाता है। अपने है न ? बॉर्डिंग। उसके लड़कों को दे देते हैं।

मुमुक्षु : जयपुर के महाविद्यालय के विद्यार्थियों को मिला या नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ है तो उन्हें भी (मिलेगा)। यहाँ जैसे बॉर्डिंग है, वैसे हमारे वह है। अभी कोई कहता है, एक ब्रह्मचर्य आश्रम बनाओ परन्तु मैंने तो कभी कोई आश्रम बनाओ या मकान बनाओ - (ऐसा) कहा ही नहीं। फिर कहे, रामजीभाई को कहो, वह

क्या करे ? ऐसा करने जाये तो पचास, सौ-दो सौ लोग इकट्ठे हों, चारों ओर से (आते हैं) । स्थानकवासी आते हैं । हम अभी वहाँ थे न ? हैदराबाद, हैदराबाद न ? हैदराबाद तो थे फिर कुरावड़ में, कुरावड़ में तुलसी की तेरापंथी आर्यिका थी । उदयपुर में, वह हमारे पास आयी । महाराज ! मैं आपका वाँचन करती हूँ । अब मुझे यह छोड़ने का भाव है तो मुझे सोनगढ़ बुलाना । कहा—हम किसी को बुलाते नहीं । आर्यिका है । दूसरी राजकोट में है । एक हैदराबाद में बाहर थी । दो-तीन मील दूर थी । हमारी बाह्य में प्रसिद्धि सुनकर यहाँ का वाँचन किया है । महाराज ! मुझे आपके दर्शन करना है । परन्तु दो-तीन मील दूर नहीं जाते । हम आयें तो हमें रोटियाँ नहीं मिले और यदि तुम्हारे पास दर्शन करने आयें तो हमें भ्रष्ट मानकर सम्प्रदाय के लोग रोटियाँ नहीं देंगे । ऐसे तो बहुत आते हैं । स्थानकवासी श्वेताम्बर के साधु के पत्र आते हैं कि हमें वहाँ रखो । यहाँ तो यह उपाधि कौन करे ? यह शिक्षण शिविर तो रामजीभाई ने और इन लोगों ने किया है इतना, हमने किसी को कहा नहीं ।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ से निकाले रामजीभाई ? रामजीभाई के पास पैसा पड़ा है ? और यह उपाधि करे कौन ? यह तो बात सूक्ष्म है, बापू ! यह तो व्याख्यान करना, वह भी विकल्प है, उपाधि है । आहा.. !

ज्ञान की चमक चारों ओर फैल रही है । आहा..हा.. ! ज्ञान, ज्ञान को जाने; ज्ञान राग को जाने; ज्ञान शरीर को जाने; ज्ञान लोकालोक को जाने; ज्ञान छह द्रव्य को जाने । है ? **ज्ञान की चमक बिना सोने की चमक काहे में ज्ञात होगी ?** सोना है, वह चमक कौन जानता है ? सोना जानता है ? उसकी चमक तो ज्ञान जानता है । आहा..हा.. ! इसी प्रकार भगवान प्रज्ञाब्रह्मस्वरूप प्रभु...

'स्वपर प्रकाशक शक्ति हमारी, तातैं वचनभेद भ्रम भारी
ज्ञेय शक्ति द्विविधा प्रकाशी, स्वरूपा पररूपा भासी ॥'

पर को जाननेवाला मैं हूँ, इस पर को करनेवाला और पर है तो मैं पर को प्रकाशित करता हूँ - ऐसा भी नहीं है । मेरी स्व-परप्रकाशक शक्ति ही ऐसी है । आहा..हा.. ! समझ में आया ? वस्तु ऐसी सूक्ष्म है, भाई ! लोग तो फिर ऐसा बोलते हैं-सोनगढ़ का एकान्त है । यह हथियार बहुत सरल कर डाला है ।...

मुमुक्षु : हलचल नहीं, बिल्कुल एकान्त है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एकान्त है तो अनेकान्त नहीं – ऐसा कहते हैं। यह तो अब इतने पण्डित निकले। ज्ञानचन्दजी, हुकमचन्दजी, हमारे बाबूभाई, जुगलजी, अब निकले तो बात आ सकती है, नहीं तो सब गड़बड़ करते थे। जैनदर्शन (पत्र) में बहुत आता है, वह पत्र है न? उसमें विरोध आता है। बहुत विरोध आता है। क्या करे? उसे समझ में आया वह करे।

जामें जितनी बुद्धि है उतनो दिये बताय,
वाँको बुरा न मानिये, और कहाँ से लाय?

बुरा नहीं मानिये, वह प्रभु है, भगवान है। किसी के प्रति विरोध नहीं, चाहे जितना कहो। आहा..हा..! वह भी आत्मा है, भगवान है, साधर्मी है। पर्याय में एक समय की भूल है, भगवान तो त्रिकाली भूलरहित है। आहा..! किसी के प्रति विरोध नहीं, द्वेष नहीं। चाहे जिस प्रकार से कहो, जानना। आहा..हा..!

जैसे सच्चे मोती और खोटे मोती इकट्ठे हों तो मोती का पारखी उसमें से सच्चे मोतियों को अलग कर लेता है,... लो! मोती.. मोती। सच्चे मोती आते हैं न? **उसी प्रकार आत्मा को 'प्रज्ञा से ग्रहण करना'।** आहा..हा..! सच्चा मोती वह है, रागादि खोटे मोती हैं। सूक्ष्म बात है, भाई! **जो जाननेवाला है, सो मैं,...** जिसकी सत्ता में जानना होता है, वह मैं हूँ। जानने का भाव जिसमें नहीं, वह जड़, राग पर है। आहा..हा..! **जो देखनेवाला है, सो मैं...** यह श्लोक का अर्थ है। समयसार का मूल श्लोक (का अर्थ है)। **इस प्रकार उपयोग सूक्ष्म करके आत्मा को और विभाव को पृथक् किया जा सकता है।** भिन्न किया जा सकता है। आहा..हा..!

यह पृथक् करने का कार्य प्रज्ञा से ही होता है। ज्ञान की दशा से ही वे भिन्न पड़ते हैं। कोई राग की क्रिया से भिन्न नहीं पड़ते। क्योंकि जिसे भिन्न करना है, उसे साथ में रखकर भिन्न पड़ेगा? व्यवहार राग है, उसे साथ रखकर अन्दर में भिन्न हो सकता है? आहा..हा..! व्यवहार के विकल्प से ज्ञान की पर्याय से भिन्न करना है, यह सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है।

विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण-७, शुक्रवार, दिनाङ्क २५-०८-१९७८
वचनामृत-१९७, १९८ प्रवचन-७५

वचनामृत, १९७ चलता है। अन्तिम पैराग्राफ है न? **स्वभाव की महिमा से...** क्या कहते हैं? देह की क्रिया होती है, बाह्य की क्रिया होती है, वह तो जड़ से-पर से होती है और अपने में कोई रागभाव आया—दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का, वह भी राग है। उसका रस कब छूटता है? आहा..! अन्तरस्वभाव आनन्दकन्द प्रभु की महिमा आती है तो राग का रस छूट जाता है। आहा..हा..! ऐसी बात है। बाहर के लाखों-करोड़ों मन्दिर बनावे, अरबों रुपये खर्च करे, वह कोई धर्म नहीं है। आहा..हा..! उसमें कदाचित् राग का भाव मन्द होता है तो वह पुण्य है।

मुमुक्षु : बन्ध होता है या नहीं होता?

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य है। पुण्य है परन्तु पुण्य का रस है तो मिथ्यात्व है। ऐसी बात है। आहा..हा..! भगवान आत्मा का स्वभाव... कठिन है, लोगों को इससे कठिन लगता है न? व्यवहार करो, व्यवहार करो, व्यवहार से निश्चय होता है। समयसार में भी लोगों ने ऐसा लिखा है। व्यवहार से समयसार में बात चलती है, फिर अन्त में निश्चय है। (ऐसा वे कहते हैं)। यहाँ तो पहले से निश्चय हुए बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहा..हा..!

राग चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा मन्दिर बनावे, करोड़ों रुपये खर्च करना-यह क्रिया तो जड़ की, पर की है। उसमें कदाचित् राग की मन्दता का भाव हुआ हो तो उसमें जबतक रस है कि यह मेरी चीज़ है, मैं करता हूँ और मुझे इससे लाभ है, तब तक तो मिथ्यादृष्टि है। आहा..हा..! कठिन बात। लोगों को बहुत कठिन लगता है।

मुमुक्षु : एक तो पैसा जाये और फिर मिथ्यात्व हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसा कहाँ था इसका? पैसा जड़ का है। जड़, जड़ के कारण

से आया, जड़ के कारण से रहा और जड़ के कारण से गया। गोदिकाजी! ये पैसे मैंने खर्च किये और मेरे हैं, यह मान्यता ही मिथ्यादृष्टि की है। आहा..हा..! यह लक्ष्मी तो अजीव है, धूल है, पुद्गल की पर्याय है। यह मेरी है - ऐसा मानना... आहा..हा..! वह मिथ्यादृष्टि है, बापू! भाई! मार्ग ऐसा है। अभी तो ऐसा सब कर डाला है, इसलिए यह बात इसे एकान्त लगती है। खबर है सब, दुनिया क्या कहती है, यह खबर नहीं? समझ में आया?

यहाँ कहते हैं **स्वभाव की महिमा से परपदार्थों के प्रति रसबुद्धि—सुखबुद्धि टूट जाती है।** आहा..हा..! अपना आनन्दकन्द प्रभु, ज्ञानस्वरूपी ज्ञातादृष्टा ऐसा... सबेरे कहा था न? उसकी शक्ति (गुण) इतनी अनन्त है कि किसी गुण का अन्त आ जाये, ऐसी वस्तु नहीं। ओहो..हो..! अनन्त गुण इतने हैं कि अनन्त गुण में यह अन्तिम है - ऐसा वस्तु के स्वरूप में नहीं है। आहा..हा..! ऐसे अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु है। उसकी महिमा से परपदार्थ के प्रति राग और परपदार्थ के प्रति रसबुद्धि-सुखबुद्धि टूट जाती है, तब सम्यग्दर्शन कहने में आता है। आहा..हा..! समझ में आया? बहुत कठिन काम है।

मुमुक्षु : स्वभाव तो ठीक है परन्तु महिमा क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : महिमा, स्वरूप अन्दर चिदानन्द ज्ञान-आनन्दस्वरूप प्रभु है। राग के विकल्प से वह भिन्न है। आहा..! और अकेले चैतन्य चमत्कार से परिपूर्ण भरा हुआ है और अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त की कोई संख्या नहीं - ऐसे गुण से भरपूर भगवान आत्मा है। आहा..हा..! उस ओर झुकने से, उसकी महिमा आती है तो उस ओर ढल जाता है। आहा..! तब तो धर्मी की दृष्टि में यह दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम आये, उस राग का रस छूट जाता है। एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं। आहा..हा..! राग शुभ है, बाहर की क्रिया तो अपने से होती नहीं। यह मन्दिर बनाना और भगवान को पधराना, यह क्रिया तो अपने से होती है - ऐसा तीन काल में नहीं। आहा..हा..! और उसमें कदाचित् राग मन्द किया हो तो (पुण्य है)। स्वयं करके मान खाता है कि हमने इतना किया, हमारी प्रशंसा करे तो वह तो पाप है। परन्तु कदाचित् राग की मन्दता का भाव आया परन्तु उसका भी जिसे रस है, उसे आत्मा के स्वभाव की महिमा का रस नहीं है और जिसे आत्मा चिदानन्द प्रभु, अनाकुल आनन्द का धाम, स्वयं ज्योति सुखधाम.. आहा..हा..! स्वयं ज्योति, चैतन्य ज्योति, आनन्द ज्योति, सुखधाम, अतीन्द्रिय आनन्द का स्थान - सुखधाम अतीन्द्रिय आनन्द का अमृत का स्थान। आहा..हा..!

उसकी महिमा आये बिना राग का रस नहीं छूटता और राग का रस है, तब तक तो मिथ्यादृष्टि है। चाहे तो करोड़ों मन्दिर बनाओ या अरबों रुपये खर्च करो। आहा..हा..! वह तो पर की क्रिया है, प्रभु! तुझे समझना कठिन पड़ेगा। आहा..हा..!

भगवान आत्मा तो ज्ञातादृष्टा आनन्दस्वरूप है। उसमें पर की क्रिया तो अभाव है ही, परन्तु यह राग मन्द हुआ, उसके कर्तापने का भी अभाव है। ऐसी बात! समझ में आया? इस राग का रस – जिसे शुभराग के भाव का प्रेम है, उसे भगवान पूर्णानन्द के नाथ का अप्रेम अर्थात् द्वेष है। सूक्ष्म बात, भाई! कठिन पड़े ऐसी है। क्या हो? आहा..हा..! अनन्त बार मुनिव्रत धारण किया, पंच महाव्रत लिये तो भी वह सब शुभराग था। अभी तो ऐसा शुभराग है ही नहीं। जब नौवें ग्रैवेयक गया, 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायौ' राग के रस से पर में रहा। 'आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' राग का रस छूटकर प्रभु के अद्भुत आनन्दरस की महिमा आयी नहीं और आनन्दरस में गया नहीं। आहा..हा..! समझ में आया?

'निर्विकल्प रस में रोग न शोक लोकवाद सब मेट्या' आहा..हा..! भगवान आत्मा का, राग के रस में प्रेम छोड़कर... आहा..हा..! अन्तर चैतन्य पूर्णानन्द प्रभु का प्रेम और रस आया तो अन्तर में एकाग्रता हुई। उसकी महिमा के समक्ष राग का प्रेम और रस और अनुभव छूट जाता है। राग में सुखबुद्धि और रसबुद्धि थी, वह छूट जाती है। आहा..हा..! भाषा तो बहुत सरल है परन्तु भाई! भाव बहुत अलौकिक है। आहा..हा..!

चैतन्य के अनन्त गुण जो निर्विकल्प शुद्ध चैतन्यघन हैं, उस ओर के झुकाव में जो महिमा आयी, उसे राग का रस और राग की सुखबुद्धि छूट जाती है। चाहे तो भक्ति का भाव हो और चाहे तो तीर्थंकरगोत्र का भाव हो, परन्तु उस भाव से रसबुद्धि, सुखबुद्धि, हितबुद्धि छूट जाती है। आहा..हा..! ऐसी बात कठिन पड़ती है, भाई! मार्ग तो यह है। आहा..! है?

स्वभाव में ही रस आता है,.. आहा..हा..! प्रभु जहाँ राग से भिन्न पड़कर अपने आनन्द का रस आया, अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन आया, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन में प्रतीति उसका लक्षण है परन्तु उसके साथ अनन्त गुण के आनन्द आदि का वेदन आता है। भाई! सम्यग्दर्शन कोई अलौकिक चीज़ है। आहा..हा..! कभी इसने

यथार्थरूप से सुनी ही नहीं, अन्तर परिचय किया नहीं, अन्तर अनुभव में भगवान आत्मा को लिया नहीं। इसे बाहर के क्रियाकाण्ड के राग के रस में जीवन अनादि से खो गया है। यह कहते हैं।

मुमुक्षु : हम जैनकुल में जन्में हैं तो सम्यग्दर्शन तो हमें है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जैन में क्या, जैन है कहाँ? जैन किसे कहते हैं? 'घट घट अन्तर जिन बसे, घट घट अन्तर जैन।' जिनस्वरूपी वीतराग मूर्ति अनाकुल आनन्द का कन्द प्रभु तो घट में बसता ही है आहा..हा..! और जैन घट में बसता है अर्थात् उसका अनुभव करके राग को और एकत्वबुद्धि को जीत लिया है, उसे जैन कहा जाता है। बाकी वाड़ा के जैन, वे जैनाभास हैं, वे जैन नहीं। ऐसा है, बापू! भगवान का यह सन्देश है। क्या हो? समझ में आया? आहा..हा..!

मुमुक्षु : भगवान ने ऐसा कहा है – ऐसा हमें कैसे मानना?

पूज्य गुरुदेवश्री : न्याय से तुलना करे। न्याय से तुलना करे या नहीं? कि राग का रस है तो आत्मा का रस नहीं – ऐसे न्याय से ख्याल में आता है। व्यवहार से निश्चय होता है – ऐसा माननेवाले को राग का रस है। पण्डितजी! आहा..हा..! सूक्ष्म बात है, नाथ, प्रभु! तेरी प्रभुता अन्दर इतनी है कि उसके समक्ष पर्याय भी पामर है तो राग की तो क्या बात करना? आहा..हा..! ऐसा भगवान चैतन्य-चमत्कार रत्न हीरा है। 'परख्या माणिक मोती, परख्या हेम कपूर, पर एक न परख्यो आत्मा' क्या चीज़ है? इसके बिना सब धूल और धाणी है। आहा..हा..!

स्वभाव में ही रस आता है, दूसरा सब नीरस लगता है। धर्मी जैन को, जो जैन हुआ, राग की एकता तोड़कर जैन हुआ.. आहा..हा..! उसे स्वभाव में ही रस लगता है। अतीन्द्रिय आनन्द में ही उसे रस दिखता है। आहा..हा.! भले चक्रवर्ती के राज्य में दिखाई दे परन्तु उसे राग और उस पद का रस नहीं है। आहा..हा..! ज्ञातारूप से जाननेयोग्य हो गया। राग आया और छह खण्ड तथा छियानवे हजार स्त्रियाँ, सब ज्ञान के परज्ञेयरूप से जानते हैं। आहा..हा..! समझ में आया?

भरतेश वैभव में तो ऐसा लिया है, भरतेश वैभव है न? पुस्तक है न? सब देखा है। व्याख्यान हो गये हैं। आहा..हा..! जिसे आत्मा का निर्विकल्परस प्रगट हुआ, सम्यग्दर्शन

प्रगट हुआ, उसे कोई भोग की वासना आती है परन्तु काले नाग की तरह उसे दुःख लगता है। राग की मिठास छूट गयी है। समझ में आया ? वहाँ तो थोड़ा ऐसा कहा है कि कदाचित् राग आया तो दुःखरूप लगता है। जैसे काला नाग देखे और लगे ऐसा राग दिखता है। तथापि वह वासना हुई, दूसरे क्षण नीचे उतरकर ध्यान में बैठे तो निर्विकल्पदशा हो जाती है। आहा..हा..! क्योंकि अन्दर दृष्टि आत्मा के रस पर है। राग आया तो जरा जुड़ गये, परन्तु रस बिना जुड़े हैं। समझ में आया ? आहा..हा..!

माता की... क्या कहलाता है वह, गाँधी गये थे वह ? 'नवाखण्ड' उसमें ऐसा हुआ था, मुसलमान का जोर बहुत हुआ। माता को नग्न करके उसके २५-३० वर्ष के युवा पुत्र को, दोनों को नग्न करके ऐसे जोड़ते थे। अरे! भगवान! अन्दर में ऐसा होता, अर..र! ये क्या करते हो ? दोनों को नग्न करके इन्द्री को ऐसे करे। अरे रे! प्रभु... प्रभु... प्रभु! जिसे रस उड़ गया है। माता, जननी है। अर र! यह क्या होता है ? जिसके प्रेम का रस छूट गया है। वह तो माता है। आहा..हा..! अरे रे! यह लोग क्या करते हैं ? बाद में गाँधी गये थे। बहुत जुल्म था तो गाँधी गये थे। गाँधी हमारे वहाँ राजकोट में (संवत्) १९९५ के साल में व्याख्यान में आये थे। गाँधी आये थे, कस्तूरबा तो बारह-तेरह बार आये हैं। उनके साथ महादेव देसाई, वह तीन बार व्याख्यान में आये हैं। गाँधी ३५ मिनिट बैठे थे। प्रवृत्ति बहुत है न! व्याख्यान में आये थे, परन्तु ३५ (मिनिट) बैठे। मुझे समय थोड़ा है। वह तो वहाँ गये थे बेचारे। उनकी लाइन लौकिक, परन्तु वह कोई धर्म नहीं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : आपने क्या सुनाया ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा था कि मैं पर को जिला सकता हूँ और पर को सुखी कर सकता हूँ, वह अज्ञानी-मिथ्यादृष्टि-मूढ़ है। हमें कहाँ किसी की पड़ी है कि इसे ठीक लगे वह कहना। बन्ध अधिकार में है। समयसार बन्ध अधिकार में है। मैं पर को बचा सकता हूँ, सुखी कर सकता हूँ, सुविधा दे सकता हूँ—ऐसी परक्रिया का जो कर्ता होता है, वह मूढ़ है, मिथ्यादृष्टि है, अज्ञानी है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : गाँधीजी ने बराबर याद रखा था।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उन्होंने याद रखा था। थोड़े वर्ष बाद किसी को कहा, एक महाराज मुझे मूढ़ कहते थे, वे कहाँ हैं ? मैंने तो सिद्धान्त कहा था, परन्तु उन्हें ऐसा कोई

सुनानेवाला नहीं मिला और मानो ओहो..हो.. ! हम जगत के काम कर दें, सुखी कर दें, देश का उद्धार कर दें। धूल में भी नहीं, सुन तो सही। यहाँ तो यह बात है, भगवान ! इन्द्र हो तो भी क्या ? हमारे क्या है ? दुःख लगे, उसे ऐसा लगे कि इतने-इतने काम करते हैं, लोग महिमा करते हैं कि ओहो..हो.. ! गाँधी महात्मा अर्थात् ? परन्तु अर्थात् क्या ? आहा..हा.. ! भाई ! पर को सुविधा देने का मान है, वह मिथ्यात्वभाव है। मैं पर दुःखी को भिक्षा, रोटी देता हूँ, रोटी देता हूँ, वह रोटी जड़ है। वह मैं देता हूँ - ऐसा मिथ्याभिमान, मिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु : पहले तो यह धर्म ही था, आपने कहा तो मिथ्यात्व हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यादृष्टि ही था। उसकी लौकिक की लाईन, परन्तु वह तो बारह अंग कोई दूसरी वस्तु है, भाई ! आहा..हा.. ! आये थे, उनकी स्त्री तो बार-बार व्याख्यान में आयी हैं। परन्तु यह वस्तु तो अभी चलती नहीं और गड़बड़ की। लोगों को कुछ पड़ी नहीं। बस ! ऐसे प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये, ऐसा बनावे। मन्दिर बनाया और लाख, दो-पाँच-दस लाख खर्च किये और गजरथ निकाले... धर्मी धर्म धुरन्धर है (ऐसा लोग मान लेते हैं)। धूल में भी नहीं है। सुन तो सही ! आहा..हा.. !

यहाँ कहते हैं **स्वभाव में ही रस आता है, दूसरा सब नीरस लगता है।** यह राग आता है, उसका रस नहीं आता। आहा..हा.. ! अतीन्द्रिय आनन्द का रस जिसे-सम्यग्दृष्टि को आया, उसे राग का रस नहीं आता। आहा..हा.. ! ऐसा वस्तुस्वरूप बहुत कठिन, बापू ! जन्म-मरणरहित होने की कला अलौकिक है। जन्म-मरण चौरासी के अवतार से रहित.. आहा..हा.. !

एक निगोद के भव में प्रभु ! एक श्वासोच्छवास में अठारह भव। आहा..हा.. ! स्वर्ग के देव को हजार वर्ष में आहार की अमृत डकार आती है और पन्द्रह दिन में श्वोच्छ्वास लेता है। आहा..हा.. ! ऐसे श्वास लेते पन्द्रह दिन हो जाते हैं। इस मनुष्य के श्वासोच्छ्वास यहाँ लेना। उसमें असंख्य समय जाते हैं। असंख्य समय में निगोद के भव, प्रभु ! अठारह भव करता है। अरे ! प्रभु ! वह दुःख कैसा होगा ? याद कहाँ है ? याद नहीं इसलिए नहीं था - ऐसा प्रभु ! कौन कहे ? जन्म होने के बाद छह महीने-बारह महीने में क्या था, माता ने किस प्रकार दूध पिलाया-धुलाया पता है ? पता नहीं इसलिए नहीं था - ऐसा कौन कहे ? समझ में आया ? इसी प्रकार अनन्त भव में ऐसे निगोद के, नरक के भव किये, प्रभु ! अनन्त दुःख। तेरे दुःख देखकर जगत के प्राणी को आँसू आवे - ऐसे दुःख थे। ऐसा भूल

गया, इसलिए नहीं था - ऐसा कौन कहे ? भाई ! आहा..हा..! समझ में आया ? और भगवान को भूल गया, इसलिए भगवान नहीं - ऐसा कौन कहे ? चैतन्य तीन लोक का नाथ परमात्मा चैतन्य चमत्कार को भूल गया। उसे भूल गया, इसलिए चैतन्य वस्तु ध्रुव आनन्दकन्द है, वह कहीं चली जाती है ? इसकी दृष्टि में से हट गयी। दृष्टि में से हट गयी, इसलिए वस्तु कहीं चली जाती है - ऐसा नहीं है। आहा..हा..!

यहाँ कहते हैं, सूक्ष्म बात, भाई ! लोगों को ऐसे बाहर में इतना रस आता है। इतनी सभा और लोग बीस-बीस हजार, पचास हजार, लाख-लाख लोग आवे और मानो धर्मोपदेश चलता हो... ओहो..हो..! अरे ! भाई ! वह उपदेश की वाणी भी अपनी नहीं, वह तो जड़ की पर्याय है, भाषावर्गणा की है; आत्मा की नहीं। आत्मा उपदेश नहीं दे सकता। अरे ! उपदेश देने का विकल्प आया, प्रभु ! वह भी राग है। वह भी समाधिशतक में तो ऐसा कहा कि वह उन्माद है। आहा..! मुनि ने कहा न स्वयं ? आहा..हा..! पूज्यपादस्वामी। उन्मत्तो।

मुमुक्षु : उन्मत्तो, उन्मत्तो-ऐसा कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उन्मत्तो, वह उन्माद है, प्रभु ! अर र ! ये लाखों-करोड़ों रुपये खर्च करे और राग की मन्दता हो, वह उन्माद है। पाटनीजी ! आहा..! जगत को कठिन (पड़े), बापू ! सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का विषय अलौकिक बात है। अरे ! दीपचन्दजी दो सौ वर्ष पहले हुए। भावदीपिका बनायी। अध्यात्मपंच संग्रह है, चिद्विलास है, अनुभवप्रकाश है। सब है, सब देखा है। यहाँ सब पुस्तकें हैं। उन्होंने लिखा कि अरे रे ! मैं तो किसी जीव को देखता हूँ तो आगम अनुसारी श्रद्धा मुझे दिखायी नहीं देती। सभी प्राणियों को देखता हूँ तो आगम अनुसारी श्रद्धा भी मुझे दिखायी नहीं देती और मैं कहता हूँ तो उसे सुनते नहीं। अरे ! तुम्हारी निश्चयाभास की बात है (ऐसा कह देते हैं)। भावदीपिका में है। तो मैं लिख जाता हूँ, मार्ग यह है। अभी तो लोग सुनते हैं। आहा..हा..! दस-दस हजार लोग, भोपाल में चालीस हजार लोग। अभी कुरावड़ में गये थे, तब दस-बारह हजार लोग थे। पंच कल्याणक था न ? सुनते हैं, वह यह क्या है ? पूरी दुनिया से अलग प्रकार की बात यह क्या कहते हैं ? परन्तु लोग सुनते हैं। यह है क्या ? और एकधारा ४३-४४ वर्ष से चलती है। यहाँ ४४ चातुर्मास हुए। ४४ वाँ चातुर्मास चलता है। यहाँ तो पहले से—४३-४४ वर्ष से यह बात चलती है। आहा..हा..!

प्रभु! परन्तु तू सुन तो सही। आहा..! तेरा चैतन्यकन्द आनन्दनाथ की जिसे दृष्टि (होकर) महिमा आयी, उसे राग का रस और महिमा छूट जाती है। आहा..हा..! इस शुभराग की जिसे महिमा है, उसे भगवान आत्मा की महिमा नहीं है और जिसे आनन्दकन्द की महिमा है, उसे राग की महिमा नहीं है। समझ में आया? आहा..!

आज एक जातिस्मरण का आया है, भाई! बोटाद में। इसके ऊपर से बहिन विदेह से आयी हैं, यह लोगों को झट नहीं जँचता। अभी बोटाद में एक लड़के की बात है। हमारा बोटाद सम्प्रदाय था न! वहाँ एक राणा राजपूत होगा। दवाखाने में काम करता है, उसका छह वर्ष पहले एक लड़का मर गया। छह वर्ष पहले। बड़ा लेख आया है। छह वर्ष पहले वह गेंद खेलता था। मोई... मोई.. लकड़ी की मोई होती है न? वह मोई पड़ गयी कुएँ में। कुएँ में ऐसे देखने गया वहाँ गिर गया, मर गया। छह वर्ष पहले और ग्यारह महीने बाद उसी माता के गर्भ में आया। बड़ा लेख आया है। उसी माता के गर्भ में आया है। पहले स्वप्न आया कि मैं यहाँ ही रहूँगा, अन्यत्र नहीं जाऊँगा। आज बड़ा लेख आया है। यह बात हो सकती है, इसमें कोई विशेषता नहीं है। आहा..हा..!

बहिन को तो असंख्य अरब वर्ष का जातिस्मरण है। असंख्य अरब वर्ष की बात, मानो कल की तरह देखते हों - ऐसा अन्दर देखती हैं परन्तु यह बात लोगों को बैठना (कठिन पड़ती है)। लोग कहते हैं कि यह तो विस्मय है और आश्चर्य कराने के लिये कहते हैं। अरे! प्रभु! सुन तो सही, नाथ! ऐसी वस्तु आ गयी है। आज बड़ा लेख आया है, मुझे किसी ने बताया था। चन्दुभाई लाये थे। छह वर्ष बाद बोला कि मैं तो पूर्व का 'हितेन्द्र सिंह' या ऐसा कोई है। यह मेरा फोटो है, मैं यह हूँ, यह मेरा मित्र है, मेरी छोटी बहिन को साथ लेकर पाठशाला जाता था। सब बात की, लोग तो दंग हो गये। बोटाद, यहाँ से पच्चीस मील है। वह तो हो, उसमें नयी क्या चीज़ है? मिथ्यादृष्टि को भी पूर्व का जातिस्मरण होता है, उसमें क्या है? मिथ्यादृष्टि को विभंग (ज्ञान) होता है। अभव्य को भी सात द्वीप और सात समुद्र देखे, उसमें क्या है? समझ में आया? वह तो अज्ञान की मति की धारणा का भेद है तो अज्ञानी को भी स्मरण हो जाता है, उसमें नयी वस्तु क्या है? आहा..हा.! लोगों को ऐसा लगता है कि ऐसा होगा? परन्तु यह प्रत्यक्ष है यहाँ, देख! समझ में आया? आहा..हा..!

हमारे पास तो रिपोर्ट लेने आये थे न? बहिन स्वयं है परन्तु बहिन के भाई की पुत्री

है न ? उसे जातिस्मरण हुआ, है मिथ्यात्व, परन्तु यहाँ बताया। जूनागढ़ के लुहार की मैं पुत्री हूँ 'गोकल' उसका नाम है। अभी गये थे अभी छोटी है। बहिन के भाई की पुत्री। यहाँ रिपोर्ट लेने आये थे। अमेरिका से आये थे। यहाँ आये, मेरे साथ बातचीत हुई, उन्होंने कहा मेरे पास ऐसे जातिस्मरणवाले केस एक हजार हैं। यूरोप में, अफ्रीका में, अमेरिका में। लड़की की रिपोर्ट (ली) लड़की तो १५-१६ वर्ष की हो गयी है।

जूनागढ़ गये थे। जूनागढ़ गये तो उसके माता, पिता, घर-मकान सब बताया, अभी है। उसके पिताजी यहाँ आते हैं। लुहार है, लुहार समझे ? लुहार होते हैं न ? लुहार को क्या कहते हैं ? लुहार जाति है, यहाँ आते हैं, वहाँ जाकर बराबर (बताया कि) मैं यहाँ मकान में रहती थी, यहाँ कोयले हैं, यहाँ यह है। मेरी बहिन को... क्या कहलाता है वह ? गर्वी कहते हैं न ? आसोज महीने में गर्वी होती है न ? गर्वी गर्वी होती है। तो मैं घूमती थी, थोड़ी उम्र की सब बात उसने की तो वे तो विस्मित हो गये। उसके पिता यहाँ बहुत बार आते हैं। यह कोई नयी वस्तु नहीं है। आहा..हा..! इस प्रकार की अपेक्षा आत्मजाति का ज्ञान होना, वह यथार्थ जातिस्मरण है। समझ में आया ? आहा..हा..! वह तो जाति-स्मृति भव का ज्ञान है, यह तो जाति-आत्मजाति है। आहा..हा..!

अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. गुण का पिण्ड, आनन्द का नाथ का अन्दर में से स्मरण आना... आहा..हा..! उसका अनुभव होना, वही प्रथम श्रेणी का धर्म है। इसके बिना सब बिना ईकाइ के शून्य हैं। शून्य.. शून्य। आहा..हा..! लाखों भक्ति करे और करोड़ों रुपये खर्च करे, सब हो..हा.. करे, वह सब राग और निरर्थक बात है। समझ में आया ?

यह यहाँ कहते हैं, **तभी अन्तर की सूक्ष्म सन्धि...** आहा..हा..! **तभी अन्तर की सूक्ष्म सन्धि ज्ञात होती है।** ज्ञात होती है। जब स्वभाव शुद्ध चैतन्य का, राग से पृथक् पड़कर सम्यग्दर्शन हुआ, तब ज्ञान के आनन्द का रस आया। आहा..! **तभी अन्तर की सूक्ष्म सन्धि ज्ञात होती है।** तब राग से भिन्न की सन्धि ज्ञात होती है। आहा..हा..! यह विकल्प चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का हो परन्तु उससे भिन्न सन्धि ज्ञात होती है। अन्तर स्वरूप की दृष्टि करने से राग की भिन्न सन्धि ज्ञात होती है, ख्याल में आती है। आहा..हा..! राग और भगवान कभी एक हुए नहीं। सम्यग्दर्शन में ऐसी सूक्ष्म अन्तः सन्धि का ज्ञान होता है। आहा..हा..! अरे! ऐसी बातें अब।

बाहर असंख्य तिर्यंच है न! समकिती है। स्वयंभूरमण समुद्र में असंख्य तिर्यंच

समकिती हैं। एक समकिती और असंख्य मिथ्यादृष्टि, इतनी तिर्यंच की संख्या वहाँ है। उसमें कोई समकिती तिर्यंच को जातिस्मरण है, किसी को अवधिज्ञान भी है। आहा..हा..! किसी ने पूर्व में सुना था, उस बात को अन्दर याद करके अनुभव किया, ऐसे हैं, असंख्य हैं। समझ में आया? आहा..हा..! भगवान आत्मा की बलिहारी है, प्रभु!

रहस्यपूर्ण चिट्ठी में तो कहा है कि तिर्यंच के समकित और सिद्ध के समकित में कोई अन्तर नहीं है। पण्डितजी! आहा..हा..! भले चारित्र में-स्थिरता में अन्तर हो, परन्तु सम्यग्दर्शन जो चिदानन्द प्रभु का अनुभव हुआ और उसमें प्रतीति हुई, वह सम्यग्दृष्टि तिर्यंच हो या सम्यग्दृष्टि सिद्ध हो, सम्यग्दर्शन में कोई अन्तर नहीं है। आहा..हा..! समझ में आया? बापू! मार्ग अलग है, भाई! गणधरदेव कहते हैं। गणधरदेव ने ऐसा कहा है। उसमें - रहस्यपूर्ण चिट्ठी में लिखा है। तिर्यंच का समकित और सिद्ध का समकित, दोनों एक सरीखे हैं - ऐसा गणधरदेव कहते हैं। आहा..हा..! परन्तु वह क्या चीज़ है, इसका भी पता नहीं। आहा..हा.. ! क्या कहा?

अन्तर की सूक्ष्म सन्धि ज्ञात होती है। यह राग का विकल्प जो शुभ है, उसका रस छूटकर जहाँ चैतन्य का रस आया तो दोनों के बीच की सन्धि, दोनों एक नहीं थे, ऐसी सन्धि ज्ञात होती है। आहा..हा..! एक हो तो भिन्न नहीं हो सकते और भिन्न पड़ते हैं तो एक हुए ही नहीं। ऐसा सम्यग्दर्शन में ज्ञात होता है। आहा..हा..! अरे! अब ऐसी बातें, भाई! मार्ग प्रभु का वीर का मार्ग है, बापू! यह कायर का काम यहाँ नहीं है। पुण्य में धर्म माने वे कायर-नपुंसक है। पुण्य-पाप (अधिकार में) लिया है, शुभभाव को माननेवाले - शुभभाव से नहीं हटते वे नंपुसक हैं। जिस प्रकार नपुंसक को वीर्य नहीं तो पुत्र नहीं होता; इसी प्रकार शुभभाव में धर्म की प्रजा नहीं होती। आहा..हा..!

स्वरूप / आत्मा का जो वीर्य है, उस वीर्य का कार्य क्या? यह सैंतालीस शक्ति में आया है। सब व्याख्यान हो गये हैं। यहाँ तो ४३ वर्ष से चलता है। स्वरूप की रचना करे वह वीर्य। राग की रचना करे, वह नपुंसक। ज्ञान को भी राग आता है, परन्तु उतनी अन्दर नपुंसकता है। आहा..हा..! क्या कहा? सैंतालीस शक्ति में है। वीर्य-भगवान का आत्मबल उसे कहते हैं कि जो स्वरूप की शुद्धता-सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की रचना करे, उसका नाम वीर्य का कार्य है। शुभ की रचना करे, वह वीर्य का कार्य नहीं। पण्डित वीर्य / अन्दर

वस्तु-वीर्य / आत्मबल। यह वीर्य जो स्त्री को-पुत्र को होता है, वह तो जड़ मिट्टी-धूल है (उसकी यहाँ बात नहीं है)। आहा... !

आत्मा में एक वीर्य नाम का गुण है और वीर्य नामक गुण का रूप प्रत्येक गुण में है। आहा..हा.. ! यह क्या कहा ? आत्मा में एक वीर्य नाम का गुण है तो उस गुण का प्रत्येक गुण में (रूप है)। ज्ञान में वीर्य शक्ति है, वीर्य का रूप है। वीर्य शक्ति भिन्न रहती है परन्तु वीर्य की शक्ति ज्ञानगुण में भी है। ज्ञान का सामर्थ्य जो अन्दर है, वह वीर्य का रूप है। आहा..हा.. ! समझ में आया ?

मुमुक्षु : वीर्य नाम का गुण आत्मा में है तो आत्मा का क्या कार्य करता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कहा न ? पुरुषार्थ से स्वरूप की रचना करता है। निर्मल सम्यग्दर्शन, ज्ञान की रचना करे, वह वीर्य और वह वीर्य प्रत्येक गुण में, अनन्त गुण में उसकी शक्ति व्यापक है। यह बात कठिन। ज्ञान में ज्ञानशक्ति, दर्शन में दर्शनशक्ति, चारित्र में चारित्रशक्ति, अस्तित्व में अस्तित्व की शक्ति, वस्तुत्व में वस्तुत्वशक्ति, प्रमेयत्व में प्रमेयत्वशक्ति है। आहा..हा.. ! एक-एक शक्ति में वीर्य का रूप है। जो वीर्यगुण है, वह दूसरे गुण के अन्दर नहीं जाता परन्तु वीर्य का जो तत्त्व है, उसका रूप अनन्त गुण में है। आहा..हा.. !

जैसे सत्ता नाम का एक गुण है, अस्तित्व नाम का-सत्ता नाम का गुण है, वह गुण स्वयं में सत्ता रखता है परन्तु ज्ञानगुण में उस सत्ता का रूप है। यह क्या ? ज्ञान है, वह स्वयं से है। इसी प्रकार सत्ता का रूप ज्ञान में भी है। अरे रे ! ऐसा आत्मा कहाँ... ? समझ में आया ? आहा.. ! कठिन लगे बापू ! अभ्यास नहीं, भाई ! और अभ्यास अभी दूसरे हो गये है। पण्डित और साधु बाहर में धमाधम करते हैं। अब उसमें यह बात सुनने को नहीं मिलती, इसलिए कठिन लगती है। क्या हो ? दुनिया की खबर नहीं ? सब खबर है। हिन्दुस्तान में दस-दस हजार मील तीन बार घूमे हैं, बहुत सब देखा है। अरे ! प्रभु ! यह मार्ग कोई अलग है, भाई !

सत्ता नाम की जो शक्ति है, इस ज्ञान की सत्ता में वह शक्ति नहीं जाती, परन्तु ज्ञान की शक्ति में 'है' - ऐसे सत्ता नाम की शक्ति का रूप उसमें है। आहा..हा.. ! इसी प्रकार श्रद्धा नाम के गुण में सत्तागुण नहीं जाता परन्तु श्रद्धा 'है' - ऐसा सत्तागुण का रूप श्रद्धागुण

में है। आहा..हा..! ऐसे आनन्द गुण जो है... आहा..हा..! अतीन्द्रिय आनन्द गुण है, उसमें सत्तागुण नहीं जाता परन्तु आनन्द गुण 'है'—ऐसा सत्तागुण का रूप उसमें है। आहा..हा..! अरे! बहुत कठिन बातें, भाई!

भगवान तो अनन्त शक्ति का पिण्ड है और एक-एक शक्ति में अनन्त शक्ति का रूप है। ऐसा सागर-महासागर प्रभु है। चैतन्यरत्नाकर है। चैतन्यरत्नाकर! आहा..! चैतन्य के रत्न से भरपूर आकर अर्थात् सागर / समुद्र है। उसकी जिसे सम्यग्दर्शन में दृष्टि हुई और उसकी जिसे महिमा आयी, उसे राग की महिमा और रस छूट जाते हैं और राग तथा आत्मा के बीच सन्धि है, वह अनुभव में समकिती को सन्धि ज्ञात होती है। अज्ञानी को वह सन्धि ज्ञात नहीं होती। आहा..हा..! यह क्या कहा?

तभी अन्तर की सूक्ष्म सन्धि ज्ञात होती है। राग और आत्मा भिन्न है-ऐसी सन्धि सम्यग्दृष्टि को ज्ञात होती है। अज्ञानी को तो राग को मैं करता हूँ और राग मेरी वस्तु है, राग करते-करते मुझे आत्मज्ञान होगा (-ऐसा वह मानता है)। राग और स्वभाव के बीच सन्धि है, इसका उसे ज्ञान नहीं है। आहा..हा..! ऐसी क्या बात यह? किस प्रकार का यह उपदेश? जुगलजी! आहा..हा..! हम तो सबको जानते हैं न! ६६ वर्ष से दुकान छोड़कर तो यह धन्धा है। ६६ वर्ष। संवत् (१९६८) के वैशाख में दुकान छोड़ दी थी। संवत् १९६८, तुम्हारे जन्म के पहले की बात है। हम तो दुकान पर भी अभ्यास करते थे। पिताजी स्थानकवासी थे न, तो दुकान पर उनके शास्त्र पढ़ते थे। घर की दुकान थी और छोटी उम्र में १७-१८ वर्ष की उम्र में पहली पुस्तक मिली थी 'अध्यात्म कल्पद्रुम' नामक श्वेताम्बर की पुस्तक है, वह पहले मिली। उसमें वैराग्य की बात थी, तत्त्व की बात उसमें नहीं है। आहा..हा..!

जब समयसार हाथ में आया... आहा..हा..! (संवत्) १९७८ में जब पढ़ा... ओहो! यह तो अशरीरी होने की चीज़ है। यह सिद्ध होने की चीज़ है। इसमें वाच्य जो है, वह सिद्ध होने की चीज़ है। वाचक तो शब्द हैं, उसमें कहाँ वाच्य है? समझ में आया? आहा..हा..!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ पहले तो 'बोटाद' आये थे। (संवत्) १९७७ के साल, परन्तु पढ़ा नहीं था, छोड़ दिया। फिर यहाँ दामनगर है, दामोदर सेठ थे। दिगम्बर के सब

ग्रन्थ रखते थे। बड़े गृहस्थ थे, गरासिया थे, घर में तो दस हजार की आमदनी का एक गाँव था। चालीस हजार की आमदनी थी। घर में आरव थे, घर में घोड़ा, हाथी,... और क्या कहलाता है बन्दूक को ? आरव बन्दूक रखते थे। हमारी जाति के बनिया थे, परन्तु बड़े थे। हम दिगम्बर पुस्तक पढ़ते थे तो दिगम्बर पुस्तक ली। बहुत रखते थे। उनके पास पहले मिला, मिलने के बाद मैंने जंगल में जाकर देखा। गाँव छोड़कर एक मील दूर बड़ा गड्ढा है लाखों मण धूल निकला हुआ खड्डा है। आहा..हा..! यह चीज़! समझ में आया ? बत्तीस सूत्र में यह (बात) कहीं (नहीं)। कितने वर्ष हुए तो भी कुछ पता नहीं लगा। उसमें है ही नहीं। श्वेताम्बर शास्त्र में सत्य बात है ही नहीं। वे कृत्रिम हैं। दिगम्बर में से दो हजार वर्ष पहले निकले हैं। कृत्रिम। मिथ्यात्व होने के पश्चात् शास्त्र बनाये और सर्वज्ञ का नाम दिया है। लोग बेचारे उलझ गये। यह तो सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ की वाणी है। आहा..हा..! समयसार, सर्वज्ञ की वाणी है। उसमें यह आया। आहा..हा..!

प्रभु! तुझे राग से भिन्न जब आत्मा का ज्ञान होगा, तुझे दो के बीच एकता नहीं और सन्धि है, इसका ख्याल आयेगा। आहा..हा..! है ? **ऐसा नहीं होता कि पर में तीव्र रुचि हो...** राग में रुचि-प्रेम हो **और उपयोग अन्तर में प्रज्ञाछैनी का कार्य करे** - ऐसा कभी नहीं बनता। आहा..हा..! शुभराग जो विकल्प है, शुभ, आहा..! उसकी जब तक रुचि हो, तीव्र रुचि हो और उपयोग अन्तर में प्रज्ञाछैनी का कार्य करे - ऐसा नहीं होता। आहा..हा..! क्योंकि 'रुचि अनुयायी वीर्य'। राग की रुचि है तो वीर्य वहाँ-अज्ञान में काम करता है। आहा..हा..! और अपने आनन्दस्वरूप भगवान की रुचि हुई तो रुचि अनुयायी वीर्य, वीर्य वहाँ काम करता है। आहा..! ऐसी बात है, भाई! समाज में ऐसी बात करना ? बापू! समाज यह आत्मा है या नहीं अन्दर ? एक आत्मा ऐसा प्रभु अन्दर विराजता है न! आहा..हा..! देह को मत देखो, प्रभु! यह देह तो मिट्टी-जड़ की क्रिया है। आहा..हा..! अन्दर राग आता है, वह तो विकृत अवस्था है। इसके अतिरिक्त परमात्मा भगवान अन्दर विराजता है, वह तो आनन्दकन्द है। आहा..हा..!

राग का रस हो, भले शुभराग हो—दया, दान, भक्ति, पूजा, (पैसा) खर्च करना, परन्तु वहाँ रस है... आहा..हा..! और उपयोग अन्दर में प्रज्ञाछैनी का कार्य करे (-ऐसा नहीं होता)। दो बात की है कि राग से भिन्न अपना ज्ञान हुआ वहाँ, राग और आत्मा में एकता नहीं थी, उस सन्धि का ज्ञान हुआ परन्तु जब राग का रस है तो राग से एकत्वबुद्धि

है, उसे ज्ञान में अन्तर्बुद्धि-उपयोग काम करे- ऐसा नहीं बन सकता। यह क्या कहा ? जिसे राग का रस है, वह राग से भिन्न पड़ने का प्रज्ञाछैनी का काम करे - ऐसा नहीं हो सकता। आहा..हा..! ज्ञानचन्दजी!

मुमुक्षु : राग तो ठीक, रस अर्थात् क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : एकत्व होना वह रस है। एकत्व होकर दूसरा भाव छूट जाये, उसका नाम रस है। समयसार में नवरस आते हैं। जीव का अधिकार पूरा होता है, वहाँ नवरस आते हैं। विषय की वासना में एकाकार होता है तो दूसरे विकल्प छूट जाते हैं। दूसरे विकल्प नहीं रहते। आहा..हा..! समझ में आया ?

प्रज्ञाछैनी का कार्य करे - ऐसा नहीं बनता। क्या कहते हैं ? दो बातें की है। राग का रस छूटकर चैतन्य के रस का ज्ञान सम्यक् में हुआ तो राग और आत्मा के बीच सन्धि है, उसका ज्ञान उसे हुआ। एकता टूटी तो एकता नहीं थी - ऐसा ज्ञान हुआ। आहा..हा..! और जब राग का रस रहे और राग से भिन्न पड़ने की प्रज्ञाछैनी काम करे - ऐसा कभी नहीं बनता। आहा..हा..! ऐसा है। ज्ञानचन्दजी! कहो रतनचन्दजी! तुम पत्रिका निकालते हो न! आहा..!

एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकती। राग का रस रहे और प्रज्ञाछैनी राग से भिन्न काम करे - ऐसा नहीं बन सकता। गजब बात है, भाई! शुभराग का रस भी छोड़ना पड़ेगा। जिसे सम्यग्दर्शन प्रगट करना हो... आहा..हा..! चाहे तो भक्ति का भाव और दान में करोड़ों-अरबों खर्च किये हों, परन्तु वह भाव राग है। वह क्रिया तो पर की है। उस राग का रस रहे और राग से भिन्न करने का कार्य प्रज्ञा करे - ऐसा नहीं बन सकता। भाषा तो सादी है, प्रभु! आहा..!

तेरी प्रभुता का पार नहीं, प्रभु! परन्तु उस प्रभुता की इसे खबर नहीं है। आहा..! वह परमेश्वर स्वरूप प्रभु है। तेरा स्वरूप 'अप्पा सो परमप्पा' आहा..हा..! आत्मा, वह परमात्मा है। आहा..हा..! भगवान पर्याय में परमात्मा हुए, तेरा स्वभाव परमात्मा है। समझ में आया ? उस परमात्मा की जहाँ दृष्टि हुई तो राग का रस छूट गया और राग का रस रहे और राग से भिन्न पड़ने का काम ज्ञान करे-ऐसा कभी नहीं होता। आहा..हा..! यह १९७ (बोल पूरा) हुआ।

ज्ञातापने के अभ्यास से ज्ञातापना प्रगट होने पर कर्तापना छूटता है। विभाव अपना स्वभाव नहीं है इसलिए कहीं आत्मद्रव्य स्वयं उछलकर विभाव में एकमेक नहीं हो जाता, द्रव्य तो शुद्ध रहता है; मात्र अनादिकालीन मान्यता के कारण 'पर ऐसे जड़ पदार्थ को मैं करता हूँ, रागादि मेरा स्वरूप हैं, मैं सचमुच विभाव का कर्ता हूँ' इत्यादि भ्रमणा हो रही है। यथार्थ ज्ञातृत्वधारा प्रगट हो तो कर्तापना छूटता है॥१९८॥

१९८, **ज्ञातापने के अभ्यास से...** मैं तो जाननेवाला हूँ, राग भी नहीं और पर भी नहीं। जानने-देखनेवाला, ज्ञाता-दृष्टा मैं हूँ - ऐसे अभ्यास से **ज्ञातापना प्रगट होने पर... ज्ञातापने के अभ्यास से...** क्या कहा, समझ में आया? व्रत, तप का राग आया, उससे नहीं; ज्ञातापने के अभ्यास से—मैं तो जानने-देखनेवाला हूँ। लक्षण जो ज्ञान है, उससे लक्षित होनेवाली वस्तु हूँ। मैं अबन्ध, ज्ञानलक्षण से लक्षित होनेवाली अबन्ध वस्तु हूँ। और राग लक्षण से बन्ध होनेवाली वस्तु -बन्ध। बन्ध का लक्षण राग और आत्मा का लक्षण ज्ञान है। वह ज्ञानलक्षण अबन्ध को बताता है और राग लक्षण बन्ध को बताता है। आहा..हा..! ऐसी बातें, परन्तु कठिन बहुत, बापू!

प्रभु! तू बड़ा है, भाई! तुझे खबर नहीं है। तेरी महत्ता की महिमा का पार नहीं है। 'जो स्वरूप झलका जिनवर के ज्ञान में...' भगवान ने जो सर्वज्ञस्वरूप देखा 'कह न सके वह भी श्री भगवान जब।' वाणी द्वारा चैतन्य की बात कितनी की जाये? प्रभु! दुश्मन द्वारा मित्र की, सज्जन की बातें कितनी की जाये? आहा..हा..! वाणी जड़, भगवान चैतन्य, दोनों विरुद्ध हैं। वाणी द्वारा चैतन्य का स्वरूप प्रभु की वाणी में कितना आवे? 'जो स्वरूप झलका जिनवर के ज्ञान में...' भाषा तो गुजराती है। सर्वज्ञ के ज्ञान में जो दीठूँ (जाना गया)। 'कह न सके वह भी श्री भगवान जब, उस स्वरूप को अन्य वाणी तो क्या कहे?' उस भगवान की वाणी में भी चैतन्य का पूरा रूप आया - ऐसा भी कहा जाता है, हों! और फिर पूर्ण नहीं आता, अनन्तवें भाग आता है-ऐसा गोम्मटसार में है। भगवान को जितना दिखा, उसके अनन्तवें भाग वाणी में आता है और सुननेवाले को अनन्तवें भाग में ज्ञान होता है। आहा..हा..! एक ओर पाँचवीं गाथा में ऐसा आता है कि भगवान पूर्ण कहते हैं - ऐसा भी आता है। यह अपेक्षा से (कहा है)। पाँचवीं गाथा में है, समयसार टीका, अमृतचन्द्राचार्य की टीका में है।

यहाँ कहते हैं **ज्ञातापने के अभ्यास से...** आहा..हा..! राग की क्रिया के अभ्यास से ज्ञातापना प्रगट होता है-ऐसा नहीं है। आहा..हा..! मार्ग बहुत कठिन! **ज्ञातापने के अभ्यास से ज्ञातापना प्रगट होने पर कर्तापना छूटता है।** आहा..हा..! मैं तो ज्ञातादृष्टा, मेरा त्रिकाली स्वभाव है। उसके अभ्यास से जानना-देखना पर्याय में प्रगट होता है। आहा..हा..! वह प्रगट होने पर **कर्तापना छूटता है।** इस राग का विकल्प आता है, उसका कर्तापना ज्ञानी को-धर्मी को छूट जाता है। क्यों? ज्ञातापना... ज्ञान.. ज्ञान.. ज्ञाता.. ज्ञाता.. ज्ञाता.. ज्ञाता.. ऐसा अभ्यास करने पर ज्ञाता प्रगट हुआ, वह ज्ञाता प्रगट होने पर राग का ज्ञाता हुआ और राग का कर्तापना छूट गया। राग का भी ज्ञाता है, अपना ज्ञाता है और राग का ज्ञाता है - ऐसा भाव प्रगट होता है। आहा..हा..!

व्यवहाररत्नत्रय जाना हुआ प्रयोजवान है - ऐसा (समयसार की) १२ वीं गाथा में आया है। बहुत विवाद है। उसमें **ववहारदेसिदा** व्यवहार दिखाना (ऐसा आता है), परन्तु दिखाना यह तो पद का शब्द है। व्यवहार को दिखाना - इसका अर्थ उपदेश करना (ऐसा नहीं है) **ववहारदेसिदा** ऐसा पाठ है, उसका दूसरा अर्थ है। अमृतचन्द्राचार्य ने टीका में ऐसा लिया है कि जिसे आत्मज्ञान, दर्शन हुए, उसे पर्याय में राग की मन्दता और शुद्धता की अल्पता है, उसे उस समय जाना हुआ प्रयोजनवान है, ऐसा पाठ है। **ववहारदेसिदा** की व्याख्या यह है। इसका पण्डितों के बीच बड़ा विवाद (चलता है)। बड़े सेठ ने दिल्ली में प्रश्न किया था। यह **ववहारदेसिदा** (कहा है) उपदेश की व्याख्या नहीं, प्रभु! यह तो पद में भाषा ऐसी आयी है। **ववहारदेसिदा** का अर्थ कि आत्मज्ञानी को आत्मज्ञान हुआ, राग से पृथक् होकर सम्यग्दर्शन हुआ, उसकी पर्याय में कमजोरी से राग है और शुद्धता अल्प है। संस्कृत में '**तदात्वे**' ऐसा पाठ है। 'तदात्वे' - उस-उस समय जाना हुआ प्रयोजनवान है - ऐसा पाठ है। अरे रे! क्या हो? आहा..हा..!

कर्तापना छूटता है। सम्यग्दृष्टि को राग आता है परन्तु कर्तापना छूट जाता है। आहा..हा..! जब तक राग करनेयोग्य है - ऐसा मानकर राग का कर्ता होता है, तब तक तो वह मिथ्यादृष्टि है। ज्ञान की अपेक्षा से रागरूप परिणमन है तो कर्ता कहने में आया है। सैंतालीस नय में। वह परिणमन है न? परिणमन है, वह कर्ता, इस अपेक्षा से कर्ता कहने में आया है परन्तु वह करनेयोग्य है - ऐसी दृष्टि से सम्यग्दृष्टि छूट जाता है। आहा..हा..! समझ में आया? यहाँ यह बात की है। विशेष कहेंगे, समय हो गया।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण-८, शनिवार, दिनाङ्क २६-०८-१९७८
वचनामृत-१९८, १९९ प्रवचन-७६

१९८ बोल है। वचनामृत १९८ बोल है। **ज्ञातापने के अभ्यास से...** कोई व्रत, नियम और तप के अभ्यास से आत्मा जानने में नहीं आता। आहा..हा..! ज्ञाता और ज्ञानस्वरूप ज्ञाता हूँ और दृष्टा - ज्ञातादृष्टा हूँ - ऐसा बारम्बार अभ्यास करने से, उस ओर झुकाव करने से.. यह सम्यग्दर्शन की विधि है। **ज्ञातापने के अभ्यास से ज्ञातापना प्रगट होने पर...** ज्ञातापने के अभ्यास से ज्ञातापना प्रगट होने पर.. आहा..हा..! मैं जानने-देखनेवाला ज्ञाता हूँ—ऐसा बारम्बार अन्तर्मुख अभ्यास करने से पर्याय में ज्ञातापना प्रगट होता है। आहा..हा..! **कर्तापना छूटता है।** आहा..हा..! राग का विकल्प है, उसका भी कर्तापना तब छूटता है। आहा..हा..!

पर की क्रिया तो अज्ञानी भी नहीं कर सकता। अज्ञानी अपने शुद्धस्वभाव के अज्ञान से, जो स्वभाव में नहीं—ऐसे पुण्य-पाप का, विकृतभाव का कर्ता होता है। वह ज्ञातापने के अभ्यास से रहित है। आहा..हा..! **ज्ञातापने के अभ्यास से...** बहुत ही संक्षिप्त और अकेला भाव स्वरूप अन्दर है। आहा..हा..! कोई शास्त्रज्ञान के अभ्यास से ज्ञातापना प्रगट होता है - ऐसा नहीं है। आहा..हा..! वैसे ही कोई व्रत, नियम, तप, भक्ति और पूजा करे तो उससे आत्मा का ज्ञातापना पर्याय में प्रगट होता है - ऐसा नहीं है। गोदिकाजी! ऐसी बात है, प्रभु! भाई! आहा..हा..!

विभाव अपना स्वभाव नहीं है... चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का विकल्प हो, वह विभाव है; वह विभाव अपना स्वभाव नहीं है। शाश्वत् ज्ञातादृष्टा का स्वभाव, ऐसा विभाव अपना स्वभाव नहीं है। आहा..हा..! व्यवहाररत्नत्रय के शुभराग का विकल्प, वह विभाव है, वह अपना स्वभाव नहीं है। आहा..हा..! समझ में आया? **इसलिए कहीं**

आत्मद्रव्य... क्या कहते हैं ? शुभभाव जो दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के भाव हैं, वह विभावभाव अपना स्वभाव नहीं है; इसलिए **कहीं आत्मद्रव्य स्वयं उछलकर विभाव में एकमेक नहीं हो जाता,...** भगवान आत्मा, अपना स्वभाव जो आत्मद्रव्य है, वह विभाव में, स्वयं उछलकर, द्रव्य उछलकर विभाव में कभी एकमेक नहीं हो जाता। आहा..हा..! बहुत सूक्ष्म बात, भाई!

द्रव्य तो शुद्ध रहता है;... शुभ-अशुभ विभावभाव हो, तथापि द्रव्यस्वभाव- जो ज्ञातादृष्टा का त्रिकाल स्वभाव है, वह उछलकर उसकी विभाव में एकता नहीं होती। आहा..! समझ में आया ? **द्रव्य तो शुद्ध रहता है;...** भगवान ज्ञायकस्वरूप शुद्ध चैतन्यघन तो शुद्ध रहता है। शुद्ध उछलकर विभाव में एकत्व होता है - ऐसा तीन काल में कभी नहीं होता। अज्ञानी मानता है। आहा..हा..! विभाव मेरा है - ऐसे अभ्यास से, मैं ज्ञाता हूँ - ऐसा अभ्यास छोड़कर, विकार-विभाव मेरा है - ऐसे अभ्यास से विभाव में एकत्वबुद्धि करता है और विभाव का कर्ता होता है। ऐसी बात है, भाई! आहा..हा..!

एक आँख ऐसे फिरती है, उसका कर्ता आत्मा नहीं। वह तो अज्ञानभाव से भी उसका कर्ता नहीं है। समझ में आया ? देह की-जड़ की क्रिया और कर्म का उदय जड़, उसका तो अज्ञानभाव से भी कर्ता नहीं हो सकता। आहा..हा..! मात्र अज्ञानभाव से विभाव का अध्यास और अभ्यास होने से विभाव का कर्ता अज्ञानी अपने को मानता है। मानता है, वस्तु के स्वभाव में विभाव नहीं है। आहा..हा..! जिसे इस शुभभावरूपी विभाव का रस है, वह विभाव का कर्ता होता है। जिसे ज्ञातास्वभाव का रस है, वह विभाव का कर्ता नहीं होता। अपनी दशा में रहकर विभाव पृथक् है - ऐसा जानता है। आहा..हा..! ऐसा मार्ग है।

आज बड़ा पत्र आया है। इस सब की फिल्म उतारो, फिल्म बनाओ। अरे! प्रभु! एक बहुत लम्बा पत्र आया है। अरे! प्रभु! बोलने की क्रिया भी अपनी नहीं। क्या करना ? आहा..हा..! यह बोलना, जिसे बोलने का उत्साह है, वह तो भाषा का कर्ता होता है। आहा..हा..! समझ में आया ? वह तो कर्ता मानता है। जड़ का कर्ता हो नहीं सकता। वैसे विभावभाव का कर्ता हो नहीं सकता क्योंकि द्रव्यस्वभाव कभी विभावरूप होता नहीं परन्तु अपने द्रव्यस्वभाव को छोड़कर, विभाव के अभ्यास से, विभाव का कर्ता, विभाव का रचनेवाला मैं हूँ - ऐसी मान्यता मिथ्यादृष्टि की है। आहा..! कठिन बातें, भाई! समझ में आया ? आहा..हा..! है ?

मात्र... होता है क्या ? द्रव्य तो शुद्ध रहता है। द्रव्यस्वभाव उछलकर राग की क्रिया में-विभाव में कभी आता नहीं। आहा.. ! तब होता है क्या ? **मात्र अनादिकालीन मान्यता के कारण...** आहा.. ! भ्रमणा अनादि काल की है। ज्ञातादृष्टा का भान नहीं.. आहा.. ! और भ्रमणा में **मात्र अनादिकालीन मान्यता के कारण 'पर ऐसे जड़ पदार्थ को मैं करता हूँ,..** आहा..हा.. ! वाणी को मैं कर्ता हूँ.. आहा..हा.. ! गजब बात है, प्रभु ! उपदेश की भाषा का कर्ता मैं हूँ, यह अनादिकाल की मान्यता के कारण है। आहा.. ! बहुत कठिन काम, भाई ! आहा..हा.. !

'करे कर्म सो ही करतारा, जो जाने सो जाननहारा।
कर्ता सो जाने नहीं कोई, जाने सो करता नहीं होई ॥'

आहा..हा.. ! समयसार नाटक में समयसार के कलश की गाथा (पद्य) बनायी है। समझ में आया ? समयसार नाटक। 'करे कर्म सो ही करतारा.. ' राग की पर्याय मैं करता हूँ, वह कर्ता। राग का कर्ता मिथ्यादृष्टि होता है। 'करे कर्म सो ही करतारा, जो जाने सो जाननहारा।' मैं ज्ञान-आनन्दस्वरूप, ऐसी चीज़ मेरी, ऐसे अनुभव में राग का कर्ता (नहीं होता), जाननेवाला रहता है। वह राग का कर्ता नहीं होता। आहा..हा.. ! चन्दुभाई ! ऐसी बातें हैं। यह दवाखाना में इंजेक्शन दे... उसे तो वाँचन बहुत है। चार-चार घण्टे प्रतिदिन पढ़ता है, तुम्हारी तरह नहीं, पूरे दिन मजदूरी करे। गोदिकाजी ! यह तो दृष्टान्त तुम्हारा (दिया है)। हों ! आहा..हा.. !

भगवान आत्मा अपना स्वभाव छोड़कर कभी विभाव में नहीं आया, नहीं आता, नहीं आयेगा परन्तु ऐसे आत्मा के स्वभाव का भान नहीं, वह अपनी पर्याय में विकृतदशा का कर्ता होता है। शरीर का और पैसे का... तुम्हारे क्या कहलाते हैं ? इस नीलमणि को घिसना, वह क्रिया तो आत्मा कर ही नहीं सकता।

मुमुक्षु : आत्मा कहाँ करता है ? जीव करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जीव कहो या आत्मा कहो, एक ही है। वेदान्तवाले कहते हैं कि जीव कर्ता होता है, आत्मा तो भिन्न है। ऐसा है नहीं। आत्मा कहो या जीव कहो, एक ही वस्तु है। वे लोग कहते हैं, आत्मा तो निर्लेप भिन्न है परन्तु जीव, राग में जुड़कर संसार खड़ा करता है। सब मिथ्या है। यह तो जैन परमेश्वर, वस्तु का स्वरूप है, ऐसी स्थिति बताते हैं। यह कोई पक्ष नहीं, यह जैनधर्म कोई वाड़ा नहीं, यह तो वस्तु का स्वरूप ऐसा है।

जिनस्वरूपी भगवान 'घट घट अन्तर जिन बसे, घट घट अन्तर जैन।' आहा..हा..! 'मत मदिरा के पान सो...' अपने मत की शराब पिये हुए प्राणी / मतवाले समझते नहीं। समझ में आया? आहा..हा..! 'करे कर्म सो हि करतारा..' राग कर्म, हों! पर की क्रिया नहीं। राग करे, वह कर्ता होता है। 'जो जाने सो जाननहारा' मैं ज्ञातादृष्टा, (मेरे) स्वभाव में विभाव का अभाव है। मुझमें जिसका अभाव है, उसका मैं कर्ता नहीं। आहा..हा..! 'कर्ता सो जाने नहीं कोई' राग का कर्ता है, वह आत्मा क्या है — उसे जान नहीं सकता और 'जाने सो कर्ता नहीं होई' मैं ज्ञानस्वरूपी प्रभु, मैं क्या करूँ? जगत ज्ञेय है, मैं ज्ञाता हूँ। वह भी पररूप से ज्ञेय है। स्वज्ञेय तो ज्ञानस्वरूपी भगवान है और परज्ञेय राग से लेकर सब परज्ञेय, उसका मैं ज्ञाता हूँ और परज्ञेय मेरे परज्ञेयरूप से ज्ञेय है। परज्ञेयरूप से ज्ञेय है। आहा..हा..! कठिन बात, भाई! कठिन पड़ता है। यह कहते हैं, देखो!

मात्र अनादिकालीन मान्यता के कारण 'पर ऐसे जड़ पदार्थ...' शरीर, वाणी को मैं करता हूँ। आहा..हा..! दुकान की गद्दी पर बैठकर मैं धन्धा करता हूँ। पैसा लेना-देना, ग्राहक को बुलाना, ग्राहक को समझाना, यह सब जड़ की क्रिया को अज्ञानी अपनी मानता है।

मुमुक्षु : ..... तो भी करना पड़ता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : कर नहीं सकता, मानता है। यह सर्राफा बाजार की दुकान में बैठकर कर नहीं सकता - ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : तो कौन करता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो जड़ की क्रिया है। जड़ द्रव्य है या नहीं? तो उसकी पर्याय उसके काल में है या नहीं?

मुमुक्षु : हमारे बिना नहीं हो सकती।

पूज्य गुरुदेवश्री : तुम्हारे बिना राग की पर्याय नहीं हो सकती - ऐसा भी नहीं है और तुम्हारे बिना जड़ की पर्याय नहीं हो सकती - ऐसा भी नहीं है। आहा..हा..! वीतरागमार्ग, बापू! अर्थात् वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा। वीतराग की आज्ञा वीतरागता उत्पन्न करने की है। चारों अनुयोग में यह उनकी आज्ञा है। आहा..हा..! वीतराग परमात्मा त्रिलोकनाथ वीतरागपना प्रगट हुआ तो वाणी में वीतरागता प्रगट करो - ऐसा आता है। राग करो और राग के कर्ता होओ, यह वीतरागी की वाणी में नहीं। यह (तो) अज्ञानी मानता

है। आहा..हा..! समझ में आया? बहुत कठिन काम! पूरी दुनिया के व्यवस्थित काम करे और कहे कि यह हमारा काम नहीं। आहा..हा..!

आटे का दल पड़ा हो, उसमें से गूँथकर रोटी बनाते हैं, वह क्रिया तेरी नहीं है – ऐसा कहते हैं। वह क्रिया जड़ की जड़ में होती है। वह क्रिया तुझमें नहीं होती और तुझसे वह नहीं होती। उसमें तू नहीं, वह तुझमें नहीं और तेरा वह कार्य नहीं। आहा..हा..! ऐसा काम है, भाई!

सम्यग्दर्शन में तो आत्मा ज्ञाता है – ऐसा अनुभव हुआ। फिर भले राग आवे, रोद्र-ध्यान हो, आर्तध्यान हो, उसका जानने-देखनेवाला रहता है। ऐसी बात है, भाई! कर्ता नहीं होता। पर्याय में राग की रचना होती है, इस अपेक्षा से ज्ञाननय की अपेक्षा से परिणमे वह कर्ता – ऐसा कहने में आता है परन्तु करनेयोग्य है – ऐसी बुद्धि ज्ञानी को नहीं होती। आहा..हा..! ऐसा धर्म।

मान्यता के कारण 'पर ऐसे जड़ पदार्थ..' शरीर, वाणी, पैसा.. यह पैसा मैंने लिया और पैसा मैंने दिया, मैं आहार लेता हूँ और मैं आहार का निहार करता हूँ... आहा..हा..! सब जड़ की क्रिया को अज्ञानी अपनी मानता है। आहा..हा..! समझ में आया? बहुत कठिन काम, भाई! यह जड़ इन्द्रियाँ हैं, इनकी जड़ में जो पर्याय-क्रिया होती है, वह मुझसे हुई, यह अनादिकाल की मान्यता है। समझ में आया? आहा..हा..! मैं यह पृष्ठ फिरा सकता हूँ, यह क्रिया आत्मा की नहीं है।

मुमुक्षु : अभी तो फिराया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो हो रही है। आहा..हा..! इस परमाणु की इस समय में ऐसी अवस्था उत्पन्न होने का जन्मक्षण था। जन्म अर्थात् उत्पत्ति का काल था तो वह हुई है, अंगुली से नहीं। ऐसी बात है। अंगुली परद्रव्य है, (पृष्ठ के) परमाणु परद्रव्य हैं। इस परद्रव्य की पर्याय, अंगुली ऐसे हुई तो (पृष्ठ) ऐसा हुआ – ऐसा नहीं है। आहा..हा..! ऐसा मार्ग है अन्दर।

यह कहते हैं। **'रागादि मेरा स्वरूप हैं,..'** दो बातें आयी हैं। शरीर, वाणी की क्रिया मैं करता हूँ... आहा..हा..! मैं रोटी बना सकता हूँ, मैं पैसा गिनकर ले सकता हूँ, गिनकर दे सकता हूँ, यह सब जड़ की क्रिया अपने (आत्मा) से हुई ऐसा अज्ञानी मानता है।

मान्यता है, वस्तु ऐसी नहीं। आहा..हा..! इतना सब? इस जवाहरात के धन्धे में मैं जवाहरात देता हूँ, लेता हूँ - ऐसा मानता है, वह मूढ़ है-ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : जयपुर में होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सोनगढ़ में नहीं हो सकता, जयपुर में हो सकता है। आहा..हा..! जयपुर, वह परद्रव्य है और उस समय हीरा-माणिक की देने की क्रिया, लेने की क्रिया परद्रव्य की है। गजब बात है, भाई!

मुमुक्षु : सब ऐसा ही विचारते तो यह परमागम मन्दिर नहीं बनता।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपने आप बनता है। रामजीभाई ने बनाया नहीं। रामजीभाई ध्यान रखते थे, परन्तु ध्यान रखा, इसलिए बनाया (ऐसा नहीं है)।

मुमुक्षु : मैं तो यहाँ आता ही कहाँ था?

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ पूछते थे न, बाहर पूछते थे। यहाँ आते नहीं थे। वहाँ निकले तो पूछे - कैसा बना? कितना हुआ? क्या हुआ? ऐसा पूछते। यह ध्यान रखा, इसलिए यह बना है? तीन काल में नहीं। इस क्षेत्र में उन परमाणुओं की उस प्रकार की उत्पत्ति का जन्मक्षण है तो उत्पत्ति हुई है। छब्बीस लाख का (मन्दिर) कौन बनावे? और छब्बीस हजार लोग आये थे। साठ हजार आनेवाले थे, परन्तु सरकार का कोई विरोध था तो अशान्ति थी। यहाँ शान्ति थी। यहाँ तो दस दिन छब्बीस हजार लोग, ग्यारह लाख का खर्च, छब्बीस लाख का यह (बना है)। सैंतीस लाख (कुल खर्च हुए)। यह तो उस समय प्रभु! परमाणु की पर्याय जहाँ जानी हो, वहाँ जाती है, जहाँ रहनी हो वहाँ रहती है। यह ऐसी बात है, भाई! कठिन काम है।

मुमुक्षु : आपने अभी कहा कि इतने रुपयों से हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : हुआ अर्थात् उन रुपयों से हुआ - ऐसा नहीं। इसकी कीमत इतनी है - ऐसा कहने में आया? पैसे से यह हुआ नहीं है।

मुमुक्षु : कीमत तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कीमत तो दुनिया मानती है, इस अपेक्षा से कीमत है। कीमत अर्थात् पच्चीस लाख, यह भाव उसमें नहीं है। उसमें भाव तो जड़ की पर्याय का भाव उसमें है। पच्चीस लाख भाव - ऐसा भाव उसमें है?

मैंने एक बार रात्रि (चर्चा में) सबको पूछा था, बैठे थे। सोने का भाव क्या है ? कोई कहे सौ है, दो सौ है। यह सोने का भाव है ? सोने का भाव तो वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, वह सोने का भाव है। समझ में आया ? सोने का भाव क्या है ? यह माने कि महाराज को पता नहीं है, इसलिए पूछते हैं, क्या भाव है ? अरे ! भाई ! सोना वह रजकण है न ? तो उसका भाव तो रंग, गंध, रस, स्पर्श, वह उसका भाव है। सौ और पाँच सौ, वह उसका भाव है ? वह तो तुम्हारी कल्पना का भाव है। आहा..हा.. ! ऐसी बातें हैं, बापू ! चन्दुभाई ! कहो, पाटनीजी ! आहा..हा.. !

'स्व पर प्रकाशक शक्ति हमारी, तातैं (वचन) भेद भ्रम भारि।' स्व पर प्रकाशक आत्मा है तो स्व और पर को जैसा है, वैसा जान सकता है। आहा..हा.. ! समझ में आया ? रजकण का या राग का कुछ कर सकता है (-ऐसा नहीं है।) अरे ! भोजन करते समय ऐसा (मुँह) होता है, वह जड़ की क्रिया है, वह आत्मा से नहीं होती। यह बात.. समझ में आया ? लोग नहीं कहते ? चबाकर खाना, वहाँ अन्दर में दाँत नहीं है। है न ? अंग्रेजी में कुछ कहते हैं न ? इसलिए चबाकर खाना। कौन चबाता है ? सुन तो सही, प्रभु ! यह दाढ़ और दाँत की पर्याय ऐसे होने का स्वकाल था तो उससे ऐसे होती है। इससे रोटी के दो टुकड़े हुए, वे दाँत से नहीं हुए। दाँत, रोटी को स्पर्श नहीं करते तो फिर टुकड़े कहाँ से होंगे ? यह तो बात.. आहा..हा.. ! ऐ..ई.. !

शक्कर है, उसे जीभ स्पर्श ही नहीं। शक्कर की पर्याय में जीभ की पर्याय का अभाव है। जीभ की पर्याय में शक्कर का अभाव है। अभाव है तो स्पर्श कहाँ से करे ? आहा..हा.. ! और उस समय में यह मीठा है—ऐसा ज्ञान होता है, वह अपनी पर्याय में उस प्रकार के ज्ञान की उत्पत्ति का काल था तो ज्ञान उत्पन्न हुआ है। वह मीठा है, इसलिए ज्ञान उत्पन्न हुआ - ऐसा नहीं है। ऐसी बातें हैं, बहुत सूक्ष्म है, बापू ! आहा..हा.. !

यह यहाँ कहते हैं ' **रागादि मेरा स्वरूप हैं, मैं सचमुच विभाव का कर्ता हूँ'...** आहा..हा.. ! चाहे तो यह दया, दान, अट्ठाईस मूलगुण मुनि के, श्रावक के बारह व्रत आदि के विकल्प को मैं करता हूँ.. आहा..हा.. ! **इत्यादि भ्रमणा हो रही है।** यह तो भ्रमणा-भगवान में भ्रमणा हो रही है। आहा..हा.. ! सूक्ष्म बात, भाई !

मुमुक्षु : भगवान में भ्रमणा हो रही है तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो श्रीमद् ने एक बार कहा, श्रीमद् राजचन्द्र। श्रीमद् राजचन्द्र के एक पत्र में है। भगवान पूर्ण स्वरूप तो है परन्तु फिर भी उसे अपलक्षण का पार नहीं। तो लोग ऐसा कहने लगे कि अरे! भगवान के अपलक्षण कहते हैं। परन्तु वह भगवान (अर्थात्) इस आत्मा की बात करते हैं। सुन तो सही! एक पत्र में है। भगवान आत्मा परिपूर्ण स्वरूप तो है, तथापि उसके अपलक्षण का पार नहीं है। राग और पुण्य मेरा करे (माने), यह उसका अपलक्षण है। आहा..हा..! उन भगवान परमात्मा के अपलक्षण नहीं कहते। उनकी शैली (ऐसी है)। आहा..हा..!

परिपूर्ण भगवान स्वभाव से भरपूर भगवान परमात्मस्वरूप है, परन्तु उसकी पर्याय में अपलक्षण का पार नहीं। राग और द्वेष की मिठास, राग और द्वेष के परिणाम को रचनेवाला मैं, ये सब अपलक्षण हैं। ये ज्ञानलक्षण भगवान है, वह नहीं। आहा..हा..! वह तो जानने-देखनेवाला ज्ञानस्वरूप है। राग होता है, उसे भी अपने से पृथक् करके अपने को जानता है, उसमें वह जाननेवाली पर्याय उस समय में उस प्रकार से उत्पन्न होनेवाली है तो होती है। आहा..हा..!

आत्मा में एक 'अकारणकार्य' नाम का गुण है। क्या कहा? भगवान आत्मा में एक अनादि-अनन्त, जैसे ज्ञान अनादि-अनन्त है, वैसे अकार्यकारण नाम का गुण अनादि-अनन्त है। आहा..हा..! तो आत्मा, राग का कर्ता, राग उसका कार्य और राग का कर्ता आत्मा, राग का कारण आत्मा - यह वस्तु में नहीं है। आहा..हा..! गजब बात है, भाई! महाव्रत आदि के परिणाम का कार्य मेरा और उन महाव्रत का कारण मैं हूँ - ऐसा वस्तु में नहीं है। अकार्यकारण नाम का गुण है। प्रत्येक गुण में अकार्यकारण का रूप है। क्या कहा? जैसे अस्तिगुण है, वह प्रत्येक गुण में अस्ति है, वह स्वयं से अस्तिरूप है। अस्तिगुण के कारण से नहीं। आहा..हा..! वैसे अकार्यकारण नाम का भगवान आत्मा में गुण है तो ज्ञानगुण में भी अकार्यकारण का रूप है, तो ज्ञानगुण की पर्याय, राग को करे और राग से ज्ञान की पर्याय उत्पन्न हो - ऐसा वस्तु में नहीं है।

इसी प्रकार दर्शन में। ऐसी दर्शन की पर्याय में अकार्यकारणपने का गुण है तो पर्याय में अकार्यकारणपना आया। सम्यग्दर्शन की पर्याय में। वह सम्यग्दर्शन की पर्याय, राग को करे और उस राग से सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न हुई - ऐसा वस्तु में नहीं है। आहा..हा..! कभी सुना नहीं यह सब। वे पैसे और नीलम और अमुक और अमुक...

मुमुक्षु : जब अमेरिका में थे, तब यह बात नहीं की थी और पहली बार सोनगढ़ में आये।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ इनके घर में उतरे नहीं थे ? वहाँ इनने बहुत कहा था। नीलम बताया था। इतना है, उसमें से बहुत लाख पैदा होंगे। यहाँ तो धूल लगती है। आहा..हा..! एक बार तो बेचरभाई राजकोट (में) बतलाने लाये थे। (संवत्) १९९९ में चातुर्मास था न ? अस्सी हजार का एक हीरा। अस्सी हजार का। डिब्बी लेकर, डिब्बी और मखमल का वह.. खड्डा.. खड्डा.. क्या कहते हैं ? उसमें था। अस्सी हजार का एक हीरा। कहा – यह धूल है, मिट्टी है। यह पर्याय आत्मा से यहाँ आयी है और आत्मा ने इसे घिसकर बनायी है (–ऐसा नहीं है)। उसे घिसते हैं न ? सराण होती है न उसकी भी ? बेल्जियम में हीरे का एक व्यक्ति हमारे पास आया था। हीरे को सराण चढ़ाते हैं। जैसे लोहे को चढ़ाते हैं वैसे। यह आत्मा कर सकता है ? मानता है, होता है उसे मानता है। होता है, उसे मैं करता हूँ – ऐसी मान्यता है। यहाँ कहते हैं न ? आहा..!

मुमुक्षु : महीने के तीन हजार देते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, तीन हजार देते हैं न। मुसलमान मेरे पास आया था। तीन हजार देते हैं। मैं अन्यत्र जाऊँ तो मुझे चार हजार मिले, परन्तु मैं सेठ के पास बहुत वर्षों से रहता हूँ। वह कहता था, बेचारा आया था, मुसलमान था। है, अभी है न ? वह मेरे पास आया था। उसके मकान में उतरे थे, वहाँ वह मुसलमान आया था। मैं इनके नीलम घिसता हूँ ? क्या कहलाता है वह ? पन्ना.. पन्ना। महीने के तीन हजार देते हैं। महीने के तीन हजार। अभी वह मुसलमान है, हों ! इनका नौकर है। मैं बाहर जाऊँ तो मुझे चार हजार मिलें परन्तु सेठ के पास बहुत वर्ष हूँ। उनके मकान में मनोहरलालजी आये थे। मनोहरलालजी बेचारे गुजर गये। आहा..! साढ़े चार बजे तो कुछ नहीं था। परन्तु फिर देखा तो किसी ने गले में फाँसी दी। अरर..! क्योंकि वह पैसा उगाहता था। पाँच लाख, एक व्यक्ति के पास ढाई लाख थे तो उसने कहा कि... क्या कहलाता है ? ईसरी। ईसरी जाना है तो ढाई लाख दो। उसमें चाहे जो हुआ। साढ़े चार बजे देखा तो किसी ने गले में फाँसी दी थी। अर र ! जगत की वह पर्याय तो होनेवाली थी। आहा..हा..!

मुमुक्षु : क्रमबद्धपर्याय टूट गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्रमबद्ध बराबर आ गयी। उस क्रम में वही पर्याय होनी थी, वह आयी। परमाणु में उस समय की वह पर्याय होनी थी, वह हुई। दूसरे निमित्त ने भी की नहीं, आत्मा ने की नहीं, पर्याय उस समय में (वैसी होनी थी)। आहा..हा..! इस प्रकार परद्रव्य का कर्ता तो है नहीं परन्तु रागादि मेरा स्वरूप है, मैं विभाव का वास्तव में कर्ता हूँ - यह भ्रमणा है। भाई! धर्म वस्तु ऐसी है। आहा..हा..!

यथार्थ ज्ञातृत्वधारा प्रगट हो... आहा..हा..! राग से भिन्न वस्तु पड़ी है। भिन्न ही है। ऐसा ज्ञाता का भान हुआ.. आहा..हा..! **तो कर्तापना छूटता है।** अन्दर से राग से भिन्न पड़ा ज्ञायक, यह तो ज्ञान है; ज्ञान है, वह राग को कैसे करे? ऐसे कर्तापना छूट जाता है। आहा..हा..! सम्यग्दृष्टि को राग और आत्मा के बीच ज्ञान छैनी से भिन्न पड़े, जानने में आया कि राग और मैं तो भिन्न ही थे, भिन्न थे तो भिन्न पड़े। भिन्न पड़े, वहाँ राग का कर्तापना छूट जाता है। आहा..हा..! ऐसी बात है, बहुत कठिन शब्द, उपदेश ऐसा कठिन है। इसलिए सोनगढ़वाले एकान्त निश्चय.. निश्चय (कहते हैं)-ऐसा करके बेचारे बोलते हैं। मार्ग दूसरा है, भाई! जन्म-मरणरहित होने का, सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की चीज़ कोई अलौकिक है। आहा..हा..! समझ में आया?

यथार्थ ज्ञातृत्वधारा प्रगट हो... यथार्थ क्या कहा? जानने में आया कि मैं राग नहीं और यह हूँ, यह यथार्थ ज्ञाताधारा नहीं। क्या कहा? यथार्थ शब्द क्यों प्रयोग किया है? वैसे तो शास्त्र पढ़कर जाना कि राग भिन्न है, मैं भिन्न हूँ - ऐसा जाना, परन्तु यह कोई ज्ञाता-धारा प्रगटी नहीं। यह तो धारणा में, लक्ष्य में लिया। आहा..हा..! पण्डितजी! ऐसी बातें हैं। बाबूलालजी! कहाँ गया तुम्हारा छोटेलालजी गया? छोटालालजी गये होंगे... आहा..हा..! है?

यहाँ कहते हैं प्रभु! एक बार तेरी ऋद्धि सुन तो सही। तेरी ऋद्धि कैसी है? तेरी ऋद्धि में ज्ञान, आनन्द और शान्ति पड़ी है, वह तेरी सम्पत्ति है, वह तेरी लक्ष्मी है। इस प्रकार राग से भिन्न पड़कर... आहा..हा..! ज्ञान सम्पदा, आनन्द सम्पदा का भान हुआ, तब से ज्ञाताधारा (प्रगट हुई और) राग का कर्तापना छूट गया। आहा..हा..! १९८ (बोल पूरा) हुआ।

जीव को अटकने के जो अनेक प्रकार हैं, उन सबमें से विमुख हो और मात्र चैतन्यदरबार में ही उपयोग को लगा दे; अवश्य प्राप्ति होगी ही। अनन्त-अनन्त काल से अनन्त जीवों ने इसी प्रकार पुरुषार्थ किया है, इसलिए तू भी ऐसा कर।

अनन्त-अनन्त काल गया, जीव कहीं न कहीं अटकता ही है न? अटकने के तो अनेक-अनेक प्रकार हैं; किन्तु सफल होने का एक ही प्रकार है—वह है चैतन्यदरबार में जाना। स्वयं कहाँ अटकता है उसका यदि स्वयं ख्याल करे तो बराबर जान सकता है।

द्रव्यलिंगी साधु होकर भी जीव कहीं सूक्ष्मरूप से अटक जाता है, शुभ भाव की मिठास में रुक जाता है, 'यह राग की मन्दता, यह अट्ठाईस मूलगुण,—बस यही मैं हूँ, यही मोक्ष का मार्ग है', इत्यादि किसी प्रकार सन्तुष्ट होकर अटक जाता है; परन्तु यह अन्तर में विकल्पों के साथ एकताबुद्धि तो पड़ी ही है उसे क्यों नहीं देखता? अन्तर में यह शान्ति क्यों नहीं दिखायी देती? पापभाव को त्यागकर 'सर्वस्व कर लिया' मानकर सन्तुष्ट हो जाता है। सच्चे आत्मार्थी को तथा सम्यग्दृष्टि को तो 'अभी बहुत बाकी है, बहुत बाकी है'—इस प्रकार पूर्णता तक बहुत बाकी है, ऐसी ही भावना रहती है और तभी पुरुषार्थ अखण्ड रह पाता है।

गृहस्थाश्रम में सम्यक्त्वी ने मूल को पकड़ लिया है, (दृष्टि-अपेक्षा से) सब कुछ कर लिया है, अस्थिरतारूप शाखाऐं-पत्ते जरूर सूख जायँगे। द्रव्यलिंगी साधु ने मूल को ही नहीं पकड़ा है; उसने कुछ किया ही नहीं। बाह्यदृष्टि लोगों को ऐसा भले ही लगे कि 'सम्यक्त्वी को अभी बहुत बाकी है और द्रव्यलिंगी मुनि ने बहुत कर लिया'; परन्तु ऐसा नहीं है। परीषह सहन करे किन्तु अन्तर में कर्तृत्वबुद्धि नहीं टूटी, आकुलता का वेदन होता है, उसने कुछ किया ही नहीं॥१९९॥

१९९, **जीव को अटकने के जो अनेक प्रकार हैं,...** अटकने के अनेक प्रकार हैं। पर का करूँ, पर मेरी चीज़ है, पर से मुझे लाभ होता है, राग से मुझे लाभ होता है – ऐसे

अटकने के, रुकने के, मिथ्यात्व के अनेक प्रकार हैं। आहा..हा..! मिथ्यात्व के भी स्थूलरूप से असंख्य प्रकार हैं। सूक्ष्मरूप से मिथ्यात्व के अनन्त प्रकार हैं। यह बन्ध अधिकार में लिया है। समयसार। मैं पर को जिलाता हूँ, पर को मार सकता हूँ, यह मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व का एक भाग है - ऐसा वहाँ लिखा है। वहाँ पूरा मिथ्यात्व नहीं आया, वहाँ लिखा है। एक मिथ्यात्व का यह भाग है कि मैं पर को जिला सकता हूँ, मैं पर को सुविधा दे सकता हूँ, मैं पर को सुखी कर सकता हूँ, पर को मैं मोक्ष करा सकता हूँ, यह भी मिथ्यात्व का एक भाग ऐसा है। समझ में आया? मिथ्यात्व के तो असंख्य प्रकार हैं। उसमें से यह एक मिथ्यात्व का भाग है। रतनचन्दजी! आहा..हा..!

आज आया है। जैनपथप्रदर्शक में लिखाओ, आत्मधर्म में लिखाओ, ऐसे भावलिंगी साधु होते हैं, द्रव्यलिंगी ऐसे होते हैं। द्रव्यलिंगी चाहे जो हो, सात गुण भले हो, अट्ठाईस में से सात हो तो भी अपने को वन्दनीय है - ऐसा लिखा है। नाम नहीं दिया। पत्र आते हैं, कोई लिखते हैं बेचारे। अट्ठाईस मूलगुण में से सात गुण हो तो भी अपने से तो अधिक हैं। यहाँ तो कहते हैं अट्ठाईस मूलगुण में से एक गुण तोड़े तो उसके पास अट्ठाईस भी नहीं हैं। कोई पत्र आया है, बड़ा लम्बा आया है। पत्र आया है। आता है, लोग लिखते हैं। तुम यदि वर्तमान मुनि को मानो और वन्दन करो तो लोग तुम्हें करोड़ों रुपये देंगे, तुम्हारी कीर्ति बहुत बढ़ जायेगी। रुपये आवें या न आवें, यहाँ कहाँ हमारे पड़ी है? हम किसी को कहते नहीं कि तुम रुपये दो। यहाँ तो करोड़पति आते हैं। एक पाई दो, सौ दो, पचास दो, हमने तो किसी को कभी कहा नहीं? आहा..हा..! समझ में आया? तो भी कहा नहीं? एक सेठ आये थे। दस मिनिट बैठे थे। अन्दर मेरे कमरे में (बैठे थे)। पैसे नीचे रखे। मैंने कहा कितने हैं यह? बोले नहीं। देखा तो पचास हजार। दस-दस हजार के पाँच नोट। अरे! यह तो हम रखते नहीं, एक पाई भी (रखते नहीं) हमने तो रामजीभाई को दे दिये। पाँच मिनिट में पचास हजार। ऐसे दस-दस हजार तो बहुत आते हैं। अपने अनुसूया बहिन, आनन्दभाई की बहिन (के) घर में एक दिन रहे थे तो दस हजार दिये थे। मुम्बई में एक दिन रहे थे। दस हजार (रखे)। हम किसी का लेते नहीं और देते नहीं।

इन हीराभाई की दुकान में आसाम गये थे। आसाम... आसाम ये भाई हैं न? हीरालाल काला सामने बैठे हैं, वहाँ इनकी दुकान है। दस मिनिट गये तो काजू और द्राक्ष सबको बाँटे और दस हजार दिये। मैंने पूछा - किसके हैं? बोले नहीं। दुकान के हैं, दुकान

के हैं। दस मिनिट के दस हजार। हीरालाल, भावनगर के बड़े गृहस्थ हैं, बहुत उदार हैं और नरम व्यक्ति है तथा वहाँ अपने कलकत्ता में मिश्रीलालजी के पास पच्चीस-तीस करोड़ हैं न? कलकत्ता में थे न? कौन से वर्ष? १९८४। जैनतिथि, दूज के पहले एकम के दिन आये मिश्रीलालजी गंगवाल। दस हजार का नोट लेकर आये। कल जयन्ती है तो मैं दस हजार देता हूँ। यह तो पुण्य का फल जगत में आता है, उसमें आत्मा को क्या? आहा..! भिखारी ऐसा मानता है कि मुझे पैसा मिला। भिखारी है, रंक है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : वरांका लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वरांका लिखा है, वरांका लिखा है। सिद्धान्त में कलश में वरांका (लिखा है)। बड़ा राजा है, करोड़ की आमदनी है, सब भिखारी है। अपनी लक्ष्मी की खबर नहीं और दुनिया की जड़ की लक्ष्मी मेरी, भिखारी! भीख माँगता है कि मुझे पैसा दो और स्त्री दो और लड़का दो, इज्जत दो। भिखारी है।

मुमुक्षु : सेठियों को भिखारी कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : सेठिया किसे कहना? सेठिया बैठा, वह हेठिया है। आहा..हा..! यहाँ तो कृष्णकुमार दरबार भी आये थे। भावनगर दरबार। मानस्तम्भ (प्रतिष्ठा) में आये थे। दो-तीन बार आये थे। करोड़ की आमदनी है। मैंने तो कहा था, राजन! एक महीने में पाँच लाख माँगे, लाख माँगे, वह छोटा भिखारी है और करोड़ माँगे, वह बड़ा भिखारी है। हमें कहाँ उससे पैसे लेने थे? दरबार आये थे। तथापि उसने स्वीकार किया - महाराज! नरम व्यक्ति थे। कृष्णकुमार थे, गुजर गये। भावनगर दरबार थे। उसमें क्या आया? तेरा करोड़ क्या, अरब रुपये हों तो क्या? वह तो धूल है। अनन्त लक्ष्मी भगवान आत्मा में पड़ी है, उसकी तो तुझे कीमत नहीं। आहा..हा..!

अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन... प्रभु! क्या कहें? इन अनन्त गुण की संख्या का अन्त नहीं। क्या है यह? अन्दर इतने गुण हैं कि एक, दो, तीन करते-करते अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. (करो उसमें) यह अन्तिम गुण है - ऐसा उसमें नहीं है। यह क्या वस्तु है, समझ में आया? इतनी अनन्त संख्या आत्मा में पड़ी है कि यह अनन्त का अन्तिम धर्म है, अन्तिम है - ऐसा कुछ है नहीं। क्या कहते हैं यह? अनन्त.. अनन्त.. को अनन्त.. अनन्त.. गुणा करके अनन्त की अन्तिम दशा यह गुण है - ऐसा आत्मा में नहीं

है। आहा..हा..! अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. गुण से विराजमान प्रभु, जिसका अन्त नहीं, संख्या का अन्त नहीं। क्या है यह? यह क्या कहते हैं? क्या कहते हैं? है तो इतने क्षेत्र में। शरीरप्रमाण आत्मा भगवान है अन्दर, परन्तु उसके गुण की संख्या अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त को अनन्त गुणा गुणित करो तो भी अनन्त वर्ग करो तो भी यह अन्तिम गुण है – ऐसा कभी नहीं होता। यह क्या चीज़ है? भाई! प्रभु! तूने तेरी वस्तु, तेरी लक्ष्मी अनन्त-अनन्त पड़ी है, तुझे खबर नहीं है। आहा..हा..!

यह यहाँ कहते हैं, जीव को अपने में आने का (प्रकार) एक ही है। और अटकने के अनेक हैं। समझ में आया? **उन सबमें से विमुख हो...** आहा..हा..! कोई राग का कर्ता और कोई पुण्य का कर्ता और कोई अपने बोलने की क्रिया लोगों में ठीक पड़े, उसमें प्रसन्नपने का कर्ता (होता है)। सब मिथ्यात्वभाव है। आहा..हा..! अटकने के बहुत स्थान हैं।

मुमुक्षु : सब झूठे।

पूज्य गुरुदेवश्री : झूठी तो पर्याय झूठी है। द्रव्य तो सत्साहेब बड़ा पड़ा है। आहा..हा..! यह तो पहले कहा न! द्रव्यस्वभाव उछलकर कभी विकार में नहीं आता। आहा..हा..! भाई! यह तो धर्म कथा है। धर्म कथा में वीतरागता उत्पन्न हो, वह धर्म कथा है। जो राग से लाभ कहे, वह धर्म कथा नहीं, वह तो पाप कथा, विकथा है। आहा..हा..! अपने अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त (गुण हैं)। क्या है यह? जैसे क्षेत्र का अन्त नहीं, तो है क्या? आहा..हा..!

एक आत्मा में क्या, एक परमाणु में लो न! जितने गुण एक आकाश में है, उतने गुण एक परमाणु में है। आकाश के एक अस्तित्वगुण की चौड़ाई अमाप.. अमाप.. अमाप है और परमाणु में अस्तित्वगुण इतने में है। क्या है यह? समझ में आया? और एक परमाणु में भी आकाश के प्रदेश से अनन्तगुने गुण हैं। भगवान आत्मा में भी अनन्तगुने गुण हैं, जिनका अन्त नहीं कि यह अन्तिम गुण है। ऐसा प्रभु! वह परमाणु जड़ेश्वर है। जड़ेश्वर है-जड़ का स्वयं ईश्वर है। आहा..हा..! उसमें जड़ के अनन्त गुण कितने हैं? कि यह अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. में परमाणु में यह अन्तिम गुण है, ऐसा नहीं। यह क्या है? आहा..हा..! गजब बात है, प्रभु! क्या कहें? कभी विचार में आया नहीं, विचार में लिया नहीं और जगत के व्यर्थ विचार में पूरे दिन मर गया, उसमें और उसमें.. आहा..हा..! क्या है यह?

भगवान ने कहा है, प्रभु! तुझमें इतने गुण हैं कि अनन्त-अनन्त संख्या करो, जैसे एक पाँच को पाँच बार गुणा करो तो पाँच को पाँच द्वारा गुणा करने पर पहले पच्चीस हुए। फिर पच्चीस को पाँच से गुणा करो, ऐसे पाँच बार गुणा करो तो वह उसका वर्ग कहलाता है। इसी प्रकार एक अनन्त को इतनी संख्या को एक बार अनन्त से गुणा करो, उसकी संख्या आवे उसे दूसरी बार, ऐसे अनन्त बार गुणा करो। आहा..हा..! अनन्त गुण इतने हैं। अनन्त को अनन्त बार गुणा करो, एक बार गुणा किया, अनन्ती संख्या, फिर दूसरी संख्या आयी, उसे उससे गुणा करो, ऐसे अनन्त बार गुणा करो। वकील! तुम्हारे कानून में ऐसा कभी नहीं आया होगा। आहा..हा..! ऐसे अनन्त गुण का नाथ प्रभु, भगवान तेरी वस्तु है। आहा..हा..! तुझे तेरी कीमत नहीं और तेरी वस्तु में नहीं, उसकी तुझे कीमत और महिमा आयी है, वह भ्रमणा है। आहा..हा..!

द्रव्यलिंगी साधु हुआ, वह यहाँ आगे कहेंगे। **जीव कहीं सूक्ष्मरूप से अटक जाता है,...** आहा..हा..! इस शुभराग की क्रिया की मिठास में अटक जाता है परन्तु अनन्त-अनन्त गुण की संख्या का पार नहीं, अन्त नहीं,—ऐसे भगवान के प्रति प्रेम नहीं करता, उसकी ओर नजर नहीं करता। आहा..हा..!

मुमुक्षु : उसकी ओर नजर करने पर कितने प्रकार के मिथ्यात्व टूट जाते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक समय में मिथ्यात्व टूट जाता है।

मुमुक्षु : कितने प्रकार के मिथ्यात्व?

पूज्य गुरुदेवश्री : जहाँ अन्तर्दृष्टि हुई, ज्ञान समयान्तर में सम्यग्ज्ञान हो जाता है। सम्यग्दर्शन हुआ तो ज्ञान समयान्तर में सम्यग्ज्ञान हो जाता है। आहा..हा..! यह तो बताया न? १९१ कलश, प्रज्ञाछैनी। यह सब इतना-इतना कहा परन्तु होगा कितने समय में? राग से ऐसा है और अनन्त गुण हैं और अमुक है। तो कहा, 'रभसा' 'रभसा' का अर्थ शीघ्र किया और 'रभसा' का अर्थ एक समय किया। एक समय में। भगवान भूल में है तो एक समय में भूल तोड़कर भगवान हो जाता है। आहा..हा..! पहले आ गया है। ज्ञाता के अभ्यास से ज्ञाता हो जाता है। आहा..हा..! कोई व्यवहार क्रिया, दान, दया, और मन्दिर बनाया और मन्दिर में बहुत पूजा की, इसलिए ज्ञातापने का भान हो जायेगा (-ऐसा नहीं है)। आहा..हा..! ऐसी वस्तु है। दुनिया को कठिन पड़े, इसलिए फिर लोग विरोध करते

हैं। उनकी दृष्टि में नहीं जँचता, इसलिए विरोध करते हैं। उसमें कुछ नहीं। करे, ऐसा है। ऐसी चीज़ है। आहा..हा..!

एक परमाणु की सत्ता इतने में। आकाश की सत्ता अमाप.. अमाप की सत्ता इतनी चौड़ी तो भी सत्ता जो है, वह एक ही है। आत्मा में सत्ता नाम का गुण है, वह असंख्य प्रदेश में है और आकाश का सत्ता गुण है, वह अनन्त प्रदेश में व्यापक है। क्या है यह? और परमाणु में सत्ता गुण एक प्रदेश परमाणु है, उतने में है। आहा..हा..! वहाँ क्षेत्र की महत्ता की आवश्यकता नहीं, उसकी शक्ति की महत्ता की आवश्यकता है। ऐसी बात है, भाई! आहा..हा..!

पूर्णानन्द का नाथ प्रभु अन्दर विराजता है, उसे राग से भिन्न करके, सन्धि तोड़ दे। सन्धि है, उसको ज्ञान में लेकर पृथक् कर दे। आहा..हा..! अटकने के अनेक प्रकार हैं। है? **चैतन्यदरबार में ही उपयोग को लगा दे;...** आहा..हा..! सबसे विमुख होकर, स्वभावसन्मुख होकर; भेद, विशेष, निमित्त, राग और संयोग सबसे विमुख होकर.. अनादि से परसन्मुख है, उन सबसे विमुख होकर... आहा..हा..! तेरा मुख पलट दे। आहा..हा..! बहुत सूक्ष्म बात, बापू! न पकड़ में आये, न जँचे, उसे ऐसा लगता है यह तो अकेली निश्चय की बातें करते हैं। ऐसे करने से कुछ होता है, व्यवहार करने से (होता है), यह बात ही नहीं करते, बापू! भाई! वह व्यवहार राग है। राग की सीमा है। राग की सीमा है। सीमा अर्थात् विकृतभाव की हद है और अविकृत स्वभाव की हद नहीं, अपरिमित स्वभाव है। परिमित सीमावाली वस्तु है, उसे छोड़ा जा सकता है परन्तु असीम वस्तु है, उसे नहीं छोड़ा जा सकता। तेरी मान्यता भले हो, परन्तु वह वस्तु अन्दर से छूट नहीं सकती। आहा..हा..! समझ में आया? आहा..हा..! बहुत कठिन काम। वस्तुस्थिति ऐसी है, भाई! भगवान कहते हैं, इसलिए ऐसी वस्तु है – ऐसा नहीं है। परन्तु वस्तु ऐसी है – ऐसा भगवान ने जाना और कहा है। आहा..हा..!

अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. क्षेत्र को भी ज्ञान की पर्याय जान लेती है। जान लेती है, इसलिए वहाँ अनन्त का अन्त आ गया है – ऐसा नहीं है। अर्थात् एक आत्मा में अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त गुण हैं। उन्हें भगवान ने जान लिया; इसलिए वहाँ अन्त आ गया – ऐसा नहीं है। जुगलजी! ऐसी बात है, बापू! क्या हो? भाई!

अरे रे! परम सत्य सुनने को नहीं मिलता, वह कहाँ विचार करे और कहाँ जाये? किस ओर जाये? आहा..हा..!

यह यहाँ बहिन कहती है, **चैतन्यदरबार में ही उपयोग को लगा दे; अवश्य प्राप्ति होगी ही।** आहा..हा..! प्रभुत्व की प्रभुता तुझे बैठे तो प्रभुता गुप्त नहीं रह सकती। तुझे प्रभुता की प्रभुता रुचे तो, वह प्रभुता गुप्त नहीं रह सकती। दर्शन में प्रसिद्धि में आ जाती है। आहा..हा..! समझ में आया? वहाँ अमेरिका-फमेरिका में यह सब कुछ नहीं है। आहा..हा..! और यह अवसर आया, भाई! यह करनेयोग्य है। आहा..हा..! **चैतन्यदरबार में ही उपयोग को लगा दे; अवश्य प्राप्ति होगी ही।** होगी ही। प्रभुता की प्रभुता तुझे रुचे और पर्याय में प्रभुता प्रगट न हो - ऐसा नहीं बनता। समझ में आया? ऐसी बात है।

अनन्त-अनन्त काल से अनन्त जीवों ने इसी प्रकार पुरुषार्थ किया है,.. अनन्त जीवों ने ऐसा पुरुषार्थ किया है, तू अकेला नया नहीं है। आहा..हा..! राग की जेल में से निकलकर अनन्त-अनन्त जीव चैतन्य दरबार में घुस गये। **इसलिए तू भी ऐसा कर।** अनन्त जीवों ने ऐसा किया है, वैसा तू भी कर।

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाई! अन्तर में विचार करो कि तुम्हें आत्मा का प्रेम कितना है? और स्त्री-पुत्रादि के प्रति कितना प्रेम है? अन्दर में जो पुण्य -पाप की वृत्तियाँ होती हैं, वही मैं हूँ - ऐसा मानकर उनकी प्रीति करता है परन्तु आत्मा कौन है? - उसकी समझ नहीं करता। बाहर में 'यह ठीक है और यह ठीक नहीं है' - ऐसा मानकर अटक जाता है परन्तु आत्मा को तो पहचानता नहीं; इस प्रकार परवस्तु में इष्ट-अनिष्ट की कल्पना करके अज्ञानी तो संसार में परिभ्रमण किया करता है और ज्ञानी तो पर से भिन्न आत्मा को पहचानकर निर्मलपर्याय प्रगट करके सिद्ध हो जाता है।

(पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, आतम के हित पंथ लाग! में से)

भाद्र कृष्ण-९, रविवार, दिनाङ्क २७-०८-१९७८
वचनामृत-१९९, २०० प्रवचन-७७

१९९ बोल चलता है। यहाँ से है। दूसरा पेराग्राफ है न? दूसरा पेराग्राफ। **अनन्त-अनन्त काल गया, जीव कहीं न कहीं अटकता ही है न?** कहीं न कहीं, किसी राग के प्रेम में, व्यवहार के प्रेम में (अटकता है)।

मुमुक्षु : पैसे के प्रेम में।

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसा और शरीर यह चीज़ तो और दूर रह गयी। आहा..हा..! पैसा, शरीर, कुटुम्ब के प्रेम में और आगे जाने पर अन्दर शुभराग आता है, अशुभराग के प्रेम में और आगे जाने पर शुभराग के प्रेम में अनेक प्रकार से अटकने के मार्ग हैं। है न? **अटकने के तो अनेक-अनेक प्रकार हैं;...** है परन्तु **सफल होने का एक ही प्रकार है..** आहा..हा..! **वह है चैतन्यदरबार में जाना।** आहा..हा..! भगवान अनन्त गुण का दरबार है, आत्मा बादशाह है और अनन्त गुण की उसकी प्रजा है। उसके स्वदेश में जाना। आहा..हा..! गोदिकाजी! यह जयपुर छोड़कर अमेरिका में भटकते हैं न? यह तो दृष्टान्त है। आहा..हा..!

अपना स्वदेश आनन्दधाम प्रभु, अनन्त गुण का दरबार आत्मा.. आहा..हा..! उसमें प्रवेश करना, यह एक ही छूटने का रास्ता है। संसार के बंधन में से छूटने का यह एक रास्ता है, भाई! आहा..! यह छहढाला में भी आता है न?

लाख बात की बात यही निश्चय उर लाओ।
तोड़ी सकल जग द्वंद्व फंद, निज आतम ध्याओ।

प्रभु आनन्द का धाम नाथ है.. आहा..हा..! वहाँ दरबार में प्रवेश करो। आहा..हा..!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अटकता है, इसलिए फँसता है। यह अटकता है अन्दर। यह कहेंगे यहाँ। **स्वयं कहाँ अटकता है, उसका यदि स्वयं ख्याल करे तो बराबर जान सकता है।** आहा..हा..! किसी राग के प्रेम में, किसी शरीर के प्रेम में, किसी कर्म के निमित्त से मुझमें विकार होता है – ऐसे कर्म के प्रेम में (अटकता है)। आहा..हा..! समझ में आया? कोई गुण-गुणी के भेद का विकल्प आता है, उसके प्रेम में (अटकता है)। आहा..हा..! कठिन बात है, भाई! भेद का विकल्प आता है, उसमें अटकता है। अटकने के तो अनेक प्रकार हैं; छूटने का एक प्रकार है। चैतन्य भगवान अनन्त गुण के दरबार में अन्दर जाना। आहा..हा..! समझ में आया? यह एक ही रास्ता है। **स्वयं कहाँ अटकता है, उसका यदि स्वयं ख्याल करे तो बराबर जान सकता है।** अब दृष्टान्त देते हैं।

द्रव्यलिंगी साधु... आहा..हा..! **द्रव्यलिंगी साधु होकर भी जीव कहीं सूक्ष्मरूप से अटक जाता है,...** आहा..हा..! कहाँ? **शुभभाव की मिठास में रुक जाता है,..** आहा..हा..! पंच महाव्रत का राग, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का राग, कहीं न कहीं सूक्ष्मरूप से (अटक जाता है)। द्रव्यलिंगी दिगम्बर अनन्त बार हुआ परन्तु सूक्ष्म राग के प्रेम में वहाँ रुक जाता है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : शुभराग की मिठास कैसी होती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग की मिठास अर्थात् राग का प्रेम, वह मिठास है। क्योंकि शुभ बहुत किया, स्त्री छोड़ी, कुटुम्ब छोड़ा, दुकान-धन्धा छोड़ा तो मैंने कितना किया! ऐसे शुभराग की मिठास के प्रेम में रुक जाता है। आहा..! समझ में आया? आहा..हा..!

'**यह राग की मन्दता,..**' आहा..हा..! ऐसी राग की मन्दता कि उसकी चमड़ी उतारकर नमक छिड़के तो क्रोध न करे – ऐसा शुभभाव वहाँ है। तो मुझमें बहुत हो गया, मैंने बहुत किया – ऐसी दृष्टि वहाँ रुक गयी। आहा..हा..! शास्त्र का ज्ञान बहुत किया, कहने की शक्ति आयी।

'सब शास्त्रन के नय धारि हियै, मत मंडन खंडन भेद लिये।
यह साधन बार अनंत कियौ, तदपि कछु हाथ हजू न पर्‌यो।
अब क्यों न विचारत है मन से, कछु और रहा उन साधन से।
बिन सद्‌गुरु कोई न भेद लहे, मुख आगल ह्वै कह बात कहे॥'

आहा..हा..! भगवान तो एक समय की पर्याय के समीप विराजता है, पूरा भगवान। आहा..हा..! सूक्ष्म बात है, प्रभु!

अनन्त काल से भटकता है, भ्रमता है। नरक और निगोद के भव भी अनन्त किये, मनुष्य के अनन्त भव किये। अनन्त काल में एक बार मिले तो भी अनन्त बार भव किये। आहा..हा..! उससे असंख्यगुने अनन्त नरक के (भव) किये। मनुष्य की अनन्त संख्या से, अनन्त काल में एक बार मनुष्यपना मिले तो भी अनन्त बार मनुष्य हुआ, मनुष्य की उस अनन्त संख्या की अपेक्षा नरक की संख्या में असंख्यगुना अनन्त बार गया। आहा..हा..! मनुष्य तो इतने थोड़े हैं और नरक में अनन्त बार कहाँ से गया? पशु की संख्या बहुत बड़ी है, भाई! तिर्यंच की-पशु की संख्या बहुत है। वहाँ से नरक में अनन्त बार गया। आहा..हा..! उससे असंख्यगुने अनन्त तो स्वर्ग के भव किये। एक मनुष्यभव और असंख्य नरक के। इस प्रकार अनन्त मनुष्य के और उससे असंख्यगुने अनन्त नरक के तथा एक नरक का भव और असंख्य स्वर्ग के भव। आहा..हा..! स्वर्ग में बहुत बार गया है। शुभभाव की मिठास के कारण वहाँ अटक कर अनन्त बार गया। आहा..हा..! नरक के अनन्त भव की अपेक्षा स्वर्ग के अनन्त असंख्यगुने किये हैं। आहा..हा..! यह अन्दर में राग की मिठास बहुत की, मैंने इतना किया, इतना किया, स्त्री-परिवार छोड़ा, धन्धा छोड़ा, हम तो दया पालते हैं, महाव्रत पालते हैं। आहा..हा..!

ऐसी मिठास में '**यह राग की मन्दता,...**' आहा..! मुझे राग की-कषाय की कितनी मन्दता है। '**यह अट्ठाईस मूलगुण,..**' यह अट्ठाईस मूलगुण राग है। आहा..हा..! अभी तो एक पत्र ऐसा आया है कि अट्ठाईस मूलगुण न हो तो उसके पास चौदह तो हैं। चौदह न हों तो सात तो हैं न! अपने से तो अधिक हैं न! अरे! भगवान! यह क्या करता है? समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं अट्ठाईस मूलगुण भी अनन्त बार पालन किये। अभी तो ऐसे अट्ठाईस मूलगुण है ही नहीं हैं। क्योंकि चौका कराते हैं। समाचार-पत्र में आता है, अमुक सेठ चौका लेकर आये हैं, अमुक सेठ चौका लेकर आये हैं तो लोग.. लोग (इकट्ठे हो जाते हैं)। अर..र! ऐसी बात। समझ में आया?

मुमुक्षु : मुनि को भूखे मारे?

पूज्य गुरुदेवश्री : भूखे कौन मारे ? मुनि है कहाँ ? भाई ! कठिन बात है, प्रभु ! क्या हो ? किसी व्यक्ति के लिये अपना अनादर नहीं है। वस्तु की स्थिति ऐसी है, भाई ! इस राग की मिठास में रुक गया, भाई ! अट्ठाईस मूलगुण हों, उनकी मिठास में रुक गया, वह भी परिभ्रमण का कारण है। आहा..हा.. !

'**बस यही मैं...**' राग की मन्दता, अट्ठाईस मूलगुण वह मैं। ओहो.. ! '**यही मोक्ष का मार्ग..**' है – ऐसा माना। **इत्यादि किसी प्रकार सन्तुष्ट होकर अटक जाता है;...** बस, वहाँ सन्तोष मानकर रुक जाता है परन्तु मैं इस विकल्प की क्रिया से भिन्न भगवान पूर्णानन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु हूँ। राग से भिन्न हूँ। जैसे दूध और पानी भिन्न है, वैसे भगवान आत्मा और राग अत्यन्त भिन्न है। इस प्रकार राग से भिन्न भगवान आत्मा की ओर का लक्ष्य, दृष्टि नहीं की; बाकी तो जानपना भी अनन्त बार किया। आहा..हा.. ! ऐसी अट्ठाईस मूलगुण की क्रिया भी अनन्त बार की। आहा..हा.. ! समझ में आया ? **सन्तुष्ट होकर अटक जाता है; परन्तु यह अन्तर में विकल्पों के साथ एकताबुद्धि तो पड़ी ही है...** आहा..हा.. ! क्योंकि राग से भिन्न भगवान आत्मा का तो अनुभव नहीं और अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प में एकताबुद्धि तो पड़ी ही है। आहा..हा.. ! है ? **उसे क्यों नहीं देखता ?...** आहा..हा.. ! राग की मन्दता के भाव में एकत्वबुद्धि है, वह क्यों नहीं देखता ? और राग की मन्दता देखकर मैंने बहुत किया और मैंने बहुत त्याग किया, मुझे बहुत त्याग हो गया... आहा..हा.. ! अशुभभाव का भी मैंने त्याग किया। कुटुम्ब-कबीला, धन्धा-पानी का त्याग किया। परन्तु क्या किया ? प्रभु ! तूने कुछ नहीं किया। आहा..हा.. ! यह विकल्प जो शुभराग अन्दर है, उसकी एकताबुद्धि महामिथ्यात्व है। आहा..हा.. ! समझ में आया ?

अन्तर में यह शान्ति क्यों नहीं दिखायी देती ? क्या कहते हैं ? आहा..हा.. ! अट्ठाईस मूलगुण पालन करता हूँ, मन्द कषाय है परन्तु उसमें शान्ति चाहिए, वह दिखायी नहीं देती – ऐसा कभी विचार नहीं किया। शान्ति, अकषायभाव भगवान का अकषाय स्वभाव, उसकी शान्ति पर्याय में आनी चाहिए, वह शान्ति तो दिखायी नहीं देती और ऐसे कषाय की मन्दता में चला गया। देह छूट गयी और परिभ्रमण में गया। आहा..हा.. ! है ? दो बातें की हैं। एक तो राग की एकताबुद्धि का ख्याल नहीं आता और मुझे अन्दर में शान्ति नहीं दिखती। शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. जो शान्तस्वरूप भगवान आत्मा है, उसकी पर्याय में शान्ति की व्यक्तता, शान्ति आनी चाहिए, वह तो आयी नहीं। आहा..हा.. ! बात

सूक्ष्म, भाई! आहा..! यह तो अनन्त काल में कैसे अटका और अटकने में मैंने बहुत किया – ऐसा मान लिया, परन्तु कुछ किया नहीं। आहा..हा..! जो करना था, वह किया नहीं और नहीं करने का था, वह मैंने किया। आहा..हा..! **उसे क्यों नहीं देखता ?** –एक बात। **अन्तर में यह शान्ति क्यों नहीं दिखायी देती ?** आहा..हा..! **पापभाव को त्यागकर 'सर्वस्व कर लिया'...** आहा..हा..! ऐसा मान लिया। अशुभभाव का त्याग किया। हिंसा, झूठ, चोरी (किये) नहीं तो मैंने बहुत किया – ऐसा मान लिया। आहा..हा..! सर्वस्व कर लिया – ऐसा **मानकर सन्तुष्ट हो जाता है।**

सच्चे आत्मार्थी को तथा सम्यग्दृष्टि को तो.. आहा..हा..! क्या कहते हैं ? अशुभराग का त्याग किया तो मैंने बहुत किया – ऐसा मान लिया और सम्यग्दृष्टि को.. आहा..हा..! आत्मार्थी को (अर्थात्) जिसे आत्मा का प्रयोजन है, शुद्ध चिदानन्द प्रभु, आहा..हा..! उसकी दृष्टि हुई, सम्यग्दर्शन हुआ **तो 'अभी बहुत बाकी है,...'** क्या कहते हैं ? सम्यग्दर्शन हुआ तो भी बहुत बाकी है। अभी चारित्र, शुक्लध्यान, केवलज्ञान (बाकी है), भाई! जबकि यह मानता है कि कषाय मन्द किया और अशुभ छोड़ा तो मैंने बहुत किया। सम्यग्दृष्टि को अपना अनुभव हुआ तो (ऐसा लगता है) मुझे अभी बहुत करना बाकी है। समझ में आया ? आहा..हा..! ***ये सब व्याख्यान छपानेवाले हैं।*** दिये न दस हजार ? हीरालालभाई ने। ***यह व्याख्यान छपानेवाले हैं। बहुत व्याख्यान होंगे क्योंकि अभी तो यहाँ तक आये वहाँ पौने तीन महीने तो हुए। इतने व्याख्यान हो गये। ७७ व्याख्यान हो गये, लो! अभी तो २४३ (बोल) बाकी हैं। ४४३ हैं न ? ४४३। २४३ बाकी हैं। आहा..हा..!***

सच्चे आत्मार्थी को... अपने शुद्ध चैतन्य के प्रयोजन की दृष्टि प्रगट हुई, मैं तो पूर्ण आनन्दस्वरूप हूँ, पूर्ण आनन्द, पूर्ण केवलज्ञान का पिण्ड हूँ—ऐसे अनुभव में दृष्टि हुई और प्रतीति में आया कि पूरा आत्मा पूर्ण शुद्ध है। आनन्द का अंश वेदन में आया। आहा..हा..! शान्ति भी अंशत: वेदन में आयी तो उसे ऐसा लगता है कि अरे रे! मुझे तो अभी बहुत करना बाकी है। आहा..! द्रव्यलिंगी कहता है कि मैंने बहुत किया, जबकि सम्यग्दृष्टि कहता है कि मुझे अभी बहुत बाकी है। आहा..हा..! ऐसी बात है, बापू! ओहो! लोगों को दु:ख लगता है कि यह तो साधुपना (मानते नहीं)। यहाँ तो साधुपना कैसा होता है, उसकी बात चलती है। किसी व्यक्ति की बात नहीं है। आहा..हा..!

सम्यग्दृष्टि को अन्दर में ऐसा लगता है, कार्तिकेयानुप्रेक्षा में एक गाथा है कि सम्यग्दृष्टि को आत्मा का अनुभव हुआ, आनन्द का स्वाद आया तो ऐसा मानता है कि मैं तो पामर हूँ। कहाँ केवलज्ञान, कहाँ यथाख्यातचारित्र। मैं तो पर्याय में पामर हूँ, द्रव्य में प्रभुता है। भगवान हूँ, द्रव्य से मैं प्रभु हूँ, पर्याय में पामर हूँ। आहा..हा..! मुझे अभी बहुत करना बाकी है। स्वरूप में रमणता करके चारित्र करना, उसमें उग्ररूप से एकाग्र होकर शुक्लध्यान करना, उसमें एकाग्र होकर केवलज्ञान प्रगट करना, बहुत बाकी है, प्रभु! आहा..हा..!

मुमुक्षु : सम्यग्दृष्टि कृतकृत्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह दृष्टि की अपेक्षा से कृतकृत्य है। स्थिरता की अपेक्षा से बहुत बाकी है। पर्याय में अभी कृतकृत्य नहीं हुआ। आहा..हा..! वह तो मुक्तस्वरूप है, उसकी दृष्टि में मुक्तस्वरूप आया तो पर्याय में मुक्ति का अंश प्रगट हुआ परन्तु अभी पूर्ण मुक्ति नहीं, उसकी अन्दर में झंखना है। आहा..हा..! अरे! अभी तो मुझे कहाँ पहुँचना है! केवलज्ञान.. आहा..हा..! (लेना है)। अभी बहुत बाकी है। मिथ्यादृष्टि अट्ठाईस मूलगुण पालन करके बहुत किया – ऐसा मानता है। जबकि सम्यग्दृष्टि को अनुभव हुआ, भव का अन्त आ गया, तथापि अभी मुझे बहुत करना बाकी है – ऐसा मानता है। दोनों बातों में अन्तर है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : .....कहते हैं कि मुझे मोक्ष नहीं चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो इच्छा नहीं है। 'भव-मुक्ति में भी वर्ते एक स्वभाव जब' आहा..हा..! अपूर्व अवसर में आता है। 'भव-मुक्ति में भी वर्ते एक स्वभाव जब' वीतरागता वर्तती है। बन्ध का नाश करूँ और मोक्ष को लूँ – ऐसा (नहीं), वीतरागभाव दृष्टि में आया है। आहा..हा..! बन्ध का नाश करूँ ऐसा नहीं और मोक्ष की पर्याय प्रगट करूँ – ऐसी इच्छा नहीं। आहा..हा..! भावना में ऐसा है। मेरी भावना पूर्ण आनन्दमय पूर्ण हो जाओ। आहा..हा..!

मुमुक्षु : भावना और इच्छा में क्या अन्तर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह (इच्छा) विकल्प है और भावना अन्दर में एकाग्रता है। समझ में आया? श्रीमद् ने कहा। श्रीमद् राजचन्द्र, यह तो गुजराती हैं।

अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे ?

गुजराती है। (इसका हिन्दी अनुवाद) ऐसा है।

अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा,
कब होऊँगा बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जब। आहा..हा..!
सम्बन्धों का बन्धन तीक्ष्ण छेद कर,
विचरूँगा कब महत्पुरुष के पंथ जब॥

वीतरागता के पंथ में हम कब पूर्णानन्द में रमेंगे ? **अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा,**

यह प्रश्न हमारे (संवत्) १९८० के साल में हुआ था। १९८०, कितने वर्ष हुए ? ५४। व्याख्यान चलता था। तब हजारों लोग, पन्द्रह सौ लोग। अपूर्व अवसर आया, तो हमारे एक गुरुभाई साधु थे, उन्होंने कहा, अपूर्व अवसर की बातें करते हैं और मुनिपना तो लेते नहीं। अरे! सुन तो सही, भाई! १९८० की बात है। ५४ वर्ष हुए। सम्यग्दृष्टि भावना करता है। समझ में आया ? अन्दर एकाग्रता में भावना करता है कि मैं पूर्ण एकाग्र कब होऊँ ? आहा..हा..! समझ में आया ? बड़ा विवाद, दृष्टि विपरीत थी। उन्होंने अपूर्व अवसर गाया है और मुनिपना तो लिया नहीं। अरे! भाई! वह तो वस्त्रसहित मुनिपना मानते थे न! वस्त्रसहित। धूल में भी मुनि नहीं। वह तो द्रव्यलिंग भी नहीं।

मुमुक्षु : मिथ्यालिंगी ?

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यादृष्टि कुलिंगी है। वस्त्रसहित मुनिपना मानना, वह तो मिथ्यादृष्टि कुलिंगी है। वस्तु ऐसी है, भाई! यह कोई व्यक्ति के लिये बात नहीं। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। समझ में आया ? अरे! नग्न मुनि हो जाये, परन्तु अट्ठाईस मूलगुण पक्के न हों तो वह भी मिथ्यादृष्टि कुलिंगी है। द्रव्यलिंगी पूर्ण है ही नहीं। द्रव्यलिंगी तो अट्ठाईस मूलगुण निरतिचार (पालता है)। प्राण जाये तो भी उसके लिये बनाया हुआ आहार और पानी की बूँद नहीं लेता। आहा..हा..! ऐई!

मुमुक्षु : यहाँ ही झगड़ा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : झगड़ा तो होगा, प्रभु! उसे न जँचे तो क्या होगा ? अरे प्रभु! तेरी बलिहारी है, नाथ! आहा..हा..! अट्ठाईस मूलगुण निरतिचार (पाले नहीं)। अरे! पत्र में

ऐसा आवे कि सेठ, साधु के लिये चौका लेकर आये। अर.र! और यह महाराज इतने हैं कि अट्ठाईस पिच्छी, चालीस पिच्छी इसलिए... ऐसे सेठ, आहार बनाकर देना (यह विपरीतता है)।

हमारे गुरु के साथ भी चर्चा हुई थी, कहा था न? (संवत्) १९६९ के साल, संवत् १९७०, ६५ वर्ष पहले। मैंने दीक्षा लिये पहले प्रश्न किया था। गुरु शान्त थे, प्रकृति शान्त थी, नरम थी। उनकी क्रिया निर्दोष थी। उनके लिए बनाये हुए आहार-पानी कभी नहीं लेते थे। दृष्टि मिथ्यात्व थी, वस्तु नहीं थी। मैंने उनसे प्रश्न किया, दीक्षा से पहले, हों! (संवत्) १९६९ (में प्रश्न किया) दीक्षा तो १९७० में ली थी। इतना प्रश्न किया कि महाराज! यह साधु के लिये मकान बनाते हैं और मकान प्रयोग करे तो नौ कोटि में से कौन सी कोटि टूटती है? पण्डितजी! ६५ वर्ष पहले प्रश्न किया था। साधु के लिये मकान बनाया हो और साधु उसे प्रयोग करे तो मन से, वचन से, काया से, करना, कराना, और अनुमोदन करना - नौ कोटि है न? तो नौ कोटि में से कौन सी कोटि टूटती है? जुगलजी! यह तो ६५ वर्ष, ६६ वर्ष पहले की बात है।

मुमुक्षु : आपको बहुत वर्षों की बात याद है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें याद कहाँ.. ? यह तो ८९ वर्ष हुए। ८७ वर्ष की बात तो याद है। दो वर्ष की उम्र थी, बड़े भाई का विवाह था। दो बहिनें थीं, दो बड़े भाई है। विवाह था, तब मेरी उम्र दो वर्ष की थी। (संवत्) १९४८ में विवाह था। जन्म १९४६। हमारा घर का मकान था, कमरा था। कमरे पर मेरी बहिन लेकर बैठी थी। इतना याद आया। समझ में आया? आहा..हा..! विशेष तो बहिन को स्मरण हुआ, उसमें से बहुत याद आया। वह और पूर्व की बात।

क्या कहते हैं, आहा..हा..! मैंने सर्वस्व कर लिया - ऐसा अज्ञानी मानता है। ज्ञानी (को) आत्मा का भान हुआ, आनन्द का स्वाद आया। अरे रे! अभी तो मुझे पूर्ण आनन्द की प्राप्ति करना (बाकी है)। मुझे बहुत काम बाकी है। समझ में आया? अज्ञानी कहता है कि अट्ठाईस मूलगुण पालन किये तो मैंने बहुत किया; तब ज्ञानी कहते हैं कि मुझे अनुभव हुआ परन्तु मुझे अभी बहुत बाकी है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : बहुत बाकी है, इसमें तो आकुलता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं; आकुलता नहीं; भावना है। आकुलता कैसी?

एकाकी विचरूँगा जब शमशान में,
गिरि पर होगा बाघ सिंह संयोग जब।
अडोल आसन और न मन में क्षोभ हो,
जानूँ पाया परम मित्र संयोग जब॥

सिंह शरीर लेने आया और मुझे शरीर रखना नहीं, तो सिंह शरीर लेने आवे तो मेरा मित्र है। आसन स्थिर और मन में नहीं क्षोभ। अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा। आहा..हा..! श्रीमद् राजचन्द्र, लाखों के जवाहरात के व्यापारी थे परन्तु अन्तर में दृष्टि राग से भिन्न हो गयी। आहा..हा..! और इतनी शक्ति, बहुत थी। उस समय यह एक ही पुरुष हिन्दुस्तान में था। समझ में आया? भले फिर थे, धर्मदास क्षुल्लक। धर्मदास क्षुल्लक है न? वे १९४८ की साल में थे। इनकी क्षयोपशम की और अनुभव की शक्ति बहुत!

एक बार ऐसा कह गये, अरे! 'अशेष कर्म का भोग है भोगना अवशेष रे...' अभी राग का भाग मुझे दिखता है और अभी मुझे राग का वेदन होता है। आनन्द के वेदन के साथ... आहा..हा..! 'इससे देह एक धारकर जाऊँगा स्वरूप स्वदेश रे' अभी राग बाकी है तो लगता है कि एकाध भव करना पड़ेगा। और फिर 'जाऊँगा स्वरूप स्वदेश रे..' हमारा आनन्द का नाथ हमारा देश है, वहाँ पूर्ण रीति से अन्दर जाऊँगा। सम्यग्दृष्टि ऐसी भावना भाता है। आहा..हा..! ऐसी बात है, बापू! सम्यग्दर्शन हुआ, इसलिए पूरा हो गया – ऐसा नहीं है। मोक्षमार्ग तो दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पूर्णता, वह मोक्षमार्ग है। सम्यग्दर्शन हुआ, इसलिए मोक्षमार्ग पूर्ण हो गया (ऐसा नहीं है)। भाई! समझ में आया?

ऐसी भावना करनेवाला बहुत बाकी है – ऐसा मानता है और अज्ञानी ने हजारों रानियों का त्याग किया (अथवा) बालब्रह्मचारी हुआ, करोड़ वर्ष के पूर्व में आठ वर्ष से आजीवन बालब्रह्मचारी (रहा)। आठ वर्ष में तो कुछ किया नहीं हो। इससे क्या हुआ? इससे क्या हुआ? स्त्री का त्याग बाह्य शरीर से किया, वह कुछ किया नहीं, वह राग की मन्दता थी, वह कोई वस्तु नहीं। समझ में आया? ब्रह्म अर्थात् आत्मा, उसमें चरना, रमना, ब्रह्मानन्द भगवान में चरना, इसका नाम ब्रह्मचर्य है। आहा..हा..! यह तो अभी किया नहीं, तो शरीर से ब्रह्मचर्य पाले, उसमें कुछ नहीं हुआ। आहा..हा..!

पद्मनन्दि आचार्य (कृत ग्रन्थ में) छब्बीस अधिकार हैं। नाम पद्मनन्दि पंचविंशति कहलाता है। अधिकार छब्बीस हैं। उसमें उन्होंने अन्त में ब्रह्मचर्य की व्याख्या की है। ओहो! वे जंगल में रहनेवाले सन्त, आत्मा जंगल स्वरूप, राग रहित है, उसने रहनेवाले सन्त हैं। आहा..हा..!

मुमुक्षु : श्रीमद् ने वनशास्त्र कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पद्मनन्दि पंचविंशति को वनशास्त्र कहा है न! श्रीमद् ने (वनशास्त्र कहा है)। वन में बनाया है, उन्होंने ब्रह्मचर्य की व्याख्या ऐसी की, ऐसी की... ओहो! भगवान आत्मा ब्रह्मस्वरूप आनन्दस्वरूप प्रभु में चरना, रमना, जमना, अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन करना, पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन करना, वह पूर्ण ब्रह्मचर्य है। आहा..हा..! समझ में आया? ब्रह्मचर्य की बहुत व्याख्या की। (व्याख्या) करने के बाद आचार्य गाथा में कहते हैं—हे युवकों! तुम्हारा युवा शरीर और स्त्री की जवानी और लक्ष्मी की अनुकूलता में तुम्हें हमारी यह बात न रुचे, प्रभु! माफ करना – ऐसा कहा है। आहा..हा..! पण्डितजी! पद्मनन्दि पंचविंशतिका (में कहा है) माफ करना, बापू! मुझसे क्या आशा रखोगे? भाई! आहा..हा..! ऐसा कहा, मैं ब्रह्मचर्य की व्याख्या, जो आनन्दस्वरूप है, उसकी (व्याख्या) करता हूँ और तुम्हारी युवा अवस्था, पच्चीस-तीस वर्ष की उम्र और करोड़ों रुपये की कीमत और स्त्री सुन्दर अच्छी मिले, युवती हो, उसके प्रेम में हमारी बात न रुचे.. आहा..हा..! वीतरागी सन्त कहते हैं, हों! आहा..हा..! मुझसे क्या आशा रखोगे? प्रभु! तुम्हें दुःख लगे तो माफ करना। आहा..हा..! आहा..हा..! इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि कहता है – हम जो सत्य बात कहते हैं और तुम्हें न रुचे तो माफ करना, हमसे दूसरी क्या आशा रखोगे? कहो, महेन्द्रभाई! यह तुम्हारे हीरा-फीरा कहीं रह गये।

मुमुक्षु : यह असली हीरा है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : आहा..हा..! यहाँ बहिन कहती हैं, देखो! सम्यग्दृष्टि को तो अभी **बहुत 'बाकी है, बहुत बाकी है'—इस प्रकार पूर्णता तक बहुत बाकी है,..** आहा..हा..! **ऐसी ही भावना रहती है और तभी पुरुषार्थ अखण्ड रह पाता है।** पुरुषार्थ का स्वसन्मुख का झुकाव अखण्ड रहता है। आहा..हा..!

गृहस्थाश्रम में सम्यक्त्वी ने मूल को पकड़ लिया है,.. क्या कहते हैं? गृहस्थाश्रम

में भले हो, परन्तु मूल पकड़ लिया है। आत्मा के आनन्द के नाथ को सम्यग्दर्शन में पकड़ लिया है। आहा..हा..! समझ में आया? पूर्ण ब्रह्म प्रभु, पूर्णानन्द पूर्णइदं- ऐसा वस्तु का स्वरूप जो अनन्त धर्म का नाथ, धर्मनाथ आत्मा है। आहा..! ऐसे परमात्मा का अनुभव हो गया, पकड़ लिया, मूल पकड़ा। अब.. है? **(दृष्टि-अपेक्षा से) सब कुछ कर लिया है,..** दृष्टि अपेक्षा से पूरे द्रव्य को पकड़ लिया है। आहा..हा..!

अस्थिरतारूप शाखाऐं-पत्ते जरूर सूख जायँगे। अब मूल पकड़ लिया है तो राग की जो अस्थिरता है, वह निश्चय से सूख जायेगी। आहा..हा..! दूज उगी है तो पूर्णिमा होगी, होगी और होगी ही। दूजी उगी है तो तेरह दिन में पूर्णिमा पूर्ण होगी ही होगी। इसी प्रकार भगवान आनन्द के नाथ को जहाँ अन्दर से पकड़ लिया... आहा..हा..! फिर जो राग की अस्थिरता है, वह सूख जायेगी। मूल पकड़ लिया तो सूख जायेगी। आहा..हा..! समझ में आया?

इमली के लाखों पत्ते होते हैं। इमली होती है न इमली? मूल तोड़ दिया हो तो फिर वे पत्ते कितने काल रहेंगे? थोड़े दिन, पन्द्रह दिन में सूखकर समाप्त हो जायेंगे। आहा..हा..! इसी प्रकार जिसने आत्मा में सम्यग्दर्शनरूपी कुल्हाड़ा लेकर दृष्टि में ले लिया और मिथ्यात्व का छेद कर दिया.. आहा..हा..! भाई! वस्तु अलौकिक है। आहा..! ये शब्द की बातों में आ नहीं सके, ऐसी वस्तु है। आहा..हा..! सम्यग्दर्शनरूपी कुल्हाड़ा लेकर जिसने मिथ्यात्व का छेद कर डाला, आहा..! अब थोड़ी अस्थिरता-चारित्रमोह का दोष रहा। कर्म के कारण नहीं, अपनी अस्थिरता के कारण चारित्रदोष रहा, वह थोड़े दिन में सूख जायेगा। आहा..हा..! एक, दो भव में केवलज्ञान हो जायेगा। आहा..हा..! समझ में आया? ऐसा व्याख्यान है, लो!

द्रव्यलिंगी साधु ने मूल को ही नहीं पकड़ा है;... साधु हुआ, पंच महाव्रत (पालन किये) परन्तु मूल द्रव्य है, उसे पकड़ा नहीं, उसने राग को पकड़ा है। आहा..हा..! रत्नकरण्ड श्रावकाचार में आता है.. पण्डित नहीं आये? दूर बैठे हैं... गृहस्थाश्रम में भी सम्यग्दृष्टि मोक्षमार्ग में है और द्रव्यलिंगी मिथ्यादृष्टि मुनि.. आहा..हा..! संसार मार्गी है। अरे! प्रवचनसार में तो यहाँ तक कहा, अन्तिम पाँच गाथा.. जिसने अन्तर में आत्मध्यान, ज्ञान, दर्शन, चारित्र प्रगट किया-जिसने मोक्षमार्ग प्रगट किया, प्रभु कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, उसे हम मोक्षतत्त्व कहते हैं। उसे मोक्षतत्त्व कहते हैं। पाँच गाथायें हैं। और राग का कण

अपना है—ऐसा माननेवाला द्रव्यलिंगी साधु हो तो भी संसारतत्त्व है। जहाँ मोक्षमार्ग अन्दर के आश्रय से हुआ तो कहते हैं, उसे हम मोक्षतत्त्व कहते हैं और बाह्य छोड़कर नग्नपना ले लिया, अट्ठाईस मूलगुण पालन किये, ऐसा अनन्त बार किया... आहा..हा..! परन्तु वह संसारतत्त्व है क्योंकि राग की मिठास में रुक गया और राग की एकता में रुक गया, वह संसारतत्त्व है। आहा..हा..! ऐसा अन्तर है।

वह यहाँ कहते हैं, **बाह्यदृष्टि लोगों को ऐसा भले ही लगे कि 'सम्यक्त्वी को अभी बहुत बाकी है और द्रव्यलिंगी मुनि ने बहुत कर लिया';..** कितना त्याग! हजारों रानियों का त्याग, शरीर से आजीवन ब्रह्मचारी, इसने कितना किया, अज्ञानी ने! ऐसा अज्ञानी को बहुत त्याग दिखता है और सम्यग्दृष्टि को बहुत करना बाकी है – ऐसा दिखता है। **परन्तु ऐसा नहीं है। परीषह सहन करे किन्तु अन्तर में कर्तृत्वबुद्धि नहीं टूटी,...** परीषह सहन करता है, उसमें अन्तर में कर्तृत्वबुद्धि नहीं टूटी। राग की मन्दता है, उसका कर्तृत्व नहीं छूटा। आहा..हा..! वह संसारतत्त्व है। बाह्य निर्ग्रन्थ हो, अट्ठाईस मूलगुण पालता हो, (परन्तु) राग की एकताबुद्धि है, वह संसारतत्त्व है। आहा..! ऐसा बड़ा अन्तर है। आहा..हा..!

आकुलता का वेदन होता है,... आहा..हा..! वह राग का अंश भले मन्द हो, परन्तु एकता में उसकी आकुलता का वेदन होता है। उसे आनन्द के अंश का वेदन नहीं आया। आहा..हा..! और गृहस्थाश्रम में रहे हों, चक्रवर्ती हों, भरत चक्रवर्ती – छह खण्ड का राज्य। चक्रवर्ती पद छह लाख पूर्व पाला, छह लाख, परन्तु अन्तर में सम्यग्दर्शन में ... आहा..हा..! मेरी चीज़ तो यह (भगवान आत्मा) है—ऐसा समकिती को अनुभव में करने का बहुत बाकी है, तथापि वे मोक्षमार्ग में हैं। आहा..हा..! समझ में आया?

भरत चक्रवर्ती की एक बात आती है। ऋषभदेव भगवान जब अष्टापद पर्वत से मोक्ष पधारे तो भरत गये। ऐसा देखकर आँख में से आँसू बहने लगे। क्षायिक समकिती, क्षायिक समकिती! इन्द्र आये, शकेन्द्र (कहता है) अरे! भरत, यह क्या? तुम तो इस भव में मोक्ष जानेवाले हो न! हमें तो अभी एक मनुष्य देह करनी है, मोक्ष जाने के लिये.. आहा..हा..! भरत कहते हैं, सुन, सुन इन्द्र! हम इस भव में मोक्ष जानेवाले हैं, यह हमें खबर है, परन्तु यह प्रशस्त राग आया तो ऐसा होता है। इसका भी मैं जाननेवाला हूँ। आहा..हा..! रुदन आया, आहा..हा..! सूर्य उदित हुआ था, अस्त हो गया। भरतक्षेत्र में भगवान (रूपी)

सूर्य उदित हुआ था। पचास लाख करोड़ सागरोपम तक अभी दूसरे तीर्थंकर नहीं होंगे। दो के बीच अन्तर है न? पहले तीर्थंकर और अन्तिम के बीच बहुत अन्तर है। आहा..हा..! केवलज्ञानी सूर्य प्रगट हुआ था, वह अरे! हमारे लिये अस्त हो गया। भरत में से अस्त हो गया। एक तो पिताजी थे और एक ओर तीर्थंकरदेव थे। आहा..हा..! आँख में आँसू आये, राग आया। इन्द्र ने कहा, अरे, भरत! क्या करते हो? तुम्हें तो इस भव में मोक्ष जाना है। हमें तो देव के पश्चात् एक देह धारण करनी है – शकेन्द्र कहता है। आहा..हा..! जहाँ इन्द्र तो मित्ररूप से जाते हैं। आहा..हा..! खबर है, भाई! इन्द्र! मुझे खबर है, मैं इस भव में केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष जानेवाला हूँ, परन्तु वर्तमान में भगवान का अस्त हुआ देखकर राग आया, तथापि वह राग और देह की क्रिया में रुदन होता है, उसे मैं परज्ञेयरूप से जानता हूँ। आहा..हा..!

द्रव्यलिंगी रोवे नहीं, कुटुम्ब, देह छूट जाये तो भी रोवे नहीं, तथापि राग की एकता है तो संसारतत्त्व है। आहा..हा..! क्योंकि अभी उसे अनन्त भव करने बाकी हैं। आहा..हा..! समझ में आया? यह दृष्टि और दृष्टि के विषय की बलिहारी है, प्रभु! आहा..! लोगों को कीमत नहीं, सम्यग्दर्शन अर्थात् क्या! आहा..हा..!

मुमुक्षु : इन्द्र आकर...

पूज्य गुरुदेवश्री : इन्द्र नीचे उतरते हैं। अभी तो पुण्य नहीं तो कहाँ से आवे? साधारण देव भी नहीं आते। इन्द्र ऊपर से आते थे। भगवान के समय में देह छूटी तो आये और पहले समवसरण में आते थे। बहुत इन्द्र आते थे। बाघ और सिंह जंगल में से चले आते थे। इन्द्र, जो तिर्यंच के इन्द्र, बाघ और सिंह, केशरिया सिंह, शान्त.. शान्त.. शान्त.. होकर जंगल में से सैंकड़ों सिंह भगवान के समवसरण में आते थे। ऐसे हाथ जोड़कर सुनते थे। आहा..हा..! (महाविदेहक्षेत्र में) अभी हैं, अभी भगवान के पास हैं। आहा..हा..!

यह दृष्टि का विषय जो आत्मा पूर्णानन्द का भान हुआ, आहा..हा..! तो उसे बहुत करना बाकी है—ऐसा लगा और अज्ञानी को ऐसा लगता है कि इसे बहुत करना बाकी है और इस द्रव्यलिंगी ने तो बहुत कर दिया है। अरे! कुछ नहीं किया, जरा भी नहीं किया। सुन तो सही! आहा..हा..! राग की एकता तोड़कर... एकता है नहीं, राग और भगवान स्वभाव के पिण्ड के बीच सन्धि है। स्वभाव त्रिकाल सागर है, और राग कृत्रिम क्षणिक विकार है। दो के बीच सन्धि है, एकत्व कभी है नहीं। मान्यता में एकत्व कर लिया है।

समझ में आया ? आहा..हा.. ! यह मान्यता जब द्रव्य पर गयी, आनन्द के नाथ पर गयी तो राग की एकता नहीं थी, तो टूट गयी। सन्धि थी, वह सन्धि हो गयी। दो टुकड़े अलग थे, तो टुकड़े अलग पड़ गये। आहा..हा.. ! गोदिकाजी ! ऐसा वहाँ तुम्हारे सुनने को नहीं मिलता। क्या कहलाता है तुम्हारा ? जयपुर, जयपुर है न तुम्हारा सब ? आहा..हा.. ! बापू !

मुमुक्षु : करना क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह करना, यह समझना करना, वह करना है, सब भटकने का करना छोड़ देना चाहिए। आहा..हा.. ! तीन लोक का नाथ विराजता है। एक समय की पर्याय के समीप और शुभराग के विकल्प के उस ओर भगवान विराजता है न, प्रभु ! तुझे खबर नहीं। आहा.. ! उसकी दृष्टि करने से भव का अन्त आता है और उसकी दृष्टि नहीं तथा राग की दृष्टि है, द्रव्यलिंगी साधु होकर अनन्त बार पंच महाव्रत धारण किये, वह अनन्त संसारी है, संसारतत्त्व है। आहा..हा.. ! प्रवचनसार की पाँच गाथाओं को पंचरत्न कहते हैं। नियमसार में परमार्थ (प्रतिक्रमण) अधिकार की पहली पाँच गाथायें रत्न हैं और प्रवचनसार में अन्तिम पाँच रत्न गाथा है। आहा..हा.. ! समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं **कर्तृत्वबुद्धि नहीं टूटी, आकुलता का वेदन होता है,...** चाहे तो पंच महाव्रत पाले परन्तु वह राग है और आकुलता है, दुःख है। आहा..हा.. ! ऐसा कहा न ?

'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो,
पै निज आतमज्ञान बिन सुख लेश न पायो।'

तब इसका अर्थ यह है कि पाँच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण दुःख है, विकल्प है। आहा..हा.. ! 'राग आग दाह दहै सदा, तातैं समामृत सेईये।' राग – शुभराग है, वह भी अग्नि / दाह है। आहा..हा.. ! 'राग अग्नि आग दाह दहै सदा, तातैं समामृत सेईये।' राग से भगवान भिन्न समता का सागर है, उसकी सेवा कर, तुझे समता होगी – पर्याय में वीतरागता होगी। राग अग्नि है; वीतरागता शान्त है। आहा..हा.. ! चाहे तो शुभराग हो परन्तु वह अग्नि है और भगवान आत्मा का अन्तर्मुख होकर जहाँ स्वीकार हुआ – शुद्ध का सत्कार हुआ, सत्कार हुआ तो पर्याय में शान्ति आयी। वह शान्ति अज्ञानी को–द्रव्यलिंगी को नहीं होती। आहा..हा.. ! समझ में आया ?

पंचम गुणस्थान की दशा में, जो चौथे गुणस्थान में सर्वार्थसिद्धि के एक भवतारी देव हैं, उन्हें जो शान्ति है, उनकी अपेक्षा पंचम गुणस्थान में शान्ति अधिक बढ़ गयी है।

आहा..हा..! समझ में आया? दो कषाय का अभाव हुआ और शान्ति बढ़ गयी। चौथे में एक कषाय का नाश हुआ है और शान्ति है। आहा..हा..! पंचम में अकषायभाव विशेष व्यक्त हुआ। वह पंचम गुणस्थान... सर्वार्थसिद्धि के चौथे गुणस्थानवर्ती एकावतारी-एकभवतारी देव हैं और उसे अभी भले दो-चार भव करने पड़ते हों परन्तु शान्ति बढ़ गयी है। समझ में आया? आहा..हा..!

यहाँ कहते हैं कि तुझे कर्तृत्वबुद्धि टूटी नहीं, शान्ति मिली नहीं, इतना तो देखता नहीं? और बहुत किया, बहुत किया, क्या तूने माना? कहाँ गये ज्ञानचन्दजी? आहा..हा..! **उसने कुछ किया ही नहीं।** आहा..हा..! यह १९९ (बोल पूरा हुआ)।

शुद्धनय की अनुभूति अर्थात् शुद्धनय के विषयभूत अबद्धस्पृष्टादिरूप शुद्ध आत्मा की अनुभूति सो सम्पूर्ण जिनशासन की अनुभूति है। चौदह ब्रह्माण्ड के भाव उसमें आ गये। मोक्षमार्ग, केवलज्ञान, मोक्ष इत्यादि सब जान लिया। 'सर्वगुणांश सो सम्यक्त्व'—अनन्त गुणों का अंश प्रगट हुआ; समस्त लोकालोक का स्वरूप ज्ञात हो गया।

जिस मार्ग से यह सम्यक्त्व हुआ उसी मार्ग से मुनिपना और केवलज्ञान होगा—ऐसा ज्ञात हो गया। पूर्णता के लक्ष्य से प्रारम्भ हुआ; इसी मार्ग से देशविरतिपना, मुनिपना, पूर्ण चारित्र एवं केवलज्ञान—सब प्रगट होगा।

नमूना देखने से पूरे माल का पता चल जाता है। दूज के चन्द्र की कला द्वारा पूरे चन्द्र का ख्याल आ जाता है। गुड़ की एक डली में पूरी गुड़ की पारी का पता लग जाता है। वहाँ (दृष्टान्त में) तो भिन्न-भिन्न द्रव्य हैं और यह तो एक ही द्रव्य है। इसलिए सम्यक्त्व में चौदह ब्रह्माण्ड के भाव आ गये। इसी मार्ग से केवलज्ञान होगा। जिस प्रकार अंश प्रगट हुआ उसी प्रकार पूर्णता प्रगट होगी। इसलिये शुद्धनय की अनुभूति अर्थात् शुद्ध आत्मा की अनुभूति वह सम्पूर्ण जिनशासन की अनुभूति है॥२००॥

शुद्धनय की अनुभूति अर्थात् शुद्धनय के विषयभूत अबद्धस्पृष्टादिरूप शुद्ध आत्मा की अनुभूति... लो, अपने चौदहवीं गाथा चलती है न? वह आया। **शुद्धनय की अनुभूति अर्थात् शुद्धनय के विषयभूत अबद्धस्पृष्टादिरूप शुद्ध आत्मा की अनुभूति...**

वहाँ चौदहवीं गाथा में लिया है न ? अनुभूति कहो, शुद्धनय कहो या आत्मा कहो – ऐसे टीका में तीन बोल लिये हैं। आहा..हा..! अबद्धस्पृष्ट आदि शुद्ध आत्मा। भगवान बद्ध नहीं, विशेष नहीं; सामान्य है, अबद्ध है, मुक्त है, एकरूप है, गुण-गुणी के भेद जिसमें नहीं। आहा..हा..! जिसमें राग का अंश नहीं—ऐसा अबद्धस्पृष्ट आदि शुद्ध भगवान आत्मा की अनुभूति, उसके अनुसार होकर पर्याय में होना। आहा..हा..!

वस्तु विचारत ध्यावतें मन पावै विश्राम
रस स्वादत सुख उपजे, अनुभव ताको नाम॥

आहा..हा..! 'वस्तु विचारत ध्यावतें'—वस्तु के स्वरूप का ज्ञान करके उसका ध्यान करने में एकाग्र होता है। 'मन पावै विश्राम' – रागरूपी भाव-मन वहाँ विश्राम पाता है। 'रस स्वादत सुख उपजे' – आहा..हा..! 'अनुभव ताको नाम।'

अनुभव रत्न चिन्तामणि, अनुभव है रसकूप,
अनुभव मारग मोक्ष को, अनुभव मोक्षस्वरूप।

उस अनुभूति की यह बात है।

अनुभूति सो सम्पूर्ण जिनशासन की अनुभूति है। १५ वीं गाथा। आहा..हा..! सबेरे कहा था, नहीं ? **अपदेससंत मज्जम्** उपदेश अर्थात् द्रव्यसूत्र में भी ऐसा कहा है और भावसूत्र भी ऐसा है। आहा..हा..! **अपदेससंत मज्जम्** का अर्थ उन लोगों ने ऐसा किया है कि **अपदेस** अर्थात् अखण्ड – परन्तु यह बात ही अत्यन्त झूठी है। **अपदेस** का अर्थ अमृतचन्द्राचार्य को समझ में नहीं आया, इसलिए नहीं किया – ऐसा (वे लोग) कहते हैं। अरे रे! भगवान! अमृतचन्द्राचार्य (अर्थात्) कौन ?! प्रभु! ये सूत्र बने, वे द्रव्यसूत्र। वहाँ द्रव्यसूत्र ऐसा आ गया। समझे ? आहा..हा..! क्या हो ? अर र! काल ऐसा आया। और उस टीका में जयसेनाचार्यदेव ने **अपदेस** का अर्थ किया है। **अपदेससंत मज्जम्**। **अपदेस** का द्रव्यसूत्र और **संत** अर्थात् भावसूत्र। आहा..हा..!

जो बारह अंग आदि चार अनुयोग हैं.. आहा..हा..! उनके अबद्धस्पृष्ट (आत्मा) बतलाया है। द्रव्यसूत्र में यह बताया है और इस गाथा में भी यह बताया है। समझ में आया ? पंचास्तिकाय की १७२ गाथा है। उसमें दो बातें ली हैं – सूत्र तात्पर्य, शास्त्र तात्पर्य है। सूत्र तात्पर्य (अर्थात्) प्रत्येक गाथा में कहना वह सूत्र तात्पर्य। तो १५ वीं गाथा में सूत्र तात्पर्य

साथ में कहा है, द्रव्यसूत्र में कहा है कि अबद्धस्पृष्ट अनुभव करना वह सम्यग्दर्शन है। वहाँ १५ वीं में अनुभूति-ज्ञान है, १४ वीं सम्यग्दर्शन (लिया है)। समझ में आया? अबद्धस्पृष्ट का अनुभव करना... आहा..हा..! वह भावश्रुत है और कथन जो वाणी आयी, वह द्रव्यश्रुत है। द्रव्यश्रुत में भी ऐसा कहा है।

पंचास्तिकाय की १७२ गाथा है। सूत्र तात्पर्य अर्थात् प्रत्येक गाथा का तात्पर्य। यह प्रत्येक गाथा द्रव्यसूत्र में तो यह कहा ही है। अब चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है, ऐसा पाठ है। चारों अनुयोगों का शास्त्र तात्पर्य वीतरागता है। अर्थात् वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा का आश्रय लेकर दशा उत्पन्न हुई तो आश्रय लेना, वह चार अनुयोग का तात्पर्य है। आहा..हा..! समझ में आया? अनुयोग में यह कहा है, गाथा में भी कहा है और चारों अनुयोगों के सार में यह कहा है। आहा..हा..!

भाई! सन्तों ने पूरा कहा है। सन्तों-दिगम्बर मुनियों की, बापू! आहा..हा..! उनकी क्या दशा! वे कौन? भगवान परमात्मस्वरूप है। नियमसार में तो पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं कि मुनि में और पूर्ण में (जिनेन्द्र में) जरा राग का अन्तर है - ऐसा एक बार बताया। दूसरी बार कहा कि केवलज्ञानी परमात्मा और मुनि में अन्तर मानता है, वह जड़ है। नियमसार में ऐसा श्लोक है। आहा..हा..!

यहाँ यह कहते हैं, **सम्पूर्ण जिनशासन की अनुभूति है।** अब चौदह ब्रह्माण्ड की विशेष बात आयेगी। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

जैसे, कोई व्यक्ति, समुद्र के बीच में डूबकी खा रहा हो तो उसका एक ही लक्ष्य है कि मैं समुद्र में डूबने से कैसे बचूँ? वहाँ यदि कोई सज्जन आकर उसे बचाता है तो कैसी उपकारबुद्धि होती है? अहा! इन्होंने मुझे समुद्र में डूबने से बचाया, इन्होंने मुझे जीवन दिया, इस प्रकार महाउपकार मानता है। इसी प्रकार भवसमुद्र में गोते खा-खाकर थके हुए जीव का एक ही लक्ष्य है कि मेरा आत्मा इस संसार समुद्र से किस प्रकार बचे? वहाँ कोई ज्ञानी पुरुष उसे तिरने का उपाय बतावें तो वह प्रमादरहित होकर, उल्लसितभाव से उस उपाय को अङ्गीकार करता है।

(पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, आतम के हित पंथ लाग! में से)

भाद्र कृष्ण-१०, सोमवार, दिनाङ्क २८-०८-१९७८
वचनामृत-२०० प्रवचन-७८

वचनामृत २००, २०० **शुद्धनय की अनुभूति अर्थात् शुद्धनय के विषयभूत...** सबेरे १४ वीं (गाथा) चलती है न? **अबद्धस्पृष्टादिरूप शुद्ध आत्मा की अनुभूति, सो सम्पूर्ण जिनशासन की अनुभूति है।** सूक्ष्म बात है, भाई! १५ वीं गाथा चलेगी। यह भगवान आत्मा अतीन्द्रिय अनाकुल आनन्द का कन्द है।

मुमुक्षु : कब?

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि। कब क्या? आहा..हा..! उस ओर के झुकाव से... संयोग, राग और निमित्तादि का लक्ष्य छोड़कर, पर्याय वर्तमान है, उसका भी लक्ष्य छोड़कर, मुक्तस्वरूप, अबद्धस्पृष्ट कहने से नास्ति से बात की है, निश्चय से मुक्तस्वरूप है, निर्वाणस्वरूप, मुक्तस्वरूप ही भगवान वर्तमान में है। त्रिकाल मुक्तस्वरूप है। आहा..हा..! ऐसे अन्तर में अनुभव होना, **सो सम्पूर्ण जिनशासन की अनुभूति है।** जैनशासन में जो कहा-कहना है, वह सब अनुभव में आ गया। आहा..! कल यहाँ तक चला था।

चौदह ब्रह्माण्ड के भाव उसमें आ गये। आहा..हा..! ज्ञायक चिदानन्द प्रभु शुद्ध आनन्दघन का अनुभव-अनुभूति / ज्ञान की पर्याय की बात है। १५ वीं गाथा में आयेगा। यह सब जानना, अनुभूति में भगवान आत्मा आ गया। आत्मा, अनुभूति की पर्याय में आया नहीं परन्तु वस्तु के स्वरूप की अनुभूति हुई, उसमें जैसा पूर्णानन्द है, ऐसा ज्ञान में ज्ञात हो गया। ऐसे सम्यग्दृष्टि-सम्यग्ज्ञानी को चौदह ब्रह्माण्ड के भाव उसमें आ गये। आहा..हा..!

मोक्षमार्ग,... यह भी ख्याल में आ गया। **केवलज्ञान,...** भी ज्ञान में / ख्याल में आ गया। **मोक्ष इत्यादि सब जान लिया।** आहा..हा..! समझ में आया? क्योंकि यह शब्द श्रीमद् के हैं। 'सर्वगुणांश वह समकित' यह श्रीमद् का वाक्य है। अपने रहस्यपूर्ण चिट्ठी

में ऐसा आया है कि ज्ञानादि सर्व गुणों का अंश प्रगट होना, इसका नाम सम्यग्दर्शन और ज्ञान है। यह श्रीमद् का वाक्य है – 'सर्वगुणांश वह समकित।' समकित होने से जितने गुण की संख्या है, उनका अंश व्यक्त-प्रगट सम्यग्दर्शन में होता है। आहा..हा..! समझ में आया? अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. जो गुण हैं, उन सबका एक अंश व्यक्तरूप से पर्याय में प्रगटरूप से सम्यग्दर्शन में-वेदन में-प्रतीति में आता है। आहा..हा..! सूक्ष्म बात है, भाई! है? 'सर्वगुणांश वह समकित' टोडरमलजी ने रहस्यपूर्ण चिट्ठी में ऐसा लिया है कि ज्ञानादि अनन्त गुण हैं, उनका एक अंश व्यक्त हो गया है। समझ में आया? चौथे (गुणस्थान) से, हों! अनन्त गुणों का अंश प्रगट हुआ। आहा..हा..!

समस्त लोकालोक का स्वरूप ज्ञात हो गया। पूरे लोकालोक में सब चीज़ के द्रव्य-गुण-पर्याय सबका ज्ञान हो गया। आहा..हा..! **जिस मार्ग से यह सम्यक्त्व हुआ..** पूर्ण आनन्द के नाथ प्रभु के अवलम्बन से, उसके आश्रय से, उसकी सन्मुखता से जो सम्यग्दर्शन हुआ, आहा..हा..! **उसी मार्ग से मुनिपना...** होगा। मुनिपना कोई विकल्प से और शुभ से नहीं होगा। आहा..हा..!

अभी एक विवाद ऐसा आता है कि द्रव्यलिंगी है, उसे दर्शनमोह की सात प्रकृति का क्षय है। है न, परन्तु वे द्रव्यलिंगी उसे कहते हैं – यह शुभभाववाला द्रव्यलिंगी है, उसे कहते हैं। बाकी तत्त्वार्थराजवार्तिक में आया है। द्रव्यलिंगी के तीन प्रकार हैं। एक तो राग को अपना मानता है, वह मिथ्यादृष्टि और मुनिपने की क्रिया अट्ठाईस मूलगुण आदि पालता है, वह मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी। दूसरे, सम्यग्दृष्टि द्रव्यलिंगी। सुनो! यह तत्त्वार्थ राजवार्तिक में कहा है, वह यह बात कही है कि मुनिपना बाहर से छठे गुणस्थान की क्रिया, अट्ठाईस मूलगुण आदि निरतिचार पालता है परन्तु अन्तर में सम्यग्दर्शन हुआ है, छठा गुणस्थान नहीं आया है। पण्डितजी! तत्त्वार्थ राजवार्तिक में है परन्तु वह द्रव्यलिंगी कौन? किसे कहा? जो अनादि मुनिपना लेकर नववें ग्रैवेयक गया, वह नहीं। वह द्रव्यलिंगी तो मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी है। आहा..हा..! यह तो सम्यग्दर्शन पहले मुनिपना ले लिया, सम्यग्दर्शन नहीं था, बाद में सम्यग्दर्शन मुनिपने की दशा में, बाह्यलिंग में, हों! अन्तर्मुख होकर अनुभव हुआ तो सम्यग्दर्शन हुआ, परन्तु बाह्य में छठे गुणस्थान की क्रिया द्रव्यलिंगी है तो उस द्रव्यलिंगी सम्यक्त्वी को भी चौथे गुणस्थान की क्रिया है, छठे गुणस्थान की क्रिया व्यवहार में है तो उसे भी द्रव्यलिंगी कहने में आता है। अरे! ऐसी बातें हैं। क्या कहा?

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : है, परन्तु बाह्य में छठे गुणस्थान की क्रिया है, अन्दर में छठा गुणस्थान नहीं है। आहा..हा..! द्रव्यलिंगी के तीन प्रकार हैं। भावलिंग का एक प्रकार है। जैसा अन्तर में शुद्ध आनन्द का अनुभव है, छठे गुणस्थान में और उसकी बाह्य क्रिया अट्ठाईस मूलगुण की है, वह द्रव्यलिंग अन्तर में भावलिंग अनुभूति में आनन्द का उग्र स्वाद आया है। भावलिंग की व्याख्या–प्रचुर स्वसंवेदन जिसे अनुभव में आता है, उसे भावलिंग कहते हैं। अरे! यह भाषा। भावलिंग (अर्थात्) अन्दर में ज्ञायक का प्रचुर आनन्द का स्वाद आना, वह भावलिंग है और उसे जो अट्ठाईस मूलगुण, नग्नपना आदि की क्रिया है, वह द्रव्यलिंग है परन्तु द्रव्यलिंग बाह्य से हो और अन्तर में मिथ्यात्वभाव है अथवा राग की क्रिया से धर्म मानता है तो वह मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी है और अन्दर में सम्यग्दर्शन हुआ, वह राग से धर्म नहीं मानता, अनुभूति से धर्म मानता है, वीतरागदशा से धर्म मानता है परन्तु क्रिया में छठे गुणस्थान की क्रिया ले ली है तो वह द्रव्यलिंग है परन्तु यह सम्यग्दर्शन है और छठा (गुणस्थान) नहीं है, इस अपेक्षा से द्रव्यलिंगी कहने में आया है। आहा..हा..! समझ में आया? वे इसका आधार देते हैं कि देखो! द्रव्यलिंगी भी पूजनीय है, क्योंकि दर्शनमोह का क्षयोपशम हुआ है। परन्तु किसे?

जिसे अन्तर अनुभूति हुई है, राग के विकल्प से भिन्न निर्विकल्प प्रभु अन्दर है, उसका वेदन हुआ है, स्व से अनुभूति हुई है, वह अन्तर में चौथे गुणस्थान में है परन्तु बाह्य में छठे गुणस्थान की निरतिचार शुभ की सत्य क्रिया करता है तो उसे भी द्रव्यलिंगी कहने में आता है।) आहा..! अरे रे! लोग अपना स्वार्थ करने को कुछ न कुछ खींचकर बात करते हैं। आज जैनदर्शन (समाचार पत्र) में आया है। कुछ न कुछ...

मुमुक्षु (१) : विरोध आता है तो स्पष्टता तो होती है।

मुमुक्षु (२) : नौवें ग्रैवेयक कौन जाता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : नौवें ग्रैवेयक दो जाते हैं। एक तो मिथ्यादृष्टि है और अट्ठाईस मूलगुण बराबर निरतिचार पालता है, शुक्ललेश्या है, वह नौवें ग्रैवेयक जाता है और एक आत्मज्ञानी है, छठे गुणस्थान की क्रिया है, अन्तर में छठा गुणस्थान हुआ है, वह भी नौवें ग्रैवेयक जाता है। आहा..हा..! यहाँ तो द्रव्यलिंग अर्थात् चाहे जो बाहर की क्रिया हो, वह

द्रव्यलिंग है (-ऐसा नहीं)। इसलिए वह पूजनीय है - ऐसी वस्तु नहीं है। भले अन्दर में मिथ्यात्व हो परन्तु बाहर में अट्ठाईस मूलगुण निरतिचार, आगम प्रमाण स्पष्ट प्ररूपणा हो तो वह भी व्यवहार से पूजनीय कहने में आता है क्योंकि पर के साथ व्यवहार है न? यह मोक्षमार्गप्रकाशक में है। उसकी क्रिया अट्ठाईस मूलगुण स्पष्ट, नग्नता स्पष्ट, प्ररूपणा भी बराबर करता है परन्तु अन्दर में मिथ्यात्व है। समझ में आया? ऐसा जीव भी नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया है। आहा..हा..!

अपनी अनुभूति-आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु है - ऐसा अनुभव हुआ, बाह्य में नग्नपना और अट्ठाईस मूलगुणपना रहता है, उसे भी तत्त्वार्थ राजवार्तिक में द्रव्यलिंगी कहा है। सब पता है। आहा..हा..! और किसी को पंचम गुणस्थान अन्दर में हुआ है, दो कषाय (चौकड़ी) का अभाव होकर आत्मा के आनन्द का प्रचुर वेदन हुआ, चौथे की अपेक्षा, परन्तु बाह्य में छठे गुणस्थान की क्रिया है, अन्तर में छठा गुणस्थान नहीं है तो उसे भी द्रव्यलिंगी कहा जाता है। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं! और अन्तर में भावलिंग, सच्चा छठा-सातवाँ गुणस्थान है, बाह्य में नग्नपना है और छठे गुणस्थान में अट्ठाईस मूलगुण की क्रिया बराबर स्पष्ट होती है। उसके लिये आहार बनाया हो तो प्राण जाने पर भी न ले। समझ में आया? यह चौका बनाकर ले, उसे तो व्यवहार भी नहीं है। आहा..हा..!

यहाँ तो ऐसे लेख आते हैं, द्रव्यलिंगी पूजनीय है, पूजनीय है। परन्तु द्रव्यलिंगी कौन? सम्यग्दृष्टि हो और बाह्य में द्रव्यलिंगी मुनिपने की क्रिया बराबर (पालता हो) प्ररूपणा भी ऐसी हो, श्रद्धा (हो, वह पूजनीय है) यह तो प्ररूपणा (ऐसी करे) दया, दान, व्रत, तप से कल्याण होगा, परम्परा कल्याण होगा - ऐसी मान्यता तो मिथ्यात्व है। समझ में आया? यह सूक्ष्म बात है, भाई! आहा..!

एक मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी है, एक सम्यग्दृष्टि को बाह्यक्रिया अट्ठाईस मूलगुण की है, वह द्रव्यलिंगी है, एक पंचम गुणस्थान भाव में है, बाह्य में छठे गुणस्थान की क्रिया है, तो इन तीनों को द्रव्यलिंगी कहा जाता है, तथापि द्रव्यलिंगी-द्रव्यलिंगी के बीच बहुत अन्तर है। आहा..हा..! धन्नालालजी! ऐसी बात है, भाई! क्या हो? आहा..! भाई ने हमारे पण्डितजी ने कहा न? कोई विरोध करता है तो स्पष्टता होती है। आहा..हा..!

यहाँ कहते हैं कि **जिस मार्ग से यह सम्यक्त्व हुआ...** देखो! **उसी मार्ग से**

मुनिपना... होता है। कोई व्यवहार क्रियाकाण्ड से शुभ में बढ़ गये, इसलिए वहाँ मुनिपना आ गया, – ऐसा नहीं है। आहा..हा..! सम्यग्दृष्टि को अनुभव और आत्मज्ञान है, बाह्यक्रिया में मुनिपना ले लिया था तो छठे गुणस्थान की क्रिया है। अन्दर में आनन्द का अनुभव चौथे गुणस्थान का है। समझ में आया? तो वह समकिती जानता है कि जिस मार्ग से मुझे सम्यग्दर्शन हुआ, उसके आश्रय से ही मुझे सच्चा मुनिपना होगा। मैं अन्दर चौथे गुणस्थानवाला हूँ और बाह्य में छठे गुणस्थान की क्रिया है तो उससे मैं आगे बढ़ जाऊँगा – ऐसा वह नहीं मानता।

मुमुक्षु : हमें अन्दर की बात किस प्रकार पहिचान में आये?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर में पहिचान हो जाती है, स्वयं को ख्याल आ जाता है। बराबर ख्याल आ जाता है।

मुमुक्षु : दूसरा कैसे पहिचाने?

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरा भी पहिचान कर सकता है। धवल में आया है। मतिज्ञान के अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा की व्याख्या आयी है। सर्वार्थसिद्धि में आया है, वह तो यह.. यह है और फिर निर्णय, ऐसा लिया है परन्तु धवल में तो ऐसा लिया है कि यह प्राणी भव्य है या अभव्य? ऐसा प्रश्न धवल में लिया है, फिर उसकी दृष्टि सम्यग्दर्शन है – ऐसा ख्याल आ गया। ओहो..! इसकी दृष्टि सम्यक् है – ऐसा पर को ख्याल आता है। बात ऐसी है, बापू! और सम्यग्ज्ञान है तथा सम्यक्चारित्र है – ऐसा पर को ख्याल आ गया। अवग्रह में, ईहा में, अवाय में, धारण करके (ख्याल आया) मतिज्ञान के चार बोल में यह बात ली है। धवल में ऐसा लिया है। फिर निश्चित होता है, ओहो! यह प्राणी तो भव्य है। मोक्षमार्ग की पर्याय का पर को ख्याल आया। भाई! यह ज्ञान क्या नहीं जानेगा? बापू! इस ज्ञान का स्वभाव स्व-परप्रकाशक है। बापू! यह वस्तु ऐसी है। आहा..हा..!

बाह्य में सच्चा द्रव्यलिंग हो और अन्दर में कोई मिथ्यात्व की भूल हो, वह दूसरे को ख्याल में आ जाये तो भी बाहर में न कहे। अन्दर में प्ररूपणा स्पष्ट है, श्रद्धा की सच्ची बात करता है, भले अन्दर दृष्टि नहीं और आचरण बराबर है तो उसे भी व्यवहार से पूजनीय कहने में आया है। मोक्षमार्गप्रकाशक में है। समझ में आया? परन्तु जिसकी प्ररूपणा, श्रद्धा ही झूठी है, अभी तो दया, दान, व्रत, तप करो; करते-करते कल्याण होगा – यह तो

प्ररूपणा ही मिथ्यात्व की है। आहा..हा..! समझ में आया? उसकी तो श्रद्धा ही मिथ्यात्व है और उसे दर्शनमोहनीय का क्षयोपशम है - ऐसा है ही नहीं। आहा..हा..! गजब बातें, बापू! यह तो... ऐसे धवल में लिया है। अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा से निर्णय हो जाता है। ज्ञानी को पर के ज्ञान का अवग्रह, ईहा आदि से निर्णय हो जाता है। आहा..हा..! धवल में है। अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा के बोल हैं। सर्वार्थसिद्धि में साधारण बात ली है। यह दक्षिणी है, ऐसा अवग्रह किया, फिर निश्चय किया कि निश्चित यह तो दक्षिणी है - ऐसा निर्णय करके धारण किया, यह तो व्यवहार साधारण है। यह तो इसे अनुभव है.. आहा..हा..! यह अनुभवी है, आनन्द का स्वादी है और छठे गुणस्थान में है तो यह भव्य है - ऐसा मतिज्ञान में (ख्याल आ जाता है)। आहा..हा..! ऐसी वस्तु है।

यहाँ कहा न? देखो! सम्यग्दर्शन हुआ तो **मोक्षमार्ग, केवलज्ञान, मोक्ष इत्यादि सब जान लिया।** सब जान लिया तो सामनेवाले का भी ख्याल आ गया। आहा..हा..! सूक्ष्म बात, भाई! यह तो परमात्मा के.. आहा..हा..! भगवान आत्मा जहाँ अन्तर में जागृत हुआ तो उसे चौदह ब्रह्माण्ड का ख्याल आ गया। समझ में आया? उसका अर्थ यह भी हुआ कि सामने सम्यक्त्वी है या छठे गुणस्थानवर्ती भावलिंगी है या द्रव्यलिंगी है, उसका ख्याल आ जाता है। चौदह ब्रह्माण्ड ज्ञात हो जायें तो इसका ख्याल आ जायेगा या नहीं? पण्डितजी! ऐसी बातें हैं, बापू!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह न्याय से पहले समझना पड़ेगा न? ऐसे का ऐसा हाँ करे - ऐसा नहीं। लॉजिक से-न्याय से (समझना) क्योंकि प्रभु का मार्ग नि-न्याय, नि-धातु है। नि-धातु अर्थात् क्या? जैसा स्वरूप है, उस ओर ज्ञान को ले जाना, इसका नाम नि-धातु या न्याय है। तुम्हारे वकालात के न्याय नहीं, हों! इन रामजीभाई ने बहुत वकालत की थी। वह सब कुज्ञान था।

मुमुक्षु : हाँ, परन्तु वह ज्ञान स्पष्ट होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्पष्ट अज्ञान है। वकालत का ज्ञान और डॉक्टर का ज्ञान और ऐ, हसमुखभाई! तुम्हारा टाईल्स का ज्ञान, कुज्ञान है। टाईल्स में ऐसा छाँटना, ऐसा छाँटना तो टाईल्स ऐसी हो, उसमें छाँटने का आता है न? ऐसी चीज़ आती है न? सब देखा है। जामनगर

के बाहर कारखाना है न ? अपने वढ़वाणवाले के, स्थानकवासी हैं वहाँ एकबार दूध पिया था। सब टाईल्स देखी थी। ऐसी छाँटे और यह छाँटे। जामनगर के बाहर, गाँव के बाहर अपने वढ़वाण के हैं, स्थानकवासी हैं। वे कहते हैं हम यह बारीक **भूंमकी** छाँटते हैं। टाईल्स में ऐसे रंग डालते हैं, यह सब ज्ञान कुज्ञान है। यह मकान बनाने की कला, सब कुज्ञान है। आहा..हा..!

यह तो आत्मा अन्दर से अनुभूति में से जागृत हुआ। आहा..! भले कदाचित् शास्त्रज्ञान विशेष न हो परन्तु अन्तर में अनुभव में से ज्ञान आया तो उसे अनुभूति में सम्यग्ज्ञान कहते हैं। आहा..हा..! तिर्यंच है, सिंह और बाघ जंगल में है, कोई तो चौथे गुणस्थानवाले हैं, कोई पंचमवाले हैं, असंख्य मच्छ, हजार योजन के मच्छ, चार हजार कोस लम्बे समुद्र में हैं। आहा..हा..! कितने ? असंख्य समकिती स्वयंभूरमण समुद्र में हैं। असंख्य पंचम गुणस्थानवाले हैं। वे तिर्यंच! पण्डितजी!

मुमुक्षु : हमें शर्मिन्दा होना पड़े - ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो वस्तु की स्थिति है। समझ में आया ? क्या कहा ? स्वयंभूरमण समुद्र असंख्य योजन का लम्बा, उसमें असंख्य तिर्यंच हैं, उनमें एक समकिती और असंख्य मिथ्यादृष्टि हैं। ऐसे असंख्य समकिती और असंख्य पंचम गुणस्थानवाले तिर्यंच हैं। अनुभूति-आत्मा की शान्ति का स्वाद विशेष पंचम गुणस्थान में आया है। ऐसे असंख्य तिर्यंच पड़े हैं। कभी सुना नहीं ?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। नहीं, कायम रहनेवाले। पंचम गुणस्थान में कायम रहनेवाले असंख्य हैं। आठवें वर्ष में पंचम गुणस्थान होवे तो जितनी आयुष्य हो उतना रहे, ऐसे तिर्यंच हैं, भाई! अन्दर वह आत्मा है न ? आहा..हा..!

मुमुक्षु : समयसार तो पढ़ते नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसने यह आत्मा पढ़ा है। आत्मा समयसार है न ? समयसार का अर्थ क्या ? द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म से रहित, वह प्रभु आत्मा समयसार है, बस! वह समयसार जाना तो उसने सब जान लिया। 'सब आगम भेद सु उर बसे'। श्रीमद् में भी आता है। समझ में आया ? श्रीमद् राजचन्द्र (में आता है)-'सब आगम भेद सु उर बसे, वह केवल को बीज ज्ञानी कहे।' ऐसा कुछ आता है। सब कोई याद रहता है ? 'वह केवल

को (बीज ज्ञानी कहे।)' केवलज्ञान का बीज सम्यग्दर्शन है। आहा..हा..! उस सम्यग्दर्शन में सब आगम के भेद जान लेता है। आहा..हा..! जो आगम को कहना है, वह सब ज्ञात हो जाता है, बापू! सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है? आहा..हा..! भाई! वह चीज़ कोई बाहर की श्रद्धा, ऐसी कोई चीज़ नहीं है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : सम्यक्त्व का बीज...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बीज नहीं, वह तो वाणी पड़ी है। अन्दर में संस्कार डाले कि मैं रागरहित हूँ - ऐसे डालते-डालते जब अनुभूति हो, तब सम्यग्दर्शन होता है।

मुमुक्षु : पंचम गुणस्थान की बाह्य क्रिया तो नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसे?

मुमुक्षु : तिर्यंचों को।

पूज्य गुरुदेवश्री : है। पंचम गुणस्थान के बारह व्रत आदि उसे है। क्या कहते हैं? जो मुनि नहीं, मुनि के ऐसे विकल्प है परन्तु मुनि नहीं, बाहर में व्रत है, शुभराग, हों! स्वरूप की स्थिरता पंचम गुणस्थान का जितना आनन्द है। सर्वार्थसिद्धि के देव क्षायिक समकिती हैं, उनकी अपेक्षा भी पंचम गुणस्थानवाले तिर्यंच को शान्ति और आनन्द बढ़ गये हैं। आहा..हा..! अरे! भगवान! आत्मा है न वहाँ? भले तिर्यंच का तो मिट्टी का शरीर है। तिर्यंच का हो, मनुष्य का हो, देव का हो, वह तो धूल है। उसमें क्या?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह माँस नहीं खाता, मछली नहीं खाता। हजार योजन का मच्छ हो तो वह मछलियाँ नहीं खाता, माँस नहीं खाता। वहाँ हजार योजन का कमल है। हजार योजन का कमल है, उस कमल में से खाता है, वनस्पति खाता है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : पानी तो अनछना पीता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो भले परन्तु पानी हो वह... आहा..हा..! यह अन्तर की बातें जोरदार है, भाई! यह तो द्रव्यलिंग की बात आयी है तो जरा इतना स्पष्ट करना पड़ा है। द्रव्यलिंगी अन्दर राग की क्रिया से धर्म मानता है और द्रव्यलिंगी है, उसे दर्शनमोह का क्षयोपशम है—ऐसा नहीं है परन्तु द्रव्यलिंगी बाह्य में तो छठे गुणस्थान की क्रिया बराबर निरतिचार (पालता हो) अट्ठाईस मूलगुण, पाँच समिति, तीन गुप्ति व्यवहार बराबर स्पष्ट

हो परन्तु अन्तर में अनुभूति न हो तो मिथ्यादृष्टि है और अन्तर में चौथे गुणस्थान की अनुभूति हो, क्रिया छठे की हो तो द्रव्यलिंगी कहने में आता है। परन्तु यह द्रव्यलिंगी मिथ्यादृष्टि है, इसलिए द्रव्यलिंगी है – ऐसा नहीं है। जो छठे गुणस्थान की क्रिया है, वैसा गुणस्थान अन्दर नहीं है, इसलिए द्रव्यलिंगी कहने में आता है। सब बातें कठिन हैं।

मुमुक्षु : परन्तु धर्म करने में इतना सब....

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म करने में, अन्दर मिथ्या शल्य है, वे सब निकालने पड़ेंगे। आहा..हा..! भाई!

मुमुक्षु : यह बहुत कठिन है, कुछ सरल बताओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाई! यही सरल है। जहाँ है वहाँ जाना। तेरा स्वदेश अन्दर पड़ा है। आनन्द का नाथ प्रभु अन्दर सच्चिदानन्द आनन्द का नाथ यह है। है वहाँ जाना है, उसमें कठिन क्या? वह तो बहिन में दृष्टान्त पहले आ गया है कि किसी का संग किया हो तो संग छोड़ना कठिन पड़ता है परन्तु संग छोड़कर स्वतन्त्र रहना, वह सरल है। इसी प्रकार राग का संग अनादि का है, उसे छोड़ना कठिन पड़ता है परन्तु संग पर है, वह तो छोड़ सकता है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : आप कहते हो वह बराबर है, परन्तु हमें कठिन लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसने प्रयत्न नहीं किया न! उस ओर का प्रयत्न नहीं किया और अभी तो बहुत गड़बड़ हो गयी है। किसी व्यक्ति की बात नहीं प्रभु! यह तो वस्तु के स्वरूप की बात है। कोई व्यक्ति चाहे जो हो, वह अन्दर तो भगवान है। आहा..हा..! किसी व्यक्ति के प्रति द्वेष नहीं करना, कोई विरोध नहीं करना। चाहे तो मिथ्यादृष्टि चाहे जो हो और प्ररूपणा चाहे जो करता हो, परन्तु उस व्यक्ति के प्रति द्वेष नहीं, व्यक्ति के प्रति विरोध नहीं। आहा..हा..! '**सत्वेषु मैत्रीं**' सभी आत्मा के प्रति (मैत्री) आता है या नहीं? '**सत्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं**' गुणी विशेष में प्रमोद आता है। बाकी सब जीव भगवान हैं। आहा..हा..! निश्चय से तो ऐसा है कि अपना स्वरूप शुद्ध चैतन्य का भान हुआ, पर्यायबुद्धि नष्ट हुई तो समकिती दूसरे आत्मा को भी परमात्मा देखता है। आहा..हा..! क्योंकि पर्यायबुद्धि गयी तो उसकी भी पर्याय नहीं देखता। जानता है, ख्याल (में है) परन्तु वह भगवान पूर्णानन्द आत्मा प्रभु है। आहा..हा..!

दूसरी बात, श्रीमद् में आता है 'कोई क्रियाजड़ हो रहे' राग की क्रिया को धर्म मानकर कोई क्रियाजड़ मिथ्यादृष्टि हुए। 'कोई क्रियाजड़ हो रहे, शुष्क ज्ञान में कोई' कोई ज्ञान की बातें करते हैं परन्तु अन्दर में स्वच्छन्दी (हुए)। स्वरूप की ओर का झुकाव नहीं, स्वरूप की ओर का आश्रय नहीं और बातें करते हैं (वह) निश्चयाभास है। 'कोई क्रियाजड़ थई रह्या' गुजराती है। 'शुष्कज्ञान में कोई, माने मारग मोक्ष का करुणा उपजे जोई।' अज्ञानी राग से धर्म मानता है और शुष्कज्ञान में ज्ञान की बातें करता है परन्तु अन्दर स्वरूप-सन्मुख का झुकाव नहीं, अन्तर का झुकाव नहीं और अकेली ज्ञान की बातें करे - स्वच्छन्द सेवन करे। आहा..हा..! 'कोई क्रियाजड़ हो रहे' भाषा समझते हो? 'कोई क्रियाजड़ हो रहे' 'थई रह्या' का (हिन्दी में अर्थ होता है) हो रहे। 'शुष्कज्ञान में कोई, माने मारग मोक्ष का' मोक्ष का मार्ग, राग की क्रिया जड़ में और शुष्कज्ञान में मानते हैं। 'माने मारग मोक्ष का करुणा उपजे जोई' अरे रे! उसके मिथ्यात्व के परिणाम, प्रभु! उसे भवभ्रमण में दुःख होगा, ऐसे प्राणी के प्रति तिरस्कार, अनादर नहीं होता। गोदिकाजी! आहा..हा..! करुणा.. करुणा। अरे! प्रभु! तेरे इस मिथ्यात्वभाव में, बापू! प्रभु! तुझे बहुत दुःख होगा। बहुत दुःख होगा, उस दुःखी प्राणी का तिरस्कार कैसे किया जाये? आहा..हा..! ऐसी बातें हैं, प्रभु! करुणा.. करुणा.. करुणा.. आहा..हा..! ऐसा मार्ग है।

यहाँ यह कहते हैं **जिस मार्ग से यह सम्यक्त्व हुआ...** बाह्य में भले द्रव्यलिंगी है, अन्दर समकिती है तो वह जानता है कि मैंने मेरे स्वभाव के आश्रय से सम्यक्त्व लिया है तो मुनिपना भी इसी दशा से होगा। मैं छठे गुणस्थान की क्रिया करता हूँ, इसलिए मुझे मुनिपना आ जायेगा - ऐसा वह नहीं मानता। आहा..हा..! जिस मार्ग से सम्यक्त्व हुआ, अन्तरभान हुआ... आहा..! प्रभु! पूर्णानन्द प्रभु अनन्त आनन्द और ज्ञान का सागर, अनन्त गुण का सागर प्रभु, देव-स्वयं देव है। सबेरे आया था न? स्वयं देव, शक्ति का भण्डार, दिव्यशक्ति का भण्डार देव है। उसके आश्रय से जो सम्यग्दर्शन हुआ तो सम्यग्दृष्टि को ऐसा ख्याल आता है कि उसके आश्रय से मुनिपना होगा। मैं यह छठे गुणस्थान की क्रिया करता हूँ, अन्दर समकित है और यह क्रिया करता हूँ तो मुझे छठा गुणस्थान आ जायेगा - ऐसा नहीं मानता। आहा..हा..! कहो, ज्ञानचन्दजी! ऐसा है, भाई! बहुत कठिन काम है। आहा..!

लक्ष्मी जाये, बुजुर्ग माँ-बाप स्वर्गस्थ हो जाये, फिर लड़के लड़ाई करते हैं, विवाद करते हैं कि यह मकान मेरा और यह मकान तेरा। मैं इस मकान में पिताजी के साथ रहता

हूँ। पाँच लाख का मकान हो, दस लाख की पूँजी हो। चार लड़के हों। इस मकान में मैं रहता हूँ, पिताजी स्वर्गस्थ हो गये, लक्ष्मी घट गयी और मकान में विवाद करते हैं।

इसी प्रकार परमात्मा की उपस्थिति है नहीं, आहा..हा..! और सर्वज्ञ की पर्याय की प्रगटता रही नहीं। फिर विवाद खड़ा करते हैं। शुभ से होता है, ऐसा होता है, (ऐसे) करते-करते होता है। अरे प्रभु! क्या करता है?

मुमुक्षु : विवाद करते हैं, सब लड़कों को बराबर मिलना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो दृष्टान्त दिया है कि पिताजी की अनुपस्थिति, लक्ष्मी भी खर्च हो गयी, मकान रह गया। उसमें चार व्यक्तियों में विवाद (चलता है)। वह कहे मैं इस मकान में रहता हूँ तो मुझे यह मकान मिलेगा। यह कहे पूरा मकान मिलकर दस लाख, पच्चीस लाख या बीस लाख है, तू अकेला दस लाख का ले ले तो हमें चौथे भाग में क्या आयेगा? समझे? इसी प्रकार यहाँ आत्मा में भगवान परमात्मा का अभी यहाँ विरह पड़ा है, प्रभु! आहा..हा..! केवलज्ञान रहा नहीं, एक श्रुतज्ञान रहा। आहा..हा..! मति और श्रुतज्ञान रहे। अवधि और मन:पर्ययज्ञान भी रहे नहीं। ऊपर से कोई देव आवे और कहे, देखो! मार्ग तो यह है - ऐसा भी नहीं है।

ऋषभदेव भगवान के समय तो चार हजार साधु साथ में थे। भगवान तो (निश्चल दशा में) ऐसे रहे। चार हजार साधुओं ने भगवान के साथ (दीक्षा ले ली थी परन्तु) निभा नहीं सके तो फिर कुछ न कुछ करने लगे, कुछ न कुछ करने लगे, फल खाने लगे। मुनिदशा में नग्नपने में (ऐसा करने लगे)। देवों ने आकर कहा - ऐसा नहीं चलेगा। इस वेश में ऐसी चीज़ नहीं चलेगी। तुम्हें दण्ड देंगे। आहा..हा..! फिर सबने वेश बदल दिया। किसी ने तापस का (वेश) लिया और किसी ने कुछ। अब तुम चाहे जो करो, तुम्हारे स्वच्छन्द से, परन्तु नग्नता धारण करके यह फल खाना और हरितकाय खाना, ऐसा निभना-यह नहीं चलेगा। ऐसा तो अभी कुछ है नहीं। आहा..! अरे! कोई देव भी नहीं। प्रभु के समीप बहुत देव जाते हैं। देव को खबर नहीं?

मुमुक्षु : देव सो गये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका देव सो गया है और वे देव भी सो गये हैं। हमारे पण्डितजी ऐसा कहते हैं। आहा..! यह तो भगवान का विरह पड़ने की बातें हैं। त्रिलोकनाथ

विराजते हैं। समझ में आया? और भरतक्षेत्र में सामान्य लोगों का जन्म हो गया। भगवान विराजते हैं वहाँ क्यों जन्म नहीं हुआ? साक्षात् परमात्मा केवलज्ञानरूप से मोक्ष है, भावमोक्ष में विराजते हैं। सब (कर्म) नष्ट होंगे, फिर द्रव्यमोक्ष होगा। भावमोक्ष तो हो गया है। आहा..हा..! अपनी योग्यता हो तो वहाँ क्यों नहीं जन्मा? योग्यता (ऐसी है) दूसरे क्षेत्र में जन्म हो गया। समझ में आया?

तथापि अपनी चीज़ है तो प्राप्त हो सकती है। अपनी चीज़ का अन्दर विरह नहीं है। समझ में आया? त्रिलोक के नाथ का विरह पड़ा परन्तु चैतन्यद्रव्य अन्दर अपनी चीज़ पड़ी है, उसका तो कभी विरह नहीं है। आहा..हा..! पर्याय के समीप में प्रभु परमात्मा विराजता हैं। आहा..हा..! वह तो कभी दूर होता नहीं। आहा..हा..!

मुमुक्षु : हमें आपने विरह भुला दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : मार्ग यह है, प्रभु! क्या कहें? आहा..! ऐसी बात है।

बहिन के वचन तो देखो! आहा..! **जिस मार्ग से यह सम्यक्त्व हुआ, उसी मार्ग से मुनिपना...** होगा। आनन्द का नाथ प्रभु, पूर्णानन्द के अवलम्बन से समकित हुआ है तो उसके उग्र अवलम्बन से मुनिपना होगा। कोई क्रियाकाण्ड व्यवहार करता है तो मुनिपना होगा (-ऐसा नहीं है)। सम्यग्दृष्टि जीव चौथे गुणस्थान में हो, बाह्य में छठे गुणस्थान की क्रिया हो परन्तु अन्दर उसकी मान्यता ऐसी है कि मैं यह छठे गुणस्थान की क्रिया करता हूँ तो मैं आगे बढ़ जाऊँगा - ऐसी मान्यता नहीं है। आहा..हा..! मैंने जैसे (स्वभाव का) आलम्बन लिया और सम्यक्त्व हुआ, वैसे उग्र आश्रय लूँगा तो मुनिपना होगा। आहा..हा..! ऐसा मार्ग है, बापू!

सब भगवान हैं, बापू! परमात्मा है अन्दर। आहा..हा..! यदि परमात्मा न हो तो पर्याय में परमात्मा कहाँ से आयेगा? केवलज्ञान परमात्मा अरिहन्त पद यदि अन्तरस्वरूप में न हो तो पर्याय में अरिहन्त पद आयेगा कहाँ से? आहा..हा..! इसी तरह सिद्धस्वरूप आत्मा न हो तो पर्याय में सिद्धपना कहाँ से आयेगा? इसी प्रकार भाव आचार्यपद अन्दर न हो तो भाव आचार्य की पर्याय आयेगी कहाँ से? इसी प्रकार भाव उपाध्याय स्वभाव यदि आत्मा में न हो तो उपाध्याय की पर्याय कहाँ से आयेगी? इसी प्रकार अन्तर में साधु स्वभाव, पूर्णानन्द का नाथ, ऐसा साधु स्वभाव अन्दर में है। आहा..हा..! तो साधु की पर्याय-वीतरागीदशा अन्तर में से आती है। समझ में आया? आहा..हा..!

मुमुक्षु : उसके आश्रय से आती है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके आश्रय से-द्रव्य के आश्रय से। सम्यग्दर्शन हुआ तो सम्यग्दर्शन के आश्रय से भी मुनिपना नहीं आता। क्या कहा ? जो भगवान पूर्णानन्द प्रभु के आश्रय से सम्यग्दर्शन हुआ तो सम्यग्दर्शन की पर्याय के आश्रय से मुनिपना होगा - ऐसा सम्यक्त्वी नहीं मानते। समझ में आया ? और मुझे केवलज्ञान होगा, मुझे स्व-आश्रय से चारित्र हुआ तो उस चारित्र की पर्याय के आश्रय से केवलज्ञान होगा - ऐसा सम्यक्त्वी नहीं मानते। मैं उग्र आश्रय लूँगा, तब केवलज्ञान होगा। आहा..हा..!

मोक्ष के मार्ग से मोक्ष होगा, यह भी यहाँ तो छोड़ दिया है। केवलज्ञान और मोक्ष जो है, मुझे जो सम्यक्त्व मेरे आश्रय से प्रगट हुआ, उसका ही मैं उग्र आश्रय लूँगा, तब केवलज्ञान होगा। चारित्रपर्याय है तो उससे मोक्ष होगा - ऐसा नहीं मानते। आहा..हा..! सम्यक्-सच्चा चारित्र है, परन्तु पर्याय है। पर्याय के आश्रय से केवलज्ञान की पर्याय होगी - ऐसा नहीं मानते। आहा..हा..! कहो, बाबूभाई! ऐसा मार्ग है। बेचारे लोग कहें, उन्हें जँचता नहीं, इसलिए निश्चयाभासी है, (-ऐसा वे कहते हैं) बापू! सब खबर है भाई! आहा..हा..! भाई! तुझे वस्तु की खबर नहीं और खबर बिना तू बात करता है तो तेरा विरोध नहीं होना चाहिए, करुणा होनी चाहिए। आहा..हा..!

यहाँ कहा—**जिस मार्ग से यह सम्यक्त्व हुआ, उसी मार्ग से मुनिपना और केवलज्ञान होगा...** देखो! आहा..हा..! मुनिपने की पर्याय के आश्रय से केवलज्ञान नहीं होगा। मोक्षमार्ग की पर्याय का व्यय होता है और केवलज्ञान की पर्याय उत्पन्न होती है; तो व्यय में से उत्पन्न नहीं होती। त्रिकाली का उग्र आश्रय करने से केवलज्ञान होगा। आहा..हा..! देखो तो मार्ग प्रभु का! आहा..हा..! 'प्रभु का मारग है शूरो का, कायर का नहीं काम जो न!' ये लोग कहते हैं 'हरि का मारग है शूरों का' हरि का मार्ग शूरवीर का है - ऐसा कहते हैं। यहाँ कहते हैं 'वीर का मार्ग है शूरों का' आहा..हा..! वहाँ कायर का काम नहीं है। राग की प्रीति के प्रेम में पड़े हुए नपुंसकों का यह काम नहीं है। आहा..हा..! समझ में आया ? कहो नेमचन्दभाई! ऐसी बात है, भाई! लोगों को जिज्ञासा है। देखो न कितने लोग आये हैं! पौने आठ सौ तो शिविर में आये हैं, इसके अतिरिक्त महिलायें, बहिनें, लड़कियाँ बहुत आयी हैं। बहिन के समय तो (बहिनश्री की जन्मजयन्ती के समय तो)

तीन हजार लोग। दूज पर। समाते नहीं इतने लोग। इतने सुनने के प्रेमी तो हैं। भाई! बापू! मार्ग यह है। भाई! यह कोई घर की कल्पना नहीं है। आहा..हा..!

ऐसा ज्ञात हो गया। देखो! क्या (ज्ञात हो गया)? सम्यग्दर्शन-अनुभूति हुई तो ज्ञान - ऐसा हो गया कि द्रव्य के आश्रय से चारित्र होगा, द्रव्य के आश्रय से केवलज्ञान होगा, द्रव्य के आश्रय से शुक्लध्यान होगा। आहा..हा..! ऐसा नहीं मानता कि मैं छठे गुणस्थान की क्रिया करता हूँ, मुझे समकित है, यह क्रिया करते-करते मुझे मुनिपना आ जायेगा - ऐसा नहीं है। आहा..हा..! महेन्द्रभाई! वहाँ कहीं हीरा, माणिक में कहीं धूल में नहीं। सुनने नहीं मिलता, वहाँ रुक गये हैं। बापू गये तो...

मुमुक्षु : करना क्या? आप उपाय बताओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : निवृत्ति लेने को कहते हैं। कहा न इन भाई का? हसमुख। आजकल गये। दो-तीन लाख की आमदनी की लोहे की दुकान मुम्बई में है। स्वयं ने दुकान की, दुकान जमी। ४२ वर्ष की उम्र है, एक ग्यारह वर्ष का लड़का है, लड़की तेरह वर्ष की है। भाई! दो भाई को दुकान में रखा था। भाई! अपने तीन भाग हैं तो मुझे तीसरा भाग आता है तो मुझे चौथा भाग दो। भाई! मैं दुकान में नहीं आऊँगा, मैं दुकान में नहीं आऊँगा। आहा..हा..! ऐई..! यहाँ तो तुम्हारे करोड़ों हों तो भी चैन नहीं। भाई को कहा, भाई! हम तीन भाई हैं तो मुझे तीसरा भाग आता है, तो मुझे चौथा भाग दे दो। हसमुखभाई आते हैं। कल थे। शनि, रवि हमेशा आते हैं। वहाँ स्कूल है इसलिए (जाते रहे)। आयेंगे, शनिवार को आयेंगे। भाई ने पाँच लाख दिये। बस, उत्तर / जवाब कुछ नहीं। अपने इतनी आमदनी है, इतना पैसा है। बहुत अच्छा, भाई! पाँच लाख मुझे बहुत है। ४२ वर्ष की उम्र है। हसमुखभाई! तुम्हारे गाँव के ही... एक महीने में पाँच लाख रुपये का पाँच हजार ब्याज आता है। वे भी पाँच हजार के ब्याज में वहाँ एक महीने के हजार रुपये में किराये पर मकान लिया है। बाकी के चार हजार हैं, वे यहाँ पुस्तक में और कोई गरीबों को, ऐसे पाँच हजार खर्च कर देते हैं। बस, लड़के के पास पाँच लाख रहेंगे। और पाँच हजार आते हैं, उसमें खर्चते हैं, हों! उड़ाऊँ मैं नहीं, शास्त्र में, शास्त्र बनाने में। बहिन का शास्त्र बना तो एक साथ दिया था कुछ। कितना? चौदह सौ लिये थे, सात रुपये की कीमत। ४२०० रुपये के लिये और सबको बाँट दिये। बोटाद और भावनगर और यहाँ... निवृत्ति.. निवृत्ति.. ४२ वर्ष की

उम्र है। इस संसार में नौकरी करे तो भी ५५ वर्ष में निवृत्ति लेते हैं। यहाँ तो तुम्हारे ६० हो, ७० हो तो भी चैन नहीं है।

मुमुक्षु : वह तो सरकार निकाल देती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कहते हैं, सरकार रखती नहीं। आहा..हा..! अरे रे! ऐसा बापू! कब (मिले)? भाई! एक गिलहरी आती है, उसे देखकर ऐसा विचार आता है। गिलहरी ऐसी कोई है कि पूरे दिन यहाँ घूमती है। अरे रे! इसका जीव कौन होगा? कहाँ से आया होगा? अरे! इसे कब मनुष्यपना मिले? और यह विचार करने का योग और सुनने का कब मिले? आहा..! मिला है, वह दरकार करता नहीं। आहा..हा..!

यहाँ कहते हैं, आहा..हा..! **ऐसा ज्ञात हो गया। पूर्णता के लक्ष्य से प्रारम्भ हुआ;...** आहा..हा..! **इसी मार्ग से देशविरतिपना,...** पंचम गुणस्थान भी स्वभाव के आश्रय से होगा। समझ में आया? **मुनिपना, पूर्ण चारित्र...** आहा..हा..! **चारित्र एवं केवलज्ञान—सब प्रगट होगा।** मेरा प्रभु भगवान परमात्मा के अवलम्बन से जो अनुभूति- सम्यक् हुआ, उसके ही आश्रय से मुझे केवलज्ञान और मोक्ष होगा। आहा..हा..! कोई क्रियाकाण्ड करने से और तपस्या करने से (नहीं होगा)। यह मोक्षमार्गप्रकाशक में आया है न? वहाँ लोग प्रश्न बहुत करते थे। मोक्षमार्गप्रकाशक में। ऐसा कहते हैं, मुनि उपवास करते हैं, वह शुद्धोपयोग के लिये है - ऐसा शब्द वहाँ है। उसका अर्थ यह उपवास करते हैं, इसलिए शुद्धोपयोग होगा - ऐसा नहीं है। मोक्षमार्गप्रकाशक में है। कल आया था, खबर है, सब खबर है। (संवत्) १९८२ के साल से मोक्षमार्गप्रकाशक कितनी बार पढ़ा है। १९८२, बावन वर्ष हुए। आहा..! समयसार (संवत्) १९७८ से है। प्रवचनसार, समयसार, नियमसार, तत्त्वार्थराजवार्तिक, आदिपुराण इत्यादि सब सम्प्रदाय में देखे थे, सम्प्रदाय में देखे थे। परिवर्तन पहले सम्प्रदाय में देखे थे। आहा..हा..!

यहाँ कहते हैं, आत्मा आनन्दस्वरूप भगवान, सम्यग्दर्शन में जहाँ ज्ञान होकर प्रतीति हुई, पर्याय में पूरा आत्मा कैसा है, उसका भान आ गया और उसमें प्रतीति आयी कि मैं तो परमात्मस्वरूप हूँ। अल्पज्ञ भी मैं नहीं। आहा..हा..! पर्याय, द्रव्य की प्रतीति करती है परन्तु पर्याय में द्रव्य नहीं आता और पर्याय, द्रव्य में नहीं जाती। जाती नहीं को क्या कहते हैं? आहा..हा..! ऐसा मार्ग प्रभु का - वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा देवाधिदेव ने यह जगत को प्रसिद्ध किया, प्रभु! आहा..हा..! यह अकषाय करुणा। भगवान को करुणा है

– ऐसा आदिपुराण में कहते हैं। कौन सी करुणा? अकषाय करुणा। समझ में आया? पर की करुणा करना, वह तो राग है और प्रवचनसार में तो ऐसा लिया है कि पर की करुणा करूँ, पर की करुणा कर सकता हूँ – ऐसी करुणा करूँ, वह मिथ्यात्वभाव है। आहा..हा..! प्रवचनसार में है। तीन बोल है – अतत्त्वार्थश्रद्धान, करुणा–पर की करुणा, वह मिथ्यात्व है क्योंकि पर की करुणा कर नहीं सकता, पर की दया पाल नहीं सकता और मानता है कि मैं करुणा करता हूँ, मैं पर की करुणा कर सकता हूँ, पर को सुखी कर सकता हूँ – ये सब मिथ्यात्व के लक्षण हैं। आहा..हा..! कठिन बात है। ऐई! गोदिकाजी!

मुमुक्षु : लड़कों को सुखी करना या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करता था लड़कों को? पैसा पैदा करके पाप किया था और उसमें फिर पैंतीस हजार में लड़के को पढ़ाया। पाप करके... अपने घर की बात करते हैं। यह पाप करना नहीं और पर के लिये करता हूँ – ऐसा मानना नहीं।

मुमुक्षु : देना या नहीं देना?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसे दे? आहा..हा..! एक रजकण भी दूसरे को दे सके या ले सके, यह वस्तु में नहीं है, प्रभु! आहा..हा..! अरे! आत्मा का ऐसा एक गुण है – त्यागोपादानशून्यत्व शक्ति (है)। सैंतालीस शक्ति में आया है। आहा..हा..! आत्मा में एक अगुरुलघु नाम का गुण है तो सब गुण में अगुरुलघु का रूप है। एक समय की ज्ञान–दर्शन की पर्याय हो, उसमें भी एक पर्याय में भी षट्गुण हानि–वृद्धि होती है। आहा..हा..! केवलज्ञान की एक पर्याय में भी षट्गुण हानि–वृद्धि होती है तो भी केवलज्ञान तो ऐसा का ऐसा रहता है। आहा..हा..! वह स्वभाव तो कोई अलौकिक है, बापू! एक–एक पर्याय में अनन्त गुण की पर्याय है, उस एक–एक पर्याय में षट्गुण हानि–वृद्धि एक समय में होती है। वह क्या चीज़ है? बापू! वह कोई अलौकिक बातें हैं, भाई! यह स्वभाव कोई अलौकिक है। अकेले तर्क से समझ में आ जाये तो केवलज्ञान में बाकी क्या रहे? आहा..हा..!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह परोक्ष परन्तु यथार्थ प्रमाण है। परोक्ष भी प्रमाण है न? यह अपने आ गया। आत्मा दिखता नहीं, परन्तु परोक्ष भी प्रमाण है। अभी आ गया। आहा..हा..!

यहाँ कहते हैं **नमूना देखने से पूरे माल का पता चल जाता है।** देखो, रुई होती है,

रुई की गाँठें, थोड़ा नमूना देखे, पूरी ऐसी गाँठें हैं। इसी प्रकार आत्मा में आनन्द का अनुभव हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ तो इस नमूने में पूरा आत्मा आनन्दमय है, पूरा आत्मा पूर्ण अनन्त गुणमय है – ऐसा ज्ञान हो गया। समझ में आया ? यह ज्वार, बाजरा, चावल, थोड़ा नमूना लेकर देखे। यह पाँच सौ बोरी है, वह ऐसी है। समझ में आया ? चोखा.. चोखा कहते हैं न ? क्या कहते हैं ? चावल.. चावल.. आहा..हा.. ! **नमूना देखने से पूरे माल का पता चल जाता है।**

दूज के चन्द्र की कला द्वारा पूरे चन्द्र का ख्याल आ जाता है। है ? जितना प्रकाश है, वह पूरे पूर्ण का है, वह भी ज्ञात होता है। आहा..हा.. ! **गुड़ की एक डली में पूरी गुड़ की पारी का पता लग जाता है।** पारी का यह हिन्दी भाषा है। पारी का अर्थात् गुड़ का पूरा रवो। नमूना हाथ में लिया, पूरा गुड़ ऐसा है। इसी प्रकार सम्यग्दर्शन में भगवान का अनुभव हुआ तो पूरा आत्मा कैसा है, यह अनुभव में आ गया। आहा..हा.. ! यह हिन्दी भाषा है ? गुड़ की पारी का।

वहाँ (दृष्टान्त में) तो भिन्न-भिन्न द्रव्य हैं... क्या कहते हैं ? इस माल के नमूने में तो परमाणु भिन्न-भिन्न हैं। माल दिखाया वह भिन्न है और वस्तु भी भिन्न है। यह तो वस्तु द्रव्य भी वह और पर्याय भी वह। आहा..हा.. ! अपने द्रव्य की पर्याय नमूने में आयी और वह द्रव्य स्वयं पूर्ण ऐसा है – ऐसा नमूने में ज्ञात हो गया। आहा..हा.. ! यह तो गुड़ की डली में वह भाग भिन्न है और रवो भिन्न है। यह तो वह का वह परमात्मा, उसकी पर्याय में नमूना आ गया तो एक ही द्रव्य में ऐसा पूर्ण है – ऐसी प्रतीति में आ गया। इसका नाम सम्यग्दर्शन और अनुभूति और मोक्ष के मार्ग की शुरुआत कहलाती है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

भाद्र कृष्ण-११, मंगलवार, दिनाङ्क २९-०८-१९७८
वचनामृत-२०१ प्रवचन-७९

अपरिणामी निज आत्मा का आश्रय लेने को कहा जाता है वहाँ अपरिणामी मानें पूर्ण ज्ञायक; शास्त्र में निश्चयनय के विषयभूत जो अखण्ड ज्ञायक कहा है, वही यह 'अपरिणामी' निजात्मा।

प्रमाण-अपेक्षा से आत्मद्रव्य मात्र अपरिणामी ही नहीं है, अपरिणामी तथा परिणामी है। परन्तु अपरिणामी तत्त्व पर दृष्टि देने से परिणाम गौण हो जाते हैं; परिणाम कहीं चले नहीं जाते। परिणाम कहाँ चले जायँ? परिणमन तो पर्यायस्वभाव के कारण होता ही रहता है, सिद्ध में भी परिणति तो होती है।

परन्तु अपरिणामी तत्त्व पर—ज्ञायक पर—दृष्टि ही सम्यक् दृष्टि है। इसलिये 'यह मेरी ज्ञान की पर्याय' 'यह मेरी द्रव्य की पर्याय' इस प्रकार पर्याय में किसलिये रुकता है? निष्क्रिय तत्त्व पर—तल पर—दृष्टि स्थापित कर न!

परिणाम तो होते ही रहेंगे। परन्तु, यह मेरी अमुक गुणपर्याय हुई, यह मेरे ऐसे परिणाम हुए—ऐसा जोर किसलिये देता है? पर्याय में—पलटते अंश में—द्रव्य का परिपूर्ण नित्य सामर्थ्य थोड़ा ही आता है? उस परिपूर्ण नित्य सामर्थ्य का अवलम्बन कर न!

ज्ञानानन्दसागर की तरंगों को न देखकर उसके दल पर दृष्टि स्थापित कर। तरंगें तो उछलती ही रहेंगी; तू उनका अवलम्बन किसलिये लेता है?

अनंत गुणों के भेद पर से भी दृष्टि हटा ले। अनंत गुणमय एक नित्य निजतत्त्व—अपरिणामी अभेद एक दल—उसमें दृष्टि दे। पूर्ण नित्य अभेद का जोर ला; तू ज्ञाताद्रष्टा हो जायगा॥२०१॥

वचनामृत २०१। कल २०० चला न? जरा सूक्ष्म है। **अपरिणामी निज आत्मा का**

आश्रय लेने को कहा जाता है... क्या कहते हैं ? जो पारिणामिकभाव त्रिकाल है, उसे यहाँ अपरिणामी कहने में आया है। जो त्रिकाल ज्ञायकभाव है, उसे यहाँ अपरिणामी कहने में आया है क्योंकि पर्यायरूप नहीं होता, इस अपेक्षा से। और **अपरिणामी निज आत्मा...** भगवान के आत्मा का यहाँ कोई काम नहीं। आहा.हा.. ! निज आत्मा अपरिणामी अर्थात् पर्याय में पलटता है, वह चीज़ नहीं। यह तो परम पारिणामिकस्वभावभाव जिसका लक्षण है, उसे यहाँ अपरिणामी कहने में आया है। उसका आश्रय लेने को (कहने में आता है) आश्रय लेती है, वह पर्याय है। पर्याय उसका आश्रय लेती है। आहा..हा.. !

निज आत्मा का... त्रिकाली अपरिणामी स्वभावभाव, अपना पारिणामिकभाव स्वभाव का आश्रय लेने का **कहा जाता है...** सर्वज्ञ भगवान की आज्ञा में और शास्त्र में अपरिणामी त्रिकाली स्वभाव का आश्रय लेने को कहने में आता है। आहा..हा.. ! मुद्दे की रकम की बात है। **वहाँ अपरिणामी मानें...** अपरिणामी अर्थात् **पूर्ण ज्ञायक;...** 'अपरिणामी' शब्द लिया है वह तो परिणमन / पर्याय से भिन्न है, इस अपेक्षा से बाकी है तो पारिणामिक स्वभाव। 'परिणामे भव पारिणामिक:' ऐसा पाठ पंचास्तिकाय की ५६ गाथा की टीका में है। सहज स्वभाव जो त्रिकाल एक समय की पर्यायरहित है.. आहा.. ! ऐसा **अपरिणामी मानें पूर्ण ज्ञायक;...** पूर्ण ज्ञान, आनन्द पूर्ण स्वरूप ध्रुव।

शास्त्र में निश्चयनय के विषयभूत... अपने स्वभाव को जाननेवाली जो ज्ञान की पर्याय है, उसे यहाँ निश्चयनय कहते हैं। आहा..हा.. ! जिस पर्याय से स्वभावसन्मुख झुकाव हो, उस निश्चयनय का विषय ध्रुव है। पर्याय, निश्चयनय ज्ञान की पर्याय है। आहा..हा.. ! परन्तु उसका विषय जो त्रिकाली अखण्ड आनन्द है... आहा..हा.. ! उसे **अखण्ड ज्ञायक कहा है...** निश्चयनय का विषय, परमार्थनय का विषय, अखण्ड ज्ञायक अपारिणामिक भाव को यहाँ अखण्ड ज्ञायक कहा है। आहा..हा.. ! **वही यह 'अपरिणामी' निजात्मा।** ...है। वही अपरिणामी निजात्मा है। अखण्ड जो ज्ञायक, परमार्थ निश्चयनय का विषय जो ध्रुव, उसे यहाँ अपरिणामी कहने में आया है। वह अपरिणामी निजात्मा ध्रुव है। आहा..हा.. !

प्रमाण-अपेक्षा से... पहले निश्चय की अपेक्षा से कहा। निश्चय अर्थात् जो नय स्वद्रव्य के आश्रय ले, उसे यहाँ निश्चयनय कहते हैं। आहा..हा.. ! उस निश्चयनय की अपेक्षा से भगवान त्रिकाली ज्ञायकभाव सम्यग्दर्शन का विषय है, उसे यहाँ अपरिणामी ज्ञायकभाव कहने में आया है। आहा..हा.. ! **प्रमाण-अपेक्षा से...** पहले निश्चय की अपेक्षा

से कहा था। त्रिकाल ज्ञायक अपरिणामी पारिणामिकभावस्वरूप, ज्ञायकभावस्वरूप, भूतार्थ स्वरूप, सत्यार्थ त्रिकाल स्वरूप, वह निश्चयनय का विषय है अर्थात् वह सम्यग्दर्शन का विषय है। आहा..हा..! **प्रमाण-अपेक्षा से...** निश्चय की अपेक्षा से तो अखण्ड ज्ञायक त्रिकाली, वह उसका विषय है।

अब **प्रमाण-अपेक्षा से...** आहा..हा..! **आत्मद्रव्य मात्र अपरिणामी ही नहीं...** प्रमाण की अपेक्षा से आत्मा मात्र अपरिणामी पारिणामिकभावस्वरूप ज्ञायकभावमात्र नहीं है। आहा..हा..! **अपरिणामी तथा परिणामी है।** प्रमाण की अपेक्षा से नहीं पलटनेवाला अपरिणामी द्रव्य भी है और पर्याय पलटती है, वह भी है, वह प्रमाण का विषय है। दोनों है। आहा..हा..! **परन्तु अपरिणामी तत्त्व पर दृष्टि देने से...** आहा..हा..! परमस्वभावभाव नित्यानन्द एकरूप रहनेवाले भाव पर दृष्टि देने से... आहा..हा..! अन्तर्मुख तत्त्व है, उस पर दृष्टि देने से... बहिर्मुख तो पर्याय है, रागादि बहिर्मुख है। आहा..! अन्तःतत्त्व जो ज्ञायकभाव, उस पर दृष्टि देने से **परिणाम गौण हो जाते हैं;...** पर्याय का लक्ष्य नहीं रहता। आश्रय लेती है पर्याय परन्तु पर्याय का आश्रय नहीं रहता है... आहा..हा..! ऐसी बात है। समझ में आया? यह तो प्रथम सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की कला यह है। आहा..हा..! जो अपरिणामी स्वभाव है, उस पर दृष्टि देने से.. (पर्याय) आश्रय लेती है तो परिणाम का लक्ष्य नहीं रहता। परिणाम का लक्ष्य नहीं रहता तो परिणाम गौण हो जाते हैं - ऐसा कहने में आता है, अभाव (कहने में) नहीं आता। आहा..हा..! समझ में आया?

(समयसार की) ग्यारहवीं गाथा में ऐसा कहा न? व्यवहारनय अभूतार्थ है अर्थात् पर्याय अभूतार्थ-झूठी है, ऐसा वहाँ तो कहा है। गौण करके कहा है, अभाव करके पर्याय असत्य है - ऐसा नहीं है। आहा..हा..! भगवान आत्मा पूर्ण ध्रुवस्वभाव है, उसे मुख्य करके निश्चय कहा और पर्याय को गौण करके व्यवहार कहा - एक बात। त्रिकाली स्वभाव को मुख्य करके भूतार्थ वह ही है - ऐसा कहा और पर्याय को गौण करके 'नहीं - असत्य है' ऐसा कहा। आहा..हा..! '**ववहारोऽभूदत्थो**' पर्याय, वह व्यवहार है और द्रव्य, वह निश्चय है। आहा..हा..! और 'नयचक्र' में यहाँ तक लिया है कि प्रमाण पूज्य नहीं है क्योंकि प्रमाण में पर्याय का निषेध नहीं आता। आहा..हा..! निश्चयस्वभाव में पर्याय का निषेध आता है। असत्य है, इसलिए निषेध आता है - ऐसा नहीं। है, परन्तु आश्रय करने योग्य नहीं है; इसलिए उसे गौण करके 'नहीं है' ऐसा कहा और '**भूदत्थो देसिदो**

दु सुद्धणओ' वहाँ ग्यारहवीं गाथा में दूसरे पद में तो ऐसा कहा कि सत्यार्थ प्रभु त्रिकाल ज्ञायक एकरूप स्वभाव को हम शुद्धनय कहते हैं। उस वस्तु को ही शुद्धनय कहते हैं – ऐसा कहा है।

'भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ' भगवान परमात्मा की वाणी में भूतार्थ को शुद्धनय कहा गया है। नय – शुद्धनय तो ज्ञान का एक अंश है और वह एक अंश को स्वीकार करता है। शुद्धनय एक अंश को स्वीकार करता है। अंश कौन? त्रिकाली ध्रुव। आहा..हा..! समझ में आया? नय का विषय अंश है। प्रमाण का विषय (अंश) दोनों हैं, दोनों अंश हैं। आहा..हा..! निश्चयनय का विषय एकरूप त्रिकाल है, परन्तु है वह अंश। उसमें पर्याय नहीं आयी। आहा..! निश्चयनय का विषय जो है, वह पर्याय का निषेध करता है। प्रमाण में पर्याय और द्रव्य दोनों ख्याल में आते हैं; और दूसरे प्रकार से कहें तो ज्ञायक का ज्ञान और पर्याय का ज्ञान—ऐसा जो प्रमाण, वह प्रमाण स्वयं सद्भूतव्यवहारनय है। वह प्रमाण स्वयं... पंचाध्यायी में है। पण्डितजी! पंचाध्यायी में उस प्रमाण को व्यवहारनय का विषय कहा है। दोनों साथ में आये न (इसलिए)। द्रव्य और पर्याय दो। आहा..हा..! सूक्ष्म बात है। समझ में आये ऐसी है। यह कहीं समझ में न आये, ऐसी नहीं है। और बात तो जो ज्ञानस्वरूप है, उसे कहते हैं न! यह कहते किसे हैं? राग को कहते हैं? शरीर को कहते हैं? जो जाननेवाला है, उसे कहते हैं। समझ में आया?

भगवान! तू जाननेवाला है न! तो उस जाननेवाले का विषय जो 'त्रिकाली' है, उसे हम सत्यार्थ कहते हैं और एक समय की 'पर्याय' है, वह है तो अवश्य, परन्तु गौण करके 'नहीं' ऐसा कहने में आया है, परन्तु 'पर्याय' है ही नहीं – ऐसा करे तो मिथ्यादृष्टि हो जाये। समझ में आया? ऐसी बात है।

कहते हैं कि **अपरिणामी तत्त्व पर दृष्टि देने से परिणाम गौण हो जाते हैं; परिणाम कहीं चले नहीं जाते।** पर्याय है, वह कहीं चली जाती है – ऐसा नहीं है। आश्रय लेनेवाली पर्याय भी है परन्तु आश्रय लेनेवाली पर्याय ने आश्रय लिया है त्रिकाली का। आहा..हा..! ऐसी कठिन बात! **परिणाम कहीं चले नहीं जाते। परिणाम कहाँ चले जायँ? परिणमन तो पर्यायस्वभाव के कारण होता ही रहता है,...** आहा..हा..! बदलने के स्वभाव के कारण, **परिणमन तो पर्यायस्वभाव के कारण होता ही रहता है,..** आहा..हा..! आज पण्डितजी लाये थे न? शुद्धपर्याय है। पर्यायनय से पर्याय शुद्ध है, किस अपेक्षा से? एक आत्मा है,

उसमें अनन्त गुण हैं। उसमें कितने ही गुणों की पर्याय तो अनादि से शुद्ध ही है। अस्तित्वगुण, वस्तुत्वगुण, प्रमेयत्वगुण की पर्याय शुद्ध ही है। आहा..हा..! समझ में आया? अभव्य को भी वह पर्याय शुद्ध है। अस्तित्वगुण की पर्याय अशुद्ध होवे तो अस्तित्व कम हो जाये, ऐसा है? आहा..हा..!

जो अस्तित्वगुण है, एक आत्मा में सामान्य गुण अनन्त हैं और विशेष गुण अनन्त हैं। सामान्य (गुण) छह कहने में आये हैं। अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व.. परन्तु ये छह तो सामान्य समझाने में आये हैं, बाकी हैं तो भगवान परमात्मा में सामान्य गुण जो हैं, वे दूसरे में भी हैं और अपने में भी हैं, ऐसे सामान्यगुण अनन्त हैं और विशेष (गुण) अपने में हैं और दूसरे में नहीं – ऐसे विशेष गुण भी अनन्त हैं। आहा..हा..! परन्तु दृष्टि करनेवाले को त्रिकाली पर दृष्टि देनी है। आहा..हा..! समझ में आया? वहाँ परिणाम गौण हो जाते हैं। परिणाम कहीं चले नहीं जाते। सिद्ध में भी परिणति तो होती है। सिद्ध में भी पर्याय तो है, वह सिद्ध स्वयं पर्याय है। द्रव्य-गुण त्रिकाल है और सिद्धपर्याय स्वयं (पर्याय) है। पोते समझे? स्वयं। मोक्षमार्ग पर्याय है, संसारपर्याय है सिद्धपर्याय है। आहा..हा..! समझ में आया? केवलज्ञान भी पर्याय है। केवलज्ञान गुण नहीं। समझ में आया? तो पर्याय कहीं चली नहीं जाती। पर्याय तो है परन्तु पर्याय का आश्रय छुड़ाकर त्रिकाल ज्ञायक का आश्रय करने से सम्यग्दर्शन और अनुभूति होती है, इसलिए त्रिकाली को भूतार्थ कहा, पर्याय को गौण करके अभूतार्थ और असत्य कहा। समझ में आया? ऐसा है।

परन्तु अपरिणामी तत्त्व पर—ज्ञायक पर... दोनों एक शब्द हैं। त्रिकाली ज्ञायकभाव पर या अपरिणामी तत्त्व पर **दृष्टि ही सम्यक् दृष्टि है।** आहा..हा..! समझ में आया? **इसलिये 'यह मेरी ज्ञान की पर्याय'...** है। मेरी ज्ञान की पर्याय है। ऐसे इतना जोर क्यों देता है। पर्याय पर तेरा जोर क्यों चला जाता है कि यह मेरी ज्ञान की पर्याय है। **'यह मेरी द्रव्य की पर्याय'...** है। एक गुण की पर्याय और पूरे द्रव्य की पर्याय। यह पर्याय है, यह है – ऐसा तेरा लक्ष्य क्यों वहाँ जाता है? यहाँ तो कहते हैं कि जितना विकल्प आदि व्यवहार है, वह भी है तो अवश्य, परन्तु उस पर लक्ष्य करने से सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहा..हा..! अरे! सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न हुई, उसके लक्ष्य से चारित्रपर्याय उत्पन्न नहीं होती। आहा..हा..! चारित्र की पर्याय तो त्रिकाली ज्ञायकभाव के आश्रय से ही उत्पन्न होगी। ऐसा मार्ग है। आहा..हा..!

अरे..! आठ-आठ वर्ष के बालक भी आत्मज्ञान पाकर केवलज्ञान पाते हैं। आहा..हा..! भाई! तुझमें महा सामर्थ्य है। यह काल या क्षेत्र कुछ रोकते नहीं हैं, इसे विघ्न नहीं करते। आहा..हा..! सातवें नरक का नारकी जन्म से रोग और दुःख.. दुःख... दुःख.. दुःख.. और आया है मिथ्यादृष्टि लेकर, सातवें नरक का नारकी, परन्तु उसमें वह सम्यग्दर्शन पाता है। आहा..हा..! भले वहाँ से निकले तब वह वापस मिथ्यादृष्टि हो जायेगा। आया है मिथ्यात्व लेकर, सातवें नरक में जाता है न? कोई समकित लेकर वहाँ जाता है? परन्तु उसकी स्थिति में प्रतिकूलता का पार नहीं है। अनन्त-अनन्त प्रतिकूलता, जिसके क्षण के दुःख की व्याख्या करोड़ों भव में, करोड़ों जीभ से नहीं कही जा सकती - ऐसे तो पहले नरक के दस हजार (वर्ष की) स्थिति के दुःख। तैंतीस सागरवाले के दुःख तो प्रभु..! आहा..! उस क्षण भी वह जीव.. आहा..हा..! अन्तर में दृष्टि देता है। आहा..हा..! उस दुःख और ज्ञान की पर्याय का लक्ष्य छोड़ देता है। आहा..हा..! लोग ऐसा कहते हैं न कि सुविधा हो तो हम धर्म कर सकते हैं। यह बात मिथ्या है। समझ में आया? क्या कहा? पैसा-वैसा ठीक हो, लड़का व्यापार में लग जाये तो हमें निवृत्ति मिले, यह बात मिथ्या है। ऐसी प्रतिकूलता का पार नहीं, प्रभु! उस समय में भी भगवान आत्मा, पूर्व में सुना था कि तू तो ज्ञायक है न नाथ! परन्तु स्मरण में पहले याद नहीं रहा और इसमें (नरक में) ख्याल आ गया। आहा..हा..!

मुमुक्षु : वहाँ तो बहुत जोरदार निर्णय होता होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : जोरदार स्वभाव में से जोरदार है, जोरदार पुरुषार्थ अन्दर में घुस जाता है। दुःख और रोग और तैंतीस सागर में एक कण आहार का नहीं, एक बूँद पानी की नहीं! भाई! यहाँ दो दिन पानी न मिले तो चीखने लगे। अर..र..! अरे! मुझसे यह दुःख सहन नहीं होते।

मुमुक्षु : शरीर में जलन हो तो चीख न निकले?

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर को जलन तैंतीस सागर की है। तथापि उस समय उसका लक्ष्य छोड़कर.. आहा..हा..! भगवान आनन्द का नाथ अन्तर में अपने स्वभाव की सम्हाल लेने जाता है और सम्यग्दर्शन पाता है। आहा..हा..!

यहाँ तो ऐसी बात करते हैं कि यह मेरी ज्ञान की पर्याय—ऐसा तेरा जोर वहाँ क्यों

जाता है ? द्रव्य पर जोर होना चाहिए। आहा..हा..! है ? **'यह मेरी ज्ञान की पर्याय' 'यह मेरी द्रव्य की पर्याय' इस प्रकार पर्याय में किसलिये रुकता है ?** आहा..हा..! यह तो तत्त्व की मूल बात है, भाई! समझ में आया ? मेरे ज्ञान का बहुत क्षयोपशम हो गया। तेरी पर्याय पर लक्ष्य देकर तू वहाँ जोर क्यों देता है ? समझ में आया ? आहा..हा..! **'यह मेरी द्रव्य की पर्याय'..** है। यह मेरा द्रव्य है, उसकी यह व्यंजनपर्याय आदि पर्याय है। आहा..हा..! आहा..हा..! **इस प्रकार पर्याय में किसलिये रुकता है ?** पर्याय में ऐसा लक्ष्य करके क्यों रुकता है ? त्रिलोकनाथ भगवान विराजते हैं, वहाँ चला जा! आहा..हा..! समझ में आया ? सूक्ष्म बात है, भाई! परम पुरुषार्थ अपेक्षित है वहाँ। आहा..हा..! कहते हैं कि तुझे कोई क्षयोपशम विशेष हुआ कि यह पर्याय मेरी है, यह द्रव्य की पर्याय है, मुझे राग की बहुत मन्द पर्याय हुई, यह क्या है ? ऐसा लक्ष्य किसलिए करता है ? जोर क्यों देता है ? यहाँ तो कहते हैं, व्यवहार से निश्चय होता है—ऐसा माननेवाले को मिथ्यादृष्टि कहकर इस राग से मुझे लाभ हुआ, राग मन्द किया तो मुझे (लाभ हुआ) परन्तु उस पर दृष्टि किसलिए देता है ? आहा..हा..! अभी तो सब इसका जोर चलता है। व्यवहार कषाय मन्दता हो तो निश्चय में पहुँचा जा सकता है। यह पण्डितजी को यह ख्याल है। इस पुस्तक में है। ऐसा है नहीं, भगवान! आहा..हा..! सब पण्डितों में इनका (फूलचन्दजी का) नम्बर पहला है।

(संवत्) २०१३ के साल में कहा था कि विकार अपने षट्कारक से एक समय की पर्याय में होता है, पर की अपेक्षा नहीं। उस चर्चा के समय सब बैठे थे। तब पण्डितजी इतना बोले, ये अकेले बोले कि स्वामीजी ऐसा कहते हैं कि विकार होने में, निश्चय से विकार होने में पर की अपेक्षा नहीं है, ऐसा बोले थे। शिखरजी में सब बैठे थे। हमारे पण्डितजी हिम्मतभाई, रामजीभाई, बंशीधरजी, वर्णीजी, कैलाशचन्दजी सब बैठे थे। भाई! ऐसी विपरीतता आ गयी है कि कर्म निमित्त से होता है, निमित्त से होता है, कर्म है तो यहाँ विकार होता है। ऐसी बात है ही नहीं। ***विकार पर्याय में होता है, वह अपनी योग्यता से, अपनी लायकात से और उस समय का निजक्षण उत्पत्ति का काल है, उससे विकार उत्पन्न होता है। कर्म से नहीं, पूर्व की पर्याय से नहीं। आहा..हा..! द्रव्य से नहीं, गुण से नहीं, आहा..हा..! एक समय की पर्याय, पर्याय से उत्पन्न होती है, ऐसा ही उसका स्वभाव है। आहा..हा..!***

मुमुक्षु : अद्धर से होती है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ***पर्याय अद्धर से होती है। द्रव्य और गुण का आश्रय नहीं, पर का आश्रय नहीं।*** पण्डितजी! प्रवचनसार की १०२ गाथा है, उसमें लिया है कि निजक्षण। वह-वह पर्याय उत्पन्न होने का निजक्षण है, निज काल है और प्रवचनसार गाथा १०१ में तो यहाँ तक लिया है कि ***जो विकृत अवस्था होती है, उसे व्यय की अपेक्षा नहीं, द्रव्य की अपेक्षा नहीं, स्वतन्त्र उत्पाद होता है।*** १०१ गाथा है। ***तीनों बोल स्वतन्त्र हैं। उत्पाद, उत्पाद से होता है; उत्पाद, व्यय से नहीं; उत्पाद, ध्रुव से नहीं; ध्रुव, उत्पाद नहीं; ध्रुव, व्यय से नहीं; व्यय, उत्पाद से नहीं (व्यय, ध्रुव से नहीं) आहा..हा..!*** यह ज्ञेय अधिकार है तो ज्ञेय का स्वरूप ही ऐसा है ऐसा बताया है। आहा..हा..! ज्ञेय अधिकार है। वास्तव में तो जयसेनाचार्यदेव ने उसे सम्यग्दर्शन का अधिकार कहा है। ज्ञेय का-छह द्रव्य का स्वरूप ही ऐसा है। आहा..हा..! जिस समय में जो पर्याय उत्पन्न होने का काल है, उस समय में वह स्वयं से उत्पन्न होती है, विकृत या अविकृत। आहा..हा..!

यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि मुझमें ज्ञान की पर्याय खिली, मेरे द्रव्य की पर्याय ऐसी हुई, मुझे आनन्द विशेष आया - ऐसे पर्याय पर जोर, लक्ष्य क्यों देता है? समझ में आया? आहा..हा..! ऐसा है, बापू! यह कहीं वाद-विवाद से पार पड़े, ऐसा नहीं। नियमसार में कहा है न? ***ज्ञाननिधि प्राप्त करके स्वसमय और परसमय के साथ वाद-विवाद करना नहीं, प्रभु! क्योंकि अनेक प्रकार के जीव हैं, अनेक प्रकार की लब्धि है, कर्म अनेक प्रकार के हैं तो उसमें तू किस प्रकार से वाद करेगा?*** '**णाणा जीव, णाणा लब्धा, णाणा कम्मा**' हम तो ऊपर से अर्थ करते हैं। आहा..! समझ में आया? आहा..हा..!

जिनेश्वर त्रिलोकनाथ की यह वाणी और सन्तों की यह वाणी है। आहा..हा..! कहते हैं कि प्रभु! तेरी पर्याय में ज्ञान का बहुत क्षयोपशम हुआ तो उस पर्याय पर जोर क्यों देता है। अरे! मुझे बहुत मन्द राग हुआ, ऐसे पर्याय पर तेरा लक्ष्य क्यों देता है? आहा..हा..! **इस प्रकार पर्याय में...** इस प्रकार से **किसलिये रुकता है?** वहाँ क्यों रुक जाता है? भगवान! आहा..हा..! **निष्क्रिय तत्त्व पर...** निष्क्रिय। परिणमन नहीं, इस अपेक्षा से निष्क्रिय। उसमें पर्याय की क्रिया नहीं, (इसलिए) निष्क्रिय है। आहा..हा..! समझ में आया? यह तो ऐसी बात है। इसलिए लोगों को लगता है यह सोनगढ़ का निश्चयाभास है, ऐसा कहते हैं। भाई! तुझे खबर नहीं। वस्तु की स्थिति ऐसी है। आहा..हा..! अपने द्रव्य के आश्रय से ही सम्यग्दर्शन होता है। व्यवहार से होता है, यह मान्यता मिथ्यादृष्टि की है। समझ में आया? आहा..हा..!

यहाँ तो पर्याय में क्षयोपशम विशेष हुआ और यह द्रव्य की पर्याय है और यह श्रद्धा की पर्याय है, सम्यग्दर्शन की पर्याय है, यह चारित्र की पर्याय है - ऐसे पर्याय पर जोर क्यों देता है ? प्रभु ! आहा..हा.. ! भगवान अनन्त गुण का सागर अन्दर विराजमान है। बाल-गोपाल-बालक और वृद्ध। यह (समयसार) १७ वीं गाथा में आता है। ***आबाल-गोपाल - बालक से लेकर वृद्ध सबको ज्ञान की पर्याय में द्रव्य ज्ञात होता है। आहा..हा..!*** यह क्या कहा ? समयसार १७ वीं गाथा में आबाल-गोपाल पाठ है। आबाल अर्थात् बालक से लेकर, गोपाल - वृद्ध, सबको ज्ञान की पर्याय में आत्मा ज्ञात होता है। समझ में आया ? क्योंकि ज्ञान की पर्याय का स्व परप्रकाशक (स्वभाव है)। पर्याय भले हो परन्तु स्व-परप्रकाशक स्वभाव है; अत: स्व-परप्रकाशक स्वभाव के कारण, ज्ञान की पर्याय में स्व ज्ञात होता है परन्तु अज्ञानी की दृष्टि वहाँ नहीं है। आहा..हा.. ! पर्याय ऐसी है और मुझे ऐसा हुआ और मुझे कषाय मन्द हुई, मुझे ज्ञान का बहुत क्षयोपशम हो गया। ***यह क्षयोपशम की पर्याय भी आत्मा में नहीं। क्षयोपशमभाव भी खण्ड-खण्ड ज्ञान है, वह वस्तु में है नहीं। आहा..हा..!*** यहाँ तो थोड़ा जानपना विशेष हो जाता है तो.. आहा..हा.. ! मुझे कैसा ज्ञान है ? अरे ! सुन तो सही, प्रभु ! तू कहाँ रुक गया ? आनन्द का सागर भगवान अन्दर है, वहाँ दृष्टि नहीं करके तू कहाँ रुक गया ? आहा..हा.. !

वेदान्त में एक आता है, वह क्या कहलाता है ? बड़ी पुस्तक है वेदान्त की ? नाम भूल गये। पहले नहीं कहते थे ? चन्द्रकान्त। उसमें ऐसा लिया है, उसे कहा कि सायंकाल से पहले तुझे यह चीज़ करोड़ों अरबों रुपयों की वहाँ है। वहाँ शाम से पहले जाये तो बांस बाँध देना, ले लेना। लेने निकला, बीच में एक वैश्या नाच रही थी, वहाँ रुक गया, कोई लड़का आकर माँगने लगा कि मुझे पैसा दो, वहाँ रुक गया। ऐसे करते-करते शाम पड़ गयी। रुकते-रुकते शाम पड़ गयी। वहाँ समाप्त हो गया। इसी प्रकार यहाँ पर्याय में रुकते-रुकते द्रव्य का स्वभाव ख्याल में नहीं आया। चन्द्रकान्त.. चन्द्रकान्त। चन्द्रकान्त नामक पुस्तक है, हम तो सब देखते हैं। नाम भूल जाते हैं। चन्द्रकान्त नामक वेदान्त की मुख्य पुस्तक है। उसमें यह बात है। लेने जाने निकला, वहाँ शाम पड़ गयी और समाप्त हो गया। यह देखूँ, और यह देखूँ और यह मकान और यह वृक्ष तथा यह ऐसा और वैसा। ***इसी प्रकार अज्ञानी अनादि से यह मेरी ज्ञान की पर्याय खिली, यह मेरा राग मन्द हुआ - ऐसे लक्ष्य में रुककर द्रव्य पर दृष्टि नहीं करता।***

मुमुक्षु : रास्ते में ही रुक गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह रास्ता ही नहीं है। आहा..हा..!

इस प्रकार पर्याय में किसलिये रुकता है ? आहा..हा..! **निष्क्रिय तत्त्व पर— तल पर...** तल.. तल.. तल। ध्रुवतल है। पर्याय ऊपर-ऊपर है। यह तो कल आया था। पर्याय ऊपर-ऊपर रहती है, अन्दर प्रवेश नहीं करती। चाहे तो केवलज्ञान की पर्याय हो तो भी वह अन्दर में प्रवेश नहीं करती। प्रवेश नहीं करती - इसके दो अर्थ हैं, एक तो वर्तमान पर्याय प्रवेश नहीं करती परन्तु पहली पर्याय थी, वह अन्दर गयी तो पारिणामिकभाव हो गयी। यहाँ तो वर्तमान पर्याय अन्दर में प्रवेश नहीं करती, इतना कहना है। यह क्या कहा ?

फिर से कहते हैं, क्षायिक समकित की पर्याय हुई। दूसरे समय में वह पर्याय नहीं रहती तो वह पर्याय गयी कहाँ ? द्रव्य में गयी। समझ में आया ? परन्तु वर्तमान पर्याय अन्दर नहीं गयी, यह बताना है और वर्तमान पर्याय प्रगट है, वहाँ ही लक्ष्य करके रुकता है तो द्रव्यस्वभाव की दृष्टि नहीं होती। आहा..हा..! बाकी तो पर्याय... अरे! उदयभाव है न, भगवान! वह उदयभाव विकृत है, तथापि उस उदयभाव का नाश होता है तो अन्दर योग्यता जाती है। विकार अन्दर नहीं जाता परन्तु उसकी योग्यता अन्दर पारिणामिकभाव में जाती है। उदयभाव विलय हो गया तो कहीं वह चीज असत् थी ? वह तो सत् था। वह अन्दर जाता है। विकार अन्दर नहीं जाता परन्तु ऐसी योग्यता द्रव्यस्वभाव में जाने पर पारिणामिकभाव हो जाती है। आहा.हा..! अरे ऐसी बातें हैं। यहाँ तो पर्याय पर जोर नहीं देना, द्रव्य पर जोर देना - इस अपेक्षा से बात चलती है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पाँच भाव में चार भाव पर्याय है और एक भाव द्रव्य है। क्षायिकभाव, उपशमभाव, क्षयोपशमभाव, उदयभाव, वह पर्याय है और उस पर्याय की एक समय की अवधि है। वह एक समय की पर्याय पलटकर अन्दर जाती है। अन्दर में जाती है, उसका अर्थ पारिणामिकभाव हो जाती है। आहा..हा..! क्षयोपशम की पर्याय है, वह एक समय रहती है न! दूसरे समय में उस पर्याय का व्यय होता है, तो व्यय होकर गयी कहाँ ? सत् था न! अन्दर गयी। पानी की तरंग पानी में डूबती है। आती है न ऐसी भाषा ? ऐसा समयसार नाटक में आता है। आहा..हा..! परन्तु यह बात अभी यहाँ नहीं कहनी है।

यहाँ तो वर्तमान पर्याय जो प्रगट है, उसमें मुझे इतना क्षयोपशम हुआ और मुझे ऐसा हुआ और मुझे वैसा हुआ - ऐसे किसलिए तू रुकता है ? जहाँ भण्डार भरा है भगवान पूर्णानन्द का नाथ.. आहा..हा..! भाई! मार्ग तो यह है। अभी तो ऐसी प्ररूपणा चलती है कि व्यवहार करो, दया पालो, व्रत करो, तप करो, परीषह सहन करो... आहा..हा..! 'कुरावड' था न ? कुरावड न ? क्या कहलाता है ? कुरावड गये थे न पंच कल्याणक था ? लोग बहुत थे, दस-बारह हजार लोग थे। भिण्डर में धर्मसागर थे। एक ब्रह्मचारी आया था, वह लड़का यहाँ आया था। ज्ञानसागर क्षुल्लक। पहले यहाँ आया था। क्षुल्लक हो गया तो अभिमान प्रस्फुटित हो गया। बात करते-करते बात सुने नहीं। ऐसा होता है और वैसा होता है, परीषह सहन करे और उपसर्ग सहन करेगा तो सम्यग्दर्शन होगा। इतने-इतने परीषह सहन करते हैं और तुम कहते हो कि यह सम्यग्दर्शन नहीं है।

मुमुक्षु : समाचार पत्र में आया था।

पूज्य गुरुदेवश्री : समाचार पत्र में आया था न!

मुमुक्षु : उसमें लिखा था गुरुदेव ने पूछा, क्या तुझे सम्यग्दर्शन है ? तो कहे - गुरु की सेवा करूँगा तो हो जायेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : मैंने तो यहाँ तक कहा था कि तुम हमारे साथ बात करने के योग्य नहीं हो। समाचार पत्र में आया था। समाचार पत्र में आया था। हमारे पास पहले वह लड़का आया था। भाषण करता था परन्तु क्षुल्लक होने के बाद अभिमान चढ़ गया। साधु है, उनके पास रहता है। मैंने तो कहा - भाई! तुम्हारे साथ बात करने को मैं योग्य नहीं हूँ। समाचार पत्र में आया था। प्रभु! आहा..हा..! अरे! तू लाख परीषह सहन कर परन्तु परीषह (सहन करना) कब कहलाता है ? सम्यग्दर्शन होने के बाद प्रतिकूलता का निमित्त हो, उस समय आत्मा की शान्ति में घुस जाता है तो उसने परीषह सहन किया - ऐसा कहा जाता है। अज्ञानी को परीषह सहन है ही नहीं। समझ में आया ? बाईस परीषह किसे होता हैं ? समकिती को, ज्ञानी को, मुनि को होते हैं, उनकी बात है। अज्ञानी को परीषह कैसा ? वह तो कष्ट सहन करता है। आहा..हा..! अरे! वह तो रुँधा हुआ कषाय पड़ा है। आहा..हा..!

यहाँ कहते हैं, निष्क्रिय तत्त्व भगवान परिणमनरहित चीज़ है और तल है, ध्रुवतल; तल अर्थात् तलिया अन्दर ध्रुवस्वभाव। जैसे पाताल में तल है, वैसे ध्रुवस्वभाव तल में है।

आहा..हा.. ! उस पर **दृष्टि स्थापित कर न!** उसमें दृष्टि स्थापित कर न ! कर न ! अर्थात् कर न, तुम्हारी हिन्दी भाषा। कर न ! अर्थात् नहीं (-ऐसा नहीं) वहाँ दृष्टि कर न, प्रभु ! भगवान पूर्णानन्द ज्ञायक विराजमान है। आहा..हा.. !

परिणाम तो होते ही रहेंगे। परिणाम तो होते ही रहेंगे। **परन्तु, यह मेरी अमुक गुणपर्याय हुई,...** आहा..हा.. ! मुझे ज्ञान की पर्याय निर्मल हुई, श्रद्धा की क्षायिक पर्याय उत्पन्न हुई, आहा..हा.. ! आनन्द की पर्याय ऐसी वेदन में आयी। आहा..हा.. ! **यह मेरे ऐसे परिणाम हुए—ऐसा जोर किसलिये देता है ?** आहा..हा.. ! पर्याय को देखने पर किसलिये जोर देता है ? प्रभु ! भगवान परमात्मस्वरूप से अन्दर विराजमान है। अन्तर आत्मा कहते हैं न ? अन्तर आत्मा अर्थात् अन्दर आत्मा। पर्याय के अतिरिक्त अन्दर आत्मा, वह अन्तर आत्मा। उसकी दृष्टि हुई तो उसे अन्तरात्मा कहा जाता है। आहा..हा.. ! समझ में आया ? भाव जरा कठिन है, भाषा तो सरल है। अभी तो बहुत गड़बड़ हो गयी है। क्या कहे ?

राग की मन्दता का लक्ष्य तो छोड़ दे, परन्तु ज्ञान की पर्याय में क्षयोपशम विशेष हुआ, उसका भी लक्ष्य छोड़ दे। तेरा जोर पर्याय पर क्यों जाता है ? मुझे इतना ज्ञान हुआ, मैं करोड़ों श्लोक जानता हूँ, कण्ठस्थ करता हूँ। परन्तु उसमें क्या आया ? आहा..हा.. ! समझ में आया ? यह कहते हैं। देखो !

परन्तु, यह मेरी अमुक गुणपर्याय हुई, यह मेरे ऐसे परिणाम हुए—ऐसा जोर किसलिये देता है ? पर्याय में—पलटते अंश में... पर्याय में-पलटते अंश में। पर्याय का अर्थ किया। पर्याय अर्थात् ? पलटता अंश। ध्रुव अर्थात् नहीं पलटता अंश। उत्पाद-व्यय और ध्रुव तीनों में उत्पाद-व्यय पलटता अंश है; ध्रुव, वह नहीं पलटता अंश है। आहा..हा.. ! धवल में तो ऐसा लिया है, उत्पाद और व्यय दोनों को विरोध है क्योंकि एक भावरूप है, एक अभावरूप है। ध्रुव त्रिकाल भावरूप है; अत: उत्पाद-व्यय विरुद्ध और ध्रुव अविरुद्ध है - ऐसा धवल में कहा है। आहा..हा.. ! समयसार, तीसरी गाथा में आया न ? विरुद्ध और अविरुद्ध कार्य होने पर भी जगत टिक रहा है। समझ में आया ? विपरीत कार्य हो या अविरुद्ध कार्य हो परन्तु अपने में पूरा जगत इस प्रकार टिक रहा है। किसी का अंश किसी में नहीं जाता और किसी का अंश किसी में से नहीं आता। विरुद्ध और अविरुद्ध शब्द पड़ा है। समयसार। समझ में आया ? तीसरी गाथा में विरुद्ध-अविरुद्ध शब्द है। विरुद्ध-अविरुद्ध कार्य से पूरा जगत टिक रहा है अर्थात् अपने में अपने कारण से विरुद्ध हो या

अविरुद्ध हो परन्तु वह अपने में है। कोई पर से है पर में है – ऐसा नहीं। पूरा जगत इस प्रकार टिक रहा है – ऐसा पाठ है।

यहाँ कहते हैं कि पर्याय पर तेरा लक्ष्य जाता है, जोर देता है कि मुझे ज्ञान का बहुत क्षयोपशम हो गया, मेरी क्षायिक समकित पर्याय हुई, परन्तु इतना सब जोर पर्याय पर क्यों देता है? समझ में आया? आहा..हा..! मुझे चारित्र की पर्याय हुई। भाई! पर्याय होती है, परन्तु उस पर जोर किसलिए देता है? जोर तो भगवान त्रिकाल ज्ञायक निष्क्रिय तत्त्व अन्दर तल में है, (उस पर दे)। आहा..हा..! ऐसी भाषा! कोई कहता है कि नया धर्म निकाला। भाई! अनादि का वीतराग परमात्मा त्रिलोकनाथ अनन्त काल से (ऐसा कहते हैं)। त्रिकाल में त्रिकाल को जाननेवाले का अभाव कभी नहीं होता।

मुमुक्षु : ऐसा कहते हैं कि साहेब! ऐसी सूक्ष्म बात करते हो तो साधु क्यों नहीं हो जाते?

पूज्य गुरुदेवश्री : साधु किस प्रकार होवें? बाहर वस्त्र छोड़ दे तो साधु हो जाता है? आहा..हा..! अन्तरद्रव्य में उग्र पुरुषार्थ होकर स्थिरता हो, तब साधु होता है। द्रव्य के आश्रय से जो सम्यक्त्व हुआ, उसी द्रव्य का उग्र आश्रय करे, तब चारित्र प्रगट होता है। वस्त्र छोड़ दिया, इसलिए चारित्र हो गया? आहा..हा..! बापू! अलौकिक बात है, भाई! आहा..हा..! व्रतादि तो आस्रव है। पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण आस्रव है। यहाँ तो उसकी बात तो छोड़ दे परन्तु उस समय आस्रव जाननेवाली ज्ञान की पर्याय विशेष उघड़ी है, उस पर जोर किसलिए देता है? मेरे ज्ञान का विकास हुआ, मुझे इतना ख्याल नहीं था, अब बहुत क्षयोपशम हुआ। उस क्षयोपशम पर इतना जोर किसलिए देता है? आहा..हा..! समझ में आया? मैं दो घड़ी में सैंकड़ों श्लोक कण्ठस्थ कर सकता हूँ। उसमें क्या हुआ? आहा..हा..! उसमें क्या है? वह तो मजदूरी है। अरे! सन्त तो एक घड़ी में, दो घड़ी में ग्यारह अंग पारायण कर जाते हैं। बापू! ऐसी लब्धि-शक्ति होती है। दो घड़ी अन्तर्मुहूर्त में ग्यारह अंग का पर्यटन कर लेते हैं, ऐसा पाठ है। तत्त्वार्थ राजवार्तिक (में है)। समझ में आया? परन्तु वह क्या चीज़ है? इतना अधिक जोर क्यों? मैं ऐसा बहुत कर सकता हूँ। अरे प्रभु! अन्दर भगवान तीन लोक का नाथ है, वहाँ जोर दे न! ...भाई!

पलटते अंश में—द्रव्य का परिपूर्ण नित्य सामर्थ्य थोड़ा ही आता है? क्या

कहते हैं ? जो ज्ञान की क्षयोपशम आदि की पर्याय खिली, उसमें द्रव्य का परिपूर्ण नित्य सामर्थ्य थोड़े ही आता है ? उस द्रव्य का जो सामर्थ्य है, वह पर्याय में आता है ? पर्याय में उसका ज्ञान होता है। पूरा द्रव्य ऐसा है, उसका ज्ञान होता है परन्तु द्रव्य का सामर्थ्य, द्रव्य चीज़ कहीं पर्याय में आ जाती है ? आहा..हा.. ! यह क्या कहते हैं ? कि पर्याय अल्प हो तो भी द्रव्य का सम्पूर्ण सामर्थ्य है, पूर्ण सामर्थ्य है और पर्याय विशेष हुई तो भी द्रव्य का तो पूर्ण सामर्थ्य है। विशेष पर्याय हुई, इसलिए द्रव्य में कुछ कम हो गया (-ऐसा नहीं है।) आहा..हा.. ! क्या है यह ! समझ में आया ? अक्षर के अनन्तवें भाग ख्याल (ज्ञान) था, उसे एकदम क्षयोपशमज्ञान ग्यारह अंग का हो गया। आहा..हा.. ! तो क्या हुआ ? कहते हैं। उस पर्याय में क्या द्रव्य आ जाता है ? हाँ, सम्यग्दर्शन की पर्याय में, द्रव्य जितनी ताकत और सामर्थ्यवाला है, उतना ज्ञान आ जाता है, वह चीज़ नहीं आती। आहा..हा.. ! ऐसा गम्भीर मार्ग है, प्रभु ! अरे ! इसे जन्म-मरणरहित होने का पंथ तो यह है, प्रभु ! आहा..हा.. ! जिसमें जन्म-मरण और जन्म-मरण का भाव नहीं, अरे ! जिसमें क्षयोपशम की पर्याय भी नहीं.. आहा..हा.. ! ऐसे भगवान पर (दृष्टि दे)।

द्रव्य का परिपूर्ण नित्य सामर्थ्य थोड़ा ही आता है ? उस परिपूर्ण नित्य सामर्थ्य का अवलम्बन कर न! पर्याय में द्रव्य का सामर्थ्य, पूरा द्रव्य आ नहीं जाता। पूरा द्रव्य जो है, वह परिपूर्ण भगवान स्वरूप है, निष्क्रिय है, तल है, पर्याय का वह तल है, तल है। जैसे भोंवरे तल में जाते हैं न ? ऊपर से भोंवर तल में जाते हैं न ? भोंवरा में। इसी प्रकार एक समय की पर्याय को छोड़कर अन्तर तल में जा न ! अन्दर जा न ! आहा..हा.. ! ऐसी बात है। इसकी टीका (आलोचना) करते हैं। ऐसा कहते हैं, कुन्दकुन्दाचार्य का छोड़कर चम्पाबेन का पढ़ने लगे। अरे प्रभु ! परन्तु.. यह पूरे सिद्धान्त हैं। समयसार में जो कहा है, वे ही सिद्धान्त अनुभव से इसमें आये हैं। आहा..हा.. ! मोक्षमार्गप्रकाशक टोडरमलजी, वह गृहस्थी ने बनाया है, तो क्या नहीं पढ़ना ? आहा..हा.. ! नियमसार की टीका मुनि ने की है। चलता है, यह कोई नयी चीज़ नहीं है - ऐसा ही चलता है।

एक बार तो ऐसा लिखा था, दिल्लीवाले कैसे कहलाते हैं ? सन्मति सन्देश। हितैषी ने ऐसा पत्र में लिखा था, भगवान के विषय में कुछ लिखा था। हमारे ख्याल में आया नहीं। जहाँ-जहाँ भगवान जाते थे, वहाँ-वहाँ हजारों विरोधी विरोध करने जाते थे। हितैषी ने कहीं से डाला है। उसके पत्र में आया था। सन्मति सन्देश है न ? उसमें आया था। भगवान

जहाँ-जहाँ जाते थे, वहाँ-वहाँ उनके विरोधी उनका विरोध करने जाते थे। यह तो जगत में चला आता है। यह लीमड़ीवाला... क्या कहलाता है ? पूनमचन्दजी। जहाँ-जहाँ हम जाते हैं, वहाँ सामने विरोध करने आते, अन्त में भ्रष्ट हो गया, सम्प्रदाय से ही भ्रष्ट हो गया।

उस परिपूर्ण नित्य सामर्थ्य का अवलम्बन कर न! भगवान त्रिकाली सामर्थ्य जो द्रव्य है, वह पर्याय में नहीं आता, उस द्रव्य का अवलम्बन कर न! पर्याय का अवलम्बन क्यों लेता है ? समझ में आया ? आहा..हा..! ओहो..हो..! लम्बा है, हों! **ज्ञानानन्दसागर की तरंगों को न देखकर...** आहा..हा..! समुद्र में जो तरंग उठती है, वैसे ज्ञानानन्दसागर, भगवान ज्ञानानन्दसागर की पर्याय / तरंग उठती है। आहा..हा..! उसे न देख, तरंगों को न देख! अन्दर ज्ञानानन्दसागर पड़ा है। आहा..हा..! बहिन की तो सादी गुजराती भाषा है, हों! ज्ञानानन्दसागर! वह तो ज्ञान और आनन्द का सागर प्रभु है। उसमें तरंग जो पर्याय उठती है.. आहा..हा..! उसे न देख। उसे नहीं देखकर **उसके दल पर दृष्टि स्थापित कर।** समझ में आया ? उसके दल पर दृष्टि स्थापित कर, तरंग पर नहीं। आहा..हा..! अन्दर पूरा दल पड़ा है न! चैतन्य दल ध्रुव अन्दर अनन्त ज्ञान और आनन्द का सागर भरा है। आहा..हा..! तुम्हारे तो नहीं, हमारे यहाँ काठियावाड़ में दल के लड्डू होते हैं। दल के लड्डू। गेहूँ के दल के लड्डू घी पीलाकर बनाते हैं। दल के लड्डू कहते हैं, तुम्हारे भी कुछ भाषा होगी। यही कहते हैं ? दल के लड्डू। इसी प्रकार यह दल पड़ा है। अन्दर लड्डू.. आहा..हा..! उस पर दृष्टि दे न! आहा..हा..!

मुमुक्षु : दल के लड्डू तो देखने मिले।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल है, मिट्टी है। हमने तो सब देखा है। देखा भी है और बाहर में खाया भी है। एक शक्करपारा होता है। सुना है ? चने का आटा होता है न ? एक सेर चने के आटे को चार सेर घी पिलाये, उसे मेसूर कहते हैं। मेसूरपाक। परन्तु गेहूँ के आटे को एक सेर में चार सेर घी पिलाकर बनावे तो उसे शक्करपारा कहते हैं। हमने तो सब देखा है। हमारा (संवत्) १९८१ में गडढा में चातुर्मास था। लोग तो हमें प्रसिद्धरूप से मानते थे न! संघ जीमण करते हैं, संघ जीमण। एक व्यक्ति ने संघ का जीमण शक्करपारा से किया। १९८१ के साल की बात है। कितने वर्ष हुए ? ५३। एक सेर गेहूँ का आटा, चार सेर घी और शक्कर, उसे शक्करपारा कहते हैं। वह धूल है, उसमें है क्या ? आहा..हा..!

यहाँ पर्याय में शक्करपारा अर्थात् ज्ञान की पर्याय उत्पन्न होती है तो भी तुझे वह

ध्यान में लेने की वस्तु नहीं है, जानने की चीज़ है। दृष्टि का जोर तो यहाँ दे। आहा..हा..! आहा..हा..! है ? **उसके दल पर दृष्टि स्थापित कर।** दल जो भगवान पूर्णानन्द ज्ञायकभाव / अपरिणामीभाव पर दृष्टि दे न! आहा..हा..! जहाँ भगवान विराजते हैं, उस भगवान की भेंट कर न! पर्याय की भेंट.. **तरंगें तो उछलती ही रहेंगी;...** पर्याय तो उछलती ही रहेगी। **तू उनका अवलम्बन किसलिये लेता है ?** पर्याय का अवलम्बन क्यों लेता है ? यहाँ तो व्यवहार से होता है, यह बात (तो) कहीं चली गयी परन्तु व्यवहार राग को जाननेवाली जो ज्ञान की पर्याय है, उसका भी अवलम्बन किसलिए लेता है ? आहा..हा..! कठिन मार्ग है, भाई! इसे एकान्त कहते हैं। निश्चय से भी होता है और व्यवहार क्रियाकाण्ड से भी होता है, यह अनेकान्त है (-ऐसा आजकल कहते हैं)। यह अनेकान्त कहाँ हुआ ? यह तो एकान्त हुआ। सप्तभंगी में पहले क्या आया ? अपने से है, पर से नहीं। ऐसे निश्चय से आत्मा उत्पन्न होता है और व्यवहार से नहीं, इसका नाम अनेकान्त है। निश्चय से भी है और व्यवहार से भी है, यह अनेकान्त कहाँ है ? दो कहाँ आये ? अस्ति-नास्ति में दो आते हैं। आहा..हा..! समझ में आया ? बात तो ऐसी है। **तू उनका अवलम्बन किसलिये लेता है ?** एक पैराग्राफ रह गया। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

देखो, यह जीव करोड़ों रुपये की आमदनीवाला सेठ तो अनन्त बार हुआ है और अनन्त बार ही घर-घर जाकर भीख माँगकर पेट भरनेवाला भिखारी भी हुआ है; आत्मा के भान बिना पुण्य करके बड़ा देव भी अनन्त बार हुआ है और पाप करके नारकी भी अनन्त बार हुआ है परन्तु अभी भी इसे भव-भ्रमण से थकान नहीं लगती है। आचार्यदेव कहते हैं कि भाई! 'अब मुझे भव नहीं चाहिए' - इस प्रकार यदि तुझे भव-भ्रमण से थकान लगी हो तो आत्मा की प्रीति करके उसका स्वरूप समझ! इसके अतिरिक्त अन्य कोई शरण नहीं है।

(पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, आतम के हित पंथ लाग! में से)

भाद्र कृष्ण-१२, बुधवार, दिनाङ्क ३०-०८-१९७८
वचनामृत-२०१-२०३ प्रवचन-८०

वचनामृत के २०१ (बोल का) अन्तिम पैराग्राफ है। **अनंत गुणों के भेद पर से भी दृष्टि हटा ले।** आहा..हा..! यदि तुझे सम्यग्दर्शन करना हो, धर्म की पहली सीढ़ी-सोपान, तो संयोग, निमित्त पर से तो दृष्टि हटा ले कि संयोग से मुझे समकित होगा और राग की क्रिया अन्दर है तो उसके ऊपर से भी दृष्टि हटा ले कि राग की क्रिया मुझे हुई तो मुझे सम्यग्दर्शन होगा, ऐसा नहीं है। आहा..हा..! परन्तु अनन्त गुण के भेद से भी दृष्टि हटा ले। आहा..! अनन्त गुणस्वरूप मैं हूँ - ऐसा गुणी के गुण का भेद पर से भी दृष्टि हटा ले। आहा..हा..! कठिन बात है, भाई! क्योंकि गुणी अनन्त गुणस्वरूप है - यदि ऐसी दृष्टि रखेगा तो विकल्प उत्पन्न होगा। आहा..हा..!

मुमुक्षु : अनन्त गुण की महिमा तो है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त गुण की महिमा, परन्तु गुणी की महिमा न? गुण की महिमा करके गुणी पर दृष्टि करनी है न? गुणभेद पर नहीं। आहा..हा..! प्रथम में प्रथम यह कर्तव्य है प्रभु! बाकी मन में समाधान कर ले, चाहे जो मान ले, वह दूसरी चीज़ है। आहा..!

पहली चीज़ यह भगवान आत्मा अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. धर्म और गुण स्वरूप है। उसमें एक अनन्तधर्मस्वरूप नामक गुण है - एक गुण, हों! अनन्तधर्मस्वरूप ऐसा एक गुण है। आहा..हा..! सैंतालीस शक्तियाँ हैं। आहा..! ऐसा अनन्त गुणस्वरूप प्रभु, आहा..हा..! एक-एक गुण में भी अनन्तधर्मस्वरूप का रूप उसमें है। आहा..हा..! ऐसे अनन्त गुण के भेदस्वरूप (पर) दृष्टि रखने से सम्यग्दर्शन नहीं होगा। आहा..हा..!

भेद पर से भी दृष्टि हटा ले। आहा..हा..! संयोग और राग की मन्द क्रिया, शुभ दया, दान, व्रत आदि तो विकल्प है, उसके ऊपर से तो दृष्टि हटा ले, उससे समकित नहीं

होगा। आहा..हा..! और गुणी भगवान आत्मा में अनन्त गुण हैं – ऐसे भेद पर दृष्टि रखने से भी सम्यग्दर्शन नहीं होगा। सम्यक् अर्थात् सत्य दर्शन। अतः सत्य जो अभेद वस्तु है, उसकी दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होगा। आहा..हा..! सम्यक् अर्थात् सत्यदृष्टि। तो पूर्ण सत्य जो अभेद है, उसके अवलम्बन से सम्यग्दर्शन होगा। गुण-गुणी के भेद से भी नहीं। गजब बात, प्रभु! आहा..हा..! यह बात लोगों को एकान्त लगती है। वस्तु सम्यक् एकान्त ही है। नय का विषय एक धर्म है। कौन? अभेद त्रिकाल। सूक्ष्म बात, बापू!

प्रभु अन्दर अभेदस्वरूप है, सबेरे कहा था न? पाँच भावस्वरूप। वह अभेदस्वरूप है। विशेष और ऐसा आया था न? अविशेष। अविशेष अर्थात् विशेष नहीं, भेद नहीं, गुण का भेद भी नहीं। यह सबेरे आया था। सामान्य। गुण-गुणी के भेद से भी दृष्टि हटा ले। आहा..हा..! जहाँ प्रभु पूर्णानन्द एकरूप है, वहाँ दृष्टि लगा दे। कैसा है?

अनंत गुणमय एक नित्य निजतत्त्व... अनन्त गुणमय। गुणवाला – ऐसा नहीं। अनन्त गुणमय। आहा..हा..! अनन्त गुणवाला, यह भी भेद हो गया। अनन्त गुणमय भगवान आत्मा एक समय में अनन्त गुणमय एक, अनन्त गुणमय एक। अनन्त गुणवाला, अनन्त गुण – ऐसा नहीं। आहा..हा..! यह बात सन्त जगत के समीप प्रसिद्ध करते हैं, भाई! जगत को रुचे, न रुचे, जगत स्वतन्त्र है। आहा..! अनन्त-अनन्त काल में इसने दृष्टि अभेद पर कभी की ही नहीं। आहा..हा..!

यहाँ कहते हैं कि शास्त्र का ज्ञान, पर्याय में हुआ, आहा..हा..! उससे भी दृष्टि हटा ले। सूक्ष्म बात है, प्रभु! सम्यग्दर्शन और सम्यग्दर्शन का विषय अलौकिक है और उस सम्यग्दर्शन के बिना जितने क्रियाकाण्ड आदि करे, वह सब संसार में भटकने की चीज़ है। आहा..हा..! **अनंत गुणमय एक... अनंत गुणमय एक नित्य निजतत्त्व...** अपना निजतत्त्व। आहा..हा..! अर्थात् **अपरिणामी अभेद...** नहीं बदलनेवाला – ऐसा अपरिणामी अभेद। अपरिणामी अर्थात् परिणमन नहीं। त्रिकाली ज्ञायकभाव एकरूप जो अभेद है। वह **अपरिणामी अभेद एक दल...** एक दल। आहा..हा..! **उसमें दृष्टि दे।** आहा..हा..! तुझे सम्यग्दर्शन होगा। यह कहेंगे। **पूर्ण नित्य अभेद का जोर ला;...** प्रभु! पूर्ण, नित्य, अभेद, तीन बोल लिये। पूर्ण, नित्य, अभेद, एकरूप। आहा..हा..! भाषा सरल परन्तु भाव (गम्भीर है), बापू! आहा..हा..! यह प्रथम सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की रीति और विधि यह है। बाकी सब (व्यर्थ है)। समझ में आया?

यह पूर्ण प्रभु है, नित्य है, अभेद है – ऐसा जोर ला। ऐसा अन्दर पुरुषार्थ का जोर ला। आहा..हा..! **तू ज्ञाताद्रष्टा हो जायेगा।** तू ज्ञाताद्रष्टा है, वैसा ज्ञातादृष्टा हो जायेगा। अभेद पर दृष्टि करने से तू ज्ञातादृष्टा हो जायेगा। मैं जानने-देखनेवाला हूँ, मैं किसी राग का करनेवाला, राग से मुझमें (कुछ) होता है – ऐसा मैं नहीं। आहा..हा..! समझ में आया? **ज्ञाताद्रष्टा हो जायेगा।** आहा..हा..! अकेला तत्त्व मक्खन है। विशेष ज्ञान भी न हो, परन्तु अल्पज्ञान में भी अभेद पर दृष्टि देने से सम्यग्दर्शन होगा। आहा..हा..! धर्म की पहली सीढ़ी-सोपान, वह अभेद पर दृष्टि देने से होगी। व्यवहार के क्रियाकाण्ड, व्यवहार करें और तप करें तथा भक्ति करें और पूजा करें, दान दें, उससे सम्यग्दर्शन होगा – यह तीन काल में नहीं है। आहा..हा..! इससे तो नहीं परन्तु गुण-गुणी के भेद के लक्ष्य से भी सम्यग्दर्शन नहीं होगा। आहा..हा..! समझ में आया? **तू ज्ञाताद्रष्टा हो जायेगा।** मैं तो जानने-देखनेवाला हूँ, बस! चाहे तो राग शुभ का आवे या अशुभ का हो, देह की क्रिया चाहे तो अपनी क्रिया से चाहे जो परिणमन हो, परन्तु समकिती तो अभेददृष्टि होने से ज्ञातादृष्टा है, जानने-देखनेवाला है। मैं राग करूँ और मैं दूसरी क्रिया करूँ – ऐसी चीज़ ज्ञातादृष्टा में नहीं आती। आहा..हा..! कहो, रतनचन्दजी! यह ऐसी बात है।

दृढ़ प्रतीति करके, सूक्ष्म उपयोगवाला होकर, द्रव्य में गहरे उतर जा, द्रव्य के पाताल में जा। वहाँ से तुझे शान्ति एवं आनन्द प्राप्त होगा। खूब धीर-गंभीर होकर द्रव्य के तल का स्पर्श कर॥२०२॥

२०२, **दृढ़ प्रतीति करके,...** आहा..हा..! अनन्त गुणमय प्रभु की दृढ़ प्रतीति करके **सूक्ष्म उपयोगवाला होकर,...** आहा..हा..! जब तक आत्मा ख्याल में नहीं आता, तब तक उपयोग स्थूल है। आहा..हा..! ख्याल में आनेवाला जो उपयोग है, वह तो सूक्ष्म है। ऐसी बात है। आत्मा ख्याल में नहीं आता, इसका अर्थ यह है कि इसके उपयोग में स्थूलता है। आहा..हा..! चाहे तो यह ग्यारह अंग पढ़ा हो परन्तु ख्याल में नहीं आता तो इसका वह उपयोग स्थूल है। आहा..हा..! प्रभु! सूक्ष्म उपयोग से आत्मा ज्ञात होता है। आहा..हा..!

ज्ञान का परिणमन, ज्ञान का उपयोग बहुत धीर (करके) अन्तर्मुख झुकाने का सूक्ष्म उपयोग। बहुत सूक्ष्म और बहुत धीर है। आहा..हा..! ऐसे **सूक्ष्म उपयोगवाला**

होकर,... यह क्या कहा ? रागवाला होकर या पुण्यवाला होकर या स्थूल उपयोगवाला होकर नहीं.. आहा..हा.. ! बहुत सूक्ष्म बात है। समझ में आया ? **सूक्ष्म उपयोगवाला...** जो जाननपरिणाम है, वह जाननपरिणाम ऐसा सूक्ष्म होता है कि जिससे आत्मा ज्ञात होता है, पकड़ में आता है। आहा..हा.. ! राग से भी पकड़ में नहीं आता और स्थूल उपयोग से भी पकड़ में नहीं आता। आहा..हा.. ! देखो न यह बात ! निमित्त से पकड़ में नहीं आता, राग की मन्दता से पकड़ में नहीं आता, परन्तु ज्ञान के स्थूल उपयोग से भी पकड़ में नहीं आता। आहा..हा.. ! पण्डितजी ! ऐसी बात है, प्रभु ! आहा..हा.. !

मुमुक्षु : सूक्ष्म उपयोग किस प्रकार हो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उपयोग में अन्दर पकड़ने की योग्यतावाला सूक्ष्म उपयोग हो जाये। अन्तर में पकड़ने का उपयोग, वह सूक्ष्म है। उस सूक्ष्म उपयोग से अन्दर में जा।

मुमुक्षु : परन्तु सूक्ष्म उपयोग किस प्रकार करना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कहा, स्थूल उपयोग जो राग को जानता है और पर्याय को जानता है, आहा..हा.. ! उस स्थूल उपयोग को छोड़ दे, प्रभु ! आहा..हा.. ! यह तो मक्खन है।

मुमुक्षु : इसमें धर्म क्या हुआ ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सूक्ष्म उपयोग से आत्मा को पकड़ा, यह सम्यग्दर्शन हुआ, यह धर्म की शुरुआत हो गयी। आहा.. ! बाकी लाख क्रियाकाण्ड में व्रत, तप, और क्लेश करे तो करो, उनसे कहीं सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहा..हा.. ! भगवान ! यह तो वस्तु का स्वरूप है।

मुमुक्षु : ....सम्यक्चारित्र होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र बाद में। यह तो सूक्ष्म उपयोग से जैसे पकड़ में आया, तब द्रव्य पकड़ में आया, तब दृष्टि हुई। पश्चात् जो स्वरूप दृष्टि में आया था, उसमें लीन होना वह चारित्र है। आहा..हा.. ! भगवान पूर्णानन्द का नाथ सूक्ष्म उपयोग से पकड़ में आया। पकड़ में आया का अर्थ (यह है कि) उस ओर दृष्टि हो गयी। आहा..हा.. ! तो सम्यग्दर्शन होता है और सम्यग्दर्शन में ऐसी प्रतीति आयी कि मैं पूर्ण आनन्दकन्द ध्रुव अखण्डानन्द एकरूप हूँ और मैं मेरी वस्तु में जब स्थिर होऊँगा, तब चारित्र होगा। ऐसी

सम्यग्दर्शन में प्रतीति आ गयी। भले चारित्र हुआ नहीं, परन्तु यह चीज़ जो अभेद अखण्डानन्द प्रभु है, उसकी मैंने प्रतीति की, सूक्ष्म उपयोग से पकड़ लिया, उस वस्तु में मैं स्थिर होऊँगा, उसमें रमणता करूँगा, तब मुझे राग का नाश होगा और चारित्र होगा। आहा..हा..! अरे रे!

यह (समयसार) १७-१८ (गाथा में) आया है। १७-१८ गाथा है न? पहले ज्ञान करना, ऐसा वहाँ लिया है। ज्ञान करके प्रतीति करना, क्योंकि पर्याय में, वह वस्तु कैसी है? यह ख्याल आये बिना प्रतीति किसकी? गधे के सींग होते हैं? उनकी प्रतीति किस प्रकार आवे? जो है ही नहीं, उसकी प्रतीति क्या? इसी प्रकार पर्याय में वस्तु है, वह ख्याल में नहीं आयी कि यह वस्तु है, तो प्रतीति किस प्रकार आवे? आहा..हा..! सूक्ष्म बात है, भगवान! आहा..हा..!

कहते हैं, पर्याय में ज्ञान के सूक्ष्म उपयोग से आत्मा पकड़ में आया। आहा..हा..! तब इसे ख्याल आया कि यह वस्तु तो ज्ञायक और परिपूर्ण स्वभाव से भरपूर है। ऐसी प्रतीति हुई। ज्ञान की पर्याय में ज्ञेय का भान हुआ, तब प्रतीति हुई कि यह वस्तु अखण्ड पूर्ण है। ज्ञान में वह चीज़ ज्ञात नहीं तो प्रतीति किसकी करे? आहा..हा..! सूक्ष्म है, भाई! आहा..! वीतराग त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव फरमाते हैं, उस प्रकार से ज्ञानी जगत के समक्ष फरमाते हैं। आहा..हा..!

कहते हैं, **दृढ़ प्रतीति करके,...** वस्तु ज्ञायक चैतन्यमूर्ति पूर्ण अभेद एकरूप है - ऐसे ज्ञान में ज्ञेय बनाकर, फिर प्रतीति की। ज्ञान की पर्याय में, ध्यान की पर्याय में ध्येय बनाकर, सम्यग्ज्ञान की पर्याय में ज्ञेय बनाकर ज्ञान हुआ कि यह चीज़ तो पूर्णानन्द पवित्र वीतराग कन्द है, तो उसमें प्रतीति हुई, वह सम्यग्दर्शन है। आहा..हा..! ऐसी बात है, भाई!

मुमुक्षु : यह एक ही उपाय है? दूसरा कोई उपाय कहो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह एक ही उपाय है। 'एक होय तीन काल में, परमारथ का पंथ।' 'एक होय तीन काल में, परमारथ का पंथ।' आहा..हा..! अज्ञानी को यह एकान्त लगता है। जो सम्यक् एकान्त है, वह उसे एकान्त लगता है। निमित्त से भी होता है, राग की क्रिया करने से, कषाय की मन्दता, व्रत, तप से भी होता है, यह सब एकान्त मिथ्यात्व है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : दोनों मिलकर हो सम्यग्दर्शन ?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग में आत्मा और वीतराग आत्मा, दो का मेल किस प्रकार होगा ? आहा..! राग मलिनता और भगवान निर्मलानन्द प्रभु, दो का मेल किस प्रकार होगा ? वस्तु कठिन है, भाई! समझ में आया ?

यह तो (समयसार) ७२ गाथा में कहा नहीं ? कि पुण्य और पाप, वे अशुचि हैं। चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति, तप का शुभभाव है, वह अशुचि है। भगवान उनसे भिन्न निर्मलानन्द प्रभु है। यह समयसार ७२ गाथा में आया है। और वह पुण्य परिणाम अचेतन / जड़ है। जड़ से चैतन्य का भान होता है ? आहा..हा..! क्योंकि उस शुभभाव में इस चैतन्य का अंश नहीं है। वह शुभभाव स्वयं को जानता नहीं और शुभभाव दूसरे के द्वारा जानने में आता है; इसलिए शुभभाव अचेतन / जड़ है। आहा..हा..! भाई! यह तो वीतराग तीन लोक के नाथ... आहा..हा..! (उनके द्वारा कथित) मार्ग अन्यत्र कहीं नहीं है। समझ में आया ? आहा..हा..! वाड़ा में पड़े हैं, उन्हें भी खबर नहीं होती। आहा..हा..!

द्रव्य में गहरे उतर जा,... आहा..हा..! क्या कहते हैं ? द्रव्य वस्तु है, वह गहरी-गम्भीर... गम्भीर.. गम्भीर है। अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. गुण का पिण्ड एकरूप है। आहा..! उसमें **दृढ़ प्रतीति करके, सूक्ष्म उपयोगवाला होकर, द्रव्य में गहरे उतर जा,...** आहा..हा..! द्रव्य में दृष्टि लगाकर द्रव्य में घुस जा। घुस जा, इसका अर्थ द्रव्य में पर्याय एक नहीं होती परन्तु पर्याय में, गहरे द्रव्य में ज्ञान करने जाता है। ऐसी बात है, प्रभु! क्या कहे ? ज्ञान की पर्याय-उपयोग, गम्भीर पाताल तल है, पूरा स्वभाव अपार.. अपार.. अपार.. अपार.. अपार शक्ति की संख्या का पार नहीं, ऐसा एकरूप गहरा गम्भीर द्रव्य है। आहा..हा..! वहाँ उतर जा। जैसे पानी के तालाब में सीढ़ियाँ होती हैं न ? सीढ़ियों से अन्दर उतर जाते हैं न ? पगथिया कहते हैं न ? सीढ़ियाँ। वैसे भगवान आत्मा.. आहा..हा..! सूक्ष्म उपयोग की सीढ़ी से अन्दर प्रगट कर ले। अन्दर में उतर जा। आहा..हा..! ऐसा मार्ग है, प्रभु! इसके बिना सब व्यर्थ है। आहा..हा..! इसके बिना बाह्य त्याग से मनवाना कि हम त्यागी हैं, यह सब भ्रमणा है। समझ में आया ?

द्रव्य में गहरे उतर जा,... अपनी पर्याय को सूक्ष्म करके अन्दर में उतर जा। बाहर में जो लक्ष्य है, वह छोड़कर ज्ञान की पर्याय में सूक्ष्मता प्रगट करके। जो पर्याय को पकड़ता

है, वह सूक्ष्म है; राग को जानता है, वह स्थूल है, सूक्ष्म नहीं। एक पर्याय को पकड़ता है, वह सूक्ष्म नहीं, स्थूल है। आहा..हा..! अन्तर के उपयोग में गम्भीर द्रव्य है, वह पकड़ में आये, ऐसे सूक्ष्म उपयोग में पूरे ज्ञेय का ज्ञान होता है। आहा..हा! अरे! ऐसी बात सुनने को नहीं मिलती। अरे रे! क्या हो? भाई!

अरे! ऐसा मनुष्यभव, (उसमें) एक-एक समय की स्थिति चली जा रही है, भाई! आहा..हा..! और मौत का नगाड़ा सिर पर बजता है। उसका समय आकर पड़ेगा, (तब) एकदम देह छूट जायेगी। आहा..! लाख डॉक्टर उतारे और दवा दे, और इंजेक्शन चढ़ावे.. डॉक्टर नहीं कोई? सब गये लगते हैं। ये डॉक्टर रहे। इसने इंजेक्शन दिया तो एक व्यक्ति मर गया। यहाँ एक डॉक्टर थे। ...एक बार उसे ऐसा हुआ, सींगदाना कहते हैं? सींगदाना को करके खाया। फिर रसोई में भोजन करते थे। शाम को भोजन करने गये। रसोई तो यहाँ सेठ खावे ऐसी अच्छी हो न! भोजन किया, भोजन करके आने के बाद यहाँ छोटा कमरा था, वहाँ बैठे। हम आहार करके घूमते थे। क्यों पटेल? क्या है? बैठे थे। नीचे बैठे थे। भोजन करके आये नीचे बैठे थे। अन्तक्रिया, ऐसा बोले। क्या है? अन्तक्रिया। अन्तिम क्रिया है। क्या हुआ? श्वास नाभि में से हट गया है। नाभि में से श्वास (हट गया है)। श्वास नाभि में नहीं जाता। यह नजर से देखा है। पहले यहाँ छोटा कमरा था, उसमें रहते थे। उसमें हमारे धर्मचन्दजी आये। बहुत दुःखी है न.. उनने इंजेक्शन दिया, वहाँ बैठ गया। देह छूट गयी। उनका अभिप्राय दूसरा था। उनका परिणाम ऐसा नहीं था। बहुत दुःखी है, ऐसा भाव था। आहा..हा..! मैं जहाँ भोजन करके आऊँ, पहले देखकर गया था, भोजन करके आया, वहाँ देह छूट गयी। आहा..हा..! जिस समय देह को छूटने का काल है और देह में रहने की योग्यता का काल है, उतना काल रहेगा। आयुष्य के कारण रहता है,यह निमित्त से कथन है। आयुष्य कर्म तो परचीज़ है। अपनी योग्यता जितना काल वहाँ रहने की है, उस योग्यता से रहता है। आहा..हा..! आयुष्य कर्म से (रहता है), यह तो निमित्त का कथन है। यह तो आयुष्य की जड़ की पर्याय है। जड़ की पर्याय के कारण आत्मा उसमें रहता है, यह तो निमित्त का कथन है। आहा..हा..! उसकी देह में रहने की योग्यता इतनी ही थी तो रहता है। देह में से छूटने की योग्यता होती है तो एकदम छूट जाता है। आहा..हा..! ऐसा नजरों से देखा है। ऐसे खा-पीकर आये। बैठे, नीचे बैठे। मैंने कहा - क्या है पटेल? अन्तक्रिया है, अन्तिम क्रिया है। परन्तु कुछ है नहीं न? श्वास हट गया है। नाभि से श्वास (हट गया

है)। वहाँ देह की स्थिति पूरी होने की योग्यता थी। आहा..हा..! निरोग (शरीर) सींग (मूंगफली दाने) को सेककर खाया। सींग... सींग कहते हैं न? सींग, मूँगफली। वह करके (खाया) आहा..हा..! परन्तु उसमें क्या है, बापू! तुझे खबर नहीं।

जो समय देह छूटने का है, वह भगवान ने देखा है या नहीं? परन्तु भगवान ने देखा – वैसा होगा, इसका निर्णय कहाँ है? और निर्णय किस प्रकार होता है? इस पर्याय के आश्रय से इसका निर्णय नहीं होता। आहा..हा..! वीतराग ने देखा, वैसा होगा, क्रमबद्ध में आना होगा, वह आयेगा, उसे अकर्तापने का ज्ञान होता है। मैं ज्ञायक हूँ, आनन्द हूँ, शुद्ध हूँ – ऐसी प्रतीति होती है, उसे पर्याय का करना भी छूट जाता है। वह तो पर्याय को करूँ (क्या), पर्याय के काल में पर्याय आयेगी ही। समझ में आया?

आत्मा में एक भाव नाम का गुण है। सैंतालीस (शक्ति में) एक भाव नाम का गुण है। भाव दो प्रकार के हैं। एक भाव नाम का गुण है, उस कारण से पर्याय होगी, होगी और होगी ही। उस गुण के कारण अनन्त गुण की पर्याय जिस समय में जो होनेवाली होगी, वह होगी। भाव नाम का गुण है, तो उसी समय में जो पर्याय होनी है, वह होगी। समकिती की बात है। जिसने भावगुण के धारक गुणी को दृष्टि में लिया... आहा..हा..! उसके भावगुण के कारण अपनी पर्याय-सम्यग्दर्शन की पर्याय भी होनी थी, सम्यग्ज्ञान भी उस समय होना का भाव था, सम्यक् आनन्द भी उत्पन्न होने का था। उस भावगुण के कारण वह पर्याय होगी। मैं करूँ तो होगी – ऐसा भी नहीं। आहा..हा..!

मोक्षमार्गप्रकाशक में तो ऐसा लिया है कि अपने परिणाम में प्रतिकूलता लगे – परिणाम हो, उसकी प्रतिकूलता लगे कि यह क्या? आहा..हा..! उसे भी अनिष्ट जानता है, वह द्वेष है। समझ में आया? अपने परिणाम हुए और उन्हें बुरा जानना, वह द्वेष है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : प्रतिकूलता कही, उसमें ही अनिष्टपना आ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। प्रतिकूलता नहीं। पर्याय में प्रतिकूलता अर्थात् विरोधी भाव हुआ, ऐसा। स्वभाव से विरुद्ध विकारभाव हुआ। सूक्ष्म बात है। मोक्षमार्गप्रकाशक में है। जहाँ कषाय का वर्णन किया है न? बहुत किया है, मोक्षमार्गप्रकाशक में तो बहुत किया है। मोक्षमार्गप्रकाशक में तो एक-एक सिद्धान्त जो सामान्य थे, उनका स्पष्टीकरण किया है। अपने घर की बात कहीं नहीं की। समझ में आया? एक बार

कैलाशचन्दजी ऐसा हमें कहते थे; कैलाशचन्दजी (यहाँ हमें कहते थे।) पण्डितजी! मैंने ऐसा कहा था कि मोक्षमार्गप्रकाशक में सिद्धान्त में सामान्यपना है, उसका विशेष है। (उन्होंने कहा) महाराज! तुम एक स्पष्टीकरण कर दो न, कहाँ-कहाँ उनका है? मैंने कहा - इतना करने का मेरे पास समय नहीं है। क्या कहा? कैलाशचन्दजी ने ऐसा कहा।

मैंने ऐसा कहा - यह लाईन की लाईन जो मोक्षमार्गप्रकाशक में है, उस सबका सामान्य जो द्रव्य स्वभाव में जो पर्याय में है, जो गुण में है, जो शास्त्र में है, उसका स्पष्टीकरण है। तो उन्होंने ऐसा कहा - वह कहाँ-कहाँ है? वे तो मध्यस्थता से पूछते थे, कोई विरोध से नहीं। ऐसा कि उसका आधार, प्रत्येक का आधार दो तो लोगों को बहुत अनुकूल पड़ेगा। कहा - परन्तु इतने आधार निकालने का मेरे पास समय नहीं है। मैंने कहा, प्रत्येक शब्द जो मोक्षमार्गप्रकाशक में है, वह सब सिद्धान्त में सामान्यरूप से जो है, उसका ही विशेष स्पष्टीकरण है। आहा..हा..! मैंने कहा, परन्तु मेरे पास तो समय ही नहीं है। हमारे विचार से बाहर ऐसा करना... यह तो विकल्प ऐसा व्याख्यान का आता है। समझ में आया? वे कैलाशचन्दजी बहुत अनुकूल थे। मैंने कहा, देखो! जितने इसमें बोल हैं, वे सब जो सामान्यरूप से शास्त्र में हैं, उनका स्पष्टीकरण। क्या कहना है, उसका इसमें स्पष्टीकरण है। समझ में आया?

वहाँ ऐसा लिया है कि अपने परिणाम में विरुद्धभाव देखकर खराब मानता है, तो जाननेवाला हूँ - ऐसा तो जाना नहीं। चाहे तो परिणाम रौद्रध्यान के हों परन्तु मैं जाननेवाला ज्ञाता हूँ, उसे तो जाना नहीं। यह खराब मानकर द्वेष करता है। आहा..हा..! समझ में आया? सूक्ष्म भाव है, सूक्ष्म बात है, हों! वहाँ मोक्षमार्गप्रकाशक में लिया है। आहा..!

यहाँ कहते हैं **द्रव्य के पाताल में जा।** आहा..हा..! द्रव्य की जो पर्याय है, उस पर्याय को द्रव्य के पाताल में ले जा। आहा..हा..! वह द्रव्यस्वभाव पाताल है। पर्याय वह ऊपर की चीज़ है, यह तो अपने आया न? पर्याय ऊपर तैरती है। द्रव्य में प्रवेश नहीं करती।

मुमुक्षु : ऊपर तैरती है तो अन्दर किस प्रकार जायेगी?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहते हैं न, तैरती है, उसका लक्ष्य अन्दर ले जा। लक्ष्य ले जा। पर्याय, द्रव्य में प्रवेश नहीं होती। आहा..हा..! राग को जानने के काल में ज्ञान की पर्याय राग में प्रविष्ट नहीं होती। क्या कहा? ज्ञानी की पर्याय ज्ञान, राग आया उसे जानती है।

जानती है तो ज्ञान की पर्याय राग में प्रविष्ट नहीं होती तथा राग, ज्ञान की पर्याय में आया नहीं। आहा..हा..! ऐसे ज्ञान की पर्याय में अन्दर पाताल पड़ा है, उसका तल है, तल, जैसे भोंयरा होता है न? वैसे तल। आहा..! उस पर्याय को वहाँ ले जा। सूक्ष्म बात है, बापू! भगवान! यह तो सूक्ष्म बातें हैं, नाथ! आहा..हा..!

वहाँ से तुझे शान्ति एवं आनन्द प्राप्त होगा। देखो! वर्तमान पर्याय को सूक्ष्म करके गहरे पाताल में ले जा (अर्थात्) लक्ष्य करना, तुझे आनन्द होगा और तुझे शान्ति होगी। दो क्यों लिये? चारित्रगुण की शान्ति, उसे शान्ति कहा और आनन्द गुण की दशा, उसे आनन्द कहा। शान्ति और आनन्द दो भिन्न चीज़ है। चारित्रगुण जो त्रिकाल है, उसमें दृष्टि दी तो पर्याय में शान्ति आयी। वह शान्ति, पूर्ण है, उसमें से शान्ति आयी है। आनन्दगुण पूर्ण है, इसकी दृष्टि द्रव्य पर पड़ने से आनन्द की पर्याय आयी। शान्ति और आनन्द दो पर्यायें भिन्न-भिन्न हैं। दो गुण की भिन्न वस्तु है। आहा..हा..! ऐसा सूक्ष्म मार्ग, भाई! आहा..हा..!

मोक्षमार्गप्रकाशक में एक बात ऐसी ली है कि अपने में ज्ञान सच्चा हो, परन्तु मान के प्रयोजन के लिये है तो वह ज्ञान, अज्ञान है। आहा..हा..! दुनिया में मेरा मान होओ और दुनिया मेरी प्रसिद्धि करे और मैं कहूँ उससे दुनिया प्रसन्न हो जाये। आहा..हा..! वह ज्ञान सच्चा होने पर भी मिथ्याज्ञान है। आहा..हा..! वह तो स्थूल ज्ञान का उपयोग है। आहा..! समझ में आया? धन्नालालजी!

तुझे शान्ति एवं आनन्द प्राप्त होगा। प्रभु! आहा..हा..! जहाँ शान्ति और आनन्द का सागर पड़ा है, प्रभु! अरे! इस भाषा का कोई काम नहीं, बापू! बहुत भाषा करके ऐसे लड़ावे (बातें बनावे) इसलिए वस्तु अन्दर आ जाती है (- ऐसा नहीं है) समझ में आया? अन्तर की निर्मल पर्याय सूक्ष्म अन्तर में जहाँ जाती है, उसका लक्ष्य करती है, उसका आश्रय करती है, उसके सन्मुख होती है, तब शान्ति और आनन्द होता है। आहा..हा..! समझ में आया? ऐसा है। लोगों को पागल जैसा लगता है। व्यवहार के रसिया, निमित्त के रसिकों को ऐसी बात पागल जैसी लगती है। ऐसी यह बात है। ऐसा है, प्रभु! क्या कहें? मार्ग ही ऐसा है। आहा..हा..!

त्रिलोक के नाथ भी इसी प्रकार कहते हैं। वह बात यहाँ है। ये बहिन के वचनामृत

हैं। बहुत धीर-गम्भीर होकर... आहा..हा..! बहुत धीर, धीर (होकर)। धीर का अर्थ ऐसा है, धी अर्थात् बुद्धि, र अर्थात् प्रेरती। जो बुद्धि अन्तर में प्रेरे, उसे धीर कहते हैं। धीर — धी अर्थात् बुद्धि, र अर्थात् प्रेरती। अन्तर में प्रेरे, उसे धीर कहते हैं। समझ में आया? नियमसार संस्कृत टीका में है। धीर और वीर दो की व्याख्या है। तो धी अर्थात् बुद्धि, र अर्थात् ईरती-प्रेरती। अन्तरस्वरूप में प्रेरे, उसे धीर कहते हैं और वीर - विशेष वीर्य को अन्तर्मुख में प्रेरे। वीर्य को अन्तर में प्रेरे, उसे वीर कहते हैं। आहा..हा..! भाषा में बहुत अन्तर है। ऐसा मार्ग है, बापू! आहा..हा..!

खूब धीर.. बहुत गम्भीर आहा..हा..! **होकर द्रव्य के तल का स्पर्श कर।** (स्पर्श कर) अकेली मक्खन वस्तु आयी है। द्रव्य का तल जो ध्रुव है, उसे स्पर्श कर। स्पर्श करने का अर्थ (यह है कि) उस ओर (लक्ष्य) ले जा। आहा..हा..! समझ में आया? यह २०२ (बोल पूरा) हुआ।

यह सर्वत्र—बाहर—स्थूल उपयोग हो रहा है, उसे सब जगह से उठाकर, अत्यन्त धीर होकर, द्रव्य को पकड़। वर्ण नहीं, गंध नहीं, रस नहीं, द्रव्येन्द्रिय भी नहीं और भावेन्द्रिय भी द्रव्य का स्वरूप नहीं है। यद्यपि भावेन्द्रिय है तो जीव की ही पर्याय, परन्तु वह खण्डखण्डरूप है, क्षायोपशमिक ज्ञान है और द्रव्य तो अखण्ड एवं पूर्ण है, इसलिये भावेन्द्रिय के लक्ष्य से भी वह पकड़ में नहीं आता। इन सबसे उस पार द्रव्य है। उसे सूक्ष्म उपयोग करके पकड़ ॥२०३॥

२०३, **यह सर्वत्र—बाहर—स्थूल उपयोग हो रहा है,...** आहा..हा..! राग को जानने का, ज्ञान की पर्याय को जानने का। आहा..हा..! परद्रव्य को जानने का, भेद को जानने का। आहा..हा..! **स्थूल उपयोग हो रहा है, उसे सब जगह से उठाकर,...** आहा..हा..! बाहर में जो उपयोग चलता है - संयोग में, निमित्त में, राग में और पर्याय देखने में रहता है, वह बाह्य उपयोग है। आहा..हा..! भाषा तो सादी है, प्रभु! मार्ग तो जो है, वह कठिन है। आहा..हा..! पूनमचन्दजी! इस पूनम-पूर्ण आत्मा का ख्याल करने की बात है। पूर्ण चन्द्र भगवान अन्दर है। आहा..हा..!

खूब धीर, बुद्धि को अन्दर ध्रुव में प्रेरे, उसे धीरे कहते हैं। वीर – अपने वीर्य को ध्रुव की ओर प्रेरे, उसे वीर कहते हैं। गम्भीर... आहा..हा..! जिसकी पर्याय भी गम्भीर। आहा..हा..! सूक्ष्म पर्याय में महासामर्थ्य है। जो पर्याय पूरे द्रव्य को जाने, उस पर्याय की गम्भीरता कितनी! भगवन्त! जो पर्याय, द्रव्य को जाने कि अनन्त गुण का पार नहीं – ऐसे द्रव्य को जाने, उस पर्याय की गम्भीरता कितनी!! समझ में आया? यह तो सूक्ष्म बात है। पाटनीजी! मोहनलालजी हैं या गये? पाटनी। आहा..हा..! भगवान तेरी शक्ति और गुण का गम्भीर द्रव्य तो है ही, आहा..हा..! उसकी पर्याय जानती है, वह पर्याय गम्भीर है। धीर, गम्भीर होकर। आहा..हा..! बाहर की उत्सुकता का निवारण करके। आहा..हा..! अन्तर गम्भीर होकर द्रव्य का तल ले। यह तो आ गया।

स्थूल उपयोग हो रहा है,... पर्याय को पकड़ने में, राग को पकड़ने में है, वह स्थूल उपयोग है। **उसे सब जगह से उठाकर,...** आहा..हा..! संयोग से भी लक्ष्य उठाकर, राग से, व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प से भी उठाकर और इसकी एक समय की पर्याय से भी उपयोग हटाकर। आहा..हा..! काम करती है पर्याय। अन्दर में जाने का काम करती है पर्याय, परन्तु पर्याय से लक्ष्य हटाकर। आहा..हा..! समझ में आया न?

मुमुक्षु : लक्ष्य करनेवाली भी पर्याय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तो कौन ध्रुव लक्ष्य करता है?

मुमुक्षु : ताला खोलने की चाबी दो, महाराज!

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न! आहा..! यह कहते हैं न! वीर, धीर, गम्भीर होकर। आहा..हा..! अत्यन्त धीर होकर। है न? भाषा देखो! **सब जगह से उठाकर, अत्यन्त धीर होकर,...** आहा..हा..! जिस पर्याय में ज्ञायक पकड़ में आये... आहा..हा..! ऐसा अत्यन्त धीर होकर **द्रव्य को पकड़।** पूर्णानन्द का नाथ, जिसमें अनन्त गुण की शक्ति की संख्या का पार नहीं। ऐसे द्रव्य को, अत्यन्त धीर होकर उस ज्ञायक को पकड़। आहा..हा..! ध्रुव.. ध्रुव.. ध्रुव.. ध्रुव.. ध्रुव प्रवाह तो ऐसा चला जाता है, ऐसे ऊर्ध्व, हों! पानी का प्रवाह ऐसे चलता है। यह ध्रुव.. ध्रुव.. ध्रुव.. ध्रुव.. (प्रवाह चलता है), उसे पकड़। आहा..हा..! अध्रुव पर्याय से ध्रुव को पकड़। अनित्य से नित्य पकड़। ज्ञात होता है अनित्य पर्याय में और अनित्य पर्याय, नित्य को जानती है। आहा..हा..! नित्य को नित्य नहीं

जानता। उसकी जो पर्याय अनित्य है, उसे ऐसी गम्भीर बना कि जो द्रव्य को पकड़ ले। आहा..! ऐसा कहीं तुम्हारे टाईल्स में नहीं मिलेगा। अभी तो धर्म के बहाने बहुत अन्तर हो गया, भाई! आहा..हा..!

वस्तुस्वरूप जो है, उस पर लक्ष्य / दृष्टि को ले जाना, इसके बिना कभी सम्यग्दर्शन नहीं होता। लाख बार व्रत, तप और भक्ति करे, करोड़ों-अरबों रुपये (के) करोड़ों मन्दिर बनावे और अरबों रुपये खर्च करे, उससे कहीं आत्मा पकड़ में नहीं आता। आहा..हा..!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसेवाले को लाभ हो जाये तो गरीब को रोना पड़े। पैसा नहीं मिले इसलिए। धूल-पैसा हो तो क्या हुआ?

यहाँ तो कहते हैं कि राग मन्द आया तो क्या हुआ? अरे! राग को जाननेवाली पर्याय का लक्ष्य रहा तो क्या हुआ? समझ में आया? आहा..हा..! जहाँ पाताल में भगवान विराजमान है... आहा..हा..! उस द्रव्य को पकड़। वहाँ **वर्ण नहीं,** आहा..हा..! **गंध नहीं, रस नहीं, द्रव्येन्द्रिय भी नहीं और भावेन्द्रिय भी द्रव्य का स्वरूप नहीं है।** भावेन्द्रिय क्षयोपशमज्ञान की पर्याय है। पर्याय है, वह कहीं द्रव्य का स्वरूप नहीं है। आहा..हा..! **यद्यपि भावेन्द्रिय है तो जीव की ही पर्याय, परन्तु वह खण्डखण्डरूप है,...** आहा..हा..!

३२० गाथा में आया है? जयसेनाचार्यदेव की टीका है न? टीका है, हों! संस्कृत टीका का अर्थ है। ३२० गाथा, क्या कहते हैं? सम्यग्दृष्टि जीव किसे पकड़ता है? कि जो सकल निरावरण.. जयसेनाचार्यदेव की संस्कृत टीका है। ३२० गाथा। जो सकल निरावरण.. वस्तु है, वह सकल निरावरण है। अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय ज्ञान की पर्याय में प्रत्यक्ष प्रतिभासमय होती है। आहा..हा..! ऐसी वस्तु अविनश्वर-त्रिकाल नाश नहीं पानेवाली वस्तु, शुद्ध पारिणामिक परमभाव लक्षण। शुद्ध पारिणामिक परमभाव लक्षण निज परमात्मद्रव्य, वही मैं हूँ। यह ३२० की संस्कृत टीका में है। यह गुजराती है, संस्कृत टीका का गुजराती है। यह ३२० गाथा की संस्कृत है पूरी। यहाँ तो सब (देखा है)। समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि जीव अपने खण्ड-खण्ड ज्ञान को, भावेन्द्रिय ज्ञान को नहीं भाता - वहाँ

ऐसा है। परन्तु अखण्ड सकल निरावरण, अखण्ड एक अविनश्वर परमपारिणामिक सहज भावलक्षण जिसका है, ऐसा निज परमात्मद्रव्य, उसे भाता है। वह मैं हूँ। आहा..हा..! अरे! ऐसी बातें महँगी पड़ें; इसलिए लोगों ने दूसरा रास्ता निकाला। प्रतिमा ले लो और साधु हो जाओ। किसका साधु-वाधु कहाँ था? बापू! अरे! भाई! फिर इसे उस बाह्य त्याग का अभिमान हो जायेगा। अन्तर में मिथ्यात्व का त्याग नहीं और बाह्य के त्याग का अभिमान होगा - हम त्यागी हैं, हम ऐसे हैं। भाई! सम्यग्दृष्टि त्यागी हुए बिना गृहस्थाश्रम में रहते हों तो उनकी इसे गिनती नहीं होती। हम तो त्यागी हैं, यह कहाँ त्यागी है? तू किसका त्यागी है? धर्म का त्यागी है। आहा..हा..! ऐसा मार्ग, भाई!

यहाँ कहते हैं, भावेन्द्रिय खण्ड-खण्डरूप है। वहाँ ३२० में संस्कृत टीका में लिया है। सम्यग्दृष्टि खण्ड-खण्ड ज्ञान को नहीं भाते, अखण्ड ज्ञायक को भाते हैं। जयसेनाचार्यदेव की (टीका है)। आहा..हा..! दूसरी जगह ऐसा बहुत आता है, व्यवहार से निश्चय होता है। यह निमित्त का ज्ञान कराते हैं। एक बार ऐसा कहते हैं कि इस श्लोक की व्याख्या सोनगढ़वालों को क्यों पसन्द आयी? कि इसकी श्रद्धा की अपेक्षा से बराबर है तो पसन्द आयी। बंशीधरजी कहते थे। इन्दौरवाले बंशीधरजी (कहते थे।) ३२० गाथा की जयसेनाचार्यदेव की टीका ही क्यों पसन्द आयी? इनकी दृष्टि को मेलवाली है, इसलिए पसन्द आयी - ऐसा कहते थे। यहाँ आये तब उन्होंने स्वीकार किया था कि मार्ग तो यह है। वापस जहाँ जाये, वहाँ जमना किनारे जमनादास, गंगा किनारे गंगादास। फूलचन्दजी ने एक जगह लिखा है न? नाम नहीं लेते। उनकी श्रद्धा एकरूप नहीं, बदल जाती है। आहा..! अरे! भाई! यह पण्डिताई की चीज़ नहीं, प्रभु! यह तो पर्याय से भी उदास होकर... आहा..हा..! त्रिलोकनाथ अखण्ड परमात्म द्रव्य को पकड़। आहा..हा..!

क्षयोपशम भावेन्द्रिय तो **खण्डखण्डरूप है, क्षायोपशमिक ज्ञान है और द्रव्य तो अखण्ड एवं पूर्ण है,...** वस्तु तो अखण्ड पूर्ण है, यह आया न? जो सकल निरावरण अखण्ड एक-ऐसे शब्द आये हैं। आहा..! **इसलिये भावेन्द्रिय के लक्ष्य से भी वह पकड़ में नहीं आता।** आहा..हा..! राग के लक्ष्य से पकड़ में नहीं आता, निमित्त—देव, गुरु के लक्ष्य से भी पकड़ में नहीं आता, परन्तु क्षयोपशमज्ञान की पर्याय के लक्ष्य से भी पकड़ में नहीं आता। पकड़नेवाली पर्याय है तो क्षयोपशमज्ञान। समझ में आया? परन्तु उस क्षयोपशमज्ञान के लक्ष्य से पकड़ में नहीं आता। वह क्षयोपशमज्ञान की पर्याय है, वह द्रव्य

को पकड़े, तब लक्ष्य में आता है। इसकी पर्याय (द्रव्य को) पकड़े, उसमें द्रव्य का लक्ष्य हो जाता है। आहा..हा..! ऐसी बातें है। ऐसा परमात्मा का मार्ग है। महाविदेह में भगवान के पास तो धोख मार्ग चलता है। आहा..हा..! सत् को कहीं संख्या की आवश्यकता नहीं कि बहुत लोग मानें तो वह सत्य कहलाये। ऐसा नहीं है। सत्य को सत्य चीज़ जो है, उसे उस प्रकार से माने तो सत्य कहलाता है।

इसलिये भावेन्द्रिय के लक्ष्य से भी वह पकड़ में नहीं आता। इन सबसे उस पार द्रव्य है। निमित्त से पार है, राग से भिन्न है और पर्याय से भी पार है। गाथा बहुत अच्छी आ गयी है। बहिन के वचन भी बराबर मेलवाले आ गये। **इन सबसे उस पार द्रव्य है। उसे सूक्ष्म उपयोग करके पकड़।** आहा..हा..! जो पकड़ में आता है, वह सूक्ष्म उपयोग से पकड़ में आता है। पकड़ में नहीं आता, तब तक इसका उपयोग स्थूल है। आहा..हा..! समझ में आया? **उसे सूक्ष्म उपयोग करके पकड़।** आहा..हा..! २०३ (बोल पूरा) हुआ।

(विशेष कहेंगे....) (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

देखो, यह जीव एक सर्प देखने पर कितना अधिक भयभीत होता है क्योंकि इसे शरीर के प्रति ममत्व और प्रीति है। अरे! प्राणी को एक शरीर पर सर्प के डंसने का इतना भय है तो अनन्त जन्म-मरण का भय क्यों नहीं है? आत्मा की समझ बिना अनन्त अवतार के दु:ख खड़े हैं, इस बात का तुझे भय क्यों नहीं है? अरे! यह भव पूरा हुआ, वहीं दूसरा भव तैयार है; इस प्रकार एक के बाद दूसरा भव, तू अनन्त काल से कर रहा है। आत्मा स्वयं सच्ची समझ न करे तो जन्म-मरण का अभाव नहीं होता।

अरे रे! जिसे चौरासी के अवतार का डर नहीं है, वह जीव आत्मा को समझने की प्रीति नहीं करता। अरे! मुझे अब चौरासी के अवतार का परिभ्रमण किस प्रकार मिटे? - ऐसा अन्दर में भव-भ्रमण का भय लगे तो आत्मा की दरकार करके सच्ची समझ का प्रयत्न करे। (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, आतम के हित पंथ लाग! में से)

भाद्र कृष्ण-१३, गुरुवार, दिनाङ्क ३१-०८-१९७८
वचनामृत-२०४-२०५ प्रवचन-८१

आत्मा तो अनंत शक्तियों का पिण्ड है। आत्मा में दृष्टि स्थापित करने पर अंतर से ही बहुत विभूति प्रगट होती है। उपयोग को सूक्ष्म करके अंतर में जाने से बहुत-सी स्वभावभूत ऋद्धि-सिद्धियाँ प्रगट होती हैं। अन्तर में तो आनन्द का सागर है। ज्ञानसागर, सुख-सागर—यह सब भीतर आत्मा में ही हैं। जैसे सागर में चाहे जितनी जोरदार लहरें उठती रहें, तथापि उसमें न्यूनता-अधिकता नहीं होती, उसी प्रकार अनन्त-अनन्त काल तक केवलज्ञान बहता रहे तब भी द्रव्य तो ज्यों का त्यों ही रहता है॥२०४॥

वचनामृत का २०४ बोल। एकदम तत्त्व की दृष्टि की बात है। जिसे कल्याण करना हो तो कल्याण करने का उपाय क्या? कि **आत्मा तो अनंत शक्तियों का पिण्ड है।** आत्मा को धर्म करना हो तो आत्मा क्या चीज़ है? अनन्त शक्तियों का पिण्ड, अनन्त गुण का समूह, अनन्त शक्तिमय, अनन्त गुणमय - ऐसा आत्मा है। **आत्मा में दृष्टि स्थापित करने पर...** आहा..हा..! यह बात है, कठिन बात है। संयोग से दृष्टि हटाकर, राग से दृष्टि हटाकर, एक समय की पर्याय से भी दृष्टि हटाकर, **आत्मा में दृष्टि स्थापित करने पर...** आहा..हा..! भगवान अन्तर्मुख शक्ति का पिण्ड है, उसमें दृष्टि स्थापित करने पर **अंतर से ही बहुत विभूति प्रगट होती है।** अन्तर में से आनन्द, ज्ञान, शान्ति, प्रभुता आदि विभूति... आहा..हा..! विभूति-समृद्धि पर्याय में प्रगट होती है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : अपनी सब शक्तियों को विभूति कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : विभूति है। विभुत्वशक्ति दूसरी। यहाँ तो पर्याय में विभूति आना, निर्मल अनन्त गुण की पर्याय प्रगट होना, उसे यहाँ विभूति कहने में आया है। आहा..हा..!

अन्तर में आत्मा तो महा अगाध, अपार शक्तियों का भण्डार है। आहा..! उस पर दृष्टि स्थापित करने पर अन्तर से विभूति—आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता इत्यादि विभूति प्रगट होती है। आहा..हा...!

उपयोग को सूक्ष्म करके... आहा..! यह तो अन्त में यह बात है। आहा..! उपयोग बाहर में जाता है, वह स्थूल उपयोग है। उपयोग अर्थात् ज्ञान के परिणमन का व्यापार। उसे सूक्ष्म.. है? **करके...**

मुमुक्षु : उपयोग को सूक्ष्म करके अर्थात् शुद्ध उपयोग या दूसरा कोई?

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्ध उपयोग। शुद्ध उपयोग कहो, सूक्ष्म उपयोग कहो, निर्मल परिणति के भाव से आत्मा ज्ञात होता है। आहा..हा..! मुद्दे की रकम की बात है, भाई! आहा..हा..! जन्म-मरण का चक्र, चौरासी के अवतार, भाई! दुःख में अनादि से सड़ गया। चैतन्य आनन्द के नाथ भगवान के ज्ञान, भान और आदर बिना, राग और पुण्य तथा उसके फल के आदर और सत्कार में यह दुःखी है।

मुमुक्षु : दुःख नाम का तो कोई गुण ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए कहा न? दुःख गुण नहीं; इसलिए दुःख, वह एक विकृत अवस्था है। कोई शक्ति ऐसी नहीं कि दुःखरूप परिणमे। आहा..हा..! क्या कहते हैं? आत्मा में अनन्त शक्तियाँ हैं, गुण हैं परन्तु कोई गुण विभावरूप परिणमे - ऐसा कोई गुण है ही नहीं। आहा..हा..! तब होता क्या है? इस पर्याय में निमित्ताधीन दृष्टि होती है तो विकृत अवस्था होती है। आहा..हा..! जितने गुण हैं और शक्ति है, उसकी दृष्टि करने से कोई विकार नहीं होता क्योंकि वह तो निर्मलानन्द है और कोई शक्ति विकृत अवस्थारूप परिणमे - ऐसा एक भी गुण नहीं है परन्तु पर्याय में विकृत होता है, वह निमित्त-आधीन (होकर), स्वभाव की शक्ति की सम्पत्ति को भूलकर... आहा..हा..! राग और पुण्य के प्रेम में विकृत अवस्था, गुण और द्रव्य निर्मल होने पर भी, तथा गुण विकृत अवस्था से न परिणमे - ऐसी शक्ति होने पर भी, पर्याय में जो राग और पुण्य होता है, वह निमित्त-आधीन होकर अपने में होता है। आहा..हा..! स्वभाव के आधीन हो तो गुण एक भी ऐसा नहीं है कि जिसमें विकृत अवस्था हो, दुःख हो। आहा..हा..!

मुमुक्षु : गुण ऐसा हो, तब तो विकार हुआ ही करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : तो विकार कभी मिटे ही नहीं। (ऐसा) गुण ही नहीं। आहा..हा..! दु:ख, वह विकृत अवस्था है, पर्याय है। वह गुण विकृतरूप से परिणमता नहीं। पर्याय विकृतरूप से परिणमती है। ऐसी बातें हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : आप सूक्ष्म बात बहुत करते हो और फिर पूछते हो समझ में आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : ये सब बुद्धिवाले नन्दकिशोर वकील बैठे हैं और ये सब पण्डित बैठे हैं न!

कोई अनन्त शक्ति है, अनन्त गुण का पार नहीं ऐसे (गुण हैं), जहाँ सैंतालीस शक्ति का वर्णन किया है न? वहाँ निर्मल पर्याय और निर्मल गुण, क्रम और अक्रम में यह लिया है। समयसार सैंतालीस शक्ति में ऐसा लिया है कि शक्ति का वर्णन है तो शक्ति है, वह तो निर्मल है और शक्ति का पिण्ड द्रव्य है, वह भी निर्मल है। अत: द्रव्य में से शक्ति जो है, वह तो निर्मलरूप ही परिणमती है। सैंतालीस शक्ति में क्रम और अक्रम में कोई विकार नहीं लिया। क्या कहा? क्रम-अक्रम। क्रम अर्थात् पर्याय और अक्रम अर्थात् गुण। परन्तु शक्ति के वर्णन में क्रम और अक्रम से परिणमनेवाले, निर्मल पर्यायरूप क्रम से परिणमे और निर्मल गुणरूप अक्रम रहे, उसे यहाँ शक्ति का वर्णन कहने में आता है। आहा..हा..! शक्ति का जहाँ वर्णन शुरु किया है, वहाँ क्रम-अक्रम में निर्मल पर्याय और निर्मल गुण लिये हैं। शक्ति के वर्णन में कोई विकारी अवस्था है, यह लिया ही नहीं। क्योंकि विकारी अवस्था होने का कोई गुण नहीं है। आहा..हा..! वह तो पर्याय-अवस्था में उठाईगीर विकृत अवस्था उत्पन्न करता है।

मुमुक्षु : उठाईगीर ने तो पूरा....

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरा घर उठा लिया। पूरा चैतन्यद्रव्य, उसका उठाईगीर ने अनादर किया। आहा..हा..! पर्याय में-एक समय की अवस्था में विकृत (होता है), वह होता है अपनी योग्यता से; निमित्त से नहीं। परन्तु निमित्ताधीन होने की पर्याय में योग्यता से है तो वह विकृत होता है। गुण कोई विकृत हो - ऐसी कोई वस्तु नहीं। आहा..हा..!

मुमुक्षु : विभावगुण-शक्ति है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह विभाव शक्ति विभावरूप परिणमे - ऐसा उसका अर्थ नहीं है वैभाविकशक्ति का अर्थ यह है कि दूसरे चार द्रव्य में वह नहीं और जीव तथा पुद्गल

में दो में है तो विभाव अर्थात् विशेष शक्ति है, उसका नाम वैभाविकशक्ति है। वैभाविकशक्ति विकाररूप परिणमे, इसलिए वैभाविकशक्ति है – ऐसा अर्थ है ही नहीं।

मुमुक्षु : तो वैभाविकशक्ति का काम क्या है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वैभाविकशक्ति परिणमती है। निमित्ताधीन परिणमे तो विकृतरूप परिणमे और स्वभावाधीन परिणमे तो अविकृतरूप परिणमे। सिद्ध में भी वैभाविकशक्ति तो है। वैभाविकशक्ति कहाँ जाये ? जैसे ज्ञानगुण है, दर्शनगुण है, आनन्दगुण है, वैसे वैभाविक नामक गुण है, तो सिद्ध में भी है। विभाव का अर्थ विकाररूप परिणमना – ऐसा उसका अर्थ ही नहीं। वि–भाव–विशेषभाव ऐसी एक शक्ति है जो चार द्रव्यों में नहीं है और इसमें है – ऐसा विभाव। विभाव है (वैभाविकशक्ति) तो विभावरूप परिणमना – ऐसी बात ही नहीं। आहा..हा..! अरे! ऐसी बात ? समझ में आया ?

मुमुक्षु : सब कहते हैं अर्थ बदल डालते हो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु ऐसी है, जैसी है उसका अर्थ होता है। सिद्ध में वैभाविकशक्ति नहीं ? शुद्धरूप परिणमते हैं। वैभाविकशक्ति है, इसलिए अशुद्धरूप परिणमते हैं, ऐसा है ? समझ में आया ?

मुमुक्षु : ....विभाविक शक्ति निमित्त तो है ही न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : विभाविक शक्ति है, वह तो एक विशेष गुण है। विभाविकरूप से परिणमे विभाविकरूप से परिणमे – ऐसा उसका अर्थ ही नहीं है। वैभाविकशक्ति है, वह तो निर्मलरूप परिणमे – ऐसा उसका स्वभाव है, परन्तु स्वभाव का आश्रय नहीं लेकर निमित्त के आश्रय में जाता है तो पर्याय में विकृत अवस्था होती है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : विभाविकशक्ति विपरीत पर्याय ने की। कर्म से नहीं। यह विभाविकशक्ति तो निर्मलरूप से परिणमे, यह उसका स्वभाव है परन्तु पर्याय जब निमित्ताधीन जो पर्याय होती है तो विकृत अवस्था होती है। आहा..हा..! वह भी निमित्त से नहीं, निमित्त के आधीन पर्याय होती है। समझ में आया ? आहा..हा..!

सैंतालीस शक्ति में लिया है, ईश्वर शक्ति, अनीश्वर शक्ति। प्रवचनसार, गुण। ईश्वर गुणनय है ईश्वरनय है, अनीश्वरनय है। प्रवचनसार में सैंतालीस नय में है। ईश्वरनय। जैसे

बालक को धायमाता के पास लेकर जा दूध पिलाते हैं परन्तु वह अपनी शक्ति से पराधीन हुआ है, किसी ने पराधीन किया नहीं है क्योंकि अपनी पर्याय में पराधीन होता है – ऐसी एक पर्याय में योग्यता है, गुण नहीं। आहा..! अरे! ऐसी बात।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न, विशेष गुण है। गुण है तो विभावरूप परिणमा – ऐसा कहाँ आया? आहा..हा..! भाई! तत्त्व की दृष्टि सूक्ष्म है, प्रभु! यह तो भगवान तो अनन्त गुण का पिण्ड पवित्र ही है। आहा..हा..! चाहे तो विकृत अवस्थारूप परिणमो तो भी वस्तु तो अविकृत त्रिकाली आनन्द का पिण्ड ही है। आहा..हा..! कैसे जँचे? यह कहेंगे।

कहते हैं कि अन्दर में जाने से बहुत स्वभावभूत उपयोग को सूक्ष्म करके। **उपयोग को सूक्ष्म करके अंतर में जाने से बहुत-सी स्वभावभूत...** आहा..हा..! ज्ञान की परिणति को-उपयोग को सूक्ष्म करके, जहाँ सूक्ष्म स्वरूप, महासूक्ष्म है, वहाँ सूक्ष्म उपयोग को ले जाये। आहा..हा..! ऐसी बात है। जहाँ महासूक्ष्म प्रभु पड़ा है, वहाँ सूक्ष्म पर्याय को ले जा। है? **अंतर में जाने से बहुत-सी स्वभावभूत ऋद्धि-सिद्धियाँ...** ऋद्धि-सिद्धि का अर्थ क्या? बाहर की ऋद्धि और बाहर की सिद्धि नहीं। आहा..हा..! अपने में जो आनन्द आदि की सम्पदा पड़ी है, उसकी पर्याय में ऋद्धि-सिद्धि प्रगट होगी। आहा..हा..! समझ में आया? भगवान पूर्णानन्द प्रभु अकेला परमात्म पवित्र स्वभाव का पिण्ड है। पर्याय में उस ओर उपयोग को वहाँ ले जाने से तेरी पर्याय में ऋद्धि-सिद्धि प्रगट होगी। आनन्द की ऋद्धि, शान्ति की ऋद्धि, उसकी सिद्धि, शान्त प्रगट हो, वीतरागता प्रगट हो – ऐसी ऋद्धि-सिद्धि प्रगट होगी। आहा..हा..! ऐसा है, भाई! पुस्तक ऐसी बाहर आ गयी है, मक्खन है, मक्खन। समझ में आया? वह **ऋद्धि-सिद्धियाँ प्रगट होती हैं।**

अन्तर में तो आनन्द का सागर है। भगवान! आहा..हा..! भगवान आत्मा तो अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है। **ज्ञानसागर, सुख-सागर—यह सब भीतर आत्मा में ही हैं।** आहा..हा..! ज्ञान का सागर अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. ज्ञान। ऐसे आनन्द, अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. आनन्द। वह ज्ञानसागर और आनन्द सागर प्रभु तो अन्दर है। **यह सब भीतर आत्मा में ही हैं।** आहा..! आत्मा में 'ही' है। भाई! यह तो अन्तिम में अन्तिम सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की विधि यह है। बाकी लाख दूसरा करे, ऐसा होगा और कषाय मन्द करो, परीषह सहन करो, फिर समकित होगा (-यह बात नहीं है)। आहा..हा..!

अभी एक क्षुल्लक होकर वहाँ कुरावड़ में आया था। पहले यहाँ आया था, विद्यार्थीरूप से (आया था), परन्तु अब क्षुल्लक हो गया तो अभिमान चढ़ गया। हम त्यागी हो गये - ऐसा अभिमान चढ़ गया। फिर बोलते समय ऐसा कहे मैं विद्यार्थी हूँ। विद्यार्थी हो तो कुतर्क करते हो या परीषह सहन करते हो, उपसर्ग सहन करते हो, वे सब समकिती नहीं? आहा..हा..! परीषह है कहाँ आत्मज्ञान हुए बिना? प्रतिकूल संयोग को ज्ञातारूप से सहन करे, उसका नाम परीषहजय है। आहा..हा..! और परीषह पहले हुआ तथा फिर जय किया - ऐसा भी नहीं है। परी-समस्त प्रकार से प्रतिकूलता के योग में उसी समय में स्वभावसन्मुख होकर ज्ञातादृष्टारूप से परिणमना, उसका नाम परीषहजय कहा जाता है। आहा..हा..! पहले परीषह आया और राग हुआ और बाद में सहन करे - ऐसी वस्तु नहीं है। समझ में आया? जिस समय में प्रतिकूलता का परीषह आया है, उसी समय ज्ञातादृष्टा की ओर के जोर से वीतरागता उत्पन्न होती है, उसे सहन (परीषह) किया - ऐसा कहने में आता है। आहा..हा..! सूक्ष्म बात है, भाई!

यहाँ कहते हैं, अन्दर आत्मा में ज्ञान-आनन्द है। **जैसे सागर में चाहे जितनी जोरदार लहरें उठती रहें...** सागर में चाहे जैसी तरंगें / लहर उछला करें, **तथापि उसमें न्यूनता-अधिकता नहीं होती...** सागर के स्वभाव में हीनाधिकता कभी नहीं होती। आहा..हा..! चाहे तो छोटी लहर / तरंग उठे, चाहे तो विशेष तरंग ऐसे उछाले मारे। जहाज में बैठते हैं न? वे कहते थे। हम तो उसमें कभी बैठे नहीं। जहाज में बैठकर अफ्रीका जाते हैं। इतने हिलोरे आते हैं कि मानो सागर का पानी जहाज में घुस जायेगा। इतने हिलोरे आते हैं। तरंग उठती है।

मुमुक्षु : अब ऐयरोप्लेन हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, अब वहाँ ऐयरोप्लेन नहीं, कहते हैं। ऐसा कोई कहता था, कोई कहता था। यूरोप में जाने में, अब जहाज नहीं है ऐसा कहा। हाँ, यह सच्ची बात है। अब जहाज नहीं है, वे बात करते थे। अभी पन्द्रह लाख का मन्दिर हुआ है न? नैरोबी में, साठ घर यहाँ के हैं। सब श्वेताम्बर थे। आठ घर तो करोड़पति हैं। दूसरे कोई पच्चीस लाख, तीस लाख, चालीस लाख, पचास लाख वाले हैं। पैसा धूल है। वे बेचारे ऐसा भी कहते थे कि हमारे इतने पैसे आते हैं कि डालना कहाँ? पन्द्रह लाख

का मन्दिर (बनाया है)। ढाई लाख का तो है। भगवान की प्रतिमा पंच कल्याणक करके प्लेन में नैरोबी ले गये हैं।

मुमुक्षु : आप पधारोगे पंच कल्याणक में ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वे प्रार्थना करते हैं। भाई ! शरीर को अब ९० वर्ष हुए। भोजन का कुछ ठिकाना नहीं। भोजन बहुत कम चार रोटी। दिखाव लगे ऊँचा। वे कहते हैं, क्या होता है देखो ? प्रार्थना तो आयेगी। साठ घर हैं। बहुत हर्ष है, बहुत उत्साह है, बहुत उत्साह, इतना उत्साह है.. वे बाबूभाई कहते थे। लालचन्दभाई और बाबूभाई दो गये थे न ? दो व्यक्ति खात-मुहूर्त करने गये थे। साठ घर का इतना उत्साह है कि व्याख्यान सुनते समय दो हजार लोग, श्वेताम्बर आदि वास्तु के समय आये थे और अपने एक मुमुक्षु हैं रामजीभाई के भानेज हैं। उन्होंने वास्तु में दो लाख, दो हजार दिये। वहाँ पैसा बहुत है। दस लाख, पन्द्रह लाख, बीस लाख, पच्चीस लाख तो कितने व्यक्तियों के पास हैं, परन्तु यहाँ का वाँचन वहाँ बीस-पच्चीस वर्ष से चलता है। लोगों को बहुत प्रेम, और कितने नये घर भी हो जायेंगे, ऐसा कहते हैं। बहुत उत्साह है। अपने साठ घर हैं, सभी श्वेताम्बर (थे जो अब) दिगम्बर हो गये। उत्साह बहुत है। आहा..हा.. ! इतना उत्साह है कि उसमें हम क्या करें ? अभी तो पंच कल्याणक के समय कितने पैसे खर्च करेंगे ! लोगों को बहुत प्रेम है। पच्चीस-तीस-पैंतीस वर्ष से वहाँ यहाँ का वाँचन चलता है। वाँचन हमेशा चलता है और टेप रिकार्डिंग (चलता है)। पूरे समयसार के पाँच हजार (प्रवचन) उतरे हैं, वे वहाँ गये हैं। पूरे समयसार के पाँच हजार रिकार्डिंग है, वे वहाँ गये हैं। यह तो लोगों का प्रेम है। लोगों को अब सुनने का प्रेम है। अब तो सूक्ष्म बात भी समझ सकते हैं। पच्चीस-तीस वर्ष से परिचय है। एक करोड़पति है। छह, आठ भाई हैं, दो - जवेरचन्द और एक वीरजी हैं, वे पढ़ते हैं। महाजन लोग हैं। यह तो होता है, जिसकी योग्यता हो वह करे, उसमें निमित्त क्या करे ?

यहाँ तो कहना है कि इतने पैसे खर्च करने का भाव है तो यहाँ से तो कहते हैं कि भाई ! वह तेरा शुभभाव है। तू जाने कि मैंने यह पन्द्रह लाख खर्च किये, इसलिए धर्म हो जायेगा - ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : ऐसा पहले से ही कह दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले से ही कहते आये हैं।

मुमुक्षु : निमित्त तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त का अर्थ क्या? निमित्त कुछ करता नहीं। वह तो तुम्हारे पण्डित की ओर से स्पष्टीकरण हो गया है। तुम्हें तो स्पष्ट है ही। अभी कैलाशचन्दजी (वाराणसी) ने दो (बातों का) स्पष्टीकरण कर दिया है कि क्रमबद्ध है। उस समय नहीं था। अपने जब मिले थे और तुमने कहा था, तब उस समय दूसरे की वर्णीजी की कैलाशचन्दजी की, इन्दौरवाले बंशीधरजी की क्रमबद्ध की श्रद्धा नहीं थी। लिखा है, स्वीकार किया है, क्रमबद्ध है - एक बात। और दो बात सिद्ध की—सोनगढ़वाले निमित्त को नहीं मानते- ऐसा नहीं है। निमित्त है, परन्तु निमित्त से पर में नहीं होता, जैन सन्देश में आया है। पण्डितजी! देखा? कल आया था। निमित्त वस्तु नहीं? निमित्त अपनी पर्याय करता है, पर की पर्याय करे? तो निमित्त कहाँ रहा? ऐसा लिखा है, सोनगढ़वाले निमित्त को मानते नहीं - ऐसा नहीं है, परन्तु निमित्त से पर में कुछ होता है - ऐसा नहीं मानते। बात तो ऐसी ही है। यहाँ तो पहले से चलती है। आहा..हा..!

यहाँ कहते हैं, आहा..हा..! **जैसे सागर में चाहे जितनी जोरदार लहरें उठती रहें, तथापि उसमें न्यूनता-अधिकता नहीं होती,...** आहा..हा..! **उसी प्रकार अनन्त-अनन्त काल तक केवलज्ञान बहता रहे...** आहा..हा..! भगवान ज्ञान का सागर है। उसमें केवलज्ञान की पर्याय अनन्त काल बहती रहे तो भी उसमें न्यूनाधिकता नहीं होती। आहा..हा..! समझ में आया? केवलज्ञान पूर्णज्ञान एक समय में है, दूसरे समय में है, ऐसे सादि-अनन्त, सादि-अनन्त (काल रहता है)। जबसे केवलज्ञान हुआ, वह अनन्त काल रहेगा। भले एक समय की स्थिति (हो)। एक पर्याय दूसरे समय नहीं रहे। दूसरे समय ऐसी, इस प्रकार की दूसरी। तीसरे समय ऐसी, इस प्रकार की तीसरी - ऐसे अनन्त काल, जिसके भविष्य का अन्त नहीं, इतना काल केवलज्ञान का प्रवाह / धारा चले, तथापि अन्तर में घट जाता है - ऐसा नहीं है। समुद्र तो पूरा भरा है। आहा..हा..! अरे! अमृत का सागर, अमृत का सागर भगवान पर्याय में अमृत की पर्याय, धारा, अनन्त चतुष्टय में अनन्त धारा पूर्ण हो और अनन्त काल अनन्त धारा पर्याय में रहे तो भी आनन्द सागर में कुछ घटता नहीं। आहा..हा..! और विकृत अवस्था अनादि-सान्त रही, तो भी विकृत अवस्था के काल में भी भगवान तो पूर्णानन्द का नाथ ही है। उसमें कुछ बढ़ गया, विकृत

है और बाहर पूर्ण नहीं आया, इसलिए बढ़ गया – ऐसा नहीं है। आहा..हा..! भाई! कोई अलौकिक बातें हैं, भाई! आहा..हा..!

मुमुक्षु : धर्म अलौकिक है तो बातें भी अलौकिक ही होगी न।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु अलौकिक है, बापू! वह लोकोत्तर चीज़ है। आहा..हा..! आत्मा अर्थात् वह साक्षात् 'अप्पा सो परमप्पा' आत्मा, वह परमात्मा-पूर्णानन्द का नाथ है। आहा..हा..! उसमें विकृत अवस्था अनन्त काल रहे तो भी उसमें बढ़ता नहीं और अविकृत अवस्था अनन्त काल प्रगट हो तो भी घटता नहीं। आहा..हा..! ऐसा आत्मा है, उसे दृष्टि में लेना चाहिए। आहा..हा..! पहला कर्तव्य तो यह है।

अनन्त-अनन्त काल तक केवलज्ञान बहता रहे... बहता रहे, प्रगट हुआ करे। आहा..हा..! केवलज्ञान.. केवलज्ञान.. केवलज्ञान बहता रहे अनन्त काल। **तब भी द्रव्य तो ज्यों का त्यों ही रहता है।** आहा..हा..! वस्तु तो जैसी है, वैसी ही रहती है। आहा..हा..! अरे! परन्तु केवलज्ञान की पर्याय महा / पूर्ण प्रगट हुई तो अन्दर कुछ कम होता है या नहीं? भगवान! तेरा स्वभाव पूर्ण है, उसमें कभी न्यूनाधिकता नहीं होती। आहा..हा..! इसे अन्दर में विश्वास नहीं आता। समझ में आया? आहा..हा..! मेरा स्वभाव परिपूर्ण है, चाहे जितनी विकृत-अविकृत अवस्था उत्पन्न होओ तो भी वस्तु तो परिपूर्ण एकरूप विराजमान है। समझ में आया? गोदिकाजी! यह सब करना पड़ेगा। वहाँ अमेरिका-फमेरिका में भटकता है। भाई आये नहीं? हसमुख नहीं आये। वे शनिवार को आयेंगे। शनिवार-रविवार भावनगर में आते हैं। पाँच लाख लेकर सन्तुष्ट होकर बैठ गया है। दुकान, धन्धा सब बन्द कर दिया है, बिल्कुल (बन्द कर दिया है) और इसे करोड़ों रुपये हों तो भी चैन नहीं है। अभी भटकाभटक (करता है) और हार्ट का कुछ दर्द है – ऐसा कहता है, अपने को बहुत खबर नहीं। है? हार्ट में है न कुछ?

मुमुक्षु : वह अमेरिका है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो सच्ची है। अमर अर्थात् अमेरिका, अमर होने की वस्तु यह है। आहा..हा..! भगवान अन्दर पूर्णानन्द का नाथ जन्मे नहीं, मरे नहीं। आहा..हा..! वह उत्पाद-व्यय में आवे नहीं, उत्पाद-व्यय की पर्याय में आवे नहीं – ऐसी चीज़ है। आहा..हा..! भाई! तुझे खबर नहीं, बापू! वह कोई अलौकिक चित्चमत्कार वस्तु है। आहा..हा..!

वह केवलज्ञान की पर्याय बहती रहे, अनन्त काल परिणमता रहे तो भी उसमें **द्रव्य तो ज्यों का त्यों ही रहता है।** आहा..हा..! क्या कहते हैं यह? जैसे क्षेत्र की अगाधता.. आहा..हा..! क्षेत्र का अन्त कहाँ? क्या यह वस्तु है? नास्तिक विचारे तो उसे (लगे कि) यह क्षेत्र है, इसका अन्त कहाँ? यह चौदह राजू लोक तो असंख्य योजन में है। यह चौदह ब्रह्माण्ड तो असंख्य योजन में है। फिर अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. योजन है। प्रभु! यह कभी विचार में लिया है? ज्ञान की भूमिका में कभी घड़तर किया है कि यह क्या चीज़ है? आहा..! जिसकी ज्ञान की पर्याय में आकाश का अन्त नहीं - ऐसा दिखता है.. आहा..हा..! अन्त नहीं, तथापि ज्ञान की पर्याय अनन्त का ज्ञान करती है। आहा..हा..! क्योंकि आत्मा क्षेत्रज्ञ है। यह क्षेत्र है, (उसका जाननेवाला है)।

एक बार कहा था न? (संवत्) १९९९ में जामनगर गये थे। वहाँ के मेहरबानजी दीवान थे, वे आते थे। व्याख्यान में तो दीवान आदि सब आते हैं। उनका पुत्र आया, वह पारसी था। उसने कहा, तुम कुछ न मानो भले, मैं इतनी बात कहता हूँ, सुनो! यह क्षेत्र ऐसा है, क्षेत्र, उसका अन्त कहाँ आता है? भले नास्तिकरूप से विचार करो परन्तु यह क्षेत्र अस्ति है या नहीं? अलोक की पर्याय लोक के अन्त में शुरु होती है परन्तु अन्त कहाँ है? कोई भी आकाश के प्रदेश की श्रेणी लो, भले यहाँ से लो, यह श्रेणी कहाँ पूरी हुई? एक आकाश की श्रेणी की धारा, हों! ऐसी अनन्त श्रेणी है। यह अगाध जो क्षेत्र है, उसके जाननेवाला तो अगाध है। क्षेत्रज्ञ है भगवान आत्मा। क्षेत्र की अस्ति है तो जानता है - ऐसा भी नहीं है। अपनी अस्ति में क्षेत्र का ज्ञान स्वयं के कारण से करता है। आहा..हा..! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! आत्मा और वह भी सर्वज्ञ जिनेश्वर ने कहा वह। अज्ञानी आत्मा-आत्मा बहुत करते हैं (उसकी बात नहीं है)। वेदान्ती भी आत्मा-आत्मा (करते हैं), परन्तु उन्हें भी आत्मा की कुछ खबर नहीं है। समझ में आया? आहा..हा..!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे खबर ही कहाँ है, दूसरा और यह। सर्व व्यापक एक है और या ईश्वर करता है - ऐसा माने। पूरी दुनिया में - उसमें पड़ी है। आहा..हा..! परन्तु तेरी ईश्वरता का कर्ता कोई नहीं। तेरी अनन्त ईश्वरता पड़ी है, क्षेत्र का पार नहीं, ऐसे तेरे गुण का पार नहीं, भाई! तुझे खबर नहीं। असंख्य प्रदेश में प्रदेश का अन्त आ गया, परन्तु उस प्रदेश में जो गुण की संख्या है... आहा..हा..! भाई! उसे विचार में ले तो खबर पड़े कि वह

संख्या अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. है। उसे अनन्तगुना करो तो भी यह अन्तिम गुण है-ऐसा आत्मा में नहीं है। आहा..हा..! ऐसा ज्ञान और आनन्द का सागर नाथ (स्वयं है।)

केवलज्ञान की पर्याय बहती रहे, तथापि द्रव्य तो जैसा है वैसा ही है। आहा..हा..! समझ में आया? यहाँ द्रव्य पर दृष्टि कराने को द्रव्य का माहात्म्य करते हैं। समझ में आया? ऐसा ही तेरा द्रव्य है, प्रभु! आहा..! भगवतस्वरूप तेरा है, भाई! भगवान में और तुझमें कोई न्यूनता नहीं है। वे पर्याय में पूर्ण हुए, तू स्वभाव में पूर्ण है। आहा..हा..! यह २०४ (बोल पूरा) हुआ।

चैतन्य की अगाधता, अपूर्वता और अनंतता बतलानेवाले गुरु के वचनों द्वारा शुद्धात्मदेव को बराबर जाना जा सकता है। चैतन्य की महिमापूर्वक संसार की महिमा छूटे, तभी चैतन्यदेव समीप आता है।

हे शुद्धात्मदेव! तेरी शरण में आने से ही यह पंच परावर्तनरूपी रोग शान्त होता है। जिसे चैतन्यदेव की महिमा आयी, उसे संसार की महिमा छूट ही जाती है। अहो! मेरे चैतन्यदेव में तो परम विश्रान्ति है, बाहर निकलने पर तो अशान्ति का ही अनुभव होता है।

मैं निर्विकल्प तत्त्व ही हूँ। ज्ञानानन्द से भरा हुआ जो निर्विकल्प तत्त्व, बस वही मुझे चाहिये, दूसरा कुछ नहीं चाहिए॥२०५॥

२०५, मक्खन आया है, अकेला मक्खन! आहा..हा..! **चैतन्य की अगाधता,...** उसके गुणों की संख्या की अगाधता। आहा..हा..! **अपूर्वता...** पूर्व में कभी सुनी नहीं और पूर्व में कभी नहीं थी - ऐसा नहीं, ऐसी अपूर्वता। अन्दर में अनन्त गुण की अगाधता है, प्रभु! **और अनंतता...** आहा..! उन अनन्त गुण की चैतन्यता की अनन्तता **बतलानेवाले गुरु के वचनों द्वारा...** आहा..हा..! **वचनों द्वारा शुद्धात्मदेव को बराबर...** भगवान शुद्धात्मदेव।

एक बार कहा था कि हम बड़ोदरा गये थे न? बड़ोदरा। (संवत्) १९६५-६६ के लगभग की बात है। अनुसूईया का नाटक देखा था। अनुसूईया सती हुई है, भरूच के किनारे नर्मदा है। (नर्मदा) और अनुसूईया दो बहिनें थीं। लोंगों की अपेक्षा से उसे सती

कहते थे। अनुसूईया का बड़ा नाटक था। हम माल लेने गये थे तो अनुसूईया का नाटक देखने गये। दिन में माल ले लिया, रात्रि को निवृत्ति (थी)।

अनुसूईया महिला थी, वह बिना विवाह करे स्वर्ग में जा रही थी। स्वर्ग में से निषेध आया कि 'अपुत्रस्य गति नास्ति।' उन लोगों में आता है न? 'अपुत्रस्य गति नास्ति।' पुत्र न हो उसे स्वर्ग की गति नहीं मिलती। मुझे दूसरा कहना है अन्दर। तो कहे, मुझे क्या करना? नीचे गिर, जो हो उसके साथ में विवाह कर, नीचे जा, जो हो उसे वर। उसमें नीचे एक अन्धा ब्राह्मण था, उसके साथ विवाह किया। उसे पुत्र हुआ। (नाटक में) किसी को ले आये होंगे। फिर ऐसा (कहती है) बेटा! शुद्धोसि, बुद्धोसि, निर्विकल्पोसि, उदासीनोसि - ऐसा नाटक में बोलती थी। पण्डितजी! पहले के नाटक ऐसे थे। अभी तो फिल्मों ने कुकर्म कर डाले हैं। स्त्री खड़ी हो और आदमी हाथ डाले.. अर.र.! यह नैतिक जीवन? स्त्री और पुरुष और ऐसे दाँत निकाले। अर..र.!

उस नाटक में महिला ऐसा बोलती थी। आहा..! तब तो मेरी उम्र १८-१९ वर्ष की थी। बेटा! तू शुद्धोसि.. आहा...हा..! बुद्धोसि, निर्विकल्पोसि, उदासीनोसि। इतने चार शब्द याद रहे। बाकी दूसरे भी बोलती थी। अपने यहाँ है। अपने समयसार के बन्ध अधिकार की टीका में अन्त में है। ये सब शब्द हैं। सर्व विशुद्धज्ञान अधिकार में अन्त में है और समयसार, बन्ध अधिकार की जयसेनाचार्यदेव की टीका में अन्त में यह शब्द है। वहाँ तो बहुत हैं, बहुत हैं। ये तो चार याद रहे। बोली होगी (अधिक) परन्तु बहुत वर्ष हो गये न.. आहा..हा..! नाटक में ऐसा आता था। आहा..हा..! यहाँ तो धर्म के स्थानक में प्ररूपणा में ऐसा नहीं आता। ऐई!

भगवान! तू शुद्धोसि है न प्रभु! नाटक में बड़ी सभा थी। तुम्हारी बारह आने की टिकट है परन्तु तुम बोलते हो, वह पुस्तक लाओ। पुस्तक के बिना तुम क्या बोलते हो, यह समझे बिना (हम नहीं बैठेंगे)। समझ में आया? तो बारह आने की पुस्तक लेते थे। तुम क्या बोलते हो, यह समझे बिना हमें मजा नहीं आयेगा, कहा। क्या बोलते हो? लाओ पुस्तक। भले बारह आने लो। बारह आने समझे? पहले से हमें अन्दर की वैराग्य की धारा थी न! परन्तु ऐसे वैरागी नाटक, हों! शृंगारिक नाटक बिल्कुल नहीं।

वह महिला उसे कहती है, प्रभु! तू शुद्ध है। तू बुद्ध अर्थात् ज्ञान का पिण्ड है,

उदासीन-राग से, पर से उदास है। आहा..हा..! और निर्विकल्पोसि। अपने उसमें आते हैं। यहाँ नहीं? समयसार है? नहीं। यहाँ सब नहीं आते। अपने जयसेनाचार्यदेव की टीका है न? बन्ध अधिकार में। है यहाँ पुस्तक? नहीं। परमात्मप्रकाश में अन्तिम पृष्ठ पर है। परमात्माप्रकाश कहाँ है? परमात्मप्रकाश भी यहाँ नहीं। यह रहा, लो! समयसार, बन्ध अधिकार है। अन्त में है। जयसेनाचार्य ने बहुत लिया है। देखो! गाथा २८३-२८५।

'**तस्य बंधस्य विनाशार्थं**' संस्कृत है। '**तस्य बंधस्य विनाशार्थं विशेष भावना**' विशेष भावना कहते हैं। '**सहजशुद्धज्ञानानंदैकस्वभावोऽह**' दो बार यहाँ आया है और तीसरी बार परमात्मप्रकाश में है। '**सहजशुद्धाानानंदैकस्वभावोऽहं, निर्विकल्पोहं, उदासीनोहं, निरंजननिजशुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपनिश्चयरत्नत्रयात्मक निर्विकल्पसमाधिसंजात वीतरागसहजानंदरूप सुखानुभूति-मात्रलक्षणेन स्वसंवेदन-ज्ञानेन संवेद्यो गम्यः**' आहा..हा..! मैं तो परम शान्ति और आनन्द से संवेद्य-गम्य हूँ। पण्डितजी! बन्ध अधिकार में है। आहा..हा..! यहाँ तो बहुत बार कहा है। आहा..हा..! वे तो चार बोल याद रहे, परन्तु यहाँ तो बहुत हैं।

'**संवेद्यो गम्यः प्राप्यः, भरितावस्थोऽहं**', '**भरितावस्थ**' अर्थात् पर्याय नहीं। अवस्थ-मैं पूर्ण भरपूर हूँ। आहा..हा..! है? '**राग-द्वेष-मोह-क्रोध-मान-माया-लोभ-पंचेंद्रियविषयव्यापार, मनोवचनकायव्यापार भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म-ख्याति-पूजा-लाभ-दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षारूपनिदानमायामिथ्याशल्यत्रयादिसर्व-विभावपरिणामरहितः शून्योऽहं**' उनसे शून्य हूँ। आहा..! '**जगत्रये कालत्रयेपि मनोवचनकायैः कृतकारितानुमतैश्च शुद्धनिश्चयेन, तथा सर्वेजीवाः**' सर्व जीव ऐसे हैं। देखो! यह टीका '**इति निरंतर भावना कर्तव्या**' आहा..हा..! और सर्वविशुद्ध अधिकार में अन्त में है। यहाँ और परमात्मप्रकाश में है। यह और पुस्तक मिल गयी।

मुमुक्षु : बन्ध अधिकार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बन्ध अधिकार, समयसार। यह संस्कृत है। बन्ध अधिकार में '**बंधस्य विनाशार्थं**' ऐसा आया न? बन्ध बताने का हेतु बन्ध नाश करने का कारण है। बन्ध बताने के हेतु में वीतरागता प्रगट करनी है। बन्ध बताने के हेतु में बन्ध में रहना, यह नहीं बताना है। आहा..हा..! बन्ध की पर्याय का नाश करके, वीतरागी पर्याय प्रगट करने के लिये '**बंधस्य विनाशार्थं**' का कथन है। आहा..हा..! संस्कृत है।

इसी प्रकार यहाँ कहा – **चैतन्य की अगाधता, अपूर्वता और अनंतता...** आहा..हा..! **गुरु के वचनों द्वारा शुद्धात्मदेव को..** भगवान शुद्धात्मदेव। आहा..हा..! नाटक में यह चलता था, वह अभी सम्प्रदाय में नहीं चलता। नहीं, नहीं, यह तो सब निश्चय की बात है। क्या करना? व्रत करो, तप करो, भक्ति करो मन्दिरों की और मन्दिर बनाओ, तुम्हारा कल्याण होगा। आहा..!

पद्मनन्दि पंचविंशति में आया है कि एक छोटी प्रतिमा बनावे तो भी सिंघई की पदवी मिलती है, पद्मनन्दि पंचविंशति में ऐसा है, खबर है, सब खबर है। पद्मनन्दि पंचविंशति में है परन्तु वह तो सम्यग्दृष्टि है, अनुभवी है, आत्मा के आनन्द का स्वादी है, वह जीव, भगवान की प्रतिमा थोड़ी भी स्थापित करे तो वहाँ उसे शुभभाव है, उस शुभभाव में उसे पुण्य बँधेगा।

मुमुक्षु : उसके गुण सरस्वती भी नहीं गा सकती।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा पुण्य इतना बँधेगा। सरस्वती नहीं कह सकती – ऐसा उसमें है। पुण्य है न? सम्यग्दृष्टि है न? आत्मा के आनन्द के स्वाद में राग आता है तो दुःख लगता है। उसे ऐसा पुण्य बँध जाये कि सरस्वती कह नहीं सकती। पद्मनन्दि पंचविंशति में ऐसा कहते हैं। है, सब व्याख्यान हो गये हैं। यहाँ तो ४३ वर्ष से, ४४ वर्ष से चलता है। यह ४४ वाँ चातुर्मास है। आहा..हा..! यह ४४ वाँ याद आया। यहाँ बारह महीने में ७४४०००/– रुपये आये हैं, कल कहते थे कान्तिभाई। अपने मुनिम है न? बारह महीने में ७४४००० आये और ६४४००० का खर्च हुआ। यहाँ खर्च भी बहुत होता है न, उसमें क्या है? वह तो जो पैसा आनेवाला है, वह आयेगा ही; नहीं आनेवाला नहीं आयेगा। वह तो जगत की चीज़ है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : आपकी संस्था बहुत जोरदार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! क्या प्रताप की पर्याय पर में प्रविष्ट होती है? आहा..! कोई कहता है कि प्रभाव पड़ता है। तो प्रभाव की व्याख्या क्या? कि गुण की पर्याय वहाँ अन्दर जाती है?

मुमुक्षु : उसमें नहीं जाती परन्तु उस पर छाप पड़ती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : छाप कहाँ से पड़े? पर्याय वहाँ जाती नहीं तो छाप पड़े कहाँ से?

वह तो उसकी योग्यता में महत्ता लगती है तो प्रभाव पड़ा – ऐसा मानते हैं। है कहाँ? वस्तु ऐसी है। आहा..हा..!

शुद्धात्मदेव को बराबर जाना जा सकता है। देखो! है न? **जाना जा सकता है।** आहा..हा..! **चैतन्य की महिमापूर्वक संसार की महिमा छूटे...** इस पर्याय की महिमा और एक विकल्प की महिमा भी छूट जाये। अनन्त आनन्द के नाथ की जहाँ महिमा लगती है, वहाँ संसार के किसी भी विकल्प, तीर्थंकर गोत्र बाँधे – ऐसे भाव की महिमा भी उड़ जाती है। आहा..हा..! समझ में आया? है? **चैतन्य की महिमापूर्वक संसार की महिमा छूटे, तभी चैतन्यदेव समीप आता है।** आहा..हा..! राग और पर की महिमा छूटे, तब भगवान समीप आता है। आहा..हा..! समझ में आया?

भाई! यह तो भागवत् कथा, भगवन्त की कथा है, प्रभु! आहा..हा..! भगवान चैतन्यस्वरूप में अगाधशक्ति, अपारशक्ति, अनन्तता (भरी है)। ऐसे स्वभाव की महिमा आने पर उसे राग और संसार की महिमा छूट जाती है। आहा..हा..! उसकी महिमा के समक्ष विषय की वासना हो, परन्तु वासना में सुखबुद्धि उड़ जाती है। आहा..हा..! भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ है, उसकी जहाँ महिमा आयी, दृष्टि में उसका स्वीकार, सत्कार हुआ तो शुभभाव की महिमा भी उड़ जाती है। आहा..हा..! शुभभाव में सुख है, यह बुद्धि उड़ जाती है। दुःख लगता है। आहा..हा..! पंच महाव्रत के परिणाम भी ज्ञानी को दुःख लगते हैं।

मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा है, एक बार बताया था। नहीं? समयसार नाटक में है न? मोक्षद्वार, लो, मोक्षद्वार ही आया (पद ४०) छठे गुणस्थान में आत्मा के अनुभव की उग्रता, भावलिंग अनुभव की प्रचुरता प्रगट हुई है – ऐसा भावलिंग है, उसे छठे गुणस्थान में जब विकल्प उठता है... **ता कारण जगपंथ इत...** वह प्रमाद का विकल्प जगपंथ है। आहा..हा..! **उत शिवमारग जोर...** भगवान के समीप जाता है, वहाँ शिवमार्ग का जोर वर्तता है, जोर वर्तता है। आहा..हा..! **परमादि जग को धुकै..** अरे! छठवें गुणस्थान में प्रमाद है, वह प्रमादी जग को धुकै। आहा..हा..! इतना भाव संसार है। समझ में आया? यह तो शुभभाव में प्रसन्न-प्रसन्न होकर (मानता है कि) शुभभाव से अन्दर होंगे। अरे! प्रभु! तू क्या करता है? आहा..हा..! कलश-टीका बनायी है न? अपने पण्डितजी ने.. इस दृष्टि से पढ़ना-ऐसा लिखा है। जगन्मोहनलालजी (ने बनायी है।) आहा..हा..!

जगपंथ आहा..हा..! छठवें गुणस्थान में विकल्प उठता है, वह जगपंथ है, प्रभु! आहा..हा..! यह महाव्रत का विकल्प, प्रभु! वह राग है, नाथ! वह तेरी जाति नहीं, वह संसार की जाति है, वह तेरे स्वरूप में नहीं, तू मुक्तस्वरूप है न, प्रभु! आहा..हा..! समझ में आया? **परमादि जग को धुकै, अपरमादि सिव ओर।** अप्रमत्तदशावाला मोक्ष की ओर ढलता है। यह छठे-सातवें (गुणस्थान) की दशा का वर्णन है। आहा..हा..! यहाँ अभी पहले मिथ्यात्व में पड़े हों और शुभक्रिया करते-करते समकित होगा (ऐसा मानते हैं)। अरे! प्रभु! क्या तू यह क्या करता है? आहा..हा..! पहले अशुभ छोड़कर फिर शुभ आता है। (फिर) शुभ छोड़ो - (ऐसा) क्रम है। धूल में भी नहीं, सुन तो सही। ऐई! यह तो सम्यग्दर्शन अनुभव में हुआ है, फिर पहले अव्रत को छोड़ने के पश्चात् व्रत को छोड़ना - ऐसा 'समाधिशतक' में आता है। समझ में आया? यह तो अन्तर अनुभव है, उसकी बात है।

'समाधिशतक' में आया है कि जब तक राग में है, तब तक उसे संसार है। धूप होती है न? धूप में रहे तो दुःख होता है, वृक्ष की छाया में जाना, वैसे ज्ञानी को अव्रत की अपेक्षा व्रत में आना, परन्तु वह किस अपेक्षा से? वह तो आत्मा का अनुभव है, आनन्द का स्वाद है, उसे अव्रत में से व्रत में आना। वह व्रत कब आता है? कि जब चौथे गुणस्थान की अपेक्षा अन्तर में शान्ति बहुत बढ़ जाती है, तब व्रत के विकल्प आते हैं। आहा..हा..! उसे वहाँ छाया कहने में आया है। पुण्यभाव में स्वर्ग में जायेगा। आहा..! पाप के भाव में नरक में जायेगा। इस अपेक्षा से कहा है। अरे रे! बहुत इसका आधार लेते हैं। पहले क्रम से पाप टालना और फिर पुण्य टालना - परन्तु किसे? अज्ञानी तो मिथ्यात्व के बड़े पाप में पड़ा है, उसे टालना कहाँ रहा? समझ में आया?

यहाँ यह कहा, **चैतन्य की महिमापूर्वक संसार की महिमा छूटे, तभी चैतन्यदेव समीप आता है।** आहा..हा..! क्या कहते हैं? राग के प्रेम में भगवान दूर हो जाता है। आहा..हा..! और राग की महिमा छूट जाने से भगवान चैतन्य समीप आता है। भाषा तो गुजराती सादी है। आहा..हा..!

हे शुद्धात्मदेव! तेरी शरण में आने से ही यह पंच परावर्तनरूपी रोग शान्त होता है। आहा..! द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, भव—पंच परावर्तन, प्रभु! तेरी शरण में आने से पंच परावर्तन का अन्त आता है। आहा..हा..! समझ में आया? पंच परावर्तन में शुभभाव आया

या नहीं ? द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव। भाव भी परावर्तन में आ गये। दोनों आ गये। शुभ भी साथ में आ गया। आहा..हा..! शुभ और अशुभ दोनों कर्मचक्र है। आहा..हा..!

यहाँ तो कहते हैं प्रभु! तेरी वस्तु ऐसी है.. आहा..हा..! तेरे समीप में जाने से.. राग के प्रेम में तू तेरे (प्रभु के) समीप से हट गया था। राग का प्रेम छोड़कर, महिमा छोड़कर, प्रभु! तेरे स्वभाव में जा। आहा..! तेरे पंच परावर्तन का अन्त आ जायेगा। शुभाशुभभाव का अन्त आ जायेगा। तेरे स्वभाव की शरण में जाने से शुभाशुभ परावर्तन का अन्त आ जायेगा। आहा..हा..! समझ में आया ? आहा..हा..!

जिसे चैतन्यदेव की महिमा आयी, उसे संसार की महिमा छूट ही जाती है। आहा..हा..! मुझे लड़का मिला और पैसा मिला और अरबोंपति हुआ, बड़ा मकान मिला – सब महिमा मिथ्यादृष्टि को लगती है। आहा..! एक दिन में पाँच-पाँच लाख की आमदनी करता है और मुझे आठ लड़के हैं और एक-एक को दस-दस लाख की महीने की आमदनी है। क्या है ? धूल। तेरे लड़के कहाँ हैं और तेरे पैसे कहाँ हैं ? आहा..हा..!

मुमुक्षु : लौकिक में... लोकोत्तर में नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : लौकिक में मूर्खायी में होगा। मूर्खायी से भरा हुआ लौकिक है। आहा..हा..!

जिसे चैतन्यदेव की महिमा आयी, उसे संसार की महिमा छूट ही जाती है। अहो! मेरे चैतन्यदेव में तो परम विश्रान्ति है,... आहा..हा..! विश्रान्तिगृह है। यह विश्रान्तिगृह बनाते हैं न ? पहले पन्द्रह हजार का बनाकर दस हजार लिये, अब दस हजार का बनाकर पाँच हजार लिये। यह विश्रान्तिगृह भगवान है। आहा..हा..! संसार की थकान उतर जायेगी, अन्दर विश्रान्ति कर। आहा..हा..! आनन्द के नाथ में स्थिति करके विश्रान्ति लेता है। **बाहर निकलने पर तो अशान्ति का ही अनुभव होता है।** विश्रान्तिगृह में से बाहर आवे तो शुभभाव में आवे तो भी अशान्ति है। आहा..हा..!

मैं निर्विकल्प तत्त्व ही हूँ। ज्ञानानन्द से भरा हुआ जो निर्विकल्प तत्त्व, बस वही मुझे चाहिये, दूसरा कुछ नहीं चाहिए। धर्मी को तो यह है। कोई विकल्प भी नहीं चाहिए तो उसका फल यह स्त्री, पुत्र, परिवार, बड़ा बंगला... आहा..हा..! हमको तो हमारा आत्मा आनन्द का नाथ चाहिए; दूसरा कुछ नहीं चाहिए। ऐसी सम्यग्दृष्टि की भावना होती है। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण-१४, शुक्रवार, दिनाङ्क ०१-०९-१९७८
वचनामृत-२०६-२०७-२०८ प्रवचन-८२

ज्ञानी ने चैतन्य का अस्तित्व ग्रहण किया है। अभेद में ही दृष्टि है : 'मैं तो ज्ञानानन्दमय एक वस्तु हूँ।' उसे विश्रान्ति का महल मिल गया है, जिसमें अनन्त आनन्द भरा है। शान्ति का स्थान, आनन्द का स्थान—ऐसा पवित्र उज्ज्वल आत्मा है। वहाँ—ज्ञायक में—रहकर ज्ञान सब करता है परन्तु दृष्टि तो अभेद पर ही है। ज्ञान सब करता है परन्तु दृष्टि का जोर इतना है कि अपने को अपनी ओर खींचता है॥२०६॥

वचनामृत २०६, **ज्ञानी ने चैतन्य का अस्तित्व ग्रहण किया है।** क्याा कहते हैं? जिसे धर्मी कहा जाता है, उसे ज्ञानी कहा जाता है। तो ज्ञानी ने क्या किया? कि अखण्ड ज्ञायकभाव का एकत्व किया है। ग्रहण किया है - इसका अर्थ-त्रिकाली ज्ञायकभाव में एकत्वबुद्धि की है। उसे आत्मा ग्रहण किया - ऐसा कहने में आता है। आहा..हा..! समझ में आया? **चैतन्य का अस्तित्व...** चैतन्य का अस्तित्व ध्रुव.. ध्रुव.. ध्रुव.. सत्ता अस्तित्व है, उसे धर्मी ने पकड़ लिया है और धर्म करना हो तो उसे पकड़ना है। आहा..हा..! ऐसी सूक्ष्म बात है।

पर्याय को अनादि से पकड़ा है और राग तथा पर्याय को पकड़ा है तो वह मिथ्यादृष्टि है। आहा..हा..! उसने जब अपना स्वभाव चैतन्य ज्ञायक ध्रुव, आनन्द का सागर और ज्ञान का सागर प्रभु पर दृष्टि लगाकर, उसमें एकाकार होता है। द्रव्यसंग्रह में ४७ गाथा में ऐसा कहा, ४७ अर्थात् ४ और ७ **'दुविहं पि मोक्खहेउ झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।'** आहा..हा..! निश्चयमोक्षमार्ग और व्यवहारमोक्षमार्ग आरोपित वह ध्यान में प्राप्त होता है। आहा..हा..! कोई विचारधारा चले और राग चले, उससे प्राप्त नहीं होता। आहा..हा..! क्या

कहते हैं ? '**दुविहं पि मोक्खहेउ झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।**' आहा..हा..! बहुत बात है, भाई! इस शास्त्रज्ञान से और दया, दान, व्रतादि के विकल्प से प्राप्त नहीं होता। आहा..हा..! वह तो ध्यान में अन्दर त्रिकाली ज्ञायकभाव में ध्यान लगाकर, ध्यान का विषय त्रिकाली को बनाकर, आहा..हा...! चैतन्य का अस्तित्व, श्रद्धा में-ज्ञान में ग्रहण किया। यह बात है, भाई! बहुत सूक्ष्म! समझ में आया? फिर बोलना आवे या न आवे, समझाना न आवे तो वह कोई चीज़ नहीं। आहा..हा..!

अन्तर भगवान आनन्द का दल, ज्ञान का सागर प्रभु - ऐसा चैतन्य का अस्तित्व जो सत्ता-मौजूदगी चीज़ है, एक समय की पर्याय जितना भी नहीं। आहा..हा..! त्रिकाली ज्ञायकभाव मौजूद वस्तु है, उसे वर्तमान पर्याय में उसमें एकाग्र होकर पकड़ा, आहा..हा..! ज्ञान में ज्ञेयरूप से जानने में आया, वह ज्ञायक को पकड़ा - ऐसा कहने में आता है। आहा..हा..! ध्यान की बात है, भाई! भगवान! समझ में आया? आहा..!

मुमुक्षु : कल शुद्ध उपयोग की बात की थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह शुद्ध उपयोग की ही बात है। फिर शुद्ध उपयोग आयेगा। २०७, भाई! शुभ और अशुभ उपयोग की दशा की दिशा परसन्मुख है। क्या कहते हैं? शुभ और अशुभराग की दशा परतरफ की दिशा में है, परसन्मुख के लक्ष से उत्पन्न होते हैं। आहा..हा..! और शुद्ध उपयोग की दशा वह त्रिकाली दिशावान जो दिशा है, द्रव्य की दिशा है, शुद्ध उपयोग की दशा वहाँ जाती है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : चार दिशाओं में से कौन सी दिशा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : दस दिशायें हैं न? चार हैं - पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण। उनमें से कौन सी दिशा है, ऐसा कहते हैं। यहाँ तो दिशा का अर्थ (यह है कि) शुभाशुभभाव का ध्येय पर है, पर दिशा है। उस ओर की दिशा में दशा उत्पन्न होती है और शुद्ध उपयोग की दशा त्रिकाली ज्ञायक के ध्येय की दिशा से उत्पन्न होती है। आहा..हा..! भाई! यह मार्ग, बापू! अलग है, भाई! जन्म-मरण करके, अनादि काल से हैरान हुआ है। आहा..हा..!

परमात्मप्रकाश में ३६ वीं गाथा में तो कहा है, जिसने पर्याय और राग का आदर किया, उसने भगवान त्रिलोकनाथ का अनादर-हेय किया है। आहा..हा..! जिसका प्रेम

पर्याय और राग पर रहा, उसे आत्मा हेय हो गया - ऐसा लिखा है। परमात्मप्रकाश, ३६ गाथा है। आहा..हा..! ऐसी बात है, भाई! और जिसने आत्मा उपादेय किया... उपादेय का अर्थ ग्रहण (किया)। त्रिकाली चैतन्यकन्द प्रभु, आहा..हा..! ध्रुव को ध्येय बनाकर... आहा..हा..! जिसने पर्याय में उसे ग्रहण किया। इतना महा अस्तित्व है-ऐसे पर्याय में श्रद्धा हो गयी और ज्ञान की पर्याय में महा अस्तित्व का ज्ञान हुआ, उसने महा अस्तित्व को ग्रहण किया। आहा..हा..! गजब बात, भाई!

अभेद में ही दृष्टि है... ज्ञानी-धर्मी जीव की दृष्टि अभेद पर है। त्रिकाली ज्ञायक पर दृष्टि है क्योंकि उसने पर्याय में ग्रहण किया है तो दृष्टि वहाँ है। आहा..हा..! समझ में आया? राग से भेदज्ञान किया तो शाश्वत् की दृष्टि द्रव्य पर है और भेदज्ञान शाश्वत् चलता ही है, करना नहीं पड़ता। पहले भेद किया, पर्याय और राग से मेरी चीज़ भिन्न है-ऐसा भेदज्ञान किया, तो फिर भेदज्ञान राग से भिन्न करना पड़े-ऐसा नहीं है, वह भेदज्ञान ही प्रवाह में चलता है। आहा..हा..! बापू! मार्ग बहुत सूक्ष्म है, भाई! आहा..हा..! बहुत पढ़ना आवे और बहुत बोलना आवे, इसलिए ध्यान हो जाये-ऐसी यह चीज़ नहीं है। आहा..हा..! और बहुत विकल्प शुभराग के करे, इसलिए अन्दर में ध्यान में आ जाये-ऐसा नहीं है, भाई! आहा..हा..! मुद्दे की रकम की बात है।

अभेद में ही दृष्टि है... अभेद में ही दृष्टि है, क्योंकि राग से भिन्न होकर चैतन्य को श्रद्धा-ज्ञान में ग्रहण किया तो श्रद्धा का विषय द्रव्य है, वहाँ अभेद में ही दृष्टि पड़ी है। चाहे तो राग में आता हो.. आहा..हा..! परन्तु दृष्टि तो अभेद पर है। ध्रुव के ध्येय में से दृष्टि हटती नहीं। खसती नहीं को क्या कहते हैं? हटती नहीं। आहा..हा..!

'मैं तो ज्ञानानन्दमय एक वस्तु हूँ।' आहा..हा..! सम्यग्दृष्टि को-और सम्यग्ज्ञानी को.. आहा..हा..! मैं तो ज्ञानानन्दमय.. ज्ञान-आनन्दवाला नहीं (किन्तु) ज्ञानान्दमय अभेद। आहा..हा..! मैं ज्ञान और आनन्दवाला हूँ - ऐसा नहीं, यह तो भेद हो गया। आहा..हा..! ऐसी बात है, प्रभु! मैं तो ज्ञानानन्दमय-ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्दमय वस्तु हूँ - ऐसी धर्मी की दृष्टि वहाँ पड़ी है। आहा..हा..! **उसे विश्रान्ति का महल मिल गया है,...** आहा..हा..! विश्रान्ति का महल, महासागर प्रभु अन्दर मिल गया है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : विश्रान्ति का महल अर्थात् क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : विश्रान्ति का स्थान, विश्रान्ति का धाम।

मुमुक्षु : वह तो अन्तर में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी तो बात चलती है। वह विश्रान्ति का धाम है।

मुमुक्षु : उसमें महल समाये ऐसा कहाँ है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : महल अर्थात् विश्रान्ति का धाम। 'स्वयं ज्योति सुखधाम' आहा..हा..! स्वयं आनन्द ज्योति सुखधाम मेरा क्षेत्र, मेरा धाम, मेरा सुखधाम, आहा..हा..! वह त्रिकाली ज्ञायक, वह विश्राम महल है। आहा..हा..! जिसमें दृष्टि से प्रवेश किया अर्थात् दृष्टि में जिसका स्वीकार किया, उसे विश्रान्ति का महल मिल गया, आहा..हा..! अनादि की पुण्य और पाप की थकान और अविश्राम था, उसे अन्तर्दृष्टि जहाँ हुई.. आहा..हा..! वहाँ उसे विश्राम लेने का स्थान-धाम मिल गया। आहा..हा..! अन्दर धाम-ध्रुवधाम वह है। यह (तुम्हारा) बंगला है, वह तो दुःखधाम है। दुःखधाम वस्तु नहीं परन्तु दुःख में निमित्त है। आहा..!

मुमुक्षु : आराम मिलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आराम कहाँ मिलता है ? धूल में भी आराम नहीं। आहा..हा..! हमारे वहाँ कहा नहीं ? आमोदवाले मुम्बई में (रहते हैं)। अपने दिगम्बर हैं। रमणीकभाई (है)। क्या नाम कम्पनी का ? सत्तर लाख का तो रहने का एक बंगला है। सत्तर लाख का एक बंगला। बहुत पैसे हैं, पाँच-छह करोड़ रुपये हैं। नरम हैं, शान्त हैं, यहाँ का प्रेम बहुत है। उन्हें, उनकी माता को (बहुत प्रेम है) उसमें हम उतरे थे। सत्तर लाख का एक मकान, ऐसा बड़ा मकान था। पाँच-छह करोड़ रुपये हैं, दो भाई हैं उनकी माता को बहुत प्रेम है।

मुमुक्षु : महाराज! उसमें तो आकुलता का पार नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें आकुलता है, धूल भी वहाँ नहीं। वे दुःख के निमित्त हैं। वे दुःखधाम नहीं, वहाँ से दुःख उत्पन्न नहीं होता, वे तो निमित्त हैं। उत्पन्न होता है, पर के लक्ष्य से अपना दुःखभाव, वह विकार की पर्याय दुःख का धाम है; मकान नहीं, पैसा नहीं। उस ओर का लक्ष्य हुआ और राग उत्पन्न हुआ, वह दुःख का धाम है और भगवान आत्मा आनन्द का विश्रामधाम है। आहा..हा..! समझ में आया ? पुस्तक तो बहुत अच्छी बाहर

आ गयी है। लोग पढ़ते हैं और पत्र आते हैं। ओहो..हो..!

मुमुक्षु : कोई अखबारवाले विरोध भी करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे करें, उसका कुछ नहीं। अनादि की जो बात बैठी होती है, वह करते हैं। उसे राग से कल्याण होता है-दया, दान, व्रत पालें तो कल्याण होता है - यह बात यहाँ उड़ती है; इसलिए उसे दुःख लगता है, इसलिए विरोध करता है। उसमें विशेषता कुछ नहीं। आहा..हा...!

यहाँ तो पर्याय के लक्ष्य से भी चैतन्यधाम प्राप्त नहीं होता। राग के लक्ष्य से तो नहीं, प्रभु! एक अंश जो पर्याय प्रगट / व्यक्त है, भगवान तो उस अपेक्षा से अव्यक्त है। पर्याय की अपेक्षा से अव्यक्त है। ४९ गाथा में कहा है। छह द्रव्यस्वरूप लोक जो ज्ञेय-व्यक्त है, उससे भिन्न भगवान अव्यक्त है। उन छह बोल में एक बोल लिया। समझ में आया? अरे! ऐसी बातें अब, भाई! तुझे खबर नहीं। अन्दर प्रभु महा अनन्त-अनन्त ईश्वरता के चमत्कार से भरपूर भगवान है। आहा..हा..! उसकी ईश्वरता.. उसमें एक प्रभुता नाम का गुण है। ४७ गुण हैं न? प्रभुता नाम के गुण का कार्य क्या? कि अपनी स्वतन्त्र प्रभुता के अखण्ड भाव में स्वतन्त्रता से शोभा हो, वह प्रभुता का गुण है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : ऐसा गुण तो छहों द्रव्यों में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : छहों द्रव्य नहीं, यहाँ तो आत्मा की बात है। उसे तो खबर भी नहीं। यह तो खबर है उसकी बात है। समझ में आया? प्रभुत्व नाम का गुण है जिसमें, अखण्डपने की स्वतन्त्र शोभा से विराजमान भगवान आत्मा, ऐसा प्रभुत्व नाम का गुण है। आहा..हा..! और उस प्रभुत्व नामक गुण का रूप अनन्त गुणों में है। ज्ञान में प्रभुत्व का रूप है, दर्शन में रूप है, आनन्द में है, अस्तित्व में है, वस्तुत्व में है। आहा..हा..! ऐसे अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. गुण के अनन्त रूप ईश्वरता से भरपूर प्रभु.. आहा..हा..! वह विश्रामगृह है। आहा..हा..! है?

उसे विश्रान्ति का महल मिल गया... महल का अर्थ स्थान-धाम। **जिसमें अनन्त आनन्द भरा है।** आहा..हा..! भाई! तुझे खबर नहीं, बापू! दुःख की दशा की सीमा है। क्या कहते हैं? दुःख की विकृत अवस्था की (तो) सीमा है। महा अनन्त-अनन्त (दुःख की दशा) नहीं, उसकी मर्यादा है तो वह छूट सकती है। भगवान तीन लोक का नाथ सीमा

से बाहर असीमा है। आहा..हा..! जिसमें विश्रान्ति लेने से कभी हटता नहीं। यह बहिन में आया है। विकार है, वह सीमित है। सीमित अर्थात् मर्यादित। समझ में आया? आहा..हा..! और भगवान आत्मा के गुण अमर्यादित, जिनकी शक्ति का पार नहीं, प्रभु! वह तो चैतन्य चमत्कारी कोई पदार्थ अन्दर है। आहा..हा..! उसकी दृष्टि करने से, उसे ग्रहण करने से, अनन्त आनन्द भरा है तो तुझे अन्दर आनन्द का स्वाद आयेगा। आहा..हा..! यह दुःख का कर्मचेतना का वेदन अनादि से है। आहा..हा..!

पर्यायबुद्धि में कर्मचेतना अर्थात् राग। कर्म अर्थात् यहाँ जड़ की बात नहीं है। कर्म अर्थात् राग का कार्य, उसका अनुभव है। समझ में आया? कर्म और कर्मफल अर्थात् कार्य और कार्य का फल। विकारी परिणाम कर्म अर्थात् कार्य और उसका फल दुःख, वह एक समय में कार्य और फल होता है। आहा..हा..! उसकी मर्यादा है। यद्यपि अनुभवप्रकाश में दीपचन्दजी ने ऐसा लिया है कि तेरी शुद्धता की बात क्या, तेरी अशुद्धता भी बड़ी है। क्यों? अनन्त-अनन्त तीर्थंकरों के पास गया, वाणी सुनी, समवसरण देखा परन्तु तूने अशुद्धता का नाश नहीं किया। तेरी अशुद्धता भी बढ़ी, प्रभु! आहा..हा..! समझ में आया? क्योंकि वहाँ (अशुद्धात्मा) जोर दिया है। मैं तो बस, पुण्य करनेवाला हूँ, राग करनेवाला हूँ, दया, दान, व्रत, करनेवाला हूँ। आहा..हा..! ऐसी अशुद्धता भी तेरी बढ़ी है, प्रभु! तथापि जो शुद्धता की महत्ता है, उतनी महत्ता अशुद्धता में नहीं है। समझ में आया? मानी है।

यहाँ कहते हैं, वह आनन्द से भरपूर है। **शान्ति का स्थान,...** है। लो, वह धाम कहो या महल कहो, शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. आहा..हा..! **आनन्द का स्थान...** है। लो, यह महल का अर्थ। **ऐसा पवित्र उज्ज्वल आत्मा है।** महा भगवान पवित्र, भाई! वाणी में किस प्रकार आवे? वाणी जड़, भगवान का चैतन्यस्वभाव। वाणी में चैतन्य का स्वभाव, स्वभाव से विरुद्ध वाणी.. आहा..हा..! वाणी में चैतन्य के स्वभाव की व्याख्या कितनी आवे? आहा..हा..! परन्तु अन्दर ईशारा आता है। प्रभु! तेरा विश्राम स्थान पवित्र उज्ज्वल आत्मा तू है, भाई! आहा..हा..! तेरी चीज़ में उदयभाव की गन्ध नहीं है। आहा..हा..! परन्तु यह प्रतीति हुए बिना, दृष्टि हुए बिना यह बात बैठती नहीं। आहा..हा..!

वहाँ—ज्ञायक में—रहकर... आहा..हा..! भगवान ज्ञायक आनन्द स्थान, ज्ञान स्थान, शन्ति का स्थान (है)। वहाँ रहकर **ज्ञान सब करता है...** राग का, पर्याय का ज्ञान

करे, परन्तु दृष्टि तो अन्दर द्रव्य पर पड़ी है। समझ में आया? अभेद पर दृष्टि होने पर भी वह ज्ञान अपना करे, पर्याय का करे, राग का करे, संयोगी चीज़ पर लक्ष्य जाये, उसका भी ज्ञान करे। ज्ञान में तो सब आता है। समझ में आया? परन्तु ज्ञायक में रहकर, आहा..हा..! ज्ञायक चैतन्य भगवान पूर्ण आनन्द, अभेद की दृष्टि में रहकर सबका ज्ञान करे। शुभभाव आवे, अशुभभाव हो, देव-गुरु-शास्त्र मिले, प्रतिमा आदि मिले, ज्ञान करे।

मुमुक्षु : प्रतिमा तो पर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर है, इसलिए ज्ञान करे। अपने में अपनी ज्ञानपर्याय में ताकत है कि पर प्रकाश का ज्ञान होता है।

मुमुक्षु : अपने को क्या लेना-देना?

पूज्य गुरुदेवश्री : लेने-देने का कौन कहता है? यह तो पर का ज्ञान करे, इतनी बात है। ज्ञान का स्वभाव इतना है। पर के साथ लेने-देने का कहाँ सम्बन्ध है? आहा..! पर सम्बन्धी अपने में जो ज्ञान होता है, वह ज्ञान करे, जाने। दृष्टि में वह विषय नहीं। दृष्टि में विषय तो अभेद एकाकार है। आहा..हा..! परन्तु दृष्टि के साथ में ज्ञान हुआ, वह ज्ञान अपने त्रिकाल को भी जाने, पर्याय को जाने, राग को जाने, संयोगी निमित्त वस्तु को भी जाने.. जाने.. जाने.. जाने.. जाने..

यह (समयसार) बारहवीं गाथा में आया है कि अपना स्वरूप भूतार्थ सत्यार्थ जो है, उसकी दृष्टि हुई, अनुभव हुआ तो अब उसकी पर्याय में कोई व्यवहार है या नहीं? या अकेला निश्चय आ गया? निश्चय हुआ है, दृष्टि के विषय का अनुभव हुआ, तथापि अभी पर्याय में अशुद्धता है। शुद्धता अल्प है, अशुद्धता है। बस, संस्कृत में ऐसा पाठ है। **व्यवहार देसिदा** में बड़ा विवाद है। व्यवहार का उपदेश (करना)। उपदेश की बात ही वहाँ नहीं है। उस काल में **तदात्वे** जाना हुआ प्रयोजनवान है - ऐसा संस्कृत है। अमृतचन्द्राचार्य (ने लिखा है।) उस-उस समय जो राग और उस-उस समय अल्प शुद्धता है, उसे जानना, वह प्रयोजन है, बस। उस काल में जिस समय शुद्धता अल्प है, अशुद्धता है, दूसरे समय में शुद्धता बढ़ी है, अशुद्धता घटी है तो उस समय में वह जाना हुआ प्रयोजनवान है। आहा..हा..! समझ में आया? समय-समय में शुद्धता बढ़ती है, अशुद्धता घटती है। अत: समय-समय में जो शुद्धता है और अशुद्धता है, उसे जाना हुआ प्रयोजनवान है, बस! दूसरे

समय में शुद्धता बढ़ी और अशुद्धता घटी तो उस समय वह जाना हुआ प्रयोजनवान है। आहा..हा..! **तदात्वे** शब्द पड़ा है। आहा..हा..! भाई! मार्ग अलग है।

यहाँ यह कहा, दृष्टि तो द्रव्य अभेद पर हुई परन्तु उसके साथ ज्ञान हुआ, वह ज्ञान सबको जानता है। ज्ञान सब करता है, सबको जानता है, उसमें जानने में क्या? **परन्तु दृष्टि तो अभेद पर ही है।** आहा..हा..! माल.. माल.. माल है। यहाँ तो मक्खन है। आहा..हा..! **ज्ञान सब करता है परन्तु दृष्टि का जोर इतना है...** आहा..हा..! ज्ञान में रागादि आते हैं, उन्हें जानता है, परन्तु दृष्टि का इतना जोर है कि **अपने को अपनी ओर खींचता है।** स्वभाव सन्मुख खींचता है। ऐसी बात। आहा..हा..! समझ में आया? रागादि ज्ञात होते हैं, तथापि दृष्टि का विषय है तो दृष्टि अन्दर खींचता है। यह क्या? ऐसी बातें अब। आहा..हा..! यह २०६ (बोल पूरा) हुआ।

हे जीव! अनन्त काल में शुद्धोपयोग नहीं किया इसलिये तेरी कर्मराशि क्षय नहीं हुई। तू ज्ञायक में स्थिर हो जा तो एक श्वासोच्छ्वास में तेरे कर्मों का क्षय हो जायगा। तू भले ही एक है परन्तु तेरी शक्ति अनन्त है। तू एक और कर्म अनन्त; परन्तु अनन्त शक्तिवान तू एक ही सबका सामना करने के लिये पर्याप्त है। तू सोता है इसलिये सब आते हैं, तू जाग जाये तो सब अपने आप भाग जायँगे॥२०७॥

२०७, अब शुद्धोपयोग आया। **हे जीव! अनन्त काल में शुद्धोपयोग नहीं किया...** प्रभु! आहा..हा..! शुद्धोपयोग भी आत्मा की पर्याय है। शुभ-अशुभ भी आत्मा की पर्याय है।

मुमुक्षु : किस गुण की?

पूज्य गुरुदेवश्री : विकृत गुण की पर्याय शुभ-अशुभ और निर्मल पर्याय है शुद्ध। आहा..हा..! यह तो बात हुई थी। कितने ही गुण की विकृत अवस्था है। बहुत वर्ष पहले बहुत विचार किया तो ४१ बोल मुश्किल से अन्दर से निकले थे। ४१ गुण विकृतरूप से है। सब गुण विकृतरूप से नहीं। बहुत वर्ष पहले बहुत मन्थन (किया था)। लगभग (संवत्) १९९९ का वर्ष था। सायला में एक बार रात्रि को निवृत्ति थी। विकृत अवस्था

कितने गुण की है ? तो अस्तित्वगुण, वस्तुत्वगुण, प्रमेयत्वगुण की विकृत नहीं, शुद्ध है। अभव्य को भी शुद्ध है। आहा..हा. ! और श्रद्धागुण की पर्याय विकृत है। आनन्द की पर्याय दु:खरूप विकृत है। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान की विकृत अवस्था है। आहा..हा.. ! प्रदेशत्वगुण की विकृत अवस्था है। ऐसे बहुत बोल निकाले थे। कहीं लिखे हुए पड़े होंगे।

मुमुक्षु : प्रभुत्वगुण की विकारी अवस्था है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उस समय कितने ही लिखे थे। रात्रि को मन्थन चला। हमारे जीवणलालजी थे। गुजर गये, उन्होंने लिखे थे। कहीं रखे होंगे। आत्मा में सामान्य गुण अनन्त हैं, अस्तित्व, वस्तुत्व आदि; और विशेष गुण ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि, वे भी अनन्त हैं। आहा..हा.. !

परमात्मप्रकाश में कहा है कि अस्तित्व-वस्तुत्व आदि छह बोल सामान्य (गुण के) आते हैं। वह अस्तित्व, वस्तुत्व अपने में भी है, परमाणु में भी है, छहों द्रव्य में है; इसलिए उसे सामान्य कहा। परन्तु वे तो छह नाम कहे, बाकी सामान्यगुण तो अनन्त हैं और विशेष (गुण) ज्ञान, दर्शन, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता, ऐसे विशेष गुण भी अनन्त हैं। आहा..हा.. ! एक आत्मा की बात चलती है। आहा..हा.. ! सब गुण में विकृत अवस्था अमुक गुण की ही है, बाकी सब गुण निर्मलरूप हैं। आहा..हा.. !

यहाँ कहते हैं **हे जीव! अनन्त काल में शुद्धोपयोग नहीं किया...** प्रभु ! तू अशुभ करते-करते किसी समय शुभ में आया। यहाँ तो निगोद में भी... हमारे पण्डितजी-फूलचन्दजी ने निकाला था कि एकेन्द्रिय में भी अशुभ और शुभ क्षण-क्षण में होते हैं। निगोद में भी एक क्षण में शुभ और दूसरे क्षण में अशुभ। पण्डितजी ! इन पण्डितजी ने निकाला था। खबर है ? आहा..हा.. ! निगोद का जीव जो कभी त्रस नहीं हुआ और त्रस नहीं होगा, उसे भी क्षण में शुभ और अशुभ होते हैं। आहा..हा.. ! वह कोई नवीन अपूर्व वस्तु नहीं है। आहा..हा.. ! शुभराग दया, दान, व्रतादि के यहाँ हैं, वहाँ (निगोद में) तो देव-गुरु-शास्त्र भी नहीं कि उनके लक्ष्य से शुभभाव करे परन्तु आत्मा है तो अपना आश्रय छोड़कर परलक्ष्य में (शुभाशुभभाव होते हैं) इसे खबर नहीं कि परलक्ष्य है। एकेन्द्रिय निगोद के जीव हैं परन्तु शुभ और अशुभ, क्षण में शुभ, क्षण में अशुभ कर्मधारा चलती है।

आहा..हा..! धर्मी जीव को धर्मधारा चलती है, राग से भिन्न पड़कर निज ज्ञानस्वरूप को ग्रहण किया तो निर्मल भेदज्ञान की धारा, राग होवे तो भी भेदज्ञान की धारा सदा ही चलती है। आहा..हा..! ऐसा मार्ग है, प्रभु! आहा..हा..!

इसलिये तेरी कर्मराशि क्षय नहीं हुई। क्या कहा? प्रभु! तूने शुद्ध उपयोग जो आत्मा के अवलम्बन से करना है, ऐसा शुद्ध उपयोग नहीं किया। शुद्ध उपयोग है तो पर्याय, कोई गुण नहीं परन्तु त्रिकाली भगवान परमात्मा के अवलम्बन से जो उपयोग उत्पन्न होता है, वह शुद्ध उपयोग है। आहा..हा..!

यह प्रश्न मोक्षमार्गप्रकाशक में चला है न? भाई! यह अपने आ गया, मैंने तो बहुत बार कहा है। शिष्य ने प्रश्न किया कि शुभभाव होता है तो पुण्य बँधता है और पाप की निर्जरा होती है – ऐसा कहो न? ऐसा प्रश्न है। शुभभाव आते हैं तो शुभभाव से पाप की निर्जरा और पुण्य का बन्ध-ऐसा कहो (उत्तर में) कहा – ऐसा नहीं, क्योंकि शुद्ध उपयोग में अनुभाग का रस बढ़ता है। आहा..हा..! स्थिति घटती है। सबकी स्थिति घटती है। शुद्ध उपयोग में और शुभ में स्थिति घटती है परन्तु शुद्ध उपयोग से भी... ऐसा कोई स्वभाव है... आहा..हा..! जैसे शुद्धता बढ़ी तो वहाँ पुण्य का अनुभाग बढ़ गया। शुद्ध निमित्त है, इसलिए बढ़ा? स्वभाव ही कोई ऐसा है। आहा..हा..! प्रत्येक वस्तु कोई अलौकिक है। आहा..हा..!

शुद्ध उपयोग होने पर भी पुण्य और पाप की स्थिति घटती है, परन्तु पुण्य का रस है, वह घटता नहीं, बढ़ता है। आहा..हा..! समझ में आया? आहा..हा..! ऐसी बात है। विशेष तो कर्मशास्त्र में है। पण्डितजी ने बहुत पढ़ा है। यहाँ तो थोड़ी माल-माल की बात (कही)। समझ में आया? आहा..हा..! ये कहा न? देखो!

अनन्त काल में शुद्धोपयोग नहीं किया, इसलिये तेरी कर्मराशि क्षय नहीं हुई। तू ज्ञायक में स्थिर हो जा... प्रभु! आहा..हा..! तेरी भगवत शक्ति में तू स्थिर हो। ओहो..हो..! महिमावन्त चैतन्य-चमत्कार की शक्ति में प्रभु! वहाँ स्थिर हो। आहा..हा..! **तू ज्ञायक में स्थिर हो जा तो एक श्वासोच्छ्वास में तेरे कर्मों का क्षय हो जायेगा।** आहा..हा..! यह श्वास चलती है न? इसमें आत्मा के प्रदेश हैं, हों! क्या कहते हैं? अकेला श्वास-पवन ही है-ऐसा नहीं है। यह शरीर का अंग है तो इसमें आत्मप्रदेश हैं। आहा..हा..! समझ में

आया ? श्वास है, वह शरीर का अंग है। शरीर का भाग है। शरीर में जैसे आत्म प्रदेश हैं, वैसे श्वास में भी प्रदेश हैं। आहा..हा..! परन्तु वे प्रदेश चलते हैं, वह आत्मा के कारण से नहीं। आहा..हा..! समझ में आया ? शुद्ध आत्मा, हों! कम्पन है तो प्रदेश चलते हैं। कम्पन अपने में है, अपने से है। इस कारण से श्वास ऐसी चलती है। आहा..हा..!

यहाँ कहते हैं, एक श्वास में.. आहा..हा..! तेरी ज्ञायकस्वभाव में यदि लीनता हो जाये... आहा..हा..! बाहर निकल नहीं सकेगा, विकल्प में आवे नहीं, ऐसा स्वरूप में जम जाये.. आहा..हा..! तो कर्मराशि क्षण में नाश हो जायेगी। समझ में आया ? **कर्मों का क्षय हो जायेगा।**

तू भले ही एक है... तू भले एक है और कर्म अनन्त हैं। आहा..हा..! अपने जो अशुद्ध परिणाम होते हैं न ? उनमें एक परमाणु निमित्त नहीं। अनन्त परमाणु कर्म की पर्याय उसमें निमित्त होते हैं। इतना तो उसका जोर है। क्या कहते हैं ? पर्याय में जो शुभराग होता है, उसमें एक परमाणु पर्याय निमित्त नहीं, अनन्त परमाणु हैं, वह ताकत बताते हैं। अशुद्धता होने में भी निमित्तरूप से अनन्त परमाणु की पर्याय निमित्त होती है। आहा..हा..! समझ में आया ?

मुमुक्षु : इसमें तो निमित्त का जोर आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त का जोर नहीं आया। यहाँ तो अशुद्धता की पर्याय स्वयं से होती है, उसमें कर्म के असंख्य परमाणु निमित्त-ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! उसमें भी अनन्त परमाणु से परिणित हुए कर्म, निमित्त है। उससे होता है - ऐसा नहीं। आहा..हा..! निमित्त से हो, तब तो (वह) उपादान हो गया। आहा..हा..! ऐसी बात है भाई!

यहाँ तो ऐसा कहना है कि अपनी अशुद्धता में सन्मुख अनन्त कर्म परमाणुओं की उपस्थिति है। आहा..हा..! भगवान जो आत्मा ज्ञायक में स्थिर होता है तो अशुद्धता का नाश होकर, जो अनन्त कर्म का निमित्त था, वह भी नाश हो जाता है। कर्म की पर्याय अकर्मरूप हो जाती है। नाश की व्याख्या यह है। परमाणु की पर्याय नाश होती है - इसका अर्थ क्या ? जावे कर्मरूपी पर्याय थी, वह अकर्मरूप पर्याय हो जाती है, इसका नाम कर्म का नाश (है) जैनतत्त्व मीमांसा में पण्डितजी ने लिखा है। समझ में आया ? आहा..हा..!

तू भले ही एक है परन्तु तेरी शक्ति अनन्त है। आहा..हा..! तुझमें अनन्त बल है।

सामने अनन्त परमाणु हैं, विकृत अवस्था है, उसे तोड़ने की तुझमें अनन्त शक्ति है। तोड़ने का अर्थ यह कहीं कर्म तो नहीं टूटते, अशुद्धता टूटती है और अशुद्धता टूटती है तो कर्म की पर्याय अपनी योग्यता से अकर्मरूप हो जाती है। कर्म की अकर्मरूप पर्याय हुई, वह आत्मा ने की है – ऐसा नहीं है। क्या कहते हैं ?

निर्जरा होती है न ? निर्जरा में तीन प्रकार है – एक तो अशुद्धता का नाश होना, अपनी पर्याय में; अशुद्धता में जो निमित्त रजकण हैं, उनका भी नाश होना, वह तो उनके कारण से है, हों! और एक शुद्धि की वृद्धि होना, उसे भी निर्जरा कहते हैं। निर्जरा के तीन प्रकार हैं। दो अपने में, तीसरा कर्म में। आहा..हा..! अर्थात् जब अपने में शुद्धता का लक्ष्य है – शुद्धता उत्पन्न हुई तो अशुद्धता का नाश हुआ, उसे भी निर्जरा कहने में आता है और उस समय कर्म की पर्याय भी स्वयं से नाश होने की योग्यता से अकर्मरूप होती है, वह भी निमित्त (रूप) निर्जरा है और शुद्धि की वृद्धि हुई, वह मूल निर्जरा। आहा..हा..! समझ में आया ? यह स्वयं में ताकत है – ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! शुद्धता उत्पन्न करने की ताकत आत्मा में है कि जिससे अशुद्धता का नाश और कर्म का नाश होता है। आहा..हा..! गजब बातें, बापू! जड़कर्म की पर्याय का आत्मा नाश नहीं करता, तथा अशुद्धता का भी नाश नहीं करता परन्तु शुद्धता उत्पन्न हुई तो अशुद्धता उत्पन्न नहीं हुई, उसे नाश किया –ऐसा कहने में आता है। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं। तब कर्म भी उसके कारण से वहाँ कर्म की पर्याय छूटकर अकर्म हो गयी, वह उसके कारण हुई। उसमें यह शुद्धता निमित्त हुई तो कर्म नाश किया – ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। व्यवहार अर्थात् असद्भूतव्यवहारनय से। आहा..हा..!

वह यहाँ कहते हैं। **तू एक और कर्म अनन्त; परन्तु अनन्त शक्तिवान तू एक ही सबका सामना करने के लिये पर्याप्त है।** आहा..हा..! अशुद्धता का भाव और उसमें निमित्तरूप कर्म, उनका सामना करने की तुझमें ताकत है। आहा..हा..! भगवान अनन्त-अनन्त बल का धनी प्रभु है। उसका वीर्यगुण सैंतालीस (शक्तियों में) कहा न ? वहाँ ऐसा कहा कि वीर्यगुण का कार्य क्या ? कि स्वरूप की रचना करना, वह वीर्यगुण का कार्य है। अशुद्धता की रचना करना, वह नहीं। क्या कहा ? आत्मा में एक वीर्य-बल नाम का गुण है। उसका कार्य क्या ? उस गुण का गुण क्या ? उस गुण का गुण क्या ? आहा..हा..! समझ

में आया ? उस गुण का गुण यह कि अनन्त शुद्धपर्याय की रचना करे, वह वीर्य कहलाता है। शुभ-अशुभ की रचना करे, वह वीर्य नहीं; वह तो नपुंसकता है। आहा..हा..! नन्दकिशोरजी! यह वकालत अलग प्रकार की है। यह तो भगवान के घर की वकालत है। नयावोयम मार्ग है। न्याय से समझ में आता है। नि-धातु - अपनी चीज़ में ज्ञान को ले जाना, ले जाना, उसका नाम न्याय है। यह वीतराग के घर के न्याय। वकालात के न्याय सरकार बाँधती है - ऐसे रामजीभाई ने किये रखे। कहो समझ में आया ? वकील, रामजीभाई के बहुत गुणगान करते हैं। एक वकील तो बहुत गुणगान करता था। आहा..! इनके समय में तो ये एक ही वकील थे, बस!

मुमुक्षु : उसमें क्या लाभ हुआ ?

पूज्य गुरुदेवश्री : लाभ में पाप। ऐ! आहा..हा..! यह परमात्मा तीन लोक का नाथ, इसकी वकालत सन्त करते हैं। एक बार सुन तो सही, प्रभु! तुझमें इतनी शक्ति और ताकत / वीर्य है और उस वीर्य का एक-एक गुण में वीर्य अर्थात् शक्ति का रूप है। ज्ञान है, उसमें भी वीर्य का रूप है। वीर्यगुण अन्दर नहीं परन्तु ज्ञान में भी वीर्यशक्ति अन्दर है। आहा..हा..! समझ में आया ? ऐसे ही श्रद्धा में भी वीर्य की शक्ति अन्दर है। वीर्यगुण भिन्न है। एक गुण दूसरे गुण में नहीं जाता, परन्तु उसका रूप है। आहा..हा..! चारित्रगुण में भी वीर्यगुण का रूप है। अस्तित्वगुण में भी वीर्यगुण का रूप है। वस्तुत्वगुण में वीर्यगुण का रूप है। प्रभुत्वगुण में भी वीर्यगुण का रूप है। स्वच्छतागुण में भी वीर्यगुण का रूप है। स्वसंवेदन प्रकाश होना, अपना अपने से प्रकाश होना, उसमें भी वीर्यगुण का रूप है। आहा..हा..! ऐसे अनन्त-अनन्त गुणों में वीर्य की शक्ति पड़ी है। आहा..हा..! ऐसा प्रभु! तू अकेला ही अनन्त शक्ति का स्वामी है। सामने भले अनन्त परमाणु हो, अरे...! अशुद्धता बहुत हो, वह भी तुझसे हुई है, परन्तु वह अशुद्धता पर के लक्ष्य से होती है किन्तु तेरे स्वभाव के उपयोग से.. आहा..हा..!

तू एक ही सबका सामना करने के लिये... सामना कहते हैं न ? सामना को क्या कहते हैं ? **पर्याप्त है।** तू अकेला ही पर्याप्त है। आहा..हा..! वस्तु के स्वभाव की सामर्थ्यता जहाँ शुद्धोपयोग में आयी वह एक ही पर्याप्त है। सर्व अनन्त अशुद्धता और कर्म का नाश हो गया। पर का नाश कहा, वह असद्भूतव्यवहारनय से कहा है। आहा..हा..!

तू सोता है... तू राग में सो गया है। आत्मा में जागृत नहीं है.. आहा..हा..! यह कहते

हैं, गीता में भी आया है और अपने यहाँ भी आता है कि ज्ञानी व्यवहार में सोते हैं और निश्चय में जागृत हैं तथा अज्ञानी व्यवहार में जागते हैं और निश्चय में सो गये हैं। आहा..हा..! समझ में आया? (मोक्षपाहुड़ की ३१ वीं) गाथा है, सब गाथा कहें तो देरी लगे। आहा..हा..! अज्ञानी स्वभाव में सोता है अर्थात् स्वभाव का भान नहीं है, राग में एकाकार होकर सोता है। ज्ञानी स्वभाव में जागृत है। राग से सो गया है। राग का नाश कर दिया है। आहा..हा..! राग आता है, उसे भी ज्ञातारूप से जानता है। यह तो ज्ञान की पर्याय स्व-परप्रकाशक होने से स्व का ज्ञान भी करता है और पर का ज्ञान (भी करता है)। अपनी शक्ति पर को जानती है - ऐसा कहना, वह व्यवहार है। परन्तु उस समय पर को जानने की शक्ति स्वयं से स्व-परप्रकाशक उत्पन्न होती है, उसे व्यवहार से जाना हुआ प्रयोजनवान् कहा जाता है परन्तु उस राग को जानता है - ऐसा कहना, वह भी व्यवहार है। अपनी पर्याय में उस समय में, उस सम्बन्धी ज्ञान और स्व-सम्बन्धी ज्ञान, पर्याय में स्व-परप्रकाशक की पर्याय स्वयं से उत्पन्न होती है। आहा..हा..! समझ में आया?

केवली लोकालोक को जानते हैं - ऐसा कहना, वह असद्भूतव्यवहार है क्योंकि जिसमें तन्मय नहीं होते, वह असद्भूतव्यवहार है और पर्याय, पर्याय में तन्मय है, उसे जानते हैं, वह निश्चय है। आहा..हा..! समझ में आया? पर को तन्मय होकर जानते हैं? केवली तो दुनिया के राग-द्वेष, जगत की विषय-वासना, सब जानते हैं या नहीं? क्या तन्मय होकर जानते हैं? आहा..हा..! कसाई बकरा काटता है, उसका ज्ञान, ज्ञान में आता है या नहीं? उसमें तन्मय होकर जानते हैं? अपनी पर्याय में स्व-परप्रकाशक के सामर्थ्य से उसे जानते हैं - ऐसा असद्भूतव्यवहारनय से कहने में आता है। वास्तव में तो अपनी स्व-परप्रकाशक (पर्याय है), उसे ही जानते हैं। आहा..हा..! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! परमात्मा की बात वह बहुत सूक्ष्म है। आहा..हा..!

यह यहाँ कहते हैं **तू सोता है, इसलिये सब आते हैं,..** अज्ञान में है, जागता नहीं तो सब कर्म आते हैं। **तू जाग जाये तो सब अपने आप भाग जायँगे।** तू जाग जाये, कर्म भाग जायेगा। आहा..हा..! भाषा तो गुजराती थी, यह हिन्दी की है। अभी तो दूसरी भाषा में बनेगी। अपना आत्मधर्म पाँच भाषा में आ गया है, तो यह भी अभी आयेगी। मराठी हुआ है, कन्नड़ में होगा और तमिल में होगा। अपने आत्मधर्म पाँच भाषा में आता है। अभी तमिल में आया न? अभी आया, वहाँ देखा, ऊपर नाम लिखा है, हिन्दी

में नाम लिखा है। यह है, यह है -ऐसा लिखा है। सम्पादक कहते हैं, अमुक ऐसा हिन्दी में है। आहा..हा..!

यहाँ कहते हैं तू जाग जाये तो सब भाग जाये। आहा..हा..! सिंह की जहाँ दहाड़ पड़े तो बकरे तो दुम दबाकर भाग जाते हैं। इसी प्रकार भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञान की जागृति में जाग जाये.. आहा..हा..! तो अशुद्धता और कर्म भाग जाते हैं। भाई! यह बात नहीं, यह तो वस्तु का स्वरूप है। आहा..हा..! २०७ (बोल पूरा हुआ)।

बाह्य दृष्टि से कहीं अन्तर्दृष्टि प्रगट नहीं होती। आत्मा बाहर नहीं है; आत्मा तो अंतर में ही है। इसलिये तू अन्यत्र कहीं मत जाना, परिणाम को कहीं भटकने मत देना; उन्हें एक आत्मा में ही बारम्बार लगा; बारम्बार वहीं जाना, उसी को ग्रहण करना। आत्मा की ही शरण में जाना। बड़े के आश्रय से ही सब प्रगट होता है। अगाध शक्तिवान चैतन्यचक्रवर्ती को ग्रहण कर। उस एक को ही ग्रहण कर। उपयोग बाहर जाये परन्तु चैतन्य का अवलम्बन उसे अन्तर में ही लाता है। बारम्बार... बारम्बार ऐसा करते.... करते... करते... (स्वरूप में लीनता जमते... जमते) क्षपकश्रेणी प्रगट होकर पूर्ण हो जाता है। जो वस्तु है, उसी पर अपनी दृष्टि की डोर बाँध, पर्याय के अवलम्बन से कुछ नहीं होगा॥२०८॥

२०८, **बाह्य दृष्टि से कहीं अन्तर्दृष्टि प्रगट नहीं होती।** क्या कहते हैं? आहा..हा..! पर्यायदृष्टि से, रागदृष्टि से निमित्तदृष्टि से.. वह तो बाह्य दृष्टि है, इससे कहीं अन्तर्दृष्टि प्रगट नहीं होती। आहा..हा..! क्या कहते हैं? बहिरात्मा कहते हैं न? बहिरात्मा का अर्थ - जो आत्मा में नहीं, पुण्य, पाप, दया, दान, व्रत और पर - अपने में नहीं, उन्हें अपना मानना, वह बहिरात्मा। बहिर-आत्मा। ऐसा बहिर्दृष्टि—जिसकी पर्याय और राग पर दृष्टि है, उस दृष्टि से अन्तर्दृष्टि नहीं होती। आहा..हा..! समझ में आया? **बाह्य दृष्टि से कहीं अन्तर्दृष्टि प्रगट नहीं होती।** आहा..हा..! अनुभूति, जब सम्यग्दर्शन होता है, वह तो अन्तर्दृष्टि में-ध्यान में होता है। आहा..हा..! समझ में आया? यह तो पहले (वृहद्द्रव्यसंग्रह की) ४७ गाथा का कहा न? **झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।** आहा..हा..!

आत्मा तो अंतर में ही है। बाहर की दृष्टि से अन्तर (तत्त्व) नहीं मिलता। आहा..हा..! भगवान तो पर्याय के समीप अन्दर विद्यमान है। पर्याय के समीप ध्रुव स्थित है। महा अनन्त आनन्द आदि गुण का दरबार, एक समय की पर्याय के समीप साथ में स्थित है। आहा..हा..! निश्चय से तो एक पर्याय का और ध्रुव का क्षेत्र भी भिन्न है। आहा..हा..! कठिन बात है, भाई! पर्याय तो भिन्न है, द्रव्य तो भिन्न है परन्तु पर्याय का क्षेत्र भी द्रव्य से भिन्न है, तथापि उस पर्याय में जब तक दृष्टि है-जो भिन्न है, उसमें दृष्टि है, तब तक अन्तरवस्तु में दृष्टि नहीं पड़ती। उसके कारण अन्तर्दृष्टि नहीं होती। आहा..हा..!

दृष्टि है तो पर्याय, परन्तु उस बहिर्दृष्टि से वह पर्याय प्रगट नहीं होती। अन्तर आत्मभगवान की दृष्टि से अन्तर्दृष्टि उत्पन्न होगी। आहा..हा..! अन्तर-आत्मा की दृष्टि से अन्तरभगवान, अन्तर आत्मा पूर्णानन्द प्रभु, पर्याय के साथ अन्दर में पाताल / तल है, पर्याय का तल जो ध्रुव है.. आहा..हा..! उसमें भगवान आत्मा अन्तर्दृष्टि करता है तो दृष्टि सत्य होती है। आहा..हा..! अर्थात् अन्तर्दृष्टि बाहर नहीं। आत्मा बाहर नहीं। अन्तर में ज्ञायकभाव ध्रुव अन्दर में है। वह पर्याय में भी नहीं तो राग में तो कहाँ से आये? आहा..हा..! कठिन बात भाई! **बाह्यदृष्टि से कहीं अन्तर्दृष्टि प्रगट नहीं होती। आत्मा बाहर नहीं है;...** बाहर कहाँ है जो बाह्यदृष्टि से अन्तर्दृष्टि हो जाये? आहा..हा..! आत्मा, पर्याय में और राग में कहाँ है कि बाह्यदृष्टि से अन्तर्दृष्टि हो? आहा..हा..! राग और पर्याय में आत्मा नहीं है। पर्याय से अन्तर में भिन्न है। आहा..हा..! ऐसी बातें लोगों को कठिन लगती है। निश्चय.. निश्चय.. सोनगढ़वाले निश्चय की बातें कहते हैं - ऐसा (वे लोग) कहते हैं। निश्चयाभासी (है ऐसा कहते हैं)। कहे, कहे प्रभु! उसे न जँचे अर्थात् वास्तविक न जँचे... 'जिसमें जितनी बुद्धि है उतनो दिये बताय, वाँको बुरो न मानिये और कहाँ से लाये।' आहा..हा..! समझ में आया? आहा..हा..! क्या कहते हैं?

बाह्यदृष्टि से अन्तर्दृष्टि नहीं होती - इसका अर्थ क्या? कि बाह्य में आत्मा कहाँ है? पर्याय में और राग में आत्मा कहाँ है कि बाह्यदृष्टि से अन्तर्दृष्टि हो। पर्याय और राग से तो अन्दर भिन्न पड़ा है। आहा..हा..! आठ वर्ष का बालक भी यह समझे तो केवलज्ञान पाता है। आहा..हा..! जहाँ अपना आनन्द का रस चखा.. आहा..हा..! माता को कहता है - माता! मुझे आज्ञा दे, माँ! हम अपने आनन्द के विशेष वेदन के लिये वन में जाते हैं।

आहा..हा..! जिसने अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लिया, अनुभूति में अन्तर्दृष्टि में (स्वाद लिया), वह विशेष स्वाद के लिये माता को कहता है, माता! हमें कहीं रुचि नहीं जमती, हमारी रुचि का विषय जो अन्दर है, वहाँ से हमारी दृष्टि नहीं हटती। विशेष आनन्द लेने के लिये.. माता! वन में जाता हूँ। आहा..हा..! जननी! तुझे रोना हो तो एक बार रो ले, परन्तु हम वादा करते हैं.. यह तो हम सम्प्रदाय में भी कहते थे। 'अजैव धम्मं पडिवज्जयामो' श्वेताम्बर का उत्तराध्ययन सूत्र है। कण्ठस्थ किया न? छह-सात हजार श्लोक कण्ठस्थ थे। वह ब्राह्मण का पुत्र है, जातिस्मरण होता है और दीक्षा लेता है। बात तो सब कल्पित है परन्तु हम उसमें से सिद्धान्त निकालते हैं। 'अजैव धम्मं पडिवज्जयामो' माता! मैं आज ही स्वरूप की रमणता अंगीकार करूँगा। 'जहि पुवनाम पुवंभवामो...' माता! हम स्वरूप की रमणता आज ही अंगीकार करते हुए वायदा करते हैं कि फिर से दूसरा भव हम नहीं करेंगे, फिर से दूसरी माता नहीं बनायेंगे, माँ! तुझे रोना हो तो रो ले। आहा..हा..! जननी! अब दूसरी माँ नहीं बनायेंगे। आहा..! इस आनन्द के रस को चखा है, उस रस की वृद्धि करने जंगल में चला जाता है। आहा..हा..!

इसलिये तू अन्यत्र कहीं मत जाना, परिणाम को कहीं भटकने मत देना;... विशेष आयेगा। समय हो गया। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

यह आत्मा, आबाल-गोपाल सबको ख्याल में आ सके — ऐसा है। आत्मा, मोक्षसुख का देनेवाला है - ऐसे आत्मा को अनुभव से जाना जा सकता है किन्तु महान् विद्वान् भी वाणी से उसका सम्पूर्ण वर्णन नहीं कर सकते। वह ज्ञान में आता है किन्तु वाणी में नहीं आता। जिस प्रकार घी खाने पर उसके स्वाद का ज्ञान होता है परन्तु वाणी में वह सम्पूर्ण नहीं कहा जा सकता; इसी प्रकार आत्मा का स्वरूप ज्ञान में ज्ञात होता है परन्तु वाणी में नहीं कहा जा सकता। जब आत्मा को जाननेवाला ज्ञानी भी उसे वाणी से सम्पूर्णरूप से कहने में समर्थ नहीं है, तब अज्ञानी तो उसे कह ही कैसे सकता है?

(पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, आतम के हित पंथ लाग! में से)

श्रावण कृष्ण-१५, शनिवार, दिनाङ्क ०२-०९-१९७८
वचनामृत-२०८-२१० प्रवचन-८३

२०८ बोल है न? फिर से, **बाह्यदृष्टि से कहीं अन्तर्दृष्टि प्रगट नहीं होती।** क्या कहते हैं? भगवान आत्मा अन्तर में है, वह बाह्यदृष्टि से कोई निमित्तदृष्टि से या रागदृष्टि से अन्तर्दृष्टि प्राप्त नहीं होती। आहा...हा...! एकदम सत्य है। क्यों? कि **आत्मा बाहर नहीं है;...** आत्मा बाहर नहीं है। क्या कहते हैं? तेरे परिणाम बाहर खोजते हैं तो वहाँ तो आत्मा है नहीं। पर्याय में, राग में, निमित्त में आत्मा तो है नहीं और तू वहाँ खोजता है कि निमित्त से होता है, राग से होता है या पर्याय से; (तो) उसमें तो आत्मा है नहीं। आहा..हा..! समझ में आया?

बाह्यदृष्टि से कहीं अन्तर्दृष्टि प्रगट नहीं होती। आत्मा बाहर नहीं है;... आहा..हा..! भगवान आत्मा पर्याय में भी नहीं। आहा...हा...! जो द्रव्यस्वभाव असली ज्ञायकभाव है, वह पर्याय में नहीं, राग में नहीं तो बाहर से तो तुझे कहाँ से मिलेगा? आहा...हा...! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह समझने के लिये तो बात है। बाहर में तू खोजता है, तो अन्दर में जा। जहाँ भगवान है, वहाँ जा। आहा...हा...!

मुमुक्षु : भगवान तो मन्दिर में बिराजते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ कहाँ बिराजते हैं? यहाँ अन्दर है। अपनी पर्याय में भी आत्मद्रव्य नहीं तो दया, दान के विकल्प में तो कहाँ से आये? तो निमित्त में तो कहाँ से आया? आहा...हा...! ऐसी बात है, भाई!

आत्मा तो अंतर में ही है। आहा...हा...! ज्ञायकभाव अंतर में है। **इसलिये तू अन्यत्र कहीं मत जाना,...** आहा...हा...! अपने को खोजने अन्यत्र कहीं मत जाना क्योंकि

अन्यत्र कहीं आत्मा नहीं है। आहा...हा...! भगवान के दर्शन करने से भी आत्मा नहीं मिलता। क्योंकि वे तो बाह्य हैं, वहाँ तो आत्मा है नहीं। आहा...हा...! आत्मा तो भगवानस्वरूप एक समय की पर्याय में अन्तर समीप में ध्रुव रहता है तो बाह्यदृष्टि से वहाँ झपट्टे मारता है कि यहाँ से मिलेगा, यहाँ से मिलेगा? सब मिथ्या भ्रम है। आहा..! **अन्यत्र कहीं मत जाना,...**

परिणाम को कहीं भटकने मत देना;... आहा...! यदि तुझे आत्मा प्राप्त करना हो तो परिणाम को बाहर में भटकने मत देना। आहा...हा...! गजब बात है, भाई! **उन्हें एक आत्मा में ही बारम्बार लगा;...** परिणाम को अन्तर में लगा दे। आहा...हा...! जहाँ भगवान पूर्णानन्द बिराजता है, अन्तर में है। अन्तर आत्मा अन्तर में है, बहिर आत्मा राग और पुण्य को मानता है, वह बाहर में खोजता है। आहा...हा...! दया, दान, व्रत, भक्ति से मुझे आत्मा मिलेगा, वह तो बहिरात्मा है। आहा..हा...! बाहर से अपना अन्तरंग मिलेगा, यह तो मिथ्याभ्रम है। आहा...हा...! **उसी को ग्रहण करना।** बारम्बार उसमें जाना, बारम्बार वहाँ ही जाना। आहा...हा...! **उसी को ग्रहण करना।** ग्रहण करने का अर्थ—जो ध्रुव ज्ञायकभाव है, उसे पकड़ना अथवा परिणाम को उस ओर ले जाना। आहा...हा...! ऐसी बात।

मुमुक्षु : किस प्रकार पकड़ना?

पूज्य गुरुदेवश्री : परिणाम से। सम्यग्दर्शनरूपी परिणाम से। आहा...हा...! ऐसी बात है।

आत्मा की ही शरण में जाना। भगवान ज्ञायक आनन्दस्वरूप प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का दल है, वहाँ शरण में जा और उसकी शरण ले। आहा...हा...! राग में शरण है नहीं, पर्याय की दृष्टि में शरण है नहीं, क्योंकि एक अंश में कहीं पूरा आत्मा तो आया नहीं। आहा...हा...! ऐसी बात है। **बड़े के आश्रय से ही सब प्रगट होता है।** आहा...हा...! महा भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप है। **बड़े के आश्रय से ही सब प्रगट होता है।** आहा...हा...! पर्याय के अंश से बड़ा भगवान त्रिकाल है... आहा...हा...! उसके आश्रय से ही सब प्रगट होता है। सब अर्थात् शान्ति, आनन्द, स्वच्छता, प्रभुता (आदि सब)। समझ में आया? आहा...हा...! अब ऐसी बात!

अगाध शक्तिवान चैतन्यचक्रवर्ती.... प्रभु! अगाध शान्तिवान चैतन्य चक्रवर्ती प्रभु,आहा...हा...! उसे **ग्रहण कर।** निहालभाई ने द्रव्यदृष्टिप्रकाश में लिखा है, तीर्थंकर-

शान्तिनाथ आदि छह खण्ड को साधते हैं – ऐसा कहा जाता है परन्तु उन्होंने तो अखण्ड को साधा है। आहा...हा...! छह खण्ड नहीं, उन्होंने तो अन्दर से अखण्ड आत्मा का साधन किया है। आहा...!

मुमुक्षु : शास्त्र में छह खण्ड कहे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : छह खण्ड क्या, यह छह द्रव्य का जाननेवाला भगवान पर्याय, वह छह खण्ड यहाँ हैं। आहा...हा...! एक समय की पर्याय छह द्रव्य को जानती है, वह बाह्य है। उसने तो अखण्ड साधा है, पर्याय को भी नहीं। आहा...हा...! समझ में आया ? भाई! जन्म-मरण का अन्त लाने की वस्तु वह कहीं बाह्य से नहीं मिलती। आहा..हा...! बाह्य में वह है कहाँ ? दया, दान के विकल्प में आत्मा है ? देव-गुरु-शास्त्र में यह आत्मा है कि वहाँ से मिल जाये ? आहा...हा...! आत्मा मन्दिर में है कि वहाँ से मिल जाये ?

मुमुक्षु : मन्दिर तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करता है ? वह तो बनना है तो वह बनता है। मन्दिर पचास बने, अफ्रीका में पन्द्रह लाख का मन्दिर बनता है। आया है, आज अखबार में आया है 'जैन सन्देश' में है। वह तो बनने की पर्याय के काल में, प्रभु! उस काल में उन परमाणुओं की-उस स्कन्ध की पर्याय उत्पन्न होने की योग्यता से उत्पन्न होती है। कोई दूसरा कहे कि मैंने बनाया (तो ऐसा नहीं है)।

मुमुक्षु : .... बिना बना।

पूज्य गुरुदेवश्री : उपदेश के बिना बना है और बनानेवाला है, इसलिए बना है – ऐसा नहीं है। आहा...हा...! ऐसी बात।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : पागल को पागल (जैसा लगता है)। इस मकान में रामजीभाई ध्यान तो बहुत रखते थे। इन्होंने यह बनाया या नहीं ? वजुभाई ध्यान रखते थे, यहाँ हों तब तक। आहा...हा...! यह तो परमाणु, स्कन्ध जो है, उन अनन्त परमाणु का स्कन्ध, ऐसे अनन्त स्कन्ध, उस समय वह पर्याय उत्पन्न होने का काल है तो होती है। यह बात, गजब बात, प्रभु! समझ में आया ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इससे कुछ नहीं होता, तीन काल में। समवसरण में भगवान के पास गया तो उनकी सन्मुखता से आत्मा का ज्ञान नहीं होता। आहा! बाहर में कहाँ आत्मा है? बाहर है? वहाँ भगवान के पास आत्मा है? मन्दिर में आत्मा है? प्रतिमा में आत्मा है? अरे...! आत्मा राग में है? अरे...! आत्मा एक समय की पर्याय में है? आहा...हा...! अलौकिक बात है, भाई! आहा...हा...! एक भाई पढ़ते हैं न? भव्यसागर, वे यह पढ़कर बहुत प्रसन्न हुए। 'जालना' के हैं, 'जालना' के। पत्र आया है, पढ़ लेना, हों! उसमें क्या है? मँगाते हैं, बहिन की दस पुस्तकें मँगाते हैं।

मुमुक्षु : इस समय आने की बात थी वह।

पूज्य गुरुदेवश्री : आने की बात थी, हाँ, वे आनेवाले थे। फिर कुछ हो गया, चलने में। गाड़ी का आश्रय लिया और फिर उसका प्रायश्चित्त लेने गुरु के पास गये। नहीं तो वहाँ मिलते। हैदराबाद में उनका चातुर्मास था, तब हम हैदराबाद गये, वहाँ मिलते, परन्तु वहाँ नहीं थे। चले गये। आहा...हा...! आज पत्र आया है। बहिन की दस पुस्तकें भेजो। क्या कहलाता है? क्या कहलाता है भाषा कुछ? न हो तो एक तो भेजना। क्या कहलाता है? स्टॉक... स्टॉक। उसमें न हो तो एक तो भेजना, नहीं तो दस भेजना। दिगम्बर साधु है, यहाँ का बहुत प्रेम है। यह वस्तु कहाँ है? क्या हो? लोग ऐसा मानते हैं कि वर्तमान मुनि को पैर नहीं लगते। अरे..! प्रभु! सुन तो सही, भाई! मुनि के तो हम दासानुदास हैं, परन्तु मुनि होना चाहिए न! आहा...हा...!

मुनि अर्थात् क्या? प्रभु! भाई! वह तो परमेश्वर पद! आहा! केवली के समीप। परमात्मा (पद) प्राप्त करने के निकट आ गये। आहा...हा...! अतीन्द्रिय भाव के प्रचुर स्वसंवेदन में आये। आहा...हा...! भाई! उसे मुनि कहते हैं। प्रचुर परम आनन्द में आ गये। आहा...हा...! धन्य अवतार! धन्य जीवन!! आहा...हा...! उन मुनि को कौन न माने? परन्तु यह दशावन्त हो, उसे मुनि कहते हैं। आहा...हा...! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं उस एक को ही ग्रहण कर। छोड़ दे-देव-गुरु और शास्त्र का लक्ष्य भी छोड़ दे। आहा...हा...! सच्चे देव, सच्चे गुरु और सच्चे शास्त्र का लक्ष्य छोड़ दे, क्योंकि वहाँ आत्मा नहीं है। भगवान तो अन्तर में बिराजता है, प्रभु! आहा...हा...! कैसे जँचे? एक, दो बीड़ी ठीक से पीवे तो भाईसाहब को दस्त उतरे, ऐसे तो अपलक्षण, उसे लौकी

की शाक ठीक से सीझ कर आयी हो और उड़द की दाल बराबर ठीक से सीझी न हो तो– यह किसने बनायी ? ऐसे को आत्मा कहना। आहा...हा... ! बापू ! तेरा नाथ अन्दर विराजता है, उसमें यह खदबदाहट नहीं होती। आहा...हा... ! अन्दर में दया, दान के विकल्प से भी वह प्राप्त नहीं होता। आहा...हा... ! अरे ! पर्याय के लक्ष्य से भी, वहाँ आत्मा नहीं, इसलिए प्राप्त नहीं होता। आहा...हा... ! भाई ! प्रभु तो पर्याय के समीप में अनन्त आनन्द से बिराजमान परमात्मस्वरूप है। आहा...हा... ! वहाँ जा, परिणाम को वहाँ ले जा। आहा...हा... ! भाषा सादी है, परन्तु भाव तो बापू ! आहा...हा... ! ज्ञानानन्दस्वभावी हूँ, ऐसी भाषा बोले, लो, उससे वहाँ ज्ञानानन्दस्वभावी हो गया अन्दर ?

मुमुक्षु : .... परन्तु बिराजमान तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह बिराजमान कब ? उस पर दृष्टि जाये तब। आहा...हा... !

मुमुक्षु : भावना तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भावना है, वह विकल्प है। कमाने और कमाने की कितनी भावना है, वह सब पापभाव है। यह पुण्यभाव, विकल्प है। ज्ञानानन्दस्वभाव इसमें नहीं आया। आहा...हा... ! ज्ञानानन्दस्वभाव तो पर्याय को अन्दर में ले जाते हैं, परिणाम को अन्दर में ले जाते हैं, तब ज्ञानानन्दस्वभाव अनुभव में आता है, तब ज्ञानानन्दस्वभाव मैं हूँ– ऐसा माना। आहा...हा... !

मुमुक्षु : .... संस्कार पड़ते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : संस्कार भी इस ओर (लक्ष्य) ले जाये, तब संस्कार पड़े न ! बाहर के परिणाम से मुझे लाभ होगा.. ज्ञानानन्दस्वभावी हूँ, ज्ञानानन्दस्वभावी हूँ, लाख, करोड़ अनन्त बार करे नहीं, वह तो भाषा है। उनका बनाया हुआ है न ? वह तो विकल्प है, राग है। आहा...हा... !

मुमुक्षु : वाणी में तो विवेक होना चाहिए न !

पूज्य गुरुदेवश्री : वाणी जड़ है, उसमें विवेक क्या ? आत्मा में राग से भिन्न होने का विवेक होना चाहिए, वह विवेक है। आहा...हा... ! श्लोक भी आता है, 'धर्म हाटे न बेचाय, धर्म दुकाने न बेचाये' आता है न कुछ ? 'धर्म विवेके नीपजै जो करिये तो थाय' यह गुजराती में आता है। 'धर्म विवेक से उत्पन्न होता है'। आहा... हा... ! विवेक का

अर्थ-राग से भिन्न करके भेदज्ञान करे, तब ज्ञात होता है। आहा...हा...! बहुत शब्द...

उपयोग बाहर जाये परन्तु चैतन्य का अवलम्बन उसे अन्तर में ही लाता है। आहा...हा...! दृष्टि द्रव्य पर पड़ी... आहा...हा...! और अन्दर भगवान पूर्णानन्द में जम जाने के पश्चात् परिणाम बाहर जाते हैं, अस्थिरता है, तथापि अन्दर में लाता है, वह दृष्टि अन्दर में लाती है। आहा...हा...! मैं तो यह हूँ, परिणाम बाहर जायें परन्तु मैं तो यह हूँ। आहा...हा...! **बारम्बार.. बारम्बार ऐसा करते... करते... करते... (स्वरूप में लीनता जमते... जमते)...** आहा...हा...! यहाँ तो अन्तिम बात कहते हैं। **क्षपकश्रेणी प्रगट होकर...** आहा...हा...! पहले परिणाम अन्तरात्मा को पकड़ ले, तब सम्यग्दर्शन होता है। पश्चात् उग्र आश्रय लेता है तो चारित्र होता है। पश्चात् उग्र आश्रय में श्रेणी धारण करता है... आहा...हा...! श्रेणी का अर्थ—वीतरागी पर्याय की धारा। आहा...हा...! स्वभाव -सन्मुख की / आश्रय की / एकाग्रता की धारा, उसका नाम श्रेणी। आठवाँ गुणस्थान। आहा...हा...!

क्षपकश्रेणी प्रगट होकर पूर्ण हो जाता है। आहा...हा...! लो, पूर्णचन्दजी! यह यहाँ पूर्ण हो जाता है। आहा...हा...! पूर्ण चन्द्र प्रभु अन्दर है। पूर्ण शीतल... शीतल... शीतल... शीतल। अविकारी अकषाय चारित्रगुण, हों! त्रिकाली स्वभाव अकषाय शान्त... शान्त... शान्त... शान्त, जिसमें हलचल नहीं। राग की तो हलचल नहीं, परन्तु जिसमें पर्याय की हलचल नहीं। आहा..हा...! ऐसे भगवान आत्मा पर दृष्टि लगाना; परिणाम अन्यत्र जाते हैं, उन्हें यहाँ ले जाता है। आहा...हा...! ऐसा करते... करते... करते... करते शुद्धता की धारावाही श्रेणी चढ़ता है। जैसे नसैनी से ऊपर चढ़ते हैं, वैसे निर्मल धारा से अन्दर में ऊपर चढ़ते हैं। आहा...हा...! जो **पूर्ण हो जाता है।** आहा...हा...! केवलज्ञान प्रगट होता है परन्तु अन्दर में जाकर एकाग्र हो तो। किसी व्यवहार की क्रिया करे, इसलिए आगे बढ़ गया (ऐसा नहीं है)। आहा...हा...!

मुमुक्षु : शुद्ध व्यवहार आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पर्याय व्यवहार है। समझ में आया? आहा...हा...! सबेरे आया था, पर्याय भी व्यवहार है। दर्शन, ज्ञान, चारित्र का सेवन, वह पर्याय का व्यवहार है। निर्मल पर्याय, वह व्यवहार है। जिसे सबेरे मेचक कहा था। आहा...हा...! त्रिकाली अकेले ज्ञायक का सेवन करना, वह निश्चय परन्तु तीन प्रकार की पर्याय का सेवन करना, वह मेचक अर्थात् व्यवहार अर्थात् अनेक है। आहा...हा...! ऐसा मार्ग है।

जैसे जिससे प्राप्ति होती है, उस उपाय की खबर नहीं और दूसरे उपाय से मिलेगा, मिलेगा–ऐसा सन्तोष रखकर चला जाता है, भव चला जायेगा, प्रभु! ऐसा भव। चौरासी के अवतार में भटकते–भटकते मुश्किल से मनुष्यपना मिला, उसमें भगवन्त त्रिलोकनाथ की वाणी मिली। आहा...हा...! परन्तु वाणी में कहा, उस आत्मा को नहीं जाना।

मृत्यु के काल में भगवान... भगवान... भगवान का स्मरण करे तो वह राग है। पीड़ा का पार न हो, शरीर दबता हो, कफ चढ़े, डबल निमोनिया (हुआ हो), ऊँचे ले तो त्रास, नीचे ले तो त्रास, अन्दर त्रास... आहा...हा...! उस समय में भगवान–भगवान करे परन्तु वह तो राग है।

मुमुक्षु : लड़के को बुलावे, उसकी अपेक्षा तो ठीक न?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी ठीक नहीं। लड़के भी सब ठीक हैं, सब स्वार्थ के सगे हैं। समझ में आया? मैंने पाप किया और डेढ़ करोड़ पैसे (रुपये) एकत्रित किये, अब मैं देह छोड़ता हूँ तो मेरे पीछे पाँच लाख, दस लाख निकालना; मरते हुए उसकी जीभ रुक जाती हो, अं... अं... दस लाख... दस लाख... (करता हो)। बापू! अभी पैसे को याद मत करो। वह जानता है कि ये सब यहाँ देखने आये हैं और ये दस लाख कहते हैं, हमें क्या करना? पीछे चार लड़के हैं, करोड़ रुपये हैं तो एक–एक को पच्चीस लाख मुश्किल से आते हैं। करोड़ आना चाहिए, उसके बदले पच्चीस लाख आते हैं, और यह दस लाख देने को कहते हैं। बापू! अभी पैसा याद मत करो। उसकी भाषा, बोली बन्द हो गयी हो। ...भाई! आहा...हा...! ये सब स्वार्थ के पुतले हैं, बापू! आहा...हा...! यह लुटेरों की टोली है। नियमसार में लिखा है। यह स्त्री–पुत्र, लड़का–लड़की, जमाई – यह सब लुटेरों की टोली तुझे लुटती है, लुटती है, तुझे ठगती है। नियमसार में है। आहा...हा...! हमें पत्नी के रूप में क्यों रखा? विवाह में हाथ पकड़ा था न? बराबर पालन करना पड़ेगा। हम तुम्हारे पुत्र हैं, तुम्हारे पास लक्ष्मी आयी है, खर्च देना पड़ेगा। आहा..हा..!

एक लड़के ने उसके पिता को लिखा है, पैसेवाला था। उस समय दस लाख थे। पूना में पढ़ता था, छह लड़के। पूना में पढ़ता था तो उसका वेतन, जो चाहिए वह पुस्तक सबके पैसे देते थे और तदुपरान्त पाँच–पच्चीस रुपये देते होंगे। लड़के ने लिखा बापूजी! हम लक्ष्मीवाले के यहाँ आये हैं और लाखों रुपये अपने यहाँ आते हैं... उस समय तो रोकड़

थी, आते हैं तो पैसे बाहर रखे। हजार, दो हजार के, सौ दो सौ की थैली (थी) और घर के लोग उठाकर अन्दर डालते एकान्त में। क्योंकि अन्य न देखे कि कहाँ रखे हैं ? अन्दर भँवरें में तिजोरी हो। एक महीने के दो सौ रुपये। उस समय की बात है, हों! (संवत्) १९७३-७४ उस समय की बात है।

लड़का था, बेचारा छह महीने का विवाहित, गुजर गया। गृहस्थ का लड़का था। वैशाख में विवाह हुआ, आसोज में गुजर गया। उसके पिताजी को लिखा, दो सौ रुपये पुस्तक, पन्ने, महीने का खर्च जो अध्यापक को देते हैं, वह क्या कहलाता है ? फीस, तदुपरान्त मेरे दो सौ रुपये चाहिए। जेब के खर्च के दो सौ चाहिए। तीन (भाई) शामिल थे। काका को ठीक न लगे तो तुम्हारे नाम में लिखना और देना। ऐसा विचारा, बहुत युवा शरीर था। रायचन्द नाम था। 'दामनगर', दामोदर सेठ का लड़का। भाई! यह विवाह किया। दो-दो महीने, बारह-बारह महीने तो विवाह की तैयारी, उस समय, हों! (संवत्) १९७४ की बात है। आहाहा! यह छह महीने का विवाह, आसोज में देह छूट गयी। आहा! उस समय बेचारे सेठ को त्रास... त्रास। क्योंकि उसकी माँ थी-लींबड़ी के दीवान की बेटी थी। यहाँ गुजर गया, इसलिए लंग्यु आयी। लंग्यु समझते हो ? कुटानेवाली (मरण के समय रुदन करानेवाली) बाईयाँ होती हैं। दीवान की लड़की थी। काणे आवे न ? काणे। काणे को क्या कहते हैं ? आवे न ? तब रुलानेवाली बाहर से लेकर आवे। रुलानेवाली रुलावे तब ऐसी रुलावे... आहा...हा... ! चिल्लाहट-चिल्लाहट करे। लोग... सेठ कहते अरे रे! गुजर गया तब हमें दुःख नहीं हुआ, ऐसा आज हुआ। गाँव में हो...हा! सेठिया, नगर सेठ और उनकी बहू दीवान की लड़की और उसका लड़का छह महीने में मर गया। चिल्लाहट... चिल्लाहट... त्रास... त्रास... परन्तु इसे भान नहीं कि यह त्रास क्या है ?

परचीज़ तो जानेवाली जानी ही है। वह संयोगी चीज़ कहाँ स्वभाव में रहे ? अरे! राग भी आता है और जाता है तो राग को भी पकड़ रखे तो नहीं रह सकता। शुभराग है तो रखो, बराबर। वह भी नहीं रह सकता। आहा...हा... ! संयोगीभाव, संयोगी चीज़ का तो नाश होगा ही होगा। आहा..हा... ! यहाँ तो संयोगी विकार का शुभभाव, वह संयोग है तो दूसरे समय में विनाश होगा ही। तू रख नहीं सकेगा। आहा...हा... !

भगवान आत्मा में बारम्बार अन्तर्दृष्टि करने से, परिणाम को अन्तर में झुकाने से पूर्ण

ज्ञान हो जाता है। **जो वस्तु है, उसी पर अपनी दृष्टि की डोर बाँध,...** जो भगवान पूर्णानन्द पदार्थ द्रव्य है, उस पर ही तेरी दृष्टि की डोर... डोर वहाँ लगा दे। आहा...हा...! **पर्याय के अवलम्बन से कुछ नहीं होगा।** देखो भाषा! राग से तो नहीं परन्तु पर्याय के अवलम्बन से भी तेरा कल्याण नहीं होगा। आहा...हा...! राग, दया, दान और व्यवहाररत्नत्रय से तो तेरा कल्याण नहीं होगा परन्तु एक समय की पर्याय के आश्रय से तेरा कल्याण नहीं होगा। आहा...हा...! महेन्द्रभाई! ऐसा है। लोग पढ़ेंगे, विचारेंगे, तब अभी धीरे-धीरे छह महीने, बारह महीने में (ख्याल आयेगा कि) यह क्या पुस्तक है? समझ में आया? अकेला मक्खन है। आहा...हा...!

कहते हैं, **पर्याय के अवलम्बन से कुछ नहीं होगा।** कुछ नहीं होगा; होगा संसार, धर्म नहीं होगा - ऐसा कहते हैं। एक समय की पर्याय है, उसके अवलम्बन से आत्मा का कल्याण नहीं होगा। होगा, संसार होगा। आहा...हा...! जिसमें भगवान पूर्णानन्द का नाथ नहीं है - ऐसे अंश का आश्रय करने से कल्याण, सम्यग्दर्शन आदि तीन काल में नहीं होगा। आहा...हा...! यह २०८ (बोल पूरा) हुआ।

जैसे राजा अपने महल में दूर-दूर अन्तःपुर में रहता है, वैसे ही चैतन्य राजा दूर-दूर चैतन्य के महल में ही निवास करता है; वहाँ जा॥२०९॥

२०९, **जैसे राजा अपने महल में दूर-दूर अन्तःपुर में रहता है,...** चक्रवर्ती होता है न? उसके पाँच महल होते हैं। इन्द्रों ने बनाये हुए पाँच-पाँच (महल होते हैं)। छियानवें हजार तो स्त्रियाँ थीं। ऐसा महल बनावे, ऐसा बनावे कि बीच में सब आ सके। चारों ओर कमरे, प्रत्येक में रानी और अन्दर आने का एक बड़ी जगह, सब वहाँ से आ सकें। छियानवें हजार स्त्रियों के कमरे, बीच में चक्रवर्ती का। इन्द्रों ने बनाया हुआ। आहा..हा..!

मुमुक्षु : संख्या में तो अन्तर नहीं होता न?

पूज्य गुरुदेवश्री : छियानवें हजार रानियाँ। महापुण्यवन्त है। उन छियानवे हजार में, एक रानी की तो एक हजार देव सेवा करते हैं। चक्रवर्ती की रानी। आहा...हा...! एक रानी की एक हजार देव सेवा करें-ऐसी तो एक मुख्य रानी (पटरानी) आहा...हा...! महारानियाँ, वे तेज की पुंज, यह सब धूल का ढगला, अन्दर कमरे...

एक बार देखा था। जूनागढ़ जाते हुए एक दरबार के मकान में उतरे थे। जूनागढ़ जाते हुए एक मकान है, बीच में खाली था और चारों ओर कमरे। वहाँ सब रानियों को चारों ओर रहने का और बीच में राजा रहे। रानी को बुलाना हो तो दरवाजे से आये। जूनागढ़ के पहले एक गाँव आता है, वहाँ गये थे, पता है। सब नाम कहीं याद रहते हैं? 'वादिराज' का नाम भूल गये थे। दोपहर को याद करते थे। वादिराज को कोढ़ था।

किसी ने ऐसा लिखा है कि तुम एकान्त करते हो और मुनि को नहीं मानते तो फूलचन्दजी को रोग हो गया और हुकमचन्दजी को रोग हो गया। अरे...! प्रभु! क्या कहता है तू? सनतकुमार चक्रवर्ती, आहा...हा...! जिन्हें सात सौ वर्ष गलित कोढ़ (रहा) मुनि थे, छह खण्ड का राज छोड़कर, छियानवें हजार रानियों को छोड़कर आत्मा के ध्यान में मस्त हो गये। शरीर में गलित कोढ़ था। गलित समझे? सात सौ वर्ष। यह तो असाता का निमित्त है और परमाणु की उपादान पर्याय की ऐसी योग्यता है। असाता के उदय से वह नहीं होता, वह पर्याय तो पर है। आहा...हा...! असाता के उदय के रजकण भिन्न हैं और रोग की अवस्था के रजकण भिन्न हैं तो इस असाता के उदय ने रोग के रजकण बनाये - ऐसा नहीं है। आहा...हा...!

वादिराज को कोढ़ था न? मुनि-भावलिंगी सन्त को कोढ़ (कुष्ठ रोग)। एक बार उनका एक श्रावक था, वह राजा के पास गया। राजा ने कहा - तेरे गुरु को तो कोढ़ है। श्रावक ने कहा - महाराज! मेरे गुरु को कोढ़ नहीं है, ऐसा कहा। वादिराज के पास आया। प्रभु! मैंने तो ऐसा कहा है, आप को कोढ़ नहीं है। (मुनिराज कहते हैं) शान्त रहो, भाई! सब ठीक होगा। प्रभु की ऐसी भक्ति की। प्रभु! जहाँ जिस गाँव की माता के गर्भ में आते हो, उस गाँव में स्वर्ण का नगर और रत्न के कंगूरे हो जाते हैं। प्रभु! मैं आपको हृदय में स्थापित करता हूँ और यह शरीर रोगी रहे (-ऐसा नहीं होता)। आहा..हा..! यह तो सहज होनेवाला था इसलिए, हों!

मुमुक्षु : भक्ति के माहात्म्य से कोढ़ दूर हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न, निमित्त से कथन है। अन्दर भक्ति (करते हैं) हे नाथ! इस श्रावक ने राजा को कहा - कोढ़ नहीं; तो प्रभु! जैनधर्म की लज्जा होगी, नाथ! मुझे तो है वह है। यह भक्ति शुरु की... करते... करते... करते... प्रभु! आप माता के गर्भ

में आते हो तो... आहा..हा.. ! रत्न के कंगूरे और स्वर्ण के गढ़ बन जाते हैं, यह तो निमित्त है। तो प्रभु ! मैंने आपको हृदय में स्थापित किया है। आहा...हा... ! अनुभव तो है, सच्चे मुनि तो हैं, आहा...हा... ! शुभराग में भक्ति का ऐसा उछाला आया और बना ऐसा (कि) कोढ़ मिट गया, परन्तु राजा मिथ्या न पड़े, इसलिए अंगुली में थोड़ा रखा। श्रावक ने कहा, यह ठीक है, था तो कोढ़। राजा ने कहा वह ठीक था परन्तु हमारा कोढ़ अब भगवान की भक्ति से मिट गया। आहा...हा... !

प्रभु ! आप जब गर्भ में आते हो, इन्द्र आकर माता का गर्भ स्वच्छ करते हैं, नाथ ! और आप मेरे हृदय में आओ और यह रोग रहे, यह कैसे बने ? आहा...हा... ! यह तो निमित्त से कथन है।

सीताजी को लो ! सीताजी को आरोप लगाया – तुम रावण के घर गयी थीं ? लोग क्या कहते हैं ? आहा...हा... ! अग्नि की ज्वाला में गिरो। अग्नि हुई। हे अग्नि ! मैंने दूसरे पति का (पुरुष का) विकल्प किया हो तो जला देना और यदि विकल्प नहीं किया हो तो ध्यान रखना, तू शरीर तो नहीं जला सके। तीन लोक के नाथ की इज्जत जायेगी। प्रभु ! आहा...हा... ! यह तो भक्तों (बातें हैं)। आहा...हा... ! समझते हैं कि इस राग से (नहीं होता)। एकदम पानी हो गया, अग्नि का पानी हो गया। यह कहीं भक्ति के विकल्प से नहीं हुआ, यह तो होनेवाला ही था। आहा...हा... ! उनकी ब्रह्मचर्य पर्याय की परीक्षा हो गयी। आहा...हा... ! मैंने पर पुरुष का मन से भी विकल्प किया हो तो शरीर को भस्म कर डालना। याद रख ! अग्नि तो जड़ है, उसे कहते हैं ! और यदि मुझे ब्रह्मचर्य में पति के अतिरिक्त दूसरा विकल्प न हुआ हो तो जलाना नहीं, हाँ ! याद रखना। हमें दूसरा विकल्प नहीं है। आहा... ! पानी हो गया। तब रामचन्द्रजी कहते हैं अरे ! सीता ! मेरे अन्तःपुर में आओ, तुम्हें पटरानी बनाता हूँ। बस है, प्रभु ! संसार कैसा है, यह ख्याल आ गया है। अब हम पटरानी रूप से महल में नहीं आयेंगे। मैं तो साध्वी, आर्यिका होऊँगी। आहा...हा... ! अन्तर में जहाँ भक्ति का रस आया तो बाहर में (अग्नि का) पानी हो गया। आहा...हा... ! यह निमित्त का कथन है, हों ! वहाँ निमित्त से हुआ नहीं है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह निमित्त से कहा जाता है। वरना उस समय पुण्य का उदय

ऐसा आया और ऐसा हो गया। समझ में आया? इसी प्रकार प्रभु तीन लोक का नाथ अन्दर पर्याय का आश्रय ले तो आत्मा प्राप्त नहीं होता। हम तो तीन लोक के नाथ परमात्मा का आश्रय लेकर अनुभव करते हैं। आहा...हा...! समझ में आया? ऐसी बातें हैं, बापू! आहा...हा...! चौदह ब्रह्माण्ड।

बहिन में (बहिनश्री के वचनामृत में) आया न? पहले आया है, कितना? तीन लोक को बदलना पड़े। बोल २१, देखो! २१, आहा...हा...! **चैतन्य को चैतन्य में से परिणमित भावना अर्थात् राग-द्वेष में से नहीं उदित हुई भावना..** आहा..हा..! **ऐसी यथार्थ भावना हो तो वह भावना फलती ही है।** आहा..हा..! **यदि नहीं फले तो जगत को—चौदह ब्रह्माण्ड को शून्य होना पड़े....** आहा...हा...! अन्तर की भावना से आत्मा का अनुभव न हो, यदि न फले तो जगत को-चौदह ब्रह्माण्ड को शून्य होना पड़े। **अथवा तो इस द्रव्य का नाश हो जाए।** द्रव्य की पर्याय में प्राप्ति होती ही है-ऐसा कहते हैं। पर्याय की भावना अन्तर्मुख हुई तो द्रव्य की प्राप्ति होती ही है, न हो तो द्रव्य नहीं है-ऐसा हो जाता है, परन्तु कभी ऐसा बनता नहीं। समझ में आया? देखा? २१।

चैतन्य के परिणाम के साथ कुदरत बँधी हुई है... आहा...हा...! **ऐसा ही वस्तु का स्वभाव है। यह अनन्त तीर्थङ्करों की कही हुई बात है।** आहा...हा...! अन्तर में राग -द्वेषरहित परिणाम हुए और आत्मा की प्राप्ति न हो - ऐसा तीन काल में नहीं बनता। आहा..हा..! शुद्धोपयोग हो और आत्मा प्राप्त न हो, आहा...हा...! ऐसा नहीं होता, भाई! जगत का-कुदरत का यह स्वभाव है। तुझे शुद्धोपयोग में नहीं आया जाता और तुझे शुभ से लाभ हो - ऐसा नहीं होता। आहा...हा...! इस ओर की शुद्ध भावना हुई और शुद्ध भावना से आत्मा अनुभव में न आवे - ऐसा तीन काल में नहीं होता। आहा...हा...! समझ में आया? शुभ से प्राप्त नहीं होता, शुभ से प्राप्त नहीं होता, पर्याय के लक्ष्य से प्राप्त नहीं होता परन्तु शुद्ध उपयोग में अन्दर में जाये और प्राप्त न हो (-ऐसा नहीं होता)। आहा..हा..! देखो, ये वचन! आहा...हा...! **यह अनन्त तीर्थङ्करों की कही हुई बात है।** अर्थात् वस्तु का स्वभाव ऐसा है। आहा! अन्तर में भावना जगे और आत्मा न मिले - ऐसा तीन काल में नहीं होता। स्थूल उपयोग से प्राप्त करना चाहे तो स्थूल उपयोग में प्राप्त होता ही नहीं। आहा...हा...! सूक्ष्म उपयोग से प्राप्त नहीं हो - ऐसा तीन काल में नहीं बनता। आहा..हा...! ऐसी बातें हैं, प्रभु!

अपने यहाँ चलता है। **राजा अपने महल में दूर-दूर अन्तःपुर में रहता है,...** छियानवें हजार रानियों के मकान से अन्दर में भिन्न-दूर रहता है। **वैसे ही चैतन्य राजा दूर-दूर चैतन्य के महल में ही निवास करता है;...** आहा...हा...! वह पर्याय में नहीं आता, राग में तो आता ही नहीं। भगवान, पर्याय से दूर... दूर... द्रव्यस्वभाव में निवास करता है। आहा...हा...! समझ में आया? भगवान आत्मा, पर्याय से अन्दर दूर-दूर महल में निवास करता है। जैसे राजा का महल अन्दर दूर-दूर है, वैसे भगवान का महल पर्याय से दूर रहने का है, पर्याय में उसका वास नहीं, अन्दर दूर-दूर उसका वास है। आहा! अरे! ऐसी भाषा है। पाटनीजी! ऐसी बात है, भगवान! लोग कहें, चाहे जो कहो, भाई! तेरे हित की बात है, प्रभु! तेरी निन्दा नहीं। आहा...हा...! ऐसा अनुभव न हो और मुनिपना आ जाये (-ऐसा नहीं होता)। भाई! मार्ग अलग है, भाई! आहा...हा...!

वे तत्त्वार्थराजवार्तिक का दृष्टान्त देते हैं, द्रव्यलिंगी को भी सात प्रकृति का क्षय है। किसकी बात है वहाँ? द्रव्यलिंग धारण किया (उससे पहले) समकित था और द्रव्यलिंग धारण किया, परन्तु भावलिंग अन्दर नहीं आया, पुरुषार्थ कम है अथवा द्रव्यलिंग धारण किया और पश्चात् अन्दर में अन्तर्दृष्टि की, वह द्रव्यलिंग के कारण नहीं। तत्त्वार्थ राजवार्तिक में लेख है। एक बार कहा था, द्रव्यलिंगी के तीन प्रकार (हैं) मिथ्यादृष्टि भी द्रव्यलिंगी (होता है) भलीभाँति क्रिया (पालन करता हो)। सम्यग्दर्शन हुआ है परन्तु मुनिपने की क्रिया का व्यवहार यथावत् है, परन्तु अन्दर मुनिपना नहीं किन्तु अन्दर सम्यक् अनुभव हुआ है, उसकी बात है। द्रव्यलिंग धारण किया, इसलिए वहाँ समकित है - ऐसा नहीं है। आहा...हा...! किसी को अन्दर पंचम गुणस्थान हो, बाहर में छठे गुणस्थान की अट्ठाईस मूलगुण की मुनि की चुस्त क्रिया हो, उसे भी द्रव्यलिंग कहा जाता है। आहा...! एक बार कहा था। तत्त्वार्थ राजवार्तिक में है।

(वे ऐसा कहते हैं), देखो! द्रव्यलिंगी को भी सात प्रकृति का क्षय है - परन्तु किसकी बात है? तेरा यह द्रव्यलिंग धारण किया, इसलिए है? ऐसा है? अन्तर में स्वभाव का आश्रय लेकर अनुभव करते हैं, तब सात प्रकृति का नाश होता है। मुनिपना, बाहर की क्रिया अट्ठाईस मूलगुण बराबर है, परन्तु अन्दर में छठवाँ-सातवाँ गुणस्थान नहीं, उसमें चौथा होता है। अन्दर में स्वभाव का आश्रय लेकर, भावना करके अन्दर में सम्यग्दर्शन प्रगट किया है, बाहर में अट्ठाईस मूलगुण की क्रिया है, उसे भी द्रव्यलिंगी कहते हैं।

आहा...हा... ! क्योंकि जैसी बाह्यक्रिया है, वैसा भाव अन्तर में छठा गुणस्थान का नहीं, इस अपेक्षा से द्रव्यलिंग कहते हैं। परन्तु द्रव्यलिंग धारण किया, इसलिए सात प्रकृति का क्षय हो गया (-ऐसा नहीं कहना है)। अब, ऐसे तो अनन्त बार द्रव्यलिंग धारण किये। ऐसा द्रव्यलिंग तो अभी है भी नहीं।

'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो
पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो॥'

आहा..! अन्तर में परिणाम, पर्याय से हटाकर अन्तरस्वभाव का महल भगवान जहाँ चैतन्य महल में बिराजता है, जागृत स्वभाव में भगवान आत्मा है। आहा...हा... ! राग अन्धा है, उसमें भगवान नहीं; पर्याय एक अंश है, उसमें भगवान नहीं। आहा... ! समझ में आया ? त्रिकाल ज्ञायक जागृत स्वभाव में भगवान आत्मा है। आहा...हा... !

चैतन्य के महल में ही निवास करता है; वहाँ जा। आहा...हा... ! भाषा कितनी सादी ! कहो, समझ में आया ? कितने ही तर्क करते हैं कि बाह्य को तुम पूजनीय कहते हो तो फिर पद्मावती को क्यों नहीं पूजना ? अरे ! प्रभु ! तू यह क्या करता है ? ऐसा कहते हैं। अरे... प्रभु ! तू क्या कहता है ? भाई ! पद्मावती तो कोई व्यन्तरदेवी है, वह तो वहाँ उत्पन्न होनेवाली मिथ्यादृष्टि है, वहाँ समकित तो है नहीं। आहा...हा... ! पद्मावती और क्या कहलाते हैं सब ? क्षेत्रपाल। यह तेरी मान्यता तो मिथ्यात्व है। भाई ! आहा...हा... !

छहढाला में आता है, नहीं ? सम्यग्दृष्टि को संयम का अंश नहीं है। आता है 'सुरनाथ जजै हैं' अरे ! प्रभु ! क्या कहते हैं ? भाई ! जहाँ अन्तर की भावना से भगवान का अनुभव हुआ, वह बापू ! वह कोई अलौकिक बातें हैं। आहा...हा... ! उसकी महिमा कहते हैं कि संयम का लेश न हो, ऐसा कहा न ? लेश संयम नहीं होता। चारित्र-मोहवश लेश न संयम पै सुरनाथ जजै हैं। आहा...हा... ! भाई ! तुझे सम्यग्दर्शन की महिमा की खबर नहीं है। आहा...हा... ! भगवान सम्यग्दर्शन में आया, उसका सामर्थ्य आया, हों ! भगवान तो द्रव्य है; द्रव्य कहीं पर्याय में नहीं आता परन्तु द्रव्य की जितनी सामर्थ्य है, ऐसा ज्ञान की पर्याय में आ गया। आहा...हा... ! और जहाँ सम्यग्ज्ञान हुआ, उसमें क्या नहीं ज्ञात हुआ ? सम्पूर्ण जैन शासन (ज्ञात हो गया)। बन्ध, मोक्ष, पर्याय केवल (ज्ञान) सब ज्ञात हो गया। समझ में आया ? भाई ! मार्ग ऐसा है, प्रभु ! आहा ! २०९ (बोल पूरा) हुआ।

तू स्वयं मार्ग जानता नहीं है और जाननेवाले को साथ नहीं रखेगा, तो तू एक डग भी कैसे भरेगा ? तू स्वयं तो अन्धा है, और यदि गुरुवाणी एवं श्रुत का अवलम्बन नहीं रखेगा, तो अन्तर में जो साधक का मार्ग है, वह तुझे कैसे सूझेगा ? सम्यक्त्व कैसे होगा ? साधकपना कैसे आयगा ? केवलज्ञान कैसे प्रगट होगा ?

अनंत काल का अनजाना मार्ग, गुरुवाणी एवं आगम के बिना ज्ञात नहीं होता। सच्चा निर्णय तो स्वयं ही करना है परन्तु वह गुरुवाणी एवं आगम के अवलम्बन से होता है। सच्चे निर्णय के बिना—सच्चे ज्ञान के बिना—सच्चा ध्यान नहीं हो सकता। इसलिये तू श्रुत के अवलम्बन को, श्रुत के चिन्तवन को साथ ही रखना।

श्रवणयोग हो तो तत्कालबोधक गुरुवाणी में और स्वाध्याययोग हो तो नित्यबोधक ऐसे आगम में प्रवर्तन रखना। इनके अतिरिक्त काल में भी गुरुवाणी एवं आगम द्वारा बतलाये गये भगवान आत्मा के विचार और मन्थन रखना ॥२१०॥

२१०, देव-गुरु और शास्त्र का इसे अवलम्बन लेना चाहिए (ऐसा कहते हैं)। **तू स्वयं मार्ग जानता नहीं है और जाननेवाले को साथ नहीं रखेगा,...** देव और आगम के निमित्त को तू साथ नहीं रखेगा **तो तू एक डग भी कैसे भरेगा ?** अन्तर में किस प्रकार जायेगा ? तू जानता नहीं और जाननेवाले का संग करता नहीं। आहा...हा...! समझ में आया ? देव और आगम निमित्त हैं या नहीं ? देव, आगम बताते हैं या नहीं कि चीज़ यह है। तू जानता नहीं और जाननेवाले का संग करता नहीं। व्यवहार की बात की न! समझ में आया ? तो अन्तर में एक कदम भी नहीं जा सकेगा। आहा...हा...!

तू स्वयं तो अन्धा है, और यदि गुरुवाणी एवं श्रुत का अवलम्बन नहीं रखेगा, तो अन्तर में जो साधक का मार्ग है, वह तुझे कैसे सूझेगा ? भगवान परमागम से कहते हैं कि तू तीन लोक का नाथ अन्दर है, तेरी वस्तु पर्याय में नहीं आती - ऐसा आगम कहते हैं। ऐसे आगम का अभ्यास न हो, आगम का साथ नहीं हो तो तू किस प्रकार जान सकेगा ? समझ में आया ? आहा...हा...! चौथी गाथा में कहा है न ? स्वयं तो जानता नहीं परन्तु

जाननेवाले की सेवा नहीं की। समयसार चौथी गाथा में है। 'श्रुत, परिचित, अनुभूता'-वहाँ अन्त में है। तू तो जानता नहीं, अनजान है और जाननेवाले की सेवा नहीं की। सेवा नहीं की इसका अर्थ (यह है कि) जाननेवाले क्या कहते हैं, उसे तू मानता नहीं। आहा...हा...! समझ में आया? है न चौथी गाथा में? समयसार।

और पाँचवीं गाथा में भी कुन्दकुन्दाचार्य ने ऐसा कहा—मैं निज वैभव से समयसार कहूँगा परन्तु मेरा निज वैभव किस प्रकार प्रगट हुआ है? आहा...हा...! आगम की सेवा। परमागम और गुरु ने हमें शुद्ध आत्मा का उपदेश दिया और कुशास्त्र की कुयुक्ति से हमें निकाल दिया कि यह मार्ग नहीं, यह नहीं। इस प्रकार हमने यथार्थ युक्ति से कुमार्ग का निषेध कर दिया। हमें आगम से सुमार्ग मिला। निमित्त से कथन है न? और हमारा अन्तर वैभव निज अनुभव से प्रगट हुआ है। जिसकी आनन्द की मोहरछाप है, अतीन्द्रिय की मोहरछाप है, ऐसा हमारा निज वैभव हमें प्रगट हुआ है। आहा...हा...! मैं मेरे निज वैभव से यह समयसार कहूँगा। आहा...हा...! तुम्हें सुनाना है तो कहूँगा - ऐसा नहीं। श्वेताम्बर में ऐसा आता है—स्वयमेव भगवान जो कहते हैं, वह सुना है वह कहते हैं। यहाँ ऐसा नहीं है। आचारांग का पहला सूत्र है न? उसमें ऐसा आया है। पहला सूत्र... हे आयुष्यमन! मैंने भगवान से यह सुना है, वह मैं तुम्हें कहूँगा। यहाँ कहते हैं-नहीं; मैं तो मेरे अनुभव से कहूँगा। देखो, यह शैली! आहा...हा...! समझ में आया? आहा...हा...!

तू स्वयं तो अन्धा है, और यदि गुरुवाणी एवं श्रुत का अवलम्बन नहीं रखेगा, तो अन्तर में जो साधक का मार्ग है, वह तुझे कैसे सूझेगा? सम्यक्त्व कैसे होगा? साधकपना कैसे आयगा? केवलज्ञान कैसे प्रगट होगा? आहा..हा..!

आहा..हा..! **अनंत काल का अनजाना मार्ग गुरुवाणी एवं आगम के बिना ज्ञात नहीं होता।** जानने में वे निमित्त हैं। आहा...हा...! समझ में आया? भले वे निमित्त हैं। उस समय का ज्ञान है, वह परलक्ष्यी है परन्तु वह लक्ष्य ऐसा बताता है, शास्त्रमार्ग दिखाकर अलग रहते हैं। आहा...हा...! बता देते हैं कि यह मार्ग है। जाना तो इसे है न? आहा...हा...!

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल -१, रविवार, दिनाङ्क ०३-०९-१९७८
वचनामृत-२१०-२११ प्रवचन-८४

२१० बोल है, बीच में से है। **सच्चे निर्णय के बिना—सच्चे ज्ञान के बिना—सच्चा ध्यान नहीं हो सकता।** लोग ऐसा कहते हैं न? ध्यान क्या करना? ॐ ॐ ॐ करना, पंच परमेष्ठी का करना? अभी तो ऐसा आया है, ध्यान का अभ्यास करना परन्तु ध्यान किसका? वस्तुस्वरूप क्या है? सर्वज्ञ ने कहा, वह आत्मा कैसा है? उसमें गुण क्या है? उसकी पर्याय में क्या है? विकारी क्या है? अविकारी क्या है? उसमें निमित्तवस्तु क्या है? ऐसा यथार्थ ज्ञान हुए बिना, पहले यथार्थ ज्ञान हुए बिना स्वरूप की ओर दृष्टि नहीं जाती। आहा..हा..! ज्ञान में विपरीतता हो, वहाँ तक स्वरूप दृष्टि नहीं होती। राग से कुछ भी लाभ होगा, निमित्त से लाभ होगा—ऐसा ज्ञान है, वह ज्ञान अन्तर में नहीं जा सकेगा। आहा..हा..! और फिर ध्यान किसका? यह कहते हैं।

सच्चे निर्णय बिना... सच्चा-सत्य भगवान निर्विकल्प परमात्मस्वरूप का अनुभव में निर्णय हुए बिना, आहा..हा..! और उसके ज्ञान बिना। निर्विकल्प अभेद चीज़ है—ऐसी एकरूप चीज़ क्या है, उसके ज्ञान बिना **सच्चा ध्यान नहीं हो सकता।** कल्पित माने कि मैं एकाग्र होता हूँ परन्तु सच्चा आत्मा अखण्ड परिपूर्ण शुद्धचैतन्य का ज्ञान और निर्णय किये बिना अन्तर में ध्यान नहीं हो सकता। समझ में आया?

अष्टपाहुड़ में ऐसा आया है कि सम्यग्दर्शन के लिये ध्यान करना परन्तु उसका अर्थ यह है कि सम्यग्दृष्टि, सम्यग्दर्शन के लिये अथवा सम्यग्दर्शन पाने को... **'दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा'** ऐसा आता है न? अन्तर ज्ञायक चैतन्य कैसा है? उसका वास्तविक यथार्थ ज्ञान, आगम और गुरु से सुनकर हुआ नहीं तो वह अन्तर में जाकर ध्यान नहीं कर सकेगा।

मुमुक्षु : ज्ञान इतना अधिक पराधीन।

पूज्य गुरुदेवश्री : पराधीन नहीं। उस ज्ञान में यथार्थता नहीं, वह पराधीन। आहा..हा..! ज्ञान में वास्तविक यथार्थ तत्त्व क्या है? द्रव्य क्या? गुण क्या? पर्याय क्या? विकार क्या? ऐसे वास्तविक व्यवहार ज्ञान के निर्णय बिना अन्तर में जा नहीं सकेगा। आहा..हा..!

मुमुक्षु : यह तो व्यवहार की महिमा आयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार का परलक्षी ज्ञान। फिर सच्चा ज्ञान कहते हैं। अन्तर में ध्यान किसे होता है? यहाँ तो यह बात चलती है कि अन्तर में ज्ञायकस्वरूप का दृष्टि में निर्णय हुआ हो, वह अन्तर में ध्यान कर सकता है। समझ में आया? नहीं तो राग और द्वेष के, पुण्य और पाप का ध्यान, वह तो आर्तध्यान, रौद्रध्यान है। आहा..हा..! सूक्ष्म बात है, भाई! आहा..हा..!

मुमुक्षु : सम्यग्दृष्टि ही ध्यान कर सकता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दृष्टि ही ध्यान यथार्थ कर सकता है, क्योंकि दृष्टि में अखण्ड चीज़ क्या है-ऐसा दृष्टि में / श्रद्धा में आया है और ज्ञान की पर्याय में भी यह परिपूर्ण है - ऐसा ज्ञान हुआ है। आहा...हा...!

रात्रि को प्रश्न हुआ था न? कि जैसे लोकालोक को जानना, वह पर है तो असद्भूत व्यवहार है, तो ज्ञान, स्वद्रव्य को जाने उस पर्याय से द्रव्य भिन्न है। ऐसा नहीं है। अपने स्वरूप का ज्ञान, अपना ज्ञान करना है, ज्ञान, ज्ञान को करे और ज्ञान के अतिरिक्त अन्य गुणों का (ज्ञान) करे, वह निश्चय ज्ञान है। समझ में आया?

नियमसार में है न? नियमसार में ऐसा है कि आत्मा अपने ज्ञान का ज्ञान करे और ज्ञान दूसरे गुण का और पर्याय का ज्ञान करे, वह निश्चय है। समझ में आया? अपना ज्ञान करे और ज्ञान दूसरे गुण का ज्ञान करे, वह व्यवहार है - ऐसा नहीं है। सूक्ष्म बात, बापू! आहा...हा...! भगवान निर्विकल्प चीज़ अन्दर है। जिसमें पर्याय का भेद नहीं, आहा...हा...! ऐसी चीज़ का ज्ञान करना और वह ज्ञान, ज्ञान को जाने तथा वह ज्ञान अनन्त गुण और अपनी पर्याय को जाने, वह निश्चय है। पर्याय से पर्याय भिन्न है, पर्याय से द्रव्य भिन्न है। इसलिए उस द्रव्य और पर्याय का ज्ञान व्यवहार है - ऐसा नहीं है। अरे! ऐसी बात है। समझ में आया?

रात्रि को प्रश्न हुआ था न ? कि यह आत्मा शरीर-वाणी-मन, लोक-अलोक को जानता है—ऐसा कहना वह तो असद्भूत व्यवहार है। पर में तन्मय नहीं होता, इसलिए वह असद्भूत है। इसी प्रकार ज्ञान की पर्याय द्रव्य में जाती नहीं तथा ज्ञान की पर्याय दूसरों को जानती है, उसमें जाती नहीं तो वह ज्ञान व्यवहार कहलाये या नहीं ? ऐसा नहीं है। आहा..हा..! सूक्ष्म बात, बापू!

इसने अनन्त काल में निर्विकल्प चीज़ अन्दर है, परमात्मस्वरूप है... आहा..हा..! 'अप्पा सो परमप्पा' आत्मा, वह परमात्मा ही है। आत्मा और सर्वज्ञ की पर्याय में कुछ अन्तर नहीं है। मात्र उनकी पर्याय प्रगट है, यहाँ पर्याय प्रगट नहीं है परन्तु वस्तु तो समान है। आहा..हा..! ऐसा जब अन्तर में चीज़ का ज्ञान हुआ नहीं, निर्णय हुआ नहीं तो वह चीज़ दृष्टि में आयी नहीं और आये बिना ध्यान किसका करना ? आहा..हा..!

मुमुक्षु : ध्यान में ही सम्यग्दर्शन होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्यान वह अलग चीज़ है। ध्यान पहले कहा न ? कि अन्तर में लक्ष्य करना, वह भी एक ध्यान है। सम्यग्दर्शन ध्यान में प्राप्त होता है, इसका अर्थ क्या ? द्रव्यसंग्रह की सैंतालीस गाथा कही न ? '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा**' निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र अन्तर-ध्यान में प्राप्त होते हैं। बाहर में कोई विकल्प है और पढ़ता है और सुनता है और ध्यान, सम्यक्त्व हो जाये - ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : सभी सूक्ष्म नय ध्यान में ही प्रगटते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर में ही प्रगटते हैं। अभी एक प्रश्न आया था। चलते-चलते अनुभूति होती है या नहीं ? अरे! भगवान! मुनि की दशा अलग है। आहा...हा...! उन्हें तो चलते और बोलते हुए भी सातवाँ गुणस्थान आ जाता है। अन्दर ऐसे थोड़ी देर जम जाते हैं। वैसे सम्यग्दर्शन और अनुभूति, वह चलने की क्रिया में होती है - ऐसा नहीं बन सकता। आहा...हा...! वहाँ तो विकल्प है, ऐसे चलूँ, ऐसे चलूँ। अन्दर में-ध्यान में जाता है, तब सम्यग्दर्शन पाता है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : लोक का ध्यान और इसमें बहुत अन्तर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लोकों में ध्यान कहाँ ? अज्ञानी का है। यहाँ ॐ का, ॐ का

ध्यान करे, पंच परमेष्ठी का ध्यान करे, वह तो राग है। भगवान अरिहन्त परमात्मा का ध्यान करे तो भी वे परद्रव्य है, वह तो विकल्प-राग है, वह ध्यान है ही नहीं। सूक्ष्म बात, भगवान! क्या हो? आहा..हा..! अन्दर प्रभु निर्विकल्प परमात्मस्वरूप है—ऐसा अनुभव में सच्चा निर्णय हुए बिना अन्तर में जाना, ध्यान करना, यह नहीं हो सकता। आहा..हा..!

मुमुक्षु : अनुभव भी ध्यान में होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न पहले? यह तो कहा-ध्यान में सम्यग्दर्शन पाता है और पश्चात् भी ध्यान करता है, सम्यग्दृष्टि को वस्तु ध्यान में आयी है, दृष्टि (हुई है) तो वह ध्यान कर सकता है। आहा..! बहुत कठिन बातें।

अन्तर में आत्मा है। पर्याय में भी नहीं, राग में नहीं। आहा..हा..! बाहर की सब बात भूल जाना और अपनी पर्याय को अन्तर में ले जाना। ध्यान में आ जाना तो यह ध्यान है।

मुमुक्षु : एक समय की पर्याय में अनुभव हुआ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह समय की पर्याय भले हो, उपयोग भले असंख्य समय का हो, परन्तु एक समय में ही समयान्तर हो जाता है। सम्यग्दर्शन एक समय में हो जाता है। आहा...हा...! समझ में आया? जो दृष्टि राग और पर्याय पर है, वह दृष्टि स्वभाव पर ले जाना, वह एक समय में (होता) है। आहा...हा...! '**रभसा**' आया या नहीं? '**रभसा**' एक जगह शीघ्र कहा है और एक जगह एक समय कहा है। यह तो ठीक। आहा..हा..!

पूर्णानन्द प्रभु निर्विकल्प चैतन्य के ध्यान में सम्यग्दर्शन होता है। आहा..हा..! वाँचन और श्रवण करते-करते समकित होता है - ऐसा नहीं है। आहा..हा..! समझ में आया? मुनि की दशा अलग है। मुनि तो, भाई! उनका तो क्या कहना? अभी तो कहीं (भावलिंग दिखता नहीं)। आहा..हा..! जिनके आत्मा में अन्तर में अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. गुण में दृष्टि घुस गयी और लीनता.. आहा..हा..! प्रचुर स्वसंवेदन भाव साधु का चिह्न है। आहा..हा..! राग, विकल्प और पंचमहाव्रत या नग्नपना, वह कोई साधुपना नहीं है। इसमें एक शब्द आज पढ़ने में आ गया। यह भाई ने पुस्तक लिखी है न? साधु बनना सरल है परन्तु साधु होना कठिन है। क्या कहा? साधु होना अर्थात् यह वस्त्र बदलकर नग्न हो गये। भाषा ऐसी प्रयोग की है। साधु बनना सरल, साधु अर्थात् ये क्रियाकाण्ड और व्रत ले लिये, परन्तु साधु होना.. अरे! बापू! साधु होना क्या वस्तु है! आहा..हा..! अरे..रे! इस

काल में सम्यग्दर्शन दुर्लभ हो गया तो साधुपना तो भाई! अलौकिक चीज़ है। आहा..हा..! जिन्हें अतीन्द्रिय आनन्द में रमते हुए बाहर विकल्प आवे तो बोझ लगता है। पंच महाव्रत के विकल्प आवें तो बोझा लगता है। आहा..हा..! शिष्य को सिखलाने का विकल्प आवे, वह बोझा लगता है। आहा..हा..! वाँचन का विकल्प उठे, वह बोझा लगता है। प्रभु! बोझा समझ में आया? क्या कहते हैं हिन्दी में? भार। निर्विकल्प आनन्द के समक्ष विकल्प तो बोझा-भार लगता है। आहा..हा..!

जब निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान-चारित्र भी अन्तरध्यान में प्राप्त होते हैं आहा..हा..! और ध्यान के पीछे, ध्यान जो स्वरूप ख्याल में आया कि यह वस्तु आनन्द है, उसमें ध्यान लगाना, वह विशेष स्थिरता चारित्र आदि है। आहा..हा..! स्वरूप के भान बिना ध्यान किसका करे? जो चीज़ है, वह तो ख्याल में आयी नहीं। ख्याल में आयी नहीं, उसका ध्यान करना है, वह किस प्रकार करे? आहा..हा..! कोई चीज़ ख्याल में आयी हो और फिर टकटकी लगाकर ध्यान करे तो हो सकता है। आहा..हा..! सूक्ष्म बात है, भाई! आहा..हा..!

सम्यग्दृष्टि को भी, क्षायिक समकित हो तो भी स्त्री के विषय की वासना का विकल्प आता है। आहा..हा..! परन्तु बोझा, दुःख लगता है। यह छूटता नहीं जानकर दुःख लगता है। अरे रे! अपने आनन्दस्वभाव का जहाँ सम्यग्दर्शन में स्वाद आया तो ख्याल आया कि जो नमूना-आनन्द का अंश निकला तो पूरा भगवान आत्मा आनन्दमय है। ऐसी बात है, प्रभु! क्या हो? अरे रे! यह रुई की गाँठें होती हैं न? उसमें से नमूना निकालते हैं, नमूने से पूरी गाँठ ऐसी है (ऐसा ज्ञान में आ जाता है)। इसी प्रकार भगवान अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान की गाँठ है, भाई! पुँज है। उसमें, सम्यग्दर्शन में एकाग्र होता है तो उसमें से आनन्द का, शान्ति का, स्वच्छता का नमूना आता है। उस नमूने द्वारा प्रतीति करता है कि पूरा भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दमय है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : यह तो अनुमान ज्ञान है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अनुमान नहीं, इसमें प्रतीति आयी है। आयी है, (उसमें) प्रत्यक्ष हुआ। आहा..हा..! ज्ञान की, सम्यग्ज्ञान की पर्याय में प्रत्यक्ष हुआ। आहा..हा..! है भले ज्ञान परोक्ष, परन्तु वह ज्ञान स्वयं को जानने में प्रत्यक्ष हो गया। आहा..हा..!

मुमुक्षु : अनुभव प्रत्यक्ष।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनुभव प्रत्यक्ष, परन्तु उस ज्ञान को ही वहाँ प्रत्यक्ष कहा **पच्चक्खोअणुहवा जह्मा** आता है न? मोक्षमार्गप्रकाशक में, अष्टसहस्री में। आहा! उसकी अपेक्षा से अनुभव में ज्ञान को प्रत्यक्ष कहा जाता है। वास्तव में परोक्ष है परन्तु वह दृष्टान्त नहीं दिया? कि इस व्यक्ति को मैंने प्रत्यक्ष देखा। वह तो प्रत्यक्ष नहीं देखा, वह तो परोक्ष रीति से देखा है। इसी प्रकार अन्तर भगवान आत्मा में ज्ञान की पर्याय में मैंने प्रत्यक्ष देखा। भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप है, पूर्ण शान्तस्वरूप है, पूर्ण स्वच्छता-वीतरागस्वरूप है - ऐसा ज्ञान हो गया। आहा..हा..! काम बहुत कठिन, बापू!

जिससे जन्म-मरण का अन्त आवे, भव का अन्त आ जाये.. आहा..हा..! चौरासी का अवतार कर-करके अनन्त काल सिर पर बीता है। आहा..हा..! कहीं इसे सुख नहीं। सुख है तो (सुख) सागर प्रभु आत्मा में है। आहा..हा..! वहाँ तो गया नहीं, उसका अनुभव तो किया नहीं और बाहर में झपट्टे मारता है। स्त्री में, पैसे में, इज्जत में और धूल में... आहा..हा..!

जिसे यह आनन्द का नाथ प्रभु ज्ञान में पूर्ण स्वरूप ज्ञात नहीं हुआ, वह अन्तर में ध्यान नहीं कर सकता। आहा..हा..! अभी यह चला है। ध्यान करो, ध्यान करो.. परन्तु अभी वस्तु का पता नहीं। सर्वज्ञ परमेश्वर परमागम में जो आत्मा कहा, वह कौन है? और ज्ञानी गुरु भी आत्मा किसे कहते हैं, यह तो पता नहीं और ध्यान लगाओ... दो-चार (घण्टे।) क्या ध्यान लगावे?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब बहुत आता है। पढ़ते हैं, समाचार-पत्र में बहुत आता है। ध्यान में ऐसा कि... क्या कहलाता है वह? शिक्षण-शिविर किया न? वैसे ध्यान का शिविर निकाला है।

मुमुक्षु : शून्य हो जाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : शून्य हो जाओ, यह तो रजनीश (कहता है)। उसका तो कुछ ठिकाना नहीं। रजनीश का कुछ ठिकाना नहीं। आहा..! वह तो भोगानन्द में ब्रह्मानन्द है -(ऐसा) कहता है। अरे! प्रभु! यह तू क्या करता है? विषय में मजा लगता है, वह भोग का आनन्द, वह ब्रह्म का आनन्द है... अरे भगवान! तूने क्या किया? प्रभु! आहा..हा..!

भोग के आनन्द में इसे मजा लगता है न? परन्तु वह तो दुःख है। भोग के विषय की वासना, वह तो दुःख है, प्रभु! आहा..हा..! इसे उसमें आनन्द कहाँ से आया? खूब रोओ, रोओ, फिर शून्य हो जाओ... खूब दाँत निकालो... क्या है यह? गप्प मार्ग चलाया है। वरना था तो जैन, रजनीश तारणपंथी में जन्मा था। जबलपुर में प्रोफेसर था, परन्तु भ्रष्ट हो गया था। आहा..हा..!

मुमुक्षु : अब भगवान हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान तो दुनिया भगवानस्वरूप है तो भगवान मान ले, माने उससे कहीं भगवान हो गया? आहा..हा..! भगवान अर्थात् भग अर्थात् आनन्द और शान्तिरूपी लक्ष्मी का वान। आनन्दलक्ष्मीरूपी स्वरूप, ऐसा आत्मा भगवान है। आहा..हा..! क्या हो?

यहाँ यह कहते हैं, **सच्चे निर्णय के बिना—सच्चे ज्ञान के बिना—सच्चा ध्यान नहीं हो सकता। इसलिये तू श्रुत के अवलम्बन को,...** भगवान परमागम जो शास्त्र है.. आहा..हा..! वह श्रुत भी परमागम है। दिगम्बर शास्त्र जो सन्तों ने कहे, वे श्रुत, वह परमागम। आहा..हा..! ऐसे परमागमरूपी **श्रुत के अवलम्बन को, श्रुत के चिन्तवन को साथ ही रखना।** वास्तविक परमागम कैसे होते हैं, उसका ज्ञान साथ रखना तो अन्दर ध्यान हो सकेगा। आहा..हा..!

अरे रे! यह तो भव के अन्त की बातें हैं, प्रभु! आहा..! जिसमें भव और भव का भाव अन्दर में है ही नहीं। जिसे आत्मा कहते हैं, निर्विकल्प भगवान (कहते हैं)। उसमें भव और भव के भाव का अभाव है। आहा..हा..! ऐसे द्रव्य का निर्णय करके ध्यान करना, वह भव के अन्त का ध्यान है और मोक्ष की पर्याय नजदीक करता है, वह ध्यान है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : एक खूँटे बँधाओ न?

पूज्य गुरुदेवश्री : खूँटे बँधाया। वास्तविक गुरु कहे और वास्तविक सत्शास्त्र कहे, उसका तो इसे श्रवण, मनन लक्ष्य होना चाहिए। क्योंकि इसके बिना वस्तुस्थिति लक्ष्य में नहीं आयेगी। आहा! शास्त्र और गुरुवाणी ऐसा कहे कि इस आत्मा का सार वीतरागता है। चारों अनुयोग की वाणी में वीतरागता सार है, तो वीतरागता यह बताती है

कि वीतरागता होती किस प्रकार है ? जो वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा है, उसके आश्रय से वीतरागता होती है। गुरु ऐसा कहते हैं कि मेरे आश्रय से भी वीतरागता नहीं होती।

मुमुक्षु : गुरु तो ऐसा कहे कि....

पूज्य गुरुदेवश्री : शिष्य कैसा और गुरु कैसा ? आहा..हा..! स्वयं अपना गुरु और स्वयं अपना देव। आहा..! सर्वज्ञदेव परमगुरु-श्रीमद् में ऐसे शब्द आते हैं। सर्वज्ञदेव सर्वज्ञस्वभाव, सर्वज्ञदेव वे परमगुरु हैं। आहा..हा..! अपना सर्वज्ञस्वभाव, ज्ञ स्वभाव, सर्वज्ञस्वभाव पूर्ण स्वभाव—ऐसा भगवान का स्वभाव, वह सर्वज्ञदेव है, प्रभु! आहा..! अल्पज्ञपना भी जिसके स्वरूप में नहीं। राग तो नहीं, पुण्य, दया, दान के विकल्प तो नहीं... आहा..हा..! पूर्ण स्वरूप का अर्थ—यह सर्वज्ञस्वरूपी पूर्ण है। सर्वज्ञस्वभाव, सर्वदर्शी स्वभाव, प्रत्येक गुण पूर्ण स्वभावी भगवान आत्मा है - ऐसा सच्चा निर्णय-ज्ञान बिना अन्तर में उसका ध्यान (नहीं हो सकता)। चीज़ लक्ष्य में ही आयी नहीं, उसका ध्यान किस प्रकार करना ? जो चीज़ लक्ष्य में आयी नहीं, ज्ञान में ख्याल आया नहीं, उस चीज़ का ध्यान किस प्रकार करना ? आहा..हा..!

श्रवणयोग हो तो तत्कालबोधक गुरुवाणी... प्रवचनसार में आता है न ? तीसरे अधिकार में। गुरुवाणी, वह तत्कालबोधक है। तत्काल निमित्त, एकदम... यह ऐसा कहते हैं। गुरु ऐसा कहते हैं कि तू निर्विकल्प वस्तु है। आहा..हा..! समझ में आया ? गुरुवाणी, तत्कालबोधक है और स्वाध्याययोग, नित्यबोधक है। क्या कहते हैं ? नित्यबोधक स्वाध्याय तो हमेशा करता है तो नित्यबोधक है और गुरु तो कहे तब तत्कालबोधक है। आहा..हा..! समझ में आया ? गुरु और आगम। उसमें गुरु तत्कालबोधक है। जिस समय कहे उतना, और स्वाध्याय नित्य बोधक है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : गुरुवाणी....

पूज्य गुरुदेवश्री : उस समय स्वाध्याय। स्व... स्व का अध्याय करना। स्वाध्याय में यह आता है कि तेरे स्व का अध्याय, ध्यान करना। आहा..हा..!

नित्यबोधक ऐसे आगम में प्रवर्तन रखना। इनके अतिरिक्त काल में भी गुरुवाणी एवं आगम द्वारा बतलाये गये भगवान आत्मा के... आहा..हा..! **विचार और मन्थन रखना।** आहा..हा..! मैं ज्ञायक हूँ, शुद्ध हूँ, परिपूर्ण परमात्मा हूँ।

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन में....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी ही बात है न यहाँ! सम्यग्दर्शन के बिना ध्यान और मन्थन यथार्थ नहीं होता। किसका मन्थन करे? दही है तो मक्खन करे। पानी में मन्थन करे? इसी प्रकार अपना स्वरूप शुद्ध आनन्दकन्द प्रभु, आहा..हा..! दृष्टि में और ज्ञान में आया है, उसका रटन और मन्थन करे। आहा..हा..! सूक्ष्म बात, भाई! क्या हो? अभी तो लोगों ने तो... आहा..हा..!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह करे तब कहलाता है। 'दिशा दिखाकर शास्त्र अलग रहे।' दिशा दिखावे, बाकी शास्त्र अलग रहे। गुरुवाणी भी दिशा दिखाकर अलग रहे। बहुत सूक्ष्म बात, भाई! जहाँ तक गुरु की ओर लक्ष्य है, वहाँ तक अन्तर में जा नहीं सकता। आहा..हा..!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो व्यवहार कहने में आता है। निश्चय तो... आहा..हा..! तू ही देवाधिदेव, तू ही गुरु। आहा..हा..! तेरी पर्याय में तूने तुझसे समझ लिया, इसलिए तू तेरा गुरु है। गुरु ने समझाया परन्तु तूने स्वयं को समझाया न, आहा..हा..! मैं तो पूर्ण आनन्द हूँ, शुद्ध हूँ - ऐसा तूने तुझे समझाया, इसलिए तू तेरा गुरु है। आहा..हा..! बात बहुत कठिन। सम्यग्दर्शन और उसका विषय, अभी तो बहुत फेरफार हो गया है। आहा..हा..! बस, मन्दिर बनाओ, गजरथ निकालो, लाखों-करोड़ों खर्च करो, उसमें तुम्हें धर्मधुरन्धर की पदवी दे देवे। अरे! प्रभु! वहाँ कहाँ धर्म था? वह क्रिया तो पर से हुई, तेरा भाव होवे तो परलक्ष्यी शुभभाव है, वह पुण्य है, धर्म नहीं। आहा..हा..! धर्म नहीं, इसलिए नहीं आता -ऐसा नहीं; आता है, स्वरूप में स्थिर न हो सके, तब अशुभभाव से बचने को ज्ञानी को भी शुभभाव तो आता है परन्तु वह हेय और दुःखरूप है। आहा..हा..! हेय और दुःखरूप है, तो क्यों आता है? परन्तु आये बिना रहता नहीं। आहा..हा..! समझ में आया? आहा..हा..!

कौन सा गाँव गाँधी का? नौहाखली। नौहाखली में मुसलमान का जोर था। माता, बहिन और पुत्र, भाई, दोनों को नग्न करके ऐसे जोड़ दे, अर..र..र! प्रभु-प्रभु! पाताल है तो मैं समा जाऊँ, यह क्या? आहा..हा..! फिर गाँधीजी गये थे। नौहाखली.. नौहाखली।

इसी प्रकार परमात्मस्वरूप का जिसे भान और ज्ञान हुआ, उसे अशुभराग आता है तो महादुःख लगता है। आहा..हा..! शुभभाव आता है तो भी बोझा लगता है न, प्रभु! आहा..हा..! समझ में आया? **गुरुवाणी एवं आगम द्वारा बतलाये गये भगवान आत्मा के विचार और मन्थन रखना।** आहा..हा..!

वस्तु के स्वरूप को सब पहलुओं से ज्ञान में जानकर अभेदज्ञान प्रगट कर। अन्तर में समाये सो समाये; अनन्त-अनन्त काल तक अनन्त-अनन्त समाधिसुख में लीन हुए। 'रे ज्ञानगुण से रहित बहुजन पद नहीं यह पा सके।' इसलिए तू उस ज्ञानपद को प्राप्त कर। उस अपूर्व पद की खबर बिना कल्पित ध्यान करे, परन्तु चैतन्यदेव का स्वरूप क्या है, ऐसे रत्नराशि समान उसके अनन्त गुणों का स्वामी कैसा है—वह जाने बिना ध्यान कैसा? जिसका ध्यान करना है उस वस्तु को पहिचाने बिना, उसे ग्रहण किये बिना, ध्यान किसके आश्रय से होगा? एकाग्रता कहाँ होगी?२११॥

२११, **वस्तु के स्वरूप को सब पहलुओं से ज्ञान में जानकर...** वस्तु का स्वरूप चारों ओर से जैसा है-द्रव्य-गुण-पर्याय, विकार आदि सब पहलुओं से जानकर **अभेदज्ञान प्रगट कर।** आहा..हा..! जाने तो सब, द्रव्य-गुण-पर्याय आदि। नियमसार में आवश्यक अधिकार में तो कहा है कि द्रव्य-गुण-पर्याय के विचार चलते हैं, वे भी आवश्यक नहीं, अनावश्यक हैं। आहा..हा..! मूल श्लोक है। तीन बोल आये न? अभेद नहीं आया। यह द्रव्य है, यह गुण है और यह पर्याय है। इन तीनों के विचार / विकल्प अनावश्यक है, आवश्यक नहीं। आहा..हा..! ऐसा मार्ग बहुत कठिन! फिर सोनगढ़वालों के ऊपर डालते हैं परन्तु मार्ग यह है। अनन्त ज्ञानी कहते हैं, अनन्त आगम कहता है। आहा..हा..! समझ में आया?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसे स्वयं को यह बात जँचती नहीं। इसे अन्तर की बात सूझती नहीं, फिर बाहर से इससे होता है, इससे होता है। इससे नहीं होता? होता है, ऐसा करके बेचारा माने, क्या करे?

वस्तु के स्वरूप को सब पहलुओं से... सब प्रकार से **ज्ञान में जानकर अभेदज्ञान**

प्रगट कर। फिर अखण्डानन्द प्रभु में दृष्टि लगाकर अभेदज्ञान प्रगट कर। आहा..हा..! **अन्तर में समाये सो समाये;...** आहा..हा..! श्रीमद् में यह वचन है। समझे वे समा गये। समझे कि मैं आत्मा आनन्द हूँ, वे समा गये, अन्दर में गये। आहा..हा..! समझ में आया? **अन्तर में समाये सो समाये;...** आहा..हा..! निर्विकल्प भगवान में गये तो अन्दर गये सो गये। आहा..हा..! ऐसा है।

अनन्त-अनन्त काल तक अनन्त-अनन्त समाधिसुख में लीन हुए। आहा..हा..! मुनिराज अनन्त समाधि-आनन्द में लीन हो गये। आहा..हा..! निर्विकल्प चीज़ के आनन्द में जहाँ लीन हुए और उसमें लीन हुए सो हुए। आहा..हा..! **लीन हुए। 'रे ज्ञानगुण से रहित बहुजन पद नहीं यह पा सके।'** समयसार की गाथा है। ज्ञानगुण से रहित। सम्यग्ज्ञान, जो आत्मा का अनुभव, ऐसे ज्ञानगुण बिना बहुत लोग... चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, शास्त्र-वाँचन लाख-करोड़-अरब करे। आहा..हा..! परन्तु उससे पद नहीं पा सके। भगवान आनन्दस्वरूप पद है, उसे नहीं पा सके। आहा..हा..!

मुमुक्षु :.....

पूज्य गुरुदेवश्री : अखण्ड आनन्द त्रिकाल। यह ज्ञान नहीं। आहा..हा..! शास्त्रज्ञान और यह ज्ञान हुआ, वह तो शब्द ज्ञान हुआ। आहा..हा..! और इसे अभिमान हो जाये कि मुझे बहुत ज्ञान है। लोग भी मुझे ज्ञान है - ऐसा कहते हैं। भ्रम में पड़ गया। आहा..हा..! मार्ग तो ऐसा है, प्रभु! आहा..हा..! अन्तरस्वरूप अभेद अखण्डानन्द प्रभु में एकाकार होकर ज्ञान प्रगट कर। बाकी दूसरे प्रकार से ज्ञान-आत्मा कभी प्रगट नहीं होता। आहा..हा..! यह शास्त्र की पूजा करे, वाणी की पूजा करे, वह सब विकल्प है। समझ में आया? जैसे भगवान की पूजा, वह विकल्प है, मूर्ति; वैसे शास्त्र की पूजा वह भी विकल्प है - एक ही प्रकार है। आहा..हा..! समझ में आया? आहा..हा..! वहाँ ढोल बजाये.. ओहो! क्या हुआ, परन्तु उसमें है क्या? वह तो राग है।

मुमुक्षु : बजाना या नहीं बजाना?

पूज्य गुरुदेवश्री : बजा कौन सकता है? राग आता है। वह बजाने की क्रिया तो (उससे-पुद्गल से होती है)। एक बार वहाँ निकला था न? मल्हारगढ़। वहाँ वे ताबूतवाले मुसलमान कूटते हैं, वैसे कूटा करते हैं। ऐसे हाथ में वस्त्र (हो) क्या है परन्तु? मल्हारगढ़

गये तो सबको सिखाया हो न कि प्रतिमा नहीं, प्रतिमा नहीं। प्रतिमा के विरोध का गायन गाने लगे। मूल व्यक्ति को एकान्त दृष्टि हो जाती है न! आहा..हा..! अनादि से प्रतिमा की पूजा ज्ञानी को भी होती है, वह नयी नहीं, परन्तु वह व्यवहार है। राग आता है, परन्तु वह राग है, वह व्यवहार है, पुण्यबन्ध का कारण है; धर्म नहीं। समझ में आया? तो कहे-नहीं, तो आता किसलिए है? आहा..हा..!

बनारसीदास तो कहते हैं, जिसके हृदय में आगम के शब्द पड़े, उसे आगम में कही, वैसी प्रतिमा के पूजा का भाव आता है। आहा..हा..! और प्रतिमा की पूजा का भाव न आवे तथा ऐसा ही माने कि हम तो निश्चयवाले हैं - ऐसी बात नहीं है, वस्तु का स्वरूप ऐसा नहीं है। आहा..हा..! समझ में आया? ऐसी बातें हैं।

मुमुक्षु : वाणी में आवे...

पूज्य गुरुदेवश्री : वाणी, वह जड़ है। वाणी कोई आत्मा नहीं कर सकता, वह तो जड़ है। आहा..हा..! वाणी के परमाणु हैं, वे तो जड़-अजीव हैं। वह भाषा की पर्याय अजीव से होती है, आत्मा से नहीं। आहा..हा..! आत्मा से तो नहीं परन्तु होंठ से नहीं। आहा..हा..! भाषा जड़ की पर्याय भाषावर्गणा में से होती है। यह तो औदारिक वर्गणा (शरीर) है, आहारवर्गणा है। गजब बात है, भाई! यह होंठ ऐसा होता है तो भाषा निकलती है - ऐसा नहीं है। भाषा की पर्याय को होंठ है न होंठ? वे छूते नहीं, आत्मा होंठ को छूता नहीं, होंठ भाषा को छूते नहीं। अरे रे! ऐसी बातें। ऐसी भाषा का अभिमान हो जाये कि मुझे कितना आता है! आहा..! लोगों का रंजन कर दे तो प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये, खुशी-खुशी हो जाये। अज्ञानी की भ्रमणा है। आहा..हा..! भाई! काम अनन्त काल से किया नहीं, वह काम बहुत कठिन, प्रभु! क्या हो? आहा..हा..!

कितने ही तिर्यंच क्षायिक समकिती होते हैं अर्थात् पहले तिर्यंच की आयुष्य बँध गयी हो, फिर क्षायिक समकित हो तो जुगलिया में जाते हैं। जुगलिया अर्थात् अकर्मभूमि। अकर्मभूमि में (भोगभूमि में) तिर्यंच होते हैं। वहाँ से स्वर्ग में जाकर, मनुष्य होकर मोक्ष में जायेंगे। आहा..हा..! उसे तो समझाने की भाषा नहीं। उसका क्या काम है? समझाने की भाषा आवे या न आवे, वह तो जड़ की दशा है। समझ में आया? बुलन्दशहरवाले पण्डित कैलाशचन्दजी गये लगते हैं, नहीं? दोपहर को आते नहीं, वे पहले बोलते-धीरे बोलो,

जोर से बोलो - ऐसा कहते हैं। खबर है। कौन धीरे बोले? कौन जोर से बोले? प्रभु! विकल्प आता है। आत्मा से कहीं जोर से बोला जाता है? आहा..हा..! काम ऐसा है, बापू! भगवान अरूपी ज्ञानघन, भाषा रूपी-मूर्त। आहा..हा..! राग का कर्ता हो तो भी मिथ्यादृष्टि है। आहा..हा..! भक्ति का राग आया, पूजा का आया, दया का (आया) परन्तु कर्ता हो जाये कि मैं उसका कर्ता हूँ तो मिथ्यादृष्टि हो जाता है तो जड़ की पर्याय का कर्ता हो तो... भाई! समझ में आया?

समाधिशतक में पूज्यपादस्वामी तो यहाँ तक कहते हैं—उपदेश का विकल्प आता है, प्रभु! वह उन्माद है, उन्माद। आहा..हा..! मेरा नाथ आनन्द का कन्द प्रभु, उसमें से यह विकल्प उठता है, वह उन्माद है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : वह चारित्र का उन्माद है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह चारित्र के उन्माद की बात है। दर्शन की कहाँ? वे तो समकिती ज्ञानी हैं, मुनि हैं, तीन कषाय का अभाव और अन्दर भावलिंग-प्रचुर स्वसंवेदन प्रगट हुआ है, वे मुनि ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! अरे! उपदेश देने का विकल्प आया, वह चारित्रमोह का उन्माद है। आहा..! भाई! वीतरागमार्ग कोई अलौकिक है। आहा! ऐसा तो शास्त्र के... 'सब शास्त्रन के नय धारि हिये, मत मण्डन खण्डन भेद लिये, वह साधन बार अनन्त किये, तदपि कछु हाथ हजू न परयौ'। साधन नहीं, आहा..हा..! भगवान अरूपी आनन्दघन नाथ, आहा..हा..! उसने शास्त्र जाने, धारे, करोड़ों-अरबों श्लोक ग्यारह अंग... ओहो..हो..! और अस्ति-नास्ति करके सिद्ध किया कि यह ऐसा है और यह ऐसा नहीं। खण्डन-मण्डन किया, प्रभु! वह तो विकल्प है, नाथ! आहा..हा..! उसमें आत्मा नहीं। आहा..हा..! योगीन्द्रदेव सन्त (पूज्यपादस्वामी) भावलिंगी मुनि-जिन्हें परमेश्वर पद प्रगट हुआ है, वे ऐसा कहते हैं कि हमें उपदेश का विकल्प आता है, वह उन्माद है, आहा..हा..! खेद है, उन्माद है। आहा..हा..! और उसमें उत्साह करना... बापू! कठिन काम, भाई! आहा..हा..!

अन्तर में समाये सो समाये; अनन्त-अनन्त काल तक अनन्त-अनन्त समाधिसुख में लीन हुए। 'रे ज्ञानगुण से रहित बहुजन पद नहीं यह पा सके।' इसलिए तू उस ज्ञानपद को प्राप्त कर। ज्ञानपद जो भगवान, उसे प्राप्त कर। शास्त्र का ज्ञान नहीं। आहा..हा..! ज्ञानपद, प्रभु ज्ञायकस्वरूप पद, उस पद को प्राप्त करे, वह ज्ञान है। आहा..हा..! **उस अपूर्व**

पद की खबर बिना... आहा..हा..! ज्ञानघन भगवान आत्मा की खबर बिना **कल्पित ध्यान करे,...** आँख बन्द करके ऐसे (बैठे), उसमें क्या हुआ? यह तो मोक्षमार्गप्रकाशक में नहीं आया? बाह्य छह तप और अभ्यन्तर छह तप, ये सब विकल्प हैं। वहाँ आया है, भाई! अभी आया था न, अभ्यन्तर तप-प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य ये सब (विकल्प हैं)। विनय करो, वैयावृत्य करो... आहा..हा..! ध्यान करूँ, मैं ऐसे ध्यान करूँ, यह सब विकल्प हैं। आहा..हा..! मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है, बारह प्रकार के तप है, वे विकल्प हैं। आहा..हा..! अन्तर में आनन्दस्वरूप में प्रतपन इति तप-रागरहित होकर वीतराग पर्याय से तपे, उसका नाम तप है। आहा..हा..! ऐसा लोगों को कठिन पड़ता है।

जबलपुरवाले गोकुलचन्द है न! वे ऐसा लिखते हैं कि देखो! एकान्त था तो फूलचन्दजी को भी रोगी कर डाला और हुकमचन्दजी को भी रोगी कर डाला। अरे! भगवान! तू यह क्या करता है? शरीर की अवस्था होनेवाली है, वह होगी ही होगी। सनतकुमार मुनि हुए, आहा..हा..! आनन्द की लहर में झूलते थे, उन्हें गलित कोढ़ हुआ। वह तो देह की स्थिति, प्रभु! जो होनी है, वह तो क्रमबद्ध में होनी ही है। आहा..हा..! समझ में आया? भव्यसागर ने लिखा है कि मुझे आने का भाव है, परन्तु क्रमबद्ध में होगा तब आऊँगा। मिलने का भाव है, भाव है। पहले पत्र में आया था, अभी आया है। ज्ञेय-ज्ञायक (ज्ञानस्वभाव-ज्ञेयस्वभाव) पुस्तकें दस मँगायी हैं और बहिन की वाणी की (बहिनश्री के वचनामृत की) दस पुस्तकें मँगायी हैं। दस-दस प्रतियाँ मँगायी हैं। वाँचन में बहुत मजा आता है। साथ में जगन्मोहनलालजी का पढ़ते हैं, उसमें भी मजा आता है। जगन्मोहनलालजी में तो व्यवहार करने से निश्चय प्राप्त होगा - ऐसा लिखा है। 'अध्यात्म अमृतवाणी' पुस्तक आयी है न? देखा न? आहा! बापू! यह मार्ग ऐसा नहीं है। यह विकल्प के व्यवहार से प्राप्त हो, वह चीज़ नहीं है। विकल्प शुभराग वह दुःख है, उससे सुख-आनन्द की प्राप्ति होगी? जितना व्यवहार है, वह तो शुभराग है अर्थात् दुःख है और भगवान आत्मा का निश्चय तो आनन्द है। दुःख से आनन्द प्राप्ति होगी? प्रभु! बहुत गड़बड़ कर डाली। पण्डित लोगों ने भी बड़ी पण्डिताई में मानो... आहा..! बापू! यह पण्डिताई की चीज़ नहीं है। आहा..हा..! है?

परन्तु चैतन्यदेव का स्वरूप क्या है,... देखो! है? **कल्पित ध्यान करे, परन्तु चैतन्यदेव...** आहा..हा..! देवाधिदेव भगवान आत्मा... आहा..हा..! उसका **स्वरूप क्या**

है, ऐसे रत्नराशि समान... अनन्त चैतन्य के रत्न उसमें भरे हैं। आहा..हा..! **ऐसे रत्नराशि समान उसके अनन्त गुणों का स्वामी कैसा है...** आहा..हा..! स्वयंभूरमण समुद्र में तल में रत्न भरे हैं, रेत नहीं। बाह्य में अन्तिम स्वयंभू है न? शास्त्र में पाठ है। अन्तिम स्वयंभूरमण समुद्र अन्तिम, असंख्य (द्वीप समुद्र में) नीचे रेत-बालू नहीं, रत्न है। यह स्वयंभूरमण समुद्र अन्तिम है। नीचे अकेले रत्न हैं। यह तो भगवान ने कहा है। इसी प्रकार इस चैतन्य में अनन्त रत्न भरे हैं। स्वयंभू भगवान आत्मा... आहा..हा..! है असंख्य प्रदेशी, परन्तु अनन्त चैतन्यरत्न-जिनका अन्त नहीं, प्रभु! आहा..हा..! जरा विचार में तो ले न, प्रभु! इतने चैतन्यरत्न गुण की खान अन्दर है कि अनन्त के अनन्त वर्ग करके, अनन्त-अनन्त आवे तो भी वह अन्तिम अनन्त है - ऐसा नहीं आता। और अनन्त में भी अन्तिम अनन्त में भी यह अन्तिम गुण है - ऐसा नहीं आता। आहा..हा..! इस भगवान आत्मा में अनन्त गुण इतने रत्न भरे हैं... आहा..हा..! कि जिनकी संख्या का अन्त आ जाये - ऐसी चीज़ नहीं है। आहा..हा..! भगवान ऐसे अनन्त रत्न से भरपूर भगवान, उसकी प्रतीति निर्विकल्प होती है, तब होती है। राग की ताकत नहीं कि उसकी प्रतीति कर सके। आहा..हा..! समझ में आया? क्योंकि प्रतीति में अनन्त चैतन्यरत्न की प्रतीति आती है। आहा..हा..! उस प्रतीति की ताकत कितनी! आहा..हा..! अनन्त-अनन्त चैतन्यरत्न को विश्वास में, प्रतीति में लिया, आहा..हा..! भाई! वह कोई अलौकिक बात है। भाषा से चाहे जिस प्रकार कहो, परन्तु वह पार आवे ऐसा नहीं - ऐसी चीज़ है। आहा..हा..!

जैसे महास्वयंभूरमण समुद्र है (वैसे आत्मा) अनन्त-अनन्त चैतन्यरत्न से भरपूर, जिसके गुण की सीमा नहीं। आहा..हा..! **अनन्त गुणों का स्वामी कैसा है-यह जाने बिना ध्यान कैसा?** आहा..हा..! और सर्वज्ञ के आगम में यह बात कही है। दूसरे में यह बात कहीं नहीं है। आहा..हा..! वह भी दिगम्बर परमागम है, उसमें ही कहा है। आहा..हा..! जैन नाम धरानेवाले सम्प्रदाय हैं, उनमें भी यह बात नहीं है। आहा..हा..! ऐसी बात है, भाई! इस जगत की बाहर की मिठास, शरीर कुछ रूपवान हो, हाथी जैसा हो, पचास लाख-करोड़, दो करोड़ रुपये हैं, स्त्री-पुत्र-परिवार हो, उसे मानो (ऐसा लगता है) कि... आहा! बड़प्पन में कितने हैं! हमारा बड़प्पन कितना है! धूल है। आहा..! समझ में आया? ऐई! क्या है फिर? प्रेमचन्दभाई बुलाते हैं। मजदूरी करना ऐसा? यह कहे - मेरा भाई बुलाता है।

मुमुक्षु : बड़ा भाई...

पूज्य गुरुदेवश्री : बड़ा भाई तो भगवान है। आहा..हा..! जिसकी महिमा की खबर नहीं। जिसकी महिमा का पार नहीं, प्रभु! सर्वज्ञदेव सर्वदर्शीदेव, पूर्णानन्ददेव - ऐसी अनन्त शक्ति की दिव्यशक्ति से भरपूर भगवान का ध्यान, उसके ज्ञान किस प्रकार कर सकता है? आहा..हा..! समझ में आया?

जिसका ध्यान करना है, उस वस्तु को पहिचाने बिना, उसे ग्रहण किये बिना,... ग्रहण अर्थात् लक्ष्य में लिये बिना। **ध्यान किसके आश्रय से होगा?** आश्रय किसका करना? वस्तु है, उसकी खबर नहीं तो आश्रय किसका करना? आहा..! **एकाग्रता कहाँ होगी?** आहा..हा..! यह चीज़ महा चैतन्यरत्नाकर प्रभु-जिसके गुण का पार नहीं, उसके ज्ञान बिना एकाग्रता किसमें होगी? समझ में आया? वास्तविक ज्ञान और प्रतीति हुए पश्चात् उसमें एकाग्रता विशेष होगी, ध्यान होगा; इसके बिना ध्यान नहीं होगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रश्न : सविकल्प द्वारा निर्विकल्प हुआ जाता है न?

उत्तर : सविकल्प द्वारा निर्विकल्प हुआ जाता है, इसका अर्थ 'सविकल्प से निर्विकल्प होता है - ऐसा नहीं, परन्तु निर्विकल्प होने से पहले, मैं शुद्ध हूँ, बुद्ध हूँ, ज्ञायक हूँ - ऐसे विकल्प आते हैं, उन्हें भी छोड़कर अन्दर अभेदस्वभाव का आश्रय लेने पर निर्विकल्प होता है।' तब उसे सविकल्प द्वारा निर्विकल्प हुआ - ऐसा उपचार आता है - उपचार से कहा जाता है।

(पूज्य गुरुदेवश्री, परमागमसार, बोल 180)

भाद्र शुक्ला-२, सोमवार, दिनाङ्क ०४-०९-१९७८
वचनामृत-२१२-२१४ प्रवचन-८५

एक सत्-लक्षण आत्मा—उसी का परिचय रखना। 'जैसा जिसको परिचय, वैसी उसकी परिणति'। तू लोकाग्र में विचरनेवाला लौकिक जनों का संग करेगा तो वह तेरी परिणति पलट जाने का कारण बनेगा। जैसे जंगल में सिंह निर्भयरूप से विचरता है, उसी प्रकार तू लोक से निरपेक्षरूप अपने पराक्रम से—पुरुषार्थ से—अन्तर में विचरना॥२१२॥

२१२ बोल। **एक सत्-लक्षण आत्मा—उसी का परिचय रखना।** क्या कहते हैं ? जो आत्मा, उत्पाद-व्यय और ध्रुवशक्ति रखनेवाला गुण, जिसमें उत्पाद-व्यय-ध्रुव नाम का ऐसा एक त्रिकाली गुण है और एक 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्' और 'सत्द्रव्य लक्षणम्' सत्द्रव्य अर्थात् उसका अस्तित्व परिणाममय शक्ति लेनी है। क्या (कहा) ? ध्रुव, व्यय और उत्पाद से आलिंगित सदृश-विसदृश जिसका स्वभाव है, ऐसे त्रिकाल अस्तित्व परिणाम। ऐसी बात है। सूक्ष्म बात, प्रभु ! उसका त्रिकाल एक गुण ऐसा है कि 'सत्द्रव्य लक्षणम्' यह वह शब्द है। सत् का अर्थ यह है कि त्रिकाल उसमें ध्रुव, व्यय, उत्पाद। सदृश-विसदृश। सदृश अर्थात् ध्रुव, विसदृश अर्थात् व्यय-उत्पाद - ऐसा जिसका स्वभाव है - ऐसा सत्, उसका अस्तित्व, उसकी सत्ता का होना - ऐसा आत्मा में एक गुण है।

यहाँ कहते हैं कि **एक सत्-लक्षण आत्मा...** बहुत संक्षिप्त भाषा है। आज 'जालना' से एक पत्र आया है। वह भव्यसागर है न ? कोई मन्दिरमार्गी का है। ऐसा कोई कहता था। पचास हिन्दी, पचास गुजराती और पचास मराठी वचनामृत भेजो, डेढ़ सौ। अपने मराठी तो है नहीं। मराठी है ? हिन्दी, गुजराती है। वहाँ भव्यसागर दिगम्बर (साधु) है न ? पढ़ते हैं। श्वेताम्बर को ऐसा हो गया है। ओहो..हो.. ! डेढ़ सौ पुस्तकें भेजो, पचास हिन्दी, पचास

गुजराती, पचास (मराठी)। यह चीज़ ऐसी है। अरे! कोई वेदान्ती जरा मध्यस्थता से पढ़े कि यह क्या वस्तु है? यह तो वस्तु का स्वरूप है। आहा..हा..!

सत्लक्षण द्रव्य। 'है' ऐसे लक्षणवाला द्रव्य। 'है', वह ध्रुव - व्यय और उत्पादरूप लक्षणवाला सत् है। आहा..हा..! ऐसा सत्लक्षणवाला आत्मा। आहा..हा..! **उसी का परिचय रखना।** राग का, व्यवहार का नहीं, पर्याय का परिचय नहीं। आहा..हा..! ऐसी बात है, प्रभु! क्या हो? बहुत सूक्ष्म बात। आज सबेरे तो बहुत आया था। रिकार्डिंग में.. 'जिनवचसि रमन्ते' (समयसार कलश ४) तो जिनवचन में क्या कहा? कि त्रिकाल ज्ञायक जिनस्वरूपी प्रभु, जिसमें व्यवहार के विकल्प की गन्ध नहीं, जिसमें उदयभाव का संग नहीं। आहा..हा..! ऐसी चीज़ है। जिन आज्ञा में ऐसा कहा.. 'जिनवचसि रमन्ते' का यह अर्थ है। जिनवचन में त्रिकाली वीतरागस्वरूप ज्ञायकभाव सत्लक्षण द्रव्य को उपादेय कहा है। आहा..हा..! लाख-करोड़ शास्त्र में भी एक त्रिकाली ज्ञायक जिनस्वरूपी प्रभु, वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा त्रिकाल सत्लक्षणवाला वीतरागरूप है, ऐसे लक्षणवाला.. आहा..हा..! उस आत्मा का परिचय करना।

त्रिकाली ज्ञायक सत्लक्षणवाला है। 'है' - ऐसा लक्षण.. अनन्त गुणरूप एक वीतरागस्वरूपी जिनमूर्ति प्रभु अनादि.. आहा..हा..! उसका परिचय कर। क्यों? कि वीतरागता उत्पन्न करने की भगवान की आज्ञा है। तो वीतराग स्वभाव के आश्रय से (वीतरागता) उत्पन्न होगी और वह वीतरागी पर्याय, पूर्ण वीतरागता का कारण है। क्या कहा? आहा..हा..! जिनस्वरूपी भगवान पूर्णानन्द वीतरागमूर्ति का परिचय करने से वीतराग पर्याय उत्पन्न होगी और वह वीतराग पर्याय—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र—ये तीनों वीतराग पर्यायें हैं। ये वीतराग त्रिकाली भगवान के अवलम्बन से उत्पन्न होती हैं और यह वीतरागी पर्याय, पूर्ण वीतराग सर्वज्ञ (होने) का कारण है। आहा..हा..! व्यवहार, यह व्यवहार। समझ में आया? अरे! ऐसी बात है। निश्चय से तो उस समय की सर्वज्ञ की वीतरागपर्याय उत्पन्न होती है, वह सत्लक्षणवाला द्रव्य है, उसके आश्रय से उत्पन्न होती है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : पर्याय स्वयं सत् है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय सत् है, वह भी त्रिकाली सत् है, तब पर्याय सत् है। आहा..हा..! पहले सदृश-ध्रुव सदृश है और व्यय तथा उत्पाद, वह पर्याय है, परन्तु उसका

गुण ऐसा है। उत्पाद-व्यय होना, उसका गुण ऐसा है। आहा..हा..! दूसरी भाषा से कहें.. प्रभु! बहुत सूक्ष्म बात, भाई!

जिनस्वरूपी सत्लक्षणवाला भगवान है। उसका परिचय करने से, उस ओर की एकाग्रता होने से जो भाव होता है, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र—वह परिणाम है, वह वीतरागी पर्याय है। आहा..हा..! और वह वीतरागी पर्याय, पूर्ण सर्वज्ञ वीतराग (पर्याय का) व्यवहारकारण कहने में आता है। रागादि तो नहीं, परन्तु यह व्यवहारकारण है। आहा..हा..! निश्चयकारण—उस समय में सर्वज्ञ और वीतरागता प्रगट होना, उसका निश्चयकारण तो त्रिकाली द्रव्य का परिचय है। आहा..हा..! समझ में आया? यह तो अगम्यगम्य की बातें हैं, प्रभु! आहा..हा..! यह कोई पण्डिताई की चीज़ नहीं है। आहा..हा..! और शास्त्र का ज्ञान किया हो, वह भी खण्ड-खण्ड ज्ञान है। आहा..हा..! वह बन्ध का कारण है। आहा..हा..! प्रभु! तुझे क्या कहना है? शास्त्र, शास्त्र का ज्ञान धारणा में किया, वह शब्दज्ञान है, वह आत्मज्ञान नहीं। वह शब्दज्ञान, इन्द्रियज्ञान के विषय से हुआ, वह खण्ड-खण्ड ज्ञान है, वह बन्ध का कारण है। आहा..हा..!

तेरा स्वभाव वीतरागी ज्ञान से भरपूर है। आहा..हा..! उसका परिचय कर, प्रभु! आहा..हा..! कब तक? पूर्ण सर्वज्ञ और वीतराग न हो, तब तक उसका परिचय रख। आहा..हा..! पुस्तक की शैली है, अत्यन्त सादी भाषा। आहा..हा..! दूसरे का-किसी का पत्र है न? किसका था? दूसरे का किसी का पत्र था। उसने तो प्रशंसा की है। वचनामृत का था उसमें कोई? आहा..हा..! आत्मधर्म की प्रशंसा बहुत की है। यहाँ तक उसने लिखा है कि अरे! आत्मा वीतराग परिचय में रहे, वीतरागस्वरूपी भगवान के परिचय में वीतरागभाव से रहे, वही मोक्षमार्ग है। यहाँ तक उसने दृष्टान्त दिया। हम बहुत बार कहते हैं। पाँच पाण्डव, तीन पाण्डव तो अपने आत्मा के परिचय में आनन्द में रहे, मुक्ति हो गयी। दो पाण्डवों को अपना परिचय तो है परन्तु उसमें से जरा एक विकल्प की अस्थिरता आ गयी। आहा..हा..! साधर्मी सन्तों को कैसे होगा? ऐसा शुभभाव (आ गया)। लोहे के आभरण पहनाये, राजकुमार सहोदर, एक माता के गर्भ से उत्पन्न, साधर्मी, उम्र में बड़े, उन्हें (कैसा होगा)? ऐसा विकल्प आया। दो भव बढ़ गये। आहा..हा..! शुभराग (से) इस संसार के दो भव बढ़ गये।

मुमुक्षु : राग जोरदार दुश्मन...

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतरागमूर्ति भगवान के परिचय से वीतराग पर्याय उत्पन्न हुई, वह सज्जन है, वह सत्-जन है। आहा..हा..! वह सत् भगवान की परिणति है। आहा..हा..! उसमें राग.. मुनि तीन कषाय का अभाव है, महात्मा पंच परमेष्ठी में रहे हुए, भावलिंग जिनका प्रचुर स्वसंवेदन है। आहा..हा..! अतीन्द्रिय आनन्द के वीतरागी स्वभाव के परिचय में वीतरागी आनन्द प्रचुर हुआ है। उन्हें जरा ऐसा विकल्प आया, अन्दर में से हट गये। आहा..हा..! उस विकल्प में दो भव (बढ़ गये)। तैंतीस सागर का सर्वार्थसिद्धि (का) भव और मनुष्य होंगे तो जन्म, लेकर तुरन्त कहीं केवल (ज्ञान) नहीं होगा। आहा..हा..! भाई! अपना परिचय छोड़कर, विकल्प में आना, प्रभु! वह तो भव है, संसार है। आहा..हा..! समझ में आया? कठिन लगता है, बापू! परन्तु मार्ग तो यह है, भाई!

कहते हैं, सत् का परिचय रखना। '**जैसा जिसको परिचय, वैसी उसकी परिणति**'। आहा..हा..! जिसे जिनस्वरूपी भगवान का परिचय है.. आहा..हा..! तो उसकी परिणति ऐसी वीतरागी होगी। आहा..हा..! मार्ग बहुत अलौकिक है, प्रभु! लोगों ने तो अभी बहुत गड़बड़ी की है और यह वस्तु है, वह एकान्त है - ऐसा मानते हैं। हमारे राग की क्रिया से निश्चय नहीं होता (ऐसा कहते हैं)। अरे! भगवान! यह समझने के लिये इसे.. आहा..हा..! भाषा क्या है? देखो। '**जैसा जिसको परिचय, वैसी उसकी परिणति**'। तू लौकिक का परिचय करेगा तो राग और विकार की पर्याय उत्पन्न होगी। आहा..हा..! अरे! देव, गुरु और शास्त्र - पर का परिचय करेगा तो राग उत्पन्न होगा, प्रभु! आहा..हा..! मीठालालजी! ऐसा मार्ग है प्रभु का! आहा..हा..! '**जैसा जिसको परिचय, वैसी उसकी परिणति**'। अब तीसरा बोल।

तू लोकाग्र में विचरनेवाला... आहा..हा..! सिद्ध तो लोकाग्र में विचरते हैं और तू भी सिद्धसमान तेरी चीज़ है.. आहा..हा..! लोक से अग्र अर्थात् भिन्न तेरा विचरना होता है। आहा..हा..! लोकाग्र में विचरनेवाला प्रभु! आहा..हा..! जगत से निराला तेरा विचरना है। आहा..हा..! समाधिशतक में कहा है न? मुनिराज ऐसा कहते हैं, हों! आहा..हा..! अरे! हमें उपदेश का विकल्प आता है, वह चारित्रमोह का उन्माद है। आहा..हा..! हम कहाँ आ पहुँचे? ऐसा कहा है। आहा..हा..! अरे! यह उपदेश का राग आया, यह तो परदेश है, हम कहाँ आ पहुँचे? आहा..हा..! वीतराग.. वीतराग.. वीतराग.. आहा..हा..!

आत्मावलोकन में तो कहा है, सन्त तो वीतराग.. वीतराग.. 'मुहु.. मुहु' वीतरागता

बतलाते हैं। आहा..हा..! भले चरणानुयोग में राग की व्याख्या की, परन्तु उस राग की व्याख्या में वीतरागता बताते हैं। आहा..हा..! वीतरागी ज्ञान हुआ, उसमें राग देखते हैं। देखते हैं—ऐसा कहना वह व्यवहार है परन्तु उस समय वीतरागी सम्यक् चैतन्य के अवलम्बन से जो ज्ञान हुआ, वह वीतरागी ज्ञान स्व-परप्रकाशक स्वयं से हुआ है। राग है तो उसे जानने का कार्य हुआ है - ऐसा भी नहीं है। आहा..हा..! क्योंकि उसमें अस्तित्व, सत्लक्षण परिणामस्वरूप भगवान आत्मा है, उसका परिचय किया तो उसकी पर्याय में वीतरागता उत्पन्न होती है। वीतरागता, ज्ञान भी वीतरागी उत्पन्न हुआ, सम्यग्दर्शन भी वीतरागी पर्याय हुई। आहा..हा..! उस वीतरागी ज्ञान में, राग आया, ऐसा जानने में आता है परन्तु वह राग (को) भी वीतरागी पर्याय जानती है - ऐसा कहना वह भी व्यवहार है। वीतरागी पर्याय, वीतरागी पर्याय को जानती है। आहा..हा..! समझ में आया? कहो, विमलचन्दजी! ऐसी बात है। आहा..हा..! अरे रे! दुनिया कहाँ है और कहाँ मार्ग? (मानता है) अरे!

तू लोकाग्र में विचरनेवाला... इसका अर्थ क्या है? कि तुझे तो सिद्ध होना है। वे लोकाग्र में रहते हैं तो अभी तुझे लोक से भिन्न रहना है। लौकिक रागादि जो लौकिक है.. आहा..हा..! समझ में आया? उनसे तो भिन्न रहनेवाला है न, भगवान! आहा..! तेरे देश में रहना है, तेरा देश तो वीतरागी स्वभव है। राग के देश में जाना, वह तो परदेशभाव है, वहाँ कोई आत्मा का परिवार नहीं है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : परदेश से बहुत लोग रुपये ले आये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उस परदेश में धूल भी... वह तो पुण्य के कारण आये हैं। परदेश में क्या (है)? उस परदेश में जाकर राग में आवे तो कोई लाभ नहीं है, नुकसान होता है। ये सब महाजन परदेश में गये न? बहुत से करोड़पति हो गये। यहाँ आये हैं न, भाई! वहाँ कितने ही महाजन करोड़पति हो गये। अपने मुमुक्षु के साठ घर हैं न? नैरोबी। उसमें सात-आठ करोड़पति हैं और दूसरे बीस लाख, पच्चीस लाख, तीस लाख, चालीस लाख वाले हैं। सब श्वेताम्बर थे।

मुमुक्षु : वहाँ गये तो हुए।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे गये तो हुए, वह तो परमाणु आनेवाले थे। वे भी इसके पास कहाँ आये हैं? इसके पास तो 'ये मुझे मिले' ऐसी ममता आयी है।

मुमुक्षु : साहूकारी आयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : साहूकार-फाहूकार... कहाँ साहूकार थे? आहा..हा..! पन्द्रह लाख का मन्दिर बनाया न? अभी वास्तु किया न? आहा..हा..! मुमुक्षु मण्डल की ओर से। वह क्या? वह तो पर की क्रिया होनेवाली है, भाई! उसमें भाव हो तो शुभ है। वह विभावभाव है, वह परदेश का भाव है। आहा..हा..! गजब बात, बापू! कहो, शान्तिभाई! ऐसी बातें वहाँ तुम्हारे जवाहरात में नहीं मिलती। आहा..हा..!

तू लोकाग्र में विचरनेवाला लौकिक जनों का संग करेगा... आहा..हा..! राग के रसिक ऐसे जगत के जीव, राग के प्रेमी ऐसे जगत के जीवों का परिचय करेगा.. आहा..हा..! तो वह तेरी परिणति गिर जाने का कारण बनेगा। आहा..हा..! परिचय करेगा तो। उनसे नहीं (गिरेगा)। आहा..हा..! ऐसा मार्ग है। अरे! अभी तो यह शास्त्र पढ़ेंगे... श्वेताम्बर लोग पड़ते हैं। यह तो तत्त्व की वास्तविक चीज़ है, यह कहाँ कोई पक्ष है? समझ में आया? आहा..हा..! बोलने की क्रिया तो जड़ की है, उसका भी परिचय न कर। आहा..हा..! और राग के रसिक लौकिकजन.. आहा..हा..! जिन्हें पुण्य के प्रति प्रेम है और पुण्य के फल लक्ष्मी, शरीरादि का प्रेम है - ऐसे लौकिकजनों के साथ सम्पर्क करेगा तो तेरी परिणति गिर जायेगी। उपयोग पर में जायेगा। आहा..हा..! कठिन बात है, भाई!

मुमुक्षु : सबसे...

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वे जीवा मन-वचन-काया से, करना-कराना-अनुमोदन से भिन्न सर्व जीव ऐसे हैं। अन्त में कहा न? स्वभाव कहो, शक्ति कहो, सत्त्व कहो, वस्तु ऐसी है और जीव अधिकार में तो कहा - सर्व जीव उस अनुसार प्राप्त होओ। खबर नहीं उन्हें (कि) अभव्य जीव है, कितने जीव तो निगोद में से नहीं निकले। नहीं निकले तो भी सब जीव ऐसे हो जाओ। आहा..हा..! 'मजन्तु' आनन्द के सरोवर में अन्दर आ जाओ। जीव (अधिकार) का अन्तिम श्लोक है, जीव अधिकार (का)। आहा..हा..!

आनन्द का नाथ भगवान वीतरागी आनन्द से भरपूर सर्व जीव अन्दर आ जाओ। आहा..हा..! सन्त, मुनि ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! क्योंकि अपने आनन्द के वास में बसे हैं। यह वस्तु का स्वरूप है तो ऐसा तेरा स्वरूप है न, भगवान! आहा..हा..! तुम्हारे आनन्दवास में आ जाओ। राग और निमित्त के वास में तुझे नुकसान है। आहा..हा..! समझ में आया? गजब बात है, बापू! अब ऐसी बातें। पूरे दिन व्यापार और धन्धा, स्त्री-पुत्र

परिवार में घुस गया। सबेरे से शाम, २२-२३ घण्टे (उसमें रहे), एकाध घण्टे सुनने और पढ़ने का समय ले, वहाँ कोई शुभभाव हो तो, वह भी सच्चा सत्समागम हो तो... परन्तु वह तो.. समझ में आया? ऐरण की चोरी और सुई का दान है वह तो। आहा..हा..! अरे भगवान! बापू! तेरा मार्ग, भाई! लोकाग्र में बसनेवाला नाथ तू है न! लोकाग्र में सिद्ध बसते हैं। सिद्ध को कोई परिचय है? आहा..हा..! ऐसे लोकाग्र अर्थात् लोक से भिन्न भगवान आत्मा तीन लोक का नाथ है। उसमें बसनेवाला प्रभु! (है)। आहा..हा..!

लौकिक जनों का संग करेगा तो वह तेरी परिणति पलट जाने का कारण बनेगा। आहा..हा..! वे कुछ कहे और तू कुछ कहे, उसे समाधान कराना.. आहा..हा..! प्रभु! भारी गजब कहते हैं। आहा..हा..! वह तुझे बाहर में रुकना पड़ेगा, प्रभु! ऐसा स्वरूप है, प्रभु! **जैसे जंगल में सिंह निर्भयरूप से विचरता है...** वह सिंह कहीं हिरण और सियार का परिचय करता है? आहा..हा..! **जंगल में सिंह निर्भयरूप से विचरता है...** अभी मद्रास गये थे न? वहाँ का गवर्नर है न? व्याख्यान में आया था। हम जब प्लेन में से उतरे, तब किसी को छोड़ने आया था। उसे पता पड़ा कि महाराज आये हैं तो मेरी मोटर के पास आया। नरम व्यक्ति है, फिर कहा—महाराज! मेरे गवर्नर हॉल में पधारना पड़ेगा। मुझे स्वागत करना है। गवर्नर हॉल है, राजमहल है। मुझे दूसरा कहना है। वहाँ गये थे, पाव घण्टा बैठे थे। वहाँ पूरे जंगल में तेरह सौ तो हिरण हैं, तेरह सौ। वे पालते हैं। किसी का वध-शिकार नहीं करने देते। सियालिया, क्या कहलाता है? हिरण, सियार, खरगोश। बड़ा राजा गवर्नर है न? अपनी भाषा में लोकपाल। सरकारी भाषा में गवर्नर। अन्दर बड़ा वन है, वहाँ उसका बँगला था। गये थे, बैठे थे, पाव घण्टा बैठे, बहुत विनय किया। पानी, दूध, चाय जिसे जो चाहिये वह दिया। कहा - मार्ग अलग है। यह सब हिरण-फिरण पाले और.. आहा..हा..! परन्तु उसे परिचय में पूरे दिन फुरसत नहीं मिलती। आहा..हा..! यहाँ जैसे फुरसत नहीं मिलती, इन स्त्री-पुत्र और धन्धे के कारण (निवृत्ति नहीं मिलती), उसे उस प्रकार के धन्धे में फुरसत नहीं मिलती। नवरास (फुरसत का गुजराती शब्द) समझते हो? फुरसत।

यहाँ तो त्रिकाल (स्वरूप) फुरसत-भिन्न ही है। राग का परिचय नहीं, शरीर का परिचय नहीं, उदय का, कर्म का परिचय नहीं - ऐसी चीज़ अन्दर त्रिकाल पड़ी है। आहा..हा..! यह सर्वज्ञ परमात्मा की वाणी यह कहती है। क्योंकि जो वीतराग है, वह वीतरागता उत्पन्न करने को कहते हैं। वीतराग की वाणी में वीतरागता उत्पन्न करने को

कहते हैं। वीतराग, राग उत्पन्न करने को कहेंगे? वीतरागता उत्पन्न करने को कहते हैं। इसका अर्थ क्या? वे भगवान कहते हैं कि तेरी वस्तु वीतराग मूर्ति है, वहाँ परिचय कर। आहा..हा..! वीतरागता उत्पन्न करने का कारण तेरा त्रिकाली जिनस्वरूप है, वहाँ परिचय कर तो वीतराग पर्याय उत्पन्न होगी। आहा..हा..! क्या हो? भाई!

जैसे जंगल में सिंह निर्भयरूप से विचरता है... आहा..हा..! उसे किसी का परिचय है? किसी का डर है? केशरी सिंह जंगल का राजा, ऐसा कहलाता है न? वनराज। वन का राजा। इसी प्रकार भगवान तू तीन लोक का जाननेवाला चैतन्य राजा है। आहा..हा..! तीन लोक का परिचय करनेवाला राजा नहीं, तीन लोक का जाननेवाला राजा है। आहा..हा..! श्रुतज्ञान में भी तीन लोक का जाननेवाला तू है, प्रभु! आहा..हा..! **जंगल में सिंह निर्भयरूप से विचरता है, उसी प्रकार तू लोक से निरपेक्षरूप...** आहा..हा..! करोड़पति, अरबोंपति वन्दन करे तो प्रसन्न और गरीब करे तो साधारण, इसकी तुझे क्या पड़ी है? आहा..हा..! समझ में आया? कोई पच्चीस लाख खर्च करने को कहे तो उस पर प्रसन्न हो जाये। कहाँ है? प्रभु!

मुमुक्षु : पच्चीस लाख ऐसे जल्दी खर्च नहीं करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो सत्य है। परन्तु यह तो एक (बात की है)। शान्तिभाई! वह तो करोड़पति है, परन्तु पिता मर जाने के बाद करोड़ खर्च करेगा? सब दे देगा? परन्तु दे तो क्या? तुझे क्या? तुझे क्या मिला? आहा..हा..! और उसमें तू प्रसन्न होता है? बहुत दान करता है। परिचय न कर प्रभु! आहा..हा..! तुझे राग में आना पड़ेगा। स्वरूप में से हट जायेगा। आहा..हा..! तेरी बैठक वीतरागी-उदासीन, राग से भिन्न तेरा आसन अन्दर पड़ा है। आहा..हा..! कठिन बात है, बापू! परन्तु भाई! मार्ग तो यह है। आहा..हा..!

तू लोक से निरपेक्षरूप... लोक राजा हो या दानी हो या गरीब हो। आहा..हा..! उससे निरपेक्ष। तुझे अपेक्षा क्या है? वह अपेक्षा करेगा तो राग होगा। आहा..हा..! तीन लोक का नाथ भगवान है, उसकी अपेक्षा कर न, पर की अपेक्षा छोड़ दे, निरपेक्ष हो जा। आहा..हा..! **तू लोक से निरपेक्षरूप अपने पराक्रम से—पुरुषार्थ से—अन्तर में विचरना।** जहाँ स्वदेश भगवान आनन्दकन्द प्रभु है। जिनस्वरूपी भगवान वह स्वदेश है, वहाँ विचारना। आहा..हा..! देखो भाषा! यह किसे पसन्द नहीं आयेगी? आहा..हा..! ऐसा है, भगवान! भेंट में बहुत पुस्तकें पहुँच गयी हैं। मन्दिरमार्गी हैं, उन्होंने डेढ़ सौ मँगाये हैं

विक्रय को। पचास हिन्दी, पचास गुजराती, पचास मराठी। उन्हें पता नहीं होगा कि मराठी अभी बनी नहीं है। आहा..हा..!

तेरे स्वरूप की बातें, भगवान! आहा..हा..! अरे! यहाँ तो कहते हैं.. आहा..हा..! एक ही बोल है, २१२, परन्तु कितना समा दिया है। लोग मानते हैं, बहुत ही मान देते हैं, अपनी प्रशंसा करते हैं, उनका परिचय करेगा तो मर जायेगा। राग (होगा)। आहा..हा..! **अपने पराक्रम से...** स्वभावसन्मुख पुरुषार्थ से वीतरागभाव की ओर अन्दर में विचरण करना। आहा..हा..! बहुत सरस! सबेरे भी अच्छा आया। टेप रिकार्डिंग बहुत सरस था। व्याख्यान, चौथे श्लोक की व्याख्या। आहा..हा..! यह २१२ (बोल पूरा) हुआ।

लोगों का भय त्यागकर, शिथिलता छोड़कर, स्वयं दृढ़ पुरुषार्थ करना चाहिये। 'लोग क्या कहेंगे' ऐसा देखने से चैतन्यलोक में नहीं पहुँचा जा सकता। साधक को एक शुद्ध आत्मा का ही सम्बन्ध होता है। निर्भयरूप से उग्र पुरुषार्थ करना, बस! वही लोकाग्र में जानेवाला साधक विचारता है॥२१३॥

२१३, **लोगों का भय त्यागकर,...** आहा..हा..! दुनिया क्या मानेगी, यह कमजोर व्यक्ति है, कुछ बोलना भी नहीं आता और अन्दर पड़ा है। लोग चाहे जो बोले – तुझे क्या है? समझ में आया? **लोगों का भय त्यागकर, शिथिलता छोड़कर,...** आहा..हा..! अरे! लोग मेरी प्रशंसा करते हैं और मैं बाहर आऊँ। वह बहिरात्मा बुद्धिवाला भाव है। आहा..हा..! पण्डितजी!... आहा..हा..!

भगवान! तू वीतरागस्वभाव की मूर्ति है न, प्रभु! सबेरे कहा था न

घट घट अन्तर जिन बसै, घट घट अन्तर जैन।
मत मदिरा के पान सो, मतवाला समझै न॥

घट घट अन्तर जिन बसै... वीतरागमूर्ति भगवान जिनस्वरूपी आत्मा। और **घट घट अन्तर जैन..** उस जिन का अवलम्बन लिया, वह जैन है। आहा..हा..! जैनस्वरूपी भगवान आत्मा, वीतरागमूर्ति प्रभु अनादि-अनन्त है, उसका अवलम्बन लिया, वह जैन है। जैन शक्ति, जैन वीतराग का आधार लिया, आश्रय लिया, वह जैन है। आहा..हा..! जैन कोई वाड़ा में है, इसलिए जैन है (-ऐसा नहीं है)। समझ में आया? **'घट घट अन्तर जिन बसै,**

घट घट अन्तर जैन, मत मदिरा के पान सो..' परन्तु परिणाम में अभिमान (करता है कि) आहा..हा..! मैं रागी हूँ और मैं ऐसा हूँ तथा मुझे माननेवाले बहुत हैं और मेरी बहुत प्रसिद्धि हो गयी है। अरे.. प्रभु! क्या है? प्रसिद्धि तो तेरी तुझमें होती है। आहा..हा..!

शिथिलता छोड़कर, स्वयं दृढ़ पुरुषार्थ करना... अन्दर वीतरागस्वभाव सन्मुख जाना, दृढ़ पुरुषार्थ करना, प्रभु! आहा..! विकल्प में आना भी शिथिलता, बन्ध का कारण है। आहा..हा..! अनन्त पराक्रम का धनी, प्रभु! तुझमें एक प्रभुता नाम का गुण है। वह स्वतन्त्रता से शोभायमान, अखण्ड प्रताप से शोभायमान है। आहा..हा..! जिसका अखण्ड प्रताप है, भगवान स्वरूप आत्मा का और स्वतन्त्रता से शोभायमान है। किसी राग से लाभ हुआ और निमित्त से (हुआ) - ऐसा स्वरूप में नहीं है। आहा..हा..! समझ में आया? बात कठिन पड़ेगी, परन्तु प्रभु! मार्ग यह है। आहा..हा..! क्योंकि जिन आज्ञा में वीतरागभाव.. सबेरे कहा था, नहीं? चारों अनुयोग में वीतरागभाव तात्पर्य है अर्थात् कलश टीका में आ गया है न? कि बारह अंग विकल्परूप है, परन्तु उसमें कहा है, अनुभूति (करने का)। आहा..हा..! कलश-टीका में है। बारह अंग कोई अपूर्व चीज़ नहीं है। आहा..हा..! आहा..हा..! बारह अंग में कहा है, भगवान की अनुभूति करना। अर्थात् वीतरागीपर्याय करना। आहा..हा..! और वह वीतरागी पर्याय, द्रव्य के आश्रय से होती है। इसका अर्थ (यह कि) चार अनुयोग ऐसा कहते हैं (कि) त्रिलोकनाथ जिनस्वरूपी का आश्रय ले। व्यवहार, निमित्त और लौकिक संग का आश्रय छोड़ दे, प्रभु! आहा..हा..! ऐसा कठिन लगे, इसलिए लोग फिर ऐसा कहते हैं सोनगढ़ निश्चयाभास है। कहो, प्रभु कहो। एकान्त है, एकान्त है। द्रव्य और पर्याय का ज्ञान करना, वह प्रमाण अनेकान्त है परन्तु एक नय का ज्ञान-निश्चय का करना एकान्त है। है सम्यक् एकान्त। आहा..हा..!

वीतराग.. वीतराग.. वीतराग, राग के विकल्प से भिन्न प्रभु, अनन्त अमाप वीतरागस्वभाव का पिण्ड प्रभु का आश्रय ले। आहा..! अन्तर में दृढ़ पुरुषार्थ करना चाहिए। आहा..हा..! **'लोग क्या कहेंगे' ऐसा देखने से चैतन्यलोक में नहीं पहुँचा जा सकता।** आहा..हा..! मुझे लोग मानते हैं और इसे मानते हैं और मुझे नहीं मानते, ऐसा देखने जायेगा तो तू अन्दर नहीं जा सकेगा। आहा..हा..! समझ में आया? मेरी सभा में दो सौ-पाँच सौ और उसकी सभा में पाँच लाख, दो लाख। परन्तु करना क्या है? परन्तु तुझे काम क्या है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आवे, न आवे वह तो होना हो, वह होता है। आवे-जावे, वह तो उसके परमाणु, (और) उसके आत्मा की पर्याय की योग्यता से आते हैं-जाते हैं। आहा..हा..!

'लोग क्या कहेंगे' ऐसा देखने से चैतन्यलोक में नहीं पहुँचा जा सकता। चैतन्य-लोक में नहीं पहुँचा जा सकता। भगवान चैतन्य जागृतस्वभाव का पिण्ड प्रभु, चैतन्यलोक नित्य अस्तित्व से भरपूर है, नित्य सत्तास्वभाव जिसका है, वीतराग स्वभाव नित्य जिसका स्वभाव है। लोग क्या कहेंगे-ऐसे देखने से अन्दर में नहीं पहुँचा जा सकता। आहा..हा..!

साधक को एक शुद्ध आत्मा का ही सम्बन्ध होता है। आहा..हा..! देखो! राग का सम्बन्ध नहीं, लौकिक स्त्री, कुटुम्ब-परिवार और साधर्मीजीवों का भी संग नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहा..हा..! ऐसा स्वरूप है, प्रभु! जगत से निराली बात है। आहा..! आत्मा का ही सम्बन्ध होता है। एक शुद्ध प्रभु ध्रुव नित्य वीतराग, साधक को उसका एक का ही सम्बन्ध होता है। आहा..हा..! त्रिकाली वीतरागमूर्ति का ही साधक को सम्बन्ध होता है। आहा..हा..! धर्म का साधक जीव, उसे एक त्रिकाली वीतराग स्वभाव का ही सम्बन्ध होता है। आहा..हा..! बाहर के सम्बन्ध में पोसा गया, उसे यह सम्बन्ध (रहा नहीं) आहा..हा..! अनन्त-अनन्त काल में पुण्य और पाप के संग में पड़ा और परलक्ष्य में पड़ा, उसने यह सम्बन्धरहित चीज़ है (उसका संग नहीं किया)। मुझे तो मेरे आत्मा के साथ साधक का सम्बन्ध है। साधक को राग और निमित्त के साथ सम्बन्ध नहीं है। आहा..हा..!

निर्भयरूप से उग्र पुरुषार्थ करना,... दुनिया की दरकार छोड़कर... उसे बहुत ज्ञान है और मुझे थोड़ा है, लोग मेरी गिनती नहीं करते।—यह बात छोड़ दे। क्या तुझे दुनिया में गिनाना है? आहा..हा..! **बस! वही लोकाग्र में जानेवाला साधक विचारता है।** आहा..! सिद्ध होनेवाला साधक। सिद्ध, साध्य है; साधक, मोक्ष का मार्ग है। वह मोक्ष का मार्ग वीतरागपर्याय है। वीतरागपर्याय, वीतराग स्वभाव से उत्पन्न होती है। वीतराग स्वभाव के आश्रय से (उत्पन्न होती है)। आहा..हा..! और पूर्ण वीतरागता का कारण है। तीनों वीतराग। यह वीतराग मार्ग है। वस्तुस्वरूप त्रिकाली वीतराग, उसके सम्बन्ध से-आश्रय से वीतरागी पर्याय दर्शन-ज्ञान-चारित्र उत्पन्न होती है, वह वीतराग और उससे पूर्ण सर्वज्ञ वीतराग होता है, वह वीतराग। आहा..हा..!

दुनिया को पसन्द न आये परन्तु क्या हो? लोगों के रक्षण के लिये व्यवहार धर्म है।

अरे! भगवान! किसका रक्षण करे? प्रभु! विकल्प आता है परन्तु वह तो बन्ध का कारण है। आहा..हा..! व्यवहारधर्म अर्थात् लोगों को समाज को बराबर बताना और समाज के साथ सम्बन्ध रखना और समाज में ठीक होगा, यह व्यवहारधर्म है? आहा..हा..! व्यवहार धर्म का अर्थ इतना कि वीतरागस्वभाव में नहीं रह सकते, तब विकल्प आया, उसे व्यवहार धर्म कहने में आता है। निश्चय से अधर्म है। मीठी भाषा में कहें तो वह पुण्य है। कड़क भाषा से कहें तो वह अधर्म है। आहा..हा..! ऐसा है, प्रभु!

आहा..हा..! मोक्षमार्गप्रकाशक में आया है कि उपदेश देनेवाला, लोग प्रसन्न हों तो प्रसन्न हो जाता है। संख्या बहुत हो तो (प्रसन्न हो जाता है) आहा..हा..! और सामनेवाले का मुँह ताकता है कि मेरी बात में महिमा किसे आती है? अरे! प्रभु! क्या है तुझे यह? कहाँ जाना है प्रभु तुझे? आहा..हा..! ऐसा मार्ग है। आहा..!

बस! वही लोकाग्र में जानेवाला साधक विचारता है। सिद्ध होनेवाला साधक ऐसा विचार करता है कि निर्भयरूप से उग्र पुरुषार्थ कर, बस! आहा..हा..! जहाँ चैतन्यरत्नाकर भगवान विराजता है, वहाँ सम्बन्ध कर। साधक को तो उसका ही सम्बन्ध होना चाहिए। धर्मी-सम्यग्दृष्टि साधक और चारित्रवन्त साधक को त्रिकाली शुद्ध का ही परिचय है। आहा..हा..! उसका ही सम्बन्ध है। आहा..हा..! राग का भी सम्बन्ध नहीं तो निमित्त, लौकिक का संग तुझे कहाँ आया? आहा..! सन्त-मुनि.. आहा..हा..! सहदेव और नकुल, अन्तर आनन्द के झूले में झूलते थे। जरा एक विकल्प आया, वह भी शुभराग (कि) मुनि को कैसे होगा? आहा..हा..! वह जगपंथ है। राग जगपंथ है, प्रभु! वह संसार पंथ है; वह शिवमार्ग नहीं है। आहा..हा..!

भाई! तू वीतरागमूर्ति है न! वीतरागपर्याय, मुक्ति का कारण है। तू राग को कारण माने, वह कलंक है, बड़ा मिथ्याशल्य है। तू वहाँ रुक गया। रुकने के रास्ते अनेक हैं, छूटने का रास्ता एक है। वीतरागमूर्ति के सम्बन्ध में जाना, वह छूटने का एक रास्ता है। आहा..हा..! बाकी अटकने के तो अनेक-अनेक प्रकार हैं। बहुत.. आहा..हा..! कोई कहीं अटके, कोई कहीं अटके, कोई कहीं अटके। आहा..हा..! अरे! देह छूटे और अनजाने क्षेत्र, अनजाने द्रव्य में चला जायेगा। जिसने द्रव्य का परिचय नहीं किया... आहा..हा..! परद्रव्य के परिचय में, पुण्य-पाप के बन्धन किये। वह पुण्य भी किसी को विशेष होता है, बाकी बहुत तो पाप (उपार्जित करते हैं)। आहा..हा..! ये बंगले में पड़ा, चला जायेगा कहीं भेड़ की

कूख में, बकरी की कूख में, हाथी की हथिनी की कूख में, घोड़ी की कूख में.. (अवतार लेगा)। आहा..हा..! प्रभु! क्या है? भाई! आहा..!

उग्र पुरुषार्थ करना, बस! वही लोकाग्र में जानेवाला साधक विचारता है। आहा..हा.. २१३ (बोल पूरा) हुआ।

सद्गुरु के उपदेशरूप निमित्त में (निमित्तपने की) पूर्ण शक्ति है, परन्तु तू तैयार न हो तो?—तू आत्मदर्शन प्रगट न करे तो? अनन्त-अनन्त काल में अनेक संयोग प्राप्त हुए परन्तु तूने अन्तर में डुबकी नहीं लगायी! तू अकेला ही है; सुख-दुःख भोगनेवाला, स्वर्ग या नरक में गमन करनेवाला केवल तू अकूला ही है!

''मरता अकेला जीव एवं जन्म एकाकी करे।
पाता अकेला ही मरण अरु मुक्ति एकाकी करे॥''

—तू अकेला ही मोक्ष जानेवाला है, इसलिए तू आत्मदर्शन प्रगट कर।

गुरु की वाणी सुनकर विचार कर, प्रतीति कर और स्थिर हो; तो तुझे अनन्त ज्ञान एवं सुख का धाम ऐसे निज आत्मा के दर्शन होंगे॥२१४॥

सद्गुरु के उपदेशरूप निमित्त में (निमित्तपने की) पूर्ण शक्ति है, परन्तु तू तैयार न हो तो?... आहा..हा..! धर्मात्मा, सन्त और केवली ने तो वीतरागभाव बताया। आहा..हा..! परन्तु वह तो निमित्त से बताया, किन्तु तू वीतरागभाव प्रगट न करे तो तुझे निमित्त भी कहाँ आया? आहा..! देव-गुरु और शास्त्र तीनों वीतरागता उत्पन्न करने का उपदेश देते हैं। आहा..हा..! वह निमित्त है, निमित्त में पूर्ण शक्ति है, इस अपेक्षा से निमित्त। **परन्तु तू तैयार न हो तो?...** आहा..हा..! उन्होंने आज्ञा की है कि वीतरागता उत्पन्न कर और ऐसा पुरुषार्थ न हो... **तू आत्मदर्शन प्रगट न करे तो?** आहा..हा..! पूर्णानन्द के नाथ की दृष्टि न करे, दर्शन न करे तो क्या? आहा..हा..!

समवसरण में अनन्त बार वाणी सुनी और स्वयं कथन भी किया। 'सब शास्त्रन के नय धारि हिये, मत खंडन मंडन भेद लिये।' 'सब शास्त्रन के नय धारि हिये, मत खंडन मंडन भेद लिये। वह साधन बार अनन्त कियौ...' आहा..हा..! वह साधन अनन्त बार

किया। 'तदपि कछु हाथ हजू न पर्‌यो।' आहा..हा..! वीतरागभाव बिना वीतराग दर्शन नहीं होता। समझ में आया? वीतरागी पर्याय बिना वीतरागी स्वरूप के दर्शन नहीं होते। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं, भाई! **अनन्त-अनन्त काल में अनेक संयोग प्राप्त हुए...** आहा..हा..! समवसरण में गया, गुरु मिले, तीर्थंकर मिले, वाणी मिली। आहा..हा..! **परन्तु तूने अन्तर में डुबकी नहीं लगायी!** आहा..हा..! सम्यग्दर्शन, ज्ञान में-ध्यान में होता है। आहा..हा..! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र किस प्रकार प्रगट होते हैं? '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा**' आहा..हा..! द्रव्यस्वभाव का ध्यान करने से, निर्विकल्प ध्यान करने से, अन्तर डुबकी मारने से (प्रगट होते हैं)। आहा..हा..! ऐसा सुनने से या शास्त्र से या ज्ञान बहुत हुआ, इसलिए प्रगट हो जायेगा - ऐसी वस्तु नहीं है। आहा..हा..! बाहर का ध्यान छोड़कर, अन्तरस्वरूप को ध्येय बनाकर, पूर्णानन्द के नाथ ध्येय बनाकर, ध्येय को ध्यान का विषय बनाकर.. आहा..हा.! तो तुझे सम्यग्दर्शन होगा। **अन्तर में डुबकी नहीं लगायी!**

तू अकेला ही है;... प्रभु! तू तो अकेला है। आहा..हा..! **सुख-दुःख भोगनेवाला, स्वर्ग या नरक में गमन करनेवाला केवल तू अकेला ही है!** आहा..हा..!

''मरता अकेला जीव एवं जन्म एकाकी करे।
पाता अकेला ही मरण अरु मुक्ति एकाकी करे॥''

आहा..हा..! **तू अकेला ही मोक्ष जानेवाला है,...** अकेला आनन्द की दशा प्राप्त करके मुक्त होनेवाला है। कोई सम्बन्ध है नहीं। **इसलिए तू आत्मदर्शन प्रगट कर।** आहा..हा..!

गुरु की वाणी सुनकर विचार कर, प्रतीति कर... अन्दर में। **और स्थिर हो;...** ज्ञान कर, श्रद्धा कर, और स्थिर हो, ऐसे तीन। **तो तुझे अनन्त ज्ञान एवं सुख का धाम...** अनन्त ज्ञान और सुख का धाम **ऐसे निज आत्मा के दर्शन होंगे।** आहा..हा..! ऐसी बात है। कठोर लगे। एक-एक शब्द में बहुत भरा है! यह तो अभी २१४ हुए, कुल ४३२ बोल हैं। द्रव्यदृष्टि प्रकाश में की अपेक्षा थोड़े हैं। थोड़े छोटे-छोटे हैं। इसलिए ६४५ हुए। ६४५ न? ६४५ हैं। परन्तु थोड़े-थोड़े शब्द हैं, ये ४३२ हैं परन्तु बहुत पृष्ठ हैं।

विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ला-३, मंगलवार, दिनाङ्क ०५-०९-१९७८
वचनामृत-२१५-२१६-२१७ प्रवचन-८६

मुमुक्षु जीव शुभ में लगता है, परन्तु अपनी शोधक वृत्ति बह न जाय— अपने सत्स्वरूप की शोध चलती रहे, इस प्रकार लगता है। शुद्धता का ध्येय छोड़कर शुभ का आग्रह नहीं रखता।

तथा वह 'मैं शुद्ध हूँ, मैं शुद्ध हूँ' करके पर्याय की अशुद्धता को भूल जाय—स्वच्छन्द हो जाय - ऐसा नहीं करता; शुष्कज्ञानी नहीं हो जाता, हृदय को भीगा हुआ रखता है॥२१५॥

वचनामृत। यह आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो देखा है और कहा है, त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव सर्वज्ञ प्रभु ने पूर्ण स्वरूप आनन्द और पूर्ण ज्ञानघन की दृष्टि करना - ऐसा कहा है। तो सम्यग्दर्शन होगा। किसी क्रियाकाण्ड, दया, दान और व्रत-भक्ति के परिणाम धर्म नहीं हैं। वे धर्म नहीं और धर्म का कारण भी नहीं। कठिन बात, भाई! आहा..हा..! अन्तर में भगवान पूर्ण आनन्द, ध्रुवधाम-स्थान जिसके.. आहा..हा..! उस पर दृष्टि करे, ध्रुव को ध्येय बनाकर दृष्टि में जो सम्यग्दर्शन होता है, वह त्रिकाली आनन्द का अनुभव होता है, तब सम्यग्दर्शन होता है। आहा..! धर्म की पहली सीढ़ी। आहा..!

मुमुक्षु जीव शुभ में लगता है,... मुमुक्षु जीव को शुभभाव आते हैं परन्तु उन शुभभाव पर जोर नहीं देना। **परन्तु अपनी शोधक वृत्ति बह न जाय...** आहा..हा..! मैं चैतन्य पूर्ण आनन्द शुद्ध वस्तु हूँ - ऐसी शोधक वृत्ति न जाये और शुभभाव हो। समझ में आया? श्रवण करने में, वाँचन में, भक्ति आदि में शुभभाव तो आते हैं, परन्तु मुमुक्षु जीव को शुभभाव होने पर भी, उसकी शोधकवृत्ति, शुद्ध की शोधकवृत्ति होती है। आहा..हा..! ऐसा काम बहुत कठिन जगत को।

शोधक वृत्ति बह न जाय—अपने सत्स्वरूप की शोध चलती रहे... आहा..हा..! अन्तर भगवान पूर्ण अनन्त शान्ति और आनन्द का धाम प्रभु की मुमुक्षु जीव को सम्यग्दर्शन होने के पहले भी.. आहा..हा..! शुभभाव आते हैं, तथापि वहाँ शुद्ध को शोधने की दृष्टि चलती है। आहा..हा..! ऐसा काम है, कठिन काम। एक तो संसार के काम के कारण बेचारा निवृत्त नहीं है। उसमें पाँच-पचास लाख या करोड़, दो करोड़ मिले तो हो गया, मर गया वहाँ। मानो हम पैसेवाले, हमें लक्ष्मी अरे! प्रभु! क्या है तू? राग जो शुभ है, वह भी तेरी वस्तु नहीं। आहा..हा..! शुभराग आता है परन्तु धर्मी जीव होने की योग्यतावाले मुमुक्षु की अन्तर शुद्धस्वभाव की शोधकवृत्ति नहीं जाती। आहा..हा..! चाहे जो प्रसंग हो, परन्तु उसे अन्तर शुद्ध चैतन्य.. आहा..हा..! पूर्णानन्द का नाथ परमात्मस्वरूप विराजमान आत्मा.. यह कैसे जँचे? अन्तर वस्तु भगवान परिपूर्ण स्वरूप आत्मा है। शुभभाव आने पर भी मुमुक्षु की अन्तर शुद्ध सत्ता की शोधक वृत्ति नहीं जाती। आहा..हा..! समझ में आया?

मुमुक्षु : शोधकवृत्ति अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तर सन्मुख का झुकाव। आहा..हा..! मार्ग, भाई! अलौकिक मार्ग है, प्रभु! सम्यग्दर्शन पाने के पहले भी... सम्यग्दर्शन होता है, वह तो त्रिकाली आनन्द के नाथ का अनुभव और अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है, तब सम्यग्दर्शन होता है। आहा..हा..! अभी तो धर्म की पहली सीढ़ी। चारित्र की बात तो बापू! वह तो कोई अलग चीज़ है। आहा..हा..!

यहाँ कहते हैं कि मुमुक्षु उसे कहते हैं, मोक्ष का अभिलाषी-उत्कण्ठित ऐसा जीव उसे कहते हैं कि शुभभाव होने पर भी वह दया, दान, व्रत आदि-भक्ति आदि, प्रभु का नाम स्मरण आदि शुभभाव है, वह धर्म नहीं है, वह धर्म का कारण भी नहीं है। आहा..हा..! ऐसी बात।

मुमुक्षु : अशुभ से बचा उतना तो धर्म हुआ न?

पूज्य गुरुदेवश्री : अशुभ से (बचना) उसे कहाँ है? मिथ्यादृष्टि जाने के बाद अशुभ से बचने को शुभ आता है। अभी मिथ्यात्व का अशुभ है, वहाँ बचने का किससे? सूक्ष्म बात है, भाई! वर्तमान में तो बहुत गड़बड़ हो गयी है, भाई! जिन्दगी चली जाती है। आहा..हा..!

यह भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का सागर अन्दर.. आहा..हा..! उसकी शोधकवृत्ति मुमुक्षु को शुभराग के काल में भी.. आहा..हा..! नहीं जाती। आहा..हा..! अरे रे! यह कहाँ? जगत को कहाँ फुरसत है? पाप, पूरे दिन पाप, पाप और पाप। यहाँ तो पुण्य के समय में भी शोधकवृत्ति की बात करते हैं। आहा..हा..! समझ में आया? भगवान! शुद्ध चैतन्यसत्ता परमसत्ता प्रभु की-आत्मा की, उसे अशुभभाव के समय तो ठीक, वह तो पाप है, वहाँ तो प्रेम नहीं होना चाहिये परन्तु शुभभाव में भी, उस काल में भी उसका प्रेम नहीं। अन्तर शोधक वृत्ति में जिसकी दृष्टि जाती है। आहा..हा..! ऐसी बात अब। अभी पकड़ना कठिन (पड़ता है)। आहा..हा..!

अपने सत्स्वरूप की शोध चलती रहे... आहा..हा..! अन्दर चैतन्य भगवान को शोधने को.. आहा..हा..! एक लड़का खो गया तो कितनी शोध करते हैं - कहाँ गया? कहाँ गया? कहाँ है? आहा..हा..! इसी प्रकार भगवान आत्मा, राग के प्रेम में भगवान आत्मा स्वयं को भूल गया। आहा..! अब जब अन्दर मुमुक्षुता होती है, तब शुभराग के काल में भी अन्तर की शोधकवृत्ति (चली) नहीं जाती। आहा..हा..! वह शुभभाव में तल्लीन नहीं होता। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं। अनजाने लोगों को तो ऐसा लगे कि यह किस प्रकार का धर्म होगा?

मुमुक्षु : जैनधर्म तो ऐसा कभी सुना नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा सुना नहीं, भाई! जैनधर्म कोई पक्ष नहीं, कोई वाड़ा नहीं, वह तो वस्तु का स्वरूप है। आहा..हा..! जिनस्वरूपी भगवान आत्मा, त्रिकाल जिनस्वरूप, राग के काल में भी जिनस्वरूप की शोधकवृत्ति, वीतरागस्वभावी आत्मा की शोधकवृत्ति नहीं जाती। आहा..हा..! शुद्धता का ध्येय छोड़कर शुभ का आग्रह नहीं रखता। आहा..हा..! मुमुक्षु है परन्तु शुद्ध चैतन्य भगवान परिपूर्ण पवित्र प्रभु का ध्येय छोड़कर शुभ का आग्रह नहीं रखता कि मुझे शुभभाव आया तो मेरा हित होगा और इस शुभभाव से मुझे आत्मा का अनुभव, दर्शन होगा - ऐसा आग्रह नहीं रखता। आहा..हा..!

तथा वह 'मैं शुद्ध हूँ, मैं शुद्ध हूँ' करके पर्याय की अशुद्धता को भूल जाय... आहा..हा..! मैं त्रिकाली शुद्ध हूँ—ऐसा होने पर भी, पर्याय में अशुद्धता है, वह भूल न जाये, स्वच्छन्द न हो जाये। आहा..हा..! समझ में आया? आहा..! ऐसा मार्ग है। मैं शुद्ध हूँ, मैं शुद्ध हूँ (-ऐसा) करके पर्याय अर्थात् अवस्था में अशुद्धता है, वह भूल जाये, **स्वच्छन्द**

हो जाय - ऐसा नहीं करता;... आहा..हा..! अशुद्धता है तो कहाँ है? मुझमें कहाँ है? ऐसे पर्याय में अशुद्धता है, वह है ही नहीं और स्वच्छन्द हो जाये (ऐसा नहीं करे)। आहा..हा..!

मुमुक्षु : स्वच्छन्द अर्थात् क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वच्छन्द अर्थात् विकारी पर्याय मेरी नहीं-ऐसा मानकर विकारी पर्याय का सेवन करे, वह स्वच्छन्द है। आहा..हा..! ऐसे तो स्वच्छन्द का अर्थ स्वतन्त्रता होता है। समयसार में है। वह अर्थ यहाँ नहीं। यहाँ स्वच्छन्द के अर्थ में अपने स्वभाव में (शुद्धता है,) उसे भूलकर पर्याय में अशुद्धता है, उसे लक्ष्य में नहीं रखकर, चाहे जितनी अशुद्धता हो, उसे सेवन करे.. आहा..हा..! ऐसा कि ज्ञानी का भोग निर्जरा का हेतु है - ऐसा कहा है तो वह ऐसा मान ले कि मुझे यह भोग होता है... आहा..हा..! उससे निर्जरा होती है। ऐसा नहीं है, प्रभु! विषय-वासना का भाव, भोग का भाव अकेला पाप है। आहा..हा..!

यहाँ तो शुभभाव में होने पर भी, शुद्धता का ध्येय-शोधकपना (चला) न जाये और शुद्धता का ध्येय करता है और पर्याय में अशुद्धता है ही नहीं, चाहे जितनी अशुद्धता हो, मुझे क्या है? ऐसे स्वच्छन्दी न हो जाये। आहा..हा..! ऐसा है, भाई! **शुष्कज्ञानी नहीं हो जाता,...** श्रीमद् में आता है न? 'कोई क्रिया जड़ हो रहे' - कोई राग की क्रिया में, जड़ में,.. राग, जड़ है; चैतन्य नहीं, (उसमें रह गये)। 'शुष्कज्ञान में कोई' - अकेली ज्ञान के उघाड़ की बातें करे और अन्दर में स्वच्छन्द भी सेवन करे। आहा..हा..! (वह) निश्चयाभासी है। आहा..! चाहे जैसे पाप के परिणाम आवे, उसकी जिसे दरकार नहीं.. आहा..हा..! वह स्वच्छन्दी है, स्वतन्त्र नहीं। आहा..हा..! पाप हुआ तो हुआ, भोग हुआ तो हुआ - ऐसी बेदरकारी न करे। आहा..हा..! समझ में आया? यह तो भाई! जन्म-मरणरहित होने की बात है। आहा..हा..! बाकी तो ठीक सब करते हैं, हो.. हा।

स्वच्छन्द हो जाय - ऐसा नहीं करता; शुष्कज्ञानी नहीं हो जाता,.. ज्ञान की बातें करे परन्तु अन्दर जरा भी राग की एकता तोड़े नहीं। आहा..हा.! समझ में आया? यह कहा न? 'कोई क्रिया जड़ हो रहे'—दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वह तो राग है। 'शुष्कज्ञान में कोई' कोई बातों में चढ़ गये हैं। शास्त्र का पठन करके बातों में चढ़ गये कि ऐसा होता है और वैसा होता है। पाप के परिणाम कितने तीव्र होते हैं, उनकी दरकार नहीं। आहा..हा..! वह तो शुष्कज्ञानी है - कोरा ज्ञानी है, यथार्थ ज्ञानी नहीं। आहा..हा..! 'करुणा उपजै जोई'

ऐसा आता है न ? 'कोई क्रिया जड़ हो रहे, शुष्कज्ञान में कोई, माने मारग मोक्ष का...' आहा..हा.. ! हम भी मोक्ष के मार्ग में हैं। अरे ! प्रभु ! आहा..हा.. ! पर से उदासीनता आयी नहीं... आहा..हा.. ! और स्वच्छन्द से.. आहा..हा.. ! यह एक लड़का मुझे हुआ.. बहुत प्रसन्न-प्रसन्न (हो जाता है)। आहा..हा.. ! यह पुत्र कमाऊ हुआ तो प्रसन्न-प्रसन्न.. क्या है यह स्वच्छन्द ? मुझे क्या है ? मैं तो शुद्ध हूँ न !

मुमुक्षु : कमाऊ पुत्र हो तो नाराज होना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसका कमाऊ पुत्र था ? यह सुमनभाई कमाऊ हुआ। ६००० और ८००० का वेतन - ऐसा कहते हैं। ये बात करते हैं, हों ! किसका पुत्र ? आहा..हा.. !

जहाँ शुभराग भी अपना नहीं वहाँ अशुभराग में जुड़कर मुझे मजा आता है, मैं तो शुद्ध हूँ, मैं कहाँ अशुद्धता में आया हूँ ? भाई ! अशुद्ध का सेवन करके नरक में जायेगा, बापू ! तिर्यंच में अवतार होगा। आहा..हा.. ! वहाँ कुदरत के नियम से विरुद्ध करेगा तो कुदरत नहीं छोड़ेगी। आहा..हा.. ! बहुत कठिन काम, भाई ! आहा.. !

हृदय को भीगा हुआ रखता है। देखा ? हृदय को शुष्कज्ञानी न हो जाये, भीगा हुआ, उदासीन रखता है। आहा..हा.. ! यह २१५ (बोल पूरा) हुआ। यह मुमुक्षु की दशा की योग्यता कही है। आहा..हा.. ! २१६, भाई ! यह तो सर्वज्ञ परमात्मा ने कहे हुए पन्थ की बात है, प्रभु ! यह कोई वार्ता-कथा नहीं। भगवत्स्वरूप प्रभु को प्राप्त करने की विधि क्या है, वह बात है। आहा..हा.. ! सम्यग्दर्शन में, हों !

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवत्स्वरूप है, वह इसकी प्रतीति में कहाँ आया है ? यह तो भगवत्स्वरूप है, वह तो भाषा में ख्याल आया। आहा..हा.. ! भगवत्स्वरूप परमात्मा की अस्ति प्रतीति में, ज्ञान में आवे, उसे भगवत्स्वरूप है। जिसे ज्ञान में राग और पर्याय भासित होती है, उसे अन्दर भगवतस्वरूप कहाँ है ? है तो है, परन्तु उसे कहाँ प्रतीति है ? समझ में आया ? यह तो सबेरे आयेगा न ? आहा..हा.. !

आत्मा की ज्ञान की पर्याय में.. आहा..हा.. ! भगवान पूर्णानन्दस्वरूप का ज्ञान अज्ञानी को भी होता है। आहा..हा.. ! क्या कहते हैं। अज्ञानी की ज्ञान की पर्याय भी, बाल-गोपाल - बालक से वृद्ध हो, स्त्री हो, पुरुष हो, नपुंसक हो.. आहा..हा.. ! उसका आत्मा,

आहा..हा..! उसकी ज्ञान की पर्याय में, पर्याय का स्व-पर प्रकाशक स्वभाव होने से, पर्याय में भगवान ही भासित होता है, भगवान का ही ज्ञान पर्याय में होता है। आहा..हा..! परन्तु अज्ञानी, राग और बन्ध के वश, परद्रव्य के वश होकर, पर्याय में स्वद्रव्य भासित होता है, उसकी बेदरकारी करता है। आहा..हा..! समझ में आया? क्योंकि ज्ञान की पर्याय जो है, तो उस पर्याय का स्वभाव तो स्व-परप्रकाशक है। स्वप्रकाशक ज्ञान की पर्याय में पूरा भगवान पूर्णानन्द का ज्ञान, पर्याय में होता है। आहा..हा..! अज्ञानी की पर्याय में भी स्वद्रव्य का ज्ञान तो होता ही है, परन्तु राग के बन्ध के वश दृष्टि होने से, अबन्ध भगवान पर्याय में ज्ञात होने पर भी वह जानता नहीं है। आहा..हा..! समझ में आया? क्या कहा? कल या परसों के दिन आयेगा।

जो वास्तव में संसार से थक गया है, उसी को सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। वस्तु की महिमा बराबर ख्याल में आ जाने पर वह संसार से इतना अधिक थक जाता है कि 'मुझे कुछ भी नहीं चाहिये, एक निज आत्मद्रव्य ही चाहिये' ऐसी दृढ़ता करके बस 'द्रव्य सो ही मैं हूँ' ऐसे भावरूप परिणमित हो जाता है, अन्य सब निकाल देता है।

दृष्टि एक भी भेद को स्वीकार नहीं करती। शाश्वत द्रव्य पर स्थिर हुई दृष्टि यह देखने नहीं बैठती कि 'मुझे सम्यग्दर्शन या केवलज्ञान हुआ या नहीं'। उसे—द्रव्यदृष्टिवान जीव को—खबर है कि अनन्त काल में अनन्त जीवों ने इस प्रकार द्रव्य पर दृष्टि जमाकर अनन्त विभूति प्रगट की है। द्रव्यदृष्टि होने पर, द्रव्य में जो-जो हो वह प्रगट होता ही है; तथापि 'मुझे सम्यग्दर्शन हुआ, मुझे अनुभूति हुई' इस प्रकार दृष्टि पर्याय में चिपकती नहीं है। वह तो प्रारंभ से पूर्णता तक, सबको निकालकर, द्रव्य पर ही जमी रहती है। किसी भी प्रकार की आशा बिना बिलकुल निस्पृहभाव से ही दृष्टि प्रगट होती है॥२१६॥

संसार से थक गया है, उसी को सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। आहा..हा..! पर्याय में भगवान पूर्णानन्द भासित होता है, तथापि उसकी दृष्टि पर्याय और राग पर होने से वह भासित होने पर भी उसे भासित नहीं होता। आहा..हा..! समझ में आया? दृष्टि में अकेला परप्रकाशक रह गया। परप्रकाश में स्वप्रकाशक ज्ञात होता है, वह रहा नहीं। आहा..हा..!

पर्याय को और शुभ-अशुभराग को जानने में स्व-परप्रकाशक नहीं आया। स्वप्रकाशक नहीं आया, अकेला परप्रकाशक आया। जानता है, पर्याय स्व और परप्रकाशक ऐसा पर्याय के स्वभाव में है। आहा..हा..! तथापि स्व की ओर का लक्ष्य नहीं, इस कारण अकेली परप्रकाशक पर्याय में स्वयं को मानता है। आहा..हा..! वह मिथ्यात्व है। आहा..हा..! गजब बात है। ऐसी बात!

दिगम्बर सन्त, केवलज्ञानी के पथानुगामी, प्रभु! वे सर्वज्ञ के पथानुगामी हैं। वे अल्प काल में सर्वज्ञता प्राप्त करनेवाले हैं। आहा..हा..! सर्वज्ञ की वाणी अनुसार अन्तर में जो अनुभव हुआ, तो वह जगत को प्रसिद्ध करते हैं। आहा..हा..! कि अपनी पर्याय में तेरी चीज़ तो ज्ञात होती है, परन्तु तेरा लक्ष्य राग और पर्याय पर होने से, परद्रव्य पर तेरा लक्ष्य होने से, स्वद्रव्य तेरे ज्ञान में जानने में आने पर भी जाना नहीं। आहा..हा..! अब ऐसी बातें! इसकी अपेक्षा दया पाले, व्रत करना, णमो अरिहंताणं, इच्छामि पडिक्कमणां... जाओ, तस्स मिच्छामि दुक्कडम्... एक जगह से दूसरी जगह जीव रखा हो तो मिच्छामि दुक्कडम्। वहाँ कहाँ धर्म आया? पावतकाय मणेणं, मोणेणं-तस्सूतरी आता है न श्वेताम्बर में? बस.. मिथ्यात्व आदि सबसे रहित होने को मैं कायोत्सर्ग करता हूँ। आहा..हा..! परन्तु अभी मिथ्यात्व क्या? उससे रहितपना क्या है? इसकी खबर नहीं। समझ में आया? और लोगस्स में ऐसा बोले 'सिद्धा सिद्धि मम दिस्सन्तु' - हे सिद्ध भगवानों! मुझे सिद्धपना दिखाओ। आहा..हा..! क्या है यह? आहा..हा..! सब किया था या नहीं तुमने? किया था? आहा..हा..! हमने भी दुकान पर सब किया था। शाम को प्रतिक्रमण करते थे। यह संवत्सरी आती है न? क्या कहलाता है? श्वेताम्बर के पर्यूषण, अपवास करके, आठ दिन में चार उपवास, हों! चतुर्विध आहारत्याग। पानी नहीं, पानी की बूँद नहीं, चतुर्विध (आहार त्याग) और शाम को प्रतिक्रमण। सामायिक करके मैं प्रतिक्रमण कराता था। (संवत्) १९६५-६६ की बात है। कुछ भान नहीं होता। यह क्रिया धर्म है, मैंने धर्म किया, प्रतिक्रमण किया। आहा..हा..! फिर गायन बोलते, देखो रे देखो, जैनों कैसे व्रतधारी! व्रतधारी-ऐसा भजन आता है। 'जम्बूस्वामी', 'जम्बूस्वामी' का। दुकान पर निवृत्ति थी, भान कुछ नहीं होता। आहा..हा..! अरे! प्रभु कौन है? यह बोलता हूँ, वह भाषा किसकी है? और विकल्प आता है, वह क्या चीज़ है? आहा..हा..!

यहाँ कहते हैं **वास्तव में संसार से थक गया है,...** आहा..हा..! चौरासी लाख योनि

में अवतार करते हुए तुझे प्रभु! अनन्त काल गया, तथापि तुझे थकान नहीं लगी अभी। आहा..हा..! तिर्यंच के भव, निगोद के भव, एक श्वास में अठारह भव निगोद के, आहा..हा..! वे कैसे भव होंगे? आहा..हा..! उसे राग का, भव का कितना प्रेम होगा! आहा..हा..! यह स्त्री होती है न? आठ, दस, साडला (साडियाँ) रखती हैं। साडला को क्या कहते हैं? साड़ी। बहुत रखती हैं। भोजन बनाते समय अलग साड़ी, जंगल जाये तो अलग साड़ी, सूतक हो-कोई मर गया हो तो अलग साड़ी। कपड़े बहुत बदलते हैं। छोटी उम्र में सब देखा है, हों! आहा..हा..! बदलाबदल करते हैं। ऐसे जोड़े (जूते) भी (बदलते हैं) भावनगर दरबार बड़े थे। मर गये, फिर तीन हजार जोड़े (जूते) निकले। अलग-अलग प्रकार के। बैठने में, सोने में, चलने में, सोने के समय सब अलग-अलग प्रकार के। फेरफार.. फेरफार। कपड़े भी बदला करे। इसी प्रकार अनादि से अज्ञानी भव को बदला करता है। आहा..हा..! अर र! यदि अब तुझे थकान लगी हो तो, आहा..! तुझे थकान लगी हो तो। आहा..!

उसे ही **सम्यग्दर्शन प्रगट होता है।** आहा..! बाहर से समेटकर अन्दर में जाना। आहा..हा..! भगवान पूर्णानन्द का नाथ जहाँ विराजता है, वहाँ दृष्टि ले जाना और उसका अनुभव करना, आहा..हा..! तब संसार की थकान उतर जायेगी। भव का अन्त आयेगा। आहा..हा..! समझ में आया? इसके अतिरिक्त चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति, दान के भाव किये, वह सब संसार है। आहा..हा..! समझ में आया?

वस्तु की महिमा बराबर ख्याल में आ जाने पर वह संसार से इतना अधिक थक जाता है... आहा..हा..! भगवान आत्मा, अनन्त अपरिमित शक्ति का / गुण का भण्डार, स्वभाव का भण्डार भगवान है। अपरिमित स्वभाव, बापू! आहा..हा..! पर्याय में उसकी जिसे महिमा आती है.. आहा..हा..! वह भगवान गहरे-गहरे तल में कितनी शक्ति रखता है!! ध्रुव में कितनी शक्ति है? अनन्त अपरिमित। आहा..हा..! और वह नित्य। आहा..हा..! **संसार से इतना अधिक थक जाता है कि 'मुझे कुछ भी नहीं चाहिये,...'** आहा..हा..! मुझे भगवान पूर्णानन्द के नाथ के अतिरिक्त मुझे कुछ नहीं चाहिए। आहा..हा..! दुनिया प्रशंसा करे, निन्दा करे - वह तो जगत की चीज़ है, मुझे क्या? आहा..हा..! समझ में आया?

यहाँ इतना थक गया कि मुझे कुछ भी नहीं चाहिए। **'एक निज आत्मद्रव्य ही**

चाहिये'... आहा..हा..! भगवान आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप जो द्रव्यस्वभाव, वह एक ही चाहिये। वस्तु त्रिकाली ज्ञायकभाव, अनन्त गुण का सागर प्रभु, आहा..हा..! वह एक ही चाहिये। **ऐसी दृढ़ता करके... 'एक निज आत्मद्रव्य ही चाहिये' ऐसी दृढ़ता करके बस 'द्रव्य सो ही मैं हूँ'...** आहा..हा..! परवस्तु तो मैं नहीं, दया, दान के विकल्प भी मैं नहीं; एक पर्याय भी मैं नहीं। आहा..हा..! ऐसे एक गुणरूप भी मैं नहीं; अनन्त गुण का सागर एक द्रव्य भगवान, वही मैं हूँ। **ऐसे भावरूप परिणमित हो जाता है,...** ऐसे पर्याय में निर्मल सम्यग्दर्शन की पर्यायरूप से परिणम जाता है। आहा..हा..! समझ में आया? **ऐसे भावरूप..** मैं शुद्धद्रव्य एकरूप हूँ, वही मुझे चाहिये – ऐसी दृढ़ता करके, ऐसे भावरूप से परिणम जाता है। **अन्य सब निकाल देता है।** आहा..हा..! चाहे तो शुभराग हो, उसे भी छोड़ देता है। वह मेरी चीज़ नहीं। एक समय की पर्याय में क्षयोपशमज्ञान हो, वह भी मुझे नहीं चाहिये। आहा..हा..! मुझे तो पूर्ण ज्ञायकभाव / द्रव्यस्वभाव एक ही चाहिये। आहा..हा..! **अन्य सब निकाल देता है।** पर्याय भी अपना आश्रय छोड़ देती है – पर्याय का आश्रय छोड़ देती है, अकेला त्रिकाल ज्ञायकभाव... (का आश्रय करती है)। आहा..हा..! तब उसे सम्यग्दर्शन होता है। आहा..हा..!

यहाँ तो कहते हैं, भगवान की भक्ति करो, स्मरण करो, जाप करो, उनका ध्यान करो, भगवान का (ध्यान करो) तुम्हें आत्मा प्राप्त हो जायेगा। अरे भाई! उस विकल्प में कहाँ आत्मा है? विकल्प में तो अनात्मा है। आहा..हा..! विकल्प से भी पार भगवान निर्विकल्प चीज़ की प्राप्ति में उस ओर की दृष्टि हो तो राग और पर्यायबुद्धि छूट जाती है। आहा..हा..! शास्त्र की पूजा करने से मेरा कल्याण होगा, यह दृष्टि छूट जाती है। शास्त्र की पूजा करना, वह भी एक शुभभाव राग है। आहा..हा..! जो वाणी को पूज्य कही है, दूसरे श्लोक में, परन्तु वह व्यवहार से पूज्य है। आहा..हा..! समझ में आया? ये सब शास्त्र लिखे हैं, पृष्ठ होते हैं, जयभगवान..! भगवान की प्रतिमा तो शास्त्र से भी विशेष है। उनके प्रतिबिम्ब में तो शान्त.. शान्त.. शान्त.. आहा..हा..! दिखता है। वीतराग, हलचल नहीं; स्थिर बिम्ब दिखता है। आहा..हा..! वह भी शुभभाव है। समझ में आया? उसे दृष्टि में से निकाल देता है, वह मेरा नहीं है। आहा..हा..!

दृष्टि एक भी भेद को स्वीकार नहीं करती। आहा..हा..! क्या कहते हैं? सम्यग्दृष्टि (की) जो दृष्टि है, वह निमित्त को स्वीकार नहीं करती, राग को स्वीकार नहीं करती, पर्याय

को स्वीकार नहीं करती। आहा..हा..! भेद को स्वीकार नहीं करती। गुण-गुणी के भेद को भी दृष्टि स्वीकार नहीं करती। आहा..हा..! भगवान पूर्णानन्द का नाथ अभेदवस्तु (है)। दृष्टि उस अभेद को स्वीकार करती है। आहा..हा..! शुभभाव आता है, उसका स्वीकार करे और उससे लाभ होगा (-ऐसा माने, वह तो) मिथ्यादर्शन है। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं, भाई!

अभी तो देखो न! यह हार्टफेल न? क्या कहलाता है? हार्ट का रोग कितनों को सुनते हैं? जवान लोगों को हार्ट का रोग है, अमुक है। आहा..! परन्तु हार्ट का रोग तुझे लागू पड़ गया है? राग के प्रेम में तेरा हार्टफेल हो गया है। आहा..हा..!

दृष्टि एक भी भेद को स्वीकार नहीं करती। आहा..हा..! **शाश्वत द्रव्य पर स्थिर हुई दृष्टि...** ऐसा देखने नहीं बैठती.. आहा..हा..! त्रिकाली वस्तु सामान्य पर दृष्टि (टिकी हुई है), वह दृष्टि ऐसा स्वीकार नहीं करती कि '**मुझे सम्यग्दर्शन या केवलज्ञान हुआ या नहीं**'। आहा..हा..! क्योंकि सम्यग्दर्शन और केवलज्ञान तो पर्याय है। आहा..! ऐसी बात है, प्रभु! कठिन पड़े, इसलिए लोग सोनगढ़ के नाम से बेचारे विरोध करते हैं। अरे! प्रभु! क्या करता है? भाई! तेरे स्वरूप की प्राप्ति की बात है न, नाथ! तू किसका विरोध करता है? भाई! आहा..हा..! ऐसा कहते हैं, यह व्यवहार से होता है (ऐसा) व्यवहार से होता है,-ऐसा तो कहते नहीं, लोप कर डालते हैं। यहाँ तो भेददृष्टि का भी स्वीकार नहीं। आहा..हा..! व्यवहारक्रिया दया,दान की तो बात क्या करना? परन्तु गुण-गुणी का भेद भी दृष्टि का विषय नहीं है। आहा..हा..! ऐसा है, प्रभु! आहा..हा..!

जिसके ध्येय में, दृष्टि में तो अकेला द्रव्य अभेद दिखता है। दिखता है अर्थात् श्रद्धा में आता है, प्रतीति में आता है और ज्ञात होता है। आहा..हा..! आहा..हा..! शास्त्र का दृष्टान्त देते हैं कि इसमें ऐसा कहा है न? देखो! इसमें कहा है। भिन्न साध्य-साधन कहा है न, पंचास्तिकाय में? भगवान! वह किस अपेक्षा से कहा है? भाई! वह तो निमित्त कैसा था, उसका ज्ञान कराया है परन्तु उससे निश्चय होता है - ऐसा नहीं है। आहा..! अरे रे! शास्त्र के अर्थ में से भी अपनी दृष्टि को पोषण मिले - ऐसा अर्थ करते हैं परन्तु वस्तु दृष्टि का पोषण कैसे हो - उसकी खबर नहीं है। आहा..हा..! अरे रे!

दृष्टि, भेद को स्वीकार नहीं करती। आहा..हा..! द्रव्यदृष्टि प्रकाश है न? सोगानी (जी की तत्त्वचर्चा है) मिला है? द्रव्यदृष्टि प्रकाश मिला है न? भाई! समझ में आया? आहा..हा..! उससे भी यह पुस्तक अलौकिक है। आहा..हा..! सम्यग्दृष्टि, उस भेद को

भी दृष्टि स्वीकार नहीं करती। राग नहीं, निमित्त भगवान का तो अपने में स्वीकार नहीं, वह तो पर में है। राग भी अपने में नहीं, वह तो परद्रव्य है। अरे! निश्चय से तो पर्याय भी परद्रव्य है। आहा..हा..! इस प्रकार दृष्टि, द्रव्य को स्वीकार करने में पर्याय भी परद्रव्य है। पर्याय भेद है न? द्रव्य का त्रिकाली भेद है। आहा..हा..! तथापि उसके लक्ष्य में पर्याय है, अशुद्धता है, उसका तो लक्ष्य होना चाहिये। आहा..हा..! यह समयसार चौदहवी गाथा में आया है। आहा..! ऐसा भूल जाये कि पर्याय में अशुद्धता है ही नहीं तो मिटाना किसे? तो आत्मा का आश्रय लेकर अशुद्धता मिटती है, यह कहाँ रहा? न हो तो मिटना कहाँ रहा? आहा..हा..!

शाश्वत द्रव्य पर स्थिर हुई दृष्टि यह देखने नहीं बैठती कि आहा..हा..! **'मुझे सम्यग्दर्शन या केवलज्ञान हुआ या नहीं'।** वह तो पर्याय है। दृष्टि के विषय में सम्यग्दर्शन.. सम्यग्दर्शन की पर्याय भी सम्यग्दर्शन का विषय नहीं। निर्विकल्प सम्यग्दर्शन का विषय, निर्विकल्प सम्यग्दर्शन नहीं। आहा..हा..! तो उसका विषय शास्त्र, प्रतिमा और मन्दिर (तो कहाँ से होंगे)? आहा..हा..! गजब!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या हो? अफ्रीकावाले मन्दिर बनाते हैं न! पन्द्रह लाख का, नैरोबी में दो हजार वर्ष में नया है। विदेश में यह पहला मन्दिर है। नैरोबी (में) मुमुक्षु परिवार है, यहाँ के साठ घर हैं और सात-आठ घर तो करोड़पति हैं। दूसरे पन्द्रह-बीस, पच्चीस-पचास लाखवाले बहुत हैं। श्वेताम्बर को सबको लक्ष्य में आया कि मार्ग तो यह है। समझ में आया? कहाँ होगा? किस प्रकार होगा? 'जो जो देखी वीतराग ने सो सो होसी वीरा' आहा..हा..! 'अनहोनी कबहूं न होसी, काहे होत अधीरा' आहा..हा..! उसकी भी दृष्टि कहाँ? आहा..हा..! द्रव्य पर दृष्टि होना चाहिये। आहा..हा..! पर्याय होनी होगी वह होगी, उस पर भी दृष्टि नहीं - ऐसा कहते हैं और पर्याय हुई, उस पर भी दृष्टि नहीं। सम्यग्दर्शन हुआ और केवलज्ञान नहीं हुआ तो भी हुआ या नहीं हुआ, यह भी **द्रव्यदृष्टिवान जीव को—खबर है...** द्रव्यदृष्टिवाले जीव को खबर है कि **अनन्त काल में अनन्त जीवों ने...** अनन्त काल में अनन्त जीवों ने **इस प्रकार द्रव्य पर दृष्टि जमाकर...** वस्तु पर दृष्टि जमाकर.. आहा..हा..! **अनन्त विभूति प्रगट की है।** आहा..हा..! अन्दर में जो अनन्त-अनन्त सम्पत्ति है, आनन्द और ज्ञान और शान्ति की अनन्त सम्पत्ति पड़ी है, यह द्रव्यदृष्टि

करके सम्पत्ति की विभूति पर्याय में प्रगट की है। आहा..हा..! यह विभूति। यह पैसा-वैसा धूल है, यह तो श्मशान की हड्डियों की चमक है। आहा..हा..! समझ में आया?

मुमुक्षु : पूरी दुनिया पैसे के पीछे पागल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पागल है, पूरी दुनिया पागल है। ऐई! दस हजार का, पन्द्रह हजार का, बीस हजार का वेतन हो वहाँ, आहा..हा..! (हो जाता है) परन्तु है क्या? पैसा मेरा परमेश्वर और मैं पैसे का दास... मिथ्यादृष्टि है। आहा..हा..! यहाँ तो पर्याय में सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ। दृष्टि उसे भी स्वीकार नहीं करती। उस दृष्टि का जोर तो त्रिकाली ज्ञायक पर है। आहा..हा..! ऐसी बात है।

अनन्त काल में अनन्त जीवों ने... किया। **द्रव्यदृष्टि होने पर द्रव्य में जो-जो हो...** द्रव्य अर्थात् वस्तु जो अखण्ड अभेद है—ऐसी दृष्टि होने पर, उस अभेद में जो है, वह प्रगट होता है। है उसमें से, सत् में से सत् आता है। आहा..हा..! निर्मल सम्यग्दर्शन, निर्मल ज्ञान, निर्मल शान्ति, निर्मल आनन्द, वह विभूति वस्तु में है तो उसका अनुभव, प्रतीति करने से, सम्यग्दर्शन में वह विभूति प्रगट हो जाती है। आहा..हा..! **द्रव्य में जो-जो हो, वह प्रगट होता ही है;...** होता ही है। आहा..हा..! यह बातें, भाई! यह तो जिसे जन्म-मरण रहित होना हो, उसकी बात है। बाकी बाहर में प्रसन्न-प्रसन्न (करना हो, उसके लिये नहीं)। आहा..हा..! उसमें तो यहाँ तक आता है न? प्रवचनसार (में आता है)। अमृतचन्द्राचार्य! हमारे में अब क्षयोपशमज्ञान की भी आवश्यकता नहीं है। आहा..हा..! हमारे तो भगवान है, वहाँ जाना और स्थिर होना, एक ही बात है। आहा..! क्षयोपशम से भी बस। '**अलम्**' समझ में आया?

द्रव्यदृष्टि होने पर द्रव्य में जो-जो हो, वह प्रगट होता ही है; तथापि 'मुझे सम्यग्दर्शन हुआ, मुझे अनुभूति हुई' इस प्रकार दृष्टि, पर्याय में चिपकती नहीं है। पर्याय में चिपकती नहीं। आहा..हा..! समझ में आया? दृष्टि तो भगवान पूर्णानन्द प्रभु पर पड़ी है। यह पर्याय प्रगट हुई, उस पर चिपकती नहीं - रुकती नहीं। आहा..हा..! सम्यग्दर्शन का विषय अभेद पूर्णानन्द का नाथ दृष्टि के विषय में से हटता नहीं। आहा..हा..! यदि मध्यस्थता से बराबर सुने तो इसे ख्याल आवे कि वस्तु तो यह है, सत्य तो यह है। आहा..हा..! भले इसे एकान्त लगे और कठिन लगे। अनन्त काल में किया नहीं न, भाई! अनन्त काल से किया नहीं। आहा..हा..! दृष्टि द्रव्य पर देना, वह क्या है? दृष्टि क्या? और

द्रव्य पर देना क्या ? आहा..हा.. ! और दृष्टि प्रगट हुई, तथापि दृष्टि उस पर जोर नहीं देती कि मुझे सम्यग्दर्शन तो हुआ। आहा..हा.. ! तो लौकिक शास्त्र ज्ञान हुआ, उसकी तो बात ही कहाँ है ? शास्त्र के पठन का अभिमान (करे) कि मुझे ज्ञान हुआ... आहा..हा.. ! समझ में आया ? **इस प्रकार दृष्टि पर्याय में चिपकती नहीं है।** आहा..हा.. ! **वह तो प्रारंभ से पूर्णता तक,...** वह तो सम्यग्दर्शन और दृष्टि तो **प्रारंभ से पूर्णता तक, सबको निकालकर,...** आहा..हा.. ! **द्रव्य पर ही जमी रहती है।** समझ में आया ? आहा..हा.. ! द्रव्य अर्थात् वस्तु त्रिकाली ज्ञायक प्रभु, अनन्त-अनन्त सम्पत्ति का घर, महल, उसमें जहाँ दृष्टि गयी.. आहा..हा.. ! वह शुरुआत से पूर्णता तक वहीं जमी रहती है। आहा..हा.. !

किसी भी प्रकार की आशा बिना... आहा..हा.. ! मुझे लोग जाने, मुझे जाने कि इसे सम्यग्दर्शन हुआ, ये सब आशायें.. आहा..हा.. ! समझ में आया ? ढिंढ़ोरा पीटना, मैं इतना पाया हूँ—दृष्टि के विषयवाले को ऐसी चीज़ नहीं होती। आहा..हा.. ! **किसी भी प्रकार की आशा बिना...** दुनिया माने, दुनिया मुझे पहिचाने, मैं धर्म को प्राप्त हुआ हूँ - ऐसा जाने, आहा..हा.. ! ऐसी किसी भी प्रकार की आशा बिना **बिलकुल निस्पृहभाव से...** आहा..हा.. ! **दृष्टि प्रगट होती है।** त्रिकाली वस्तु की दृष्टि निस्पृहभाव से प्रगट होती है। पर की किसी भी आशा बिना। आहा..हा.. ! यह २१६ (बोल पूरा) हुआ।

द्रव्य में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सब होने पर भी कहीं द्रव्य और पर्याय दोनों समान कोटि के नहीं हैं; द्रव्य की कोटि उच्च ही है, पर्याय की कोटि निम्न ही है। द्रव्यदृष्टिवान को अन्तर में इतना अधिक रसकसयुक्त तत्त्व दिखायी देता है कि उसकी दृष्टि पर्याय में नहीं चिपकती। भले ही अनुभूति हो, परन्तु दृष्टि अनुभूति में—पर्याय में—चिपक नहीं जाती। 'अहा! ऐसा आश्चर्यकारी द्रव्यस्वभाव प्रगट हुआ अर्थात् अनुभव में आया!' ऐसा ज्ञान जानता है, परन्तु दृष्टि तो शाश्वत स्तम्भ पर—द्रव्यस्वभाव पर—जमी सो जमी ही रहती है॥२१७॥

२१७, **द्रव्य में...** अर्थात् वस्तु, भगवान आत्मा। **उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सब होने पर भी...** उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीन हैं। आहा..हा.. ! नयी पर्याय उत्पन्न होना, पूर्व पर्याय व्यय होना, ध्रुवरूप से शाश्वत् रहना। आहा..हा.. ! **द्रव्य में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सब होने पर भी**

कहीं द्रव्य और पर्याय दोनों समान कोटि के नहीं हैं;... आहा..हा..! द्रव्य और पर्याय एक कोटि के, एक कक्षा के नहीं हैं। आहा..हा..! समझ में आया? भगवान पूर्णानन्द प्रभु,.. वह उत्पाद-व्यय होने पर भी, द्रव्य और पर्याय दोनों समान कोटि के नहीं हैं। आहा..हा..! चाहे तो सम्यग्दर्शन हुआ हो, चारित्र हुआ हो परन्तु द्रव्य और पर्याय समान कोटि के नहीं हैं। आहा..हा..! ऐसी बात, अब ऐसा उपदेश!

राग तो नहीं, निमित्त तो नहीं, परन्तु उत्पाद-व्यय-ध्रुव जो आत्मा में हैं, उनमें उत्पाद-व्यय और द्रव्य एक कोटि के, एक सरीखे नहीं हैं। आहा..हा..! सम्यग्दर्शन पर्याय प्रगट हुई, मिथ्यात्व का व्यय हुआ; चारित्र की पर्याय प्रगट हुई, अचारित्र का व्यय हुआ परन्तु वह पर्याय और द्रव्य एक कोटि के नहीं हैं। आहा..हा..! भावलिंगी सन्त का प्रचुर स्वसंवेदन, भावलिंगी की छाप - मोहरछाप, तथापि वह भावलिंगी की पर्याय जो है,... आहा..हा..! और उसका त्रिकाली द्रव्य है, वे समान प्रकार के नहीं हैं, दोनों की एक कोटि नहीं है। आहा..हा..! समझ में आया?

द्रव्य की कोटि उच्च ही है,... आहा..हा..! भगवान पूर्णानन्द का नाथ त्रिकाली रहनेवाला और पर्याय तो एक समय की है। चाहे तो केवलज्ञान हो, परन्तु एक समय की पर्याय है। आहा..हा..! नाशवान और अविनाशी दोनों एक कोटि के नहीं हैं। एक समय की स्थितिवाले और त्रिकाली स्थितिवाली चीज़ एक कोटि के नहीं हैं। क्या कहा? भगवान आत्मा पूर्ण त्रिकाल एकरूप रहनेवाली चीज़ और पर्याय एक समय रहनेवाली चीज़। आहा..हा..! केवलज्ञान भी एक समय की पर्याय है। अत: पर्याय और द्रव्य एक सरीखी कोटि के नहीं हैं। आहा..हा..! ऐसा कहाँ बैठना? समझ में आया? यह एक समय की दशा तो एक अंश है। यह द्रव्य तो महासागर अनन्त गुण का पिण्ड है। आहा..हा..! ऐसी तो अनन्त-अनन्त पर्यायें एक गुण में अन्दर पड़ी हैं। आहा..! वह एक समय की पर्याय और त्रिकाली द्रव्य एक सरीखे नहीं हैं, एक कोटि के नहीं हैं, एक कक्षा के नहीं हैं, एक क्लास नहीं है। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं। कहो, ...भाई! आहा..हा..!

इसे पर्याय की महिमा आ जाये, द्रव्य की महिमा छोड़कर। समझ में आया? पर्याय की महिमा द्रव्य जितनी मान ले.. आहा..! सम्यग्दृष्टि जीव.. स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में तो ऐसा कहा है, आहा..हा..! कहाँ मेरी पर्याय और कहाँ सर्वज्ञ की पर्याय! मैं तो पर्याय में

पामर हूँ। आहा..हा.. ! दृष्टि में भगवान पूर्ण है। यहाँ तो केवलज्ञान की पर्याय हो तो भी द्रव्य के सामने समान कोटि की नहीं है। आहा..हा.. ! अनन्त आनन्द पर्याय में प्रगट हुआ, वह अनन्त आनन्द की पर्याय और त्रिकाली द्रव्य एक सरीखे नहीं हैं, एक कोटि के नहीं हैं। आहा..हा.. ! आया न ?

द्रव्य की कोटि उच्च ही है,... आहा..हा.. ! महान प्रभु परमात्मस्वरूप द्रव्य, वह तो पर्याय से उच्च कोटि की चीज़ है। आहा..हा.. ! यहाँ तो जरा शुभराग करे तो इसे ऐसा हो जाता है कि आहा..हा.. ! मैंने क्या किया ? पाप छोड़ा, पुण्य किया, द्रव्य पर ही जमा रहता है। **पर्याय की कोटि निम्न ही है।** द्रव्य की कोटि उच्च ही है, पर्याय की कोटि निम्न ही है, नीची है। आहा..हा.. ! **द्रव्यदृष्टिवान को अन्तर में इतना अधिक रसकसयुक्त तत्त्व दिखायी देता है...** रसकसयुक्त-मालवाला तत्त्व दिखायी देता है। आहा..हा.. ! द्रव्यदृष्टिवाले को अन्दर में इतना अधिक रस और कस, माल इतना दिखता है कि **उसकी दृष्टि पर्याय में नहीं चिपकती।** पर्याय में उसकी दृष्टि नहीं टिकती। आहा..हा.. ! समझ में आया ?

विशेष आयेगा... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

भाई ! आत्मा को जाने बिना जन्म-मरण का अन्त नहीं आ सकता। आत्मा, जानने-देखनेवाला पदार्थ है; महिमावन्त भगवान है; वाणी, जड़-अचेतन है, उससे आत्मा ज्ञात नहीं होता। तब आत्मा को जानने का उपाय क्या ? यही कि स्वानुभव द्वारा वह ज्ञात होता है। लाखों-करोड़ों प्राणियों में कोई विरला प्राणी ही अन्तर में अनुभव करके आत्मा को जानता है। पुण्य से आत्मस्वरूप की पहचान नहीं होती, क्योंकि वह तो आत्मस्वरूप से बहिर्भाव है। आत्मतत्त्व, अन्तर्मुख स्वानुभव से ही ज्ञात होता है। करोड़ों जीवों में कोई विरले जीव ही स्वानुभव से जिस आत्मा को जानते हैं, वह आत्मस्वभाव इस जगत् में जयवन्त वर्तो -ऐसा कहकर, यहाँ माङ्गलिक किया है।

(पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, आतम के हित पंथ लाग ! में से)

भाद्र शुक्ला-४, बुधवार, दिनाङ्क ०६-०९-१९७८
वचनामृत-२१७-२२२ प्रवचन-८७

२१७, दो लाईन है, दो-तीन है, नहीं ? २१७, क्या कहते हैं ? धर्मी की दृष्टि निमित्त पर नहीं, राग पर नहीं.. आहा..हा.. ! पर्याय पर नहीं। त्रिकाल ज्ञायक अन्तरस्वरूप जो ध्रुव है, उस पर दृष्टि सदा रहती है। आहा..हा.. ! सूक्ष्म बात है। इसलिए लोगों को कठिन पड़ता है न ! यह व्रत, तप, भक्ति लाख करोड़ करे, वह कोई सम्यग्दर्शन पाने का रास्ता नहीं है। आहा..हा.. ! तथा शास्त्रज्ञान में करोड़ों श्लोक कण्ठस्थ करे.. आहा..हा.. ! वह कोई सम्यग्दर्शन पाने का रास्ता नहीं है। वहाँ अनादि से रुक जाता है, कुछ ज्ञान का क्षयोपशम हुआ, कुछ क्रिया व्रत, तप आदि करके वहाँ रुक जाता है कि मैंने बहुत किया। कुछ नहीं किया। आहा..हा.. !

अन्दर द्रव्यस्वभाव (है)। इस बहिर के लक्ष्य से अन्तर्लक्ष्य नहीं हो सकता। आहा..हा.. ! अन्तर्दृष्टि, बहिर की दृष्टि से अन्तर की दृष्टि नहीं हो सकती। आहा..हा.. ! कठिन बात पड़ती है न ! अन्तर्दृष्टि का विषय अन्तर आत्मा ध्रुव.. आहा..हा.. ! **ऐसा आश्चर्यकारी द्रव्यस्वभाव प्रगट हुआ...** पर्याय में, ज्ञान में, श्रद्धा में भान हुआ कि मैं पूर्ण आनन्द और शुद्ध चैतन्य अन्तरतत्त्व, अन्तःतत्त्व पूर्ण है—ऐसा अन्तर्मुख होकर दृष्टि और ज्ञान हुए, **अनुभव में आया!** आहा..हा.. ! द्रव्यस्वभाव जो अनन्त अपरिमित शक्ति का पिण्ड है, उसकी दृष्टि करना, उससे आत्मा क्या चीज़ है, वह पर्याय में भान होता है। आहा.. ! ऐसी शर्तें हैं। समझ में आया ?

ऐसा ज्ञान जानता है,... ज्ञान जानता है कि पर्याय, द्रव्य में से आयी और भान हुआ, वह ज्ञान जानता है। **परन्तु दृष्टि तो शाश्वत स्तम्भ पर...** है ? शाश्वत् स्तम्भ-ध्रुव शाश्वत् वस्तु, जो बदलती पर्याय में भी नहीं आती। आहा..हा.. ! ऐसी बात। वह शाश्वत् स्तम्भ नित्य ध्रुव भगवान है, समकिती की दृष्टि तो वहाँ है। आहा..हा.. ! **द्रव्यस्वभाव पर—जमी**

सो जमी ही रहती है। आहा..हा..! चाहे तो विकल्प आवे परन्तु वस्तु की दृष्टि जो है, वह तो वस्तु में जमी है। आहा..हा..! यह लोगों को कठिन पड़ता है। ऐसा कि ये सब व्रत पाले, तपस्यायें करे, इतना सहन करे... वे सब (कुछ नहीं)? भाई! तेरे हित की बात है, प्रभु! दुनिया मानेगी और तू मान ले.. आहा..हा..! यह भटकने का मार्ग बन्द नहीं होगा।

जमी सो जमी ही रहती है। वस्तु अन्दर में जो ध्रुव है, उस पर दृष्टि हुई तो दृष्टि वहाँ जमी ही रहती है। आहा..हा..! क्या कहते हैं? समझ में आया? पर्याय में चाहे तो श्रुतज्ञान हो, मतिज्ञान हो, चारित्र हो परन्तु दृष्टि तो द्रव्य पर जमी हुई है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : द्रव्य पर जमी अर्थात् क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर गयी है, दृष्टि वहाँ स्थिर हो गयी है। स्थिर में स्थिर हो गयी है। स्थिर वस्तु जो ध्रुव.. आहा..हा..! उसमें स्थिर हो गयी है। ध्रुव में स्थिर हो गयी है। ध्रुव हुई नहीं, ध्रुव नहीं हुई। ध्रुव में एकाग्र हुई, ध्रुव में ध्रुवमय नहीं हो जाती। आहा..हा..! यह २१७ (बोल पूरा) हुआ।

कोई एकान्त में निवास करनेवाला—एकान्त-प्रिय—मनुष्य हो, उसे जबरन बाह्य कार्य में लगना पड़े तो वह ऊपरी दृष्टि से लगता हुआ दिखता अवश्य है, परन्तु कौन जानता है कि वह बाह्य में आया है या नहीं!! अथवा कोई अति दुर्बल मनुष्य हो और उसके सिर पर कोई कार्य का बोझ रख दे तो उसे कितना कठिन लगता है? उसी प्रकार ज्ञानी को ज्ञानधारा वर्तने के कारण बाह्य कार्यों में लगना बोझरूप लगता है॥२१८॥

कोई एकान्त में निवास करनेवाला—एकान्त-प्रिय... हो। एकान्त में रहने का प्रेमी, आहा..हा..! **मनुष्य हो, उसे जबरन बाह्य कार्य में लगना पड़े तो वह ऊपरी दृष्टि से लगता हुआ दिखता अवश्य है,...** आहा..हा..! जिसे अन्तर में एकान्तप्रिय है, वह बाह्य में आता है तो भी वह **लगना पड़े तो वह ऊपरी दृष्टि से लगता हुआ दिखता अवश्य है,..** आहा..हा..! **परन्तु कौन जानता है कि वह बाह्य में आया है या नहीं!!** आहा..हा..! **अथवा कोई अति दुर्बल मनुष्य...** पहले एकान्तप्रिय मनुष्य लिया। उसे बाहर आना पड़े तो वह आता है या नहीं आता, कौन जाने? उसे कहाँ रस है उसमें? आहा..हा..! मार्ग ऐसा, भाई!

मुमुक्षु : बहुत कठिन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन नहीं, इसे अभ्यास नहीं है। वस्तु है, है स्थिर ध्रुव नित्य.. आहा..हा..! इसे दृष्टि अन्तर में लगाना। कभी अभ्यास किया नहीं और बाहर के अभ्यास में रुक गया। आहा..हा..! या शास्त्र अभ्यास किया या व्रत, नियम, मुनिपने का बाह्य आचरण किया। आहा..हा..! वहाँ रुक गया। मैंने बहुत किया, स्त्री-कुटुम्ब छोड़ा, राजपाट छोड़ा, ब्रह्मचर्य लिया। आहा..हा..! उसमें क्या हुआ? इसने कुछ नहीं किया। आहा..! भगवान जहाँ नित्य स्थिर ध्रुव पर दृष्टि लगाये बिना सब व्यर्थ है। आहा..हा..! ऐसी बात है, भाई!

कोई अति दुर्बल मनुष्य हो और उसके सिर पर कोई कार्य का बोझ रख दे तो उसे कितना कठिन लगता है? आहा..हा..! ऐसे देखो.. आहा..हा..! स्वरूप पाना, वह कठिन नहीं है, परन्तु स्वरूप पाने के पश्चात् राग में आना, वह कठिन है - ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! **कोई कार्य का बोझ रख दे तो उसे कितना कठिन लगता है? उसी प्रकार ज्ञानी को ज्ञानधारा वर्तने के कारण...** आहा..हा..! वस्तुस्वरूप आत्मा का ज्ञान हुआ और यह ज्ञान हुआ, वह ज्ञानधारा शाश्वत् चलती है। समझ में आया? यह वस्तु है।

मुमुक्षु : महाव्रत में जुड़े...

पूज्य गुरुदेवश्री : महाव्रत का किसने कहा? महाव्रत में आवे परन्तु वह बोझ लगता है। आहा..हा..! अन्दर में आनन्दस्वरूप भगवान, राग से भी निवृत्तस्वरूप, अमृत के सागर से, अमृतानन्द से भरपूर प्रभु.. आहा..हा..! इसमें दृष्टि लगाने से बाहर में राग में आना बोझा लगता है, कहते हैं। आहा..हा..! समझ में आया? **ज्ञानी को ज्ञानधारा वर्तने के कारण..** आहा..हा..! ज्ञानधारा की व्याख्या (यह) कि राग से भिन्न अपने आत्मा का ज्ञान किया, शास्त्र के पठन से भी भिन्न अपने आत्मा का ज्ञान किया। आहा..हा..! वह आत्मज्ञान धर्मी को निरन्तर धारा बहती है। आहा..! है?

बाह्य कार्यों में लगना बोझरूप लगता है। आहा..हा..! भक्ति का भाव आता है, आहा..हा..! दूसरे को बाहर में उत्साह भी दिखायी दे, आहा..हा..! तथापि वह शुभभाव बोझरूप लगता है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हल्की, आनन्दचीज प्रभु शुद्ध.. आहा..हा..! उसका जहाँ ज्ञान

हुआ, आत्मज्ञान.. आत्मज्ञान (हुआ), शास्त्रज्ञान नहीं, व्रत, तप नहीं। यह लोगों को कठिन पड़ता है। ऐसा कहते हैं - एकान्त है, एकान्त है, सोनगढ़ का एकान्त है। उन्हें जँचता नहीं। पता नहीं न, भाई! मार्ग यह है। आहा..हा..! लाख तेरे व्रत, तप, भक्ति और दान के भाव कर, वे कोई धर्म नहीं हैं और शास्त्र के करोड़ों, अरबों श्लोक कण्ठस्थ करके दुनिया को समझा दे, वह कोई ज्ञान नहीं है। आहा..हा..!

भगवान त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव ऐसा कहते हैं, प्रभु! जो आत्मा है, उसका ज्ञान.. आत्मज्ञान न? तो आत्मज्ञान में क्या हुआ? आत्मा का ज्ञान (हुआ वर्तमान पर्याय में)। आहा..हा..! राग का ज्ञान नहीं, शास्त्र का ज्ञान नहीं। आहा..हा..! पर्याय का ज्ञान नहीं। आहा..हा..! आत्मज्ञान। नित्य स्थिर प्रभु का ज्ञान। वह अन्तर्मुख होकर उसका ज्ञान होता है। आहा..हा..! बाहर के किसी कारण से अन्तर्मुख आत्मज्ञान तीन काल में नहीं होता - ऐसा है, बापू! आहा..!

बाह्य कार्यों में लगना बोझरूप लगता है। जगत को बाह्यकार्य में जोश और उत्साह लगता है। कहो,... भाई!

मुमुक्षु : मुनि को तो कोई बाह्य कार्य होता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि के सिर कोई काम होता ही नहीं। वे तो अतीन्द्रिय आनन्द में लहर करते हैं। आहा..हा..! परन्तु पंच महाव्रत के विकल्प आते हैं, उपदेश देने का विकल्प आता है। आहा..हा..! भगवान के समवसरण में सुनने का विकल्प आता है। आहा..हा..! परन्तु इस स्वभाव शुद्ध चैतन्यघन के अनुभव और दृष्टि में वह बोझा लगता है। आहा..हा..! ऐसी बात अब! बनियों को जैनधर्म मिला, बनिये व्यवसाय में घुस गये। उस जापानी ने व्यवसाय कहा है।

मुमुक्षु : समझना वह भी व्यवसाय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : समझा वह व्यवसाय अलग और वह कमाने का तथा नौकरी करके पैसा इकट्ठा किया, सुमनभाई को पढ़ाया, पाप से पैसा किया और फिर पढ़ाया। ऐई! आहा..हा..! उस सब व्यवसाय में रुककर चैतन्य को अन्दर से भूल गया। यह तो दृष्टान्त (दिया है)। आहा..हा..! हीरा, माणिक का धन्धा हो तो वहीं का वहीं घुस जाये, उसमें फिर दिन के पाँच-दस हजार पैदा हों। आहा..हा..! अरे रे! भाई! तूने क्या किया? भाई!

मुमुक्षु : अभी तो हीरा का धन्धा बहुत चलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, हीरा का चलता है। घिसते हैं, नहीं? बहुत गाँव में चलता है। साधारण लोग दो-दो, तीन-तीन हजार महीने कमाते हैं। क्योंकि यहाँ के लोग थोड़े में मिलते हैं, वहाँ तो मिलते नहीं। आहा..हा..! परन्तु क्या? भाई! कहाँ रुक गया? आहा..हा..! यह व्यवसाय पाप का और आगे जाने पर शुभ में आया, वह व्यवसाय भी पुण्य का। उससे रहित भगवान आत्मा के आत्मज्ञान का व्यापार / व्यवसाय, आहा..हा..! वह कभी किया नहीं। समझ में आया? कहो, शान्तिभाई! यह सब हीरा और माणिक और... लड़का।

मुमुक्षु : यह तो सबको लागू पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो दृष्टान्त। आहा..हा..! भाई! तेरा व्यवसाय तो आत्मा का ज्ञान करना, वह चाहिए। आहा..हा..! उसमें तेरा हित है। बाहर के व्यवसाय में, प्रभु! तेरा अहित है। आहा..हा..! अरे! ऐसी बात!

समाधिशतक में तो पूज्यपादस्वामी ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! प्रभु! हमें उपदेश का विकल्प आता है.. आहा..हा..! वह चारित्रमोह का उन्माद है। उन्माद है। दर्शन के (मिथ्यात्व के) उन्माद की बात नहीं। आहा..हा..! देखो! यह सन्त की वाणी। आहा..हा..! यहाँ तो अकेले पंच महाव्रत और वे भी ठीक से पाले नहीं, ऐसा हो जाये कि हम साधु हैं, मुनि हैं। प्रभु! तेरे हित का पंथ कोई अलग है, भाई! आहा..हा..! जिसमें आनन्द और ज्ञान परिपूर्ण ज्ञानस्वभाव, आनन्दस्वभाव, अमृतसागर भगवान.. आहा..हा..! जिसके अमृत के स्वाद के समक्ष इन्द्र का इन्द्रासन और विषय सड़े हुए बिल्ली-बिलाड़ी और सड़ा हुआ कुत्ता जैसा लगता है। समकिती को विषय-वासना का विकल्प आता है। इन्द्र एकावतारी है। आहा..हा..! दुःख लगता है, बोझा लगता है। आहा..हा..! (कोई ऐसा कहे) तो ऐसा क्यों करते हैं? परन्तु कमजोरी के कारण आता है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : आज के लड़कों को घर का काम बोझरूप लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो उन्हें दूसरे के काम के कारण इस घर का काम उन्हें बोझा लगता है। वह सब बोझा है। आहा..हा..! यहाँ तो धर्म की दृष्टि हुई, ज्ञानस्वरूपी जैसे स्थिर और ध्रुवधारा है, ऐसी ज्ञानधारा,.. ऐसे राग से भिन्न पड़कर ज्ञान, भान हुआ तो पर्याय में

ज्ञानधारा चली। ज्ञायक.. ज्ञायक.. ज्ञायक.. ज्ञायक ऐसा ध्रुव प्रवाह तो पड़ा ही है। आहा..हा..! उस ध्रुव प्रवाह में दृष्टि पड़ने से जो ज्ञान सम्यक् आत्मज्ञान हुआ, वह ज्ञानधारा शाश्वत् चलती है। आहा..हा..! समझ में आया? कठिन पड़े, मार्ग तो यह है, भाई! इसके बिना जन्म-मरण का अन्त नहीं आयेगा, प्रभु! आहा..हा..! दुनिया को मनवाने और माने और दुनिया तुझे सर्टीफिकेट दे.. पागल के सर्टीफिकेट की कीमत क्या? आहा..हा..! समझ में आया? आहा..हा..!

मुनिराज तो ऐसा कहते हैं कि (हमें) अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द का ज्वार आता है। आहा..हा..! उसके समक्ष उपदेश का विकल्प भी उन्माद लगता है। आहा..हा..! क्या है यह? क्या इस विकल्प से भाषा निकलेगी? और भाषा निकलने से उसे (पर को) ज्ञान होगा? आहा..हा..! उपदेश की वाणी निकलती है तो उससे पर को ज्ञान होगा? क्या तुझे उन्माद हुआ है? आहा..हा..! मैं पर को मोक्ष करा दूँ.. बन्ध अधिकार में आता है न? आहा..हा..! भाई! उसकी वीतरागदशा बिना उसे मुक्ति नहीं होगी। तू क्या उसे मोक्ष करा देगा? आहा..हा..! बहुत सूक्ष्म, भाई! २१८ (बोल पूरा) हुआ।

चाहे जैसे कठिन समय में अपने ज्ञान-ध्यान का समय निकाल लेना चाहिये। यह अमूल्य जीवन चला जा रहा है। इसे व्यर्थ नहीं गँवाना ॥२१९॥

चाहे जैसे कठिन समय में अपने ज्ञान-ध्यान का समय निकाल लेना चाहिये। आहा..हा..! चाहे जो प्रसंग हो, रोग का प्रसंग हो, बाहर का प्रसंग हो, कुटुम्ब में एक के बाद एक देह छूटकर मर जाते हों.. आहा..! ऐसे समय में भी धर्मी तो.. आहा..हा..! अपने ज्ञान-ध्यान का समय निकाल लेता है। आहा..! समझ में आया? **चाहे जैसे कठिन समय में अपने ज्ञान-ध्यान का समय निकाल लेना चाहिये।** आहा..! अन्तर ज्ञायकस्वरूप का ध्यान और ज्ञान का अन्तर में ध्यान (करने का) समय निकाल लेना चाहिये। आहा..हा..! ऐसी बात है।

यह अमूल्य जीवन चला जा रहा है। आहा..हा..! प्रभु! जिसे कौस्तुभ मणि दो तो मनुष्यपने का एक समय न मिले। आहा..हा..! नरक, निगोद और कीड़े और कौवे और कुंजर में अवतार लिये। आहा..हा..! इस मनुष्यभव का अवतार अपना हित करने के लिये यह अवतार है। यह भव, भव का अभाव करने के लिये यह भव है। आहा..हा..! दुनिया

के लिये दो, पाँच, दस लाख, पच्चीस लाख, पचास लाख कमाये और लड़कों का अच्छी विवाह किया और लड़कियों को (अच्छी जगह विवाह किया), वह कहीं तेरे हित का कार्य है ? वह तो अहित का कार्य है। आहा..हा..!

शरीर में रोग (आवे), इन्द्रियाँ हीन पड़ जाये। आहा..हा..! महा मुश्किल से ऐसे-ऐसे करे तो अक्षर दिखे। आहा..हा..! बहुत ध्यान रखे तो कान में मुश्किल से सुनायी दे। ऐसी इन्द्रियाँ हीन पड़ जाये। प्रभु! आहा..! उससे पहले काम कर ले, प्रभु! जड़ इन्द्रिय की पर्याय तो क्रमबद्ध जो आनेवाली होगी, वह आयेगी, आहा..हा..! उससे पहले (हित का काम कर ले) वृद्धावस्था आयेगी, इन्द्रियाँ हीन पड़ जायेगी। आहा..हा..! व्याधि आ गयी। आहा..हा..! उससे पहले भगवान आचार्य ऐसा कहते हैं, प्रभु! तेरा काम कर ले न, प्रभु! आहा..हा..! बाद में नहीं होगा। दो घड़ी बैठा नहीं रह सके, दीवार के सहारे बैठना भी कठिन पड़ेगा। आहा..हा..!

चाहे जैसे कठिन समय में... आहा..हा..! लड़का मर जाये, लड़की विधवा हो जाये, दुकान फेल हो जाये - ऐसे कठिन समय में भी, प्रभु! तू तेरा समय निकाल ले। समझ में आया ? आहा..हा..! दुकान का बीमा किया हो तो बीमावाला उस समय भागे, यहाँ दुकान जले, लड़की विधवा, लड़की विधवा, मर जाये तब तो ठीक। लड़का मर जाये तो दुःख, लड़की विधवा तो दुःख। अरे! प्रभु! क्या है ? भाई! कहाँ तू अटक गया ? आहा..हा..! ऐसे समय में भी अपने ज्ञान और ध्यान का समय निकाल ले, प्रभु! ऐसा समय नहीं मिलेगा। आहा..हा..! समझ में आया ? श्रीमद् में कहते हैं न ? पहले सोलह वर्ष में 'बहु पुण्य पुंज प्रसंग से शुभदेह मानव का मिला तो भी अरे भवचक्र का फेरा नहीं एक हि टला।' एक चक्र मिटे तो समाप्त हो जाये। आहा..! 'सुख प्राप्ति हेतु प्रयत्न करते सुख जाता दूर है' सुख की अभिलाषा में, प्रभु! तेरे सुख का नाश होता है। आहा..हा..! ऐसे समय में प्रभु! तू तेरे ज्ञान-ध्यान का समय निकाल ले। आहा..हा..! तेरा कार्य करने का समय निकाल ले। आहा..हा..! ऐसा काम है। यह तो दुकान ठीक चले, लड़के बराबर काम करते हों, स्वयं को सन्तोष हो कि मेरे जैसा ही काम करता है, अब हम निवृत्ति लें।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वहाँ ही है। ये लड़के बराबर चलावें तो वह तो वहाँ ही है।

उसमें से छूटा ही कहाँ है ? आहा..हा.. ! अरे रे ! चाहे जैसी कठिनाई के प्रसंग में प्रभु ! तू चला जायेगा। देह छूटकर चला जायेगा। आहा.. ! कहीं चौरासी लाख योनि में (चला जायेगा) आहा..हा.. ! पवन होती है न ? पवन, उसमें तिनका कहाँ जाकर पड़ेगा ? आहा..हा.. ! उसी प्रकार प्रभु ! स्वयं के लिये समय निकाल लेना, हों ! दुनिया के लिये रुकना नहीं, भाई ! आहा..हा.. !

अब इसमें बहिन की बात है, उसके जहाँ बाहर में महिमा की तो उसका भी विरोध किया। अरे ! प्रभु ! तू यह क्या करता है ? चाहे जो आत्मा हो, स्त्री का हो,.. आहा..हा.. ! पुरुष का हो।

मुमुक्षु : जिसे विरोध करने की आदत पड़ी गयी हो...

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे प्रभु ! क्या करता है ? भाई ! ऐसा कहते हैं, अब इनके गुणगान (करते हैं) । लो ! अब कानजीस्वामी के तो चलते थे, अब बहिन के चले हैं। क्या करता है प्रभु तू ! उसे रुचता नहीं।

अमूल्य जीवन चला जा रहा है। इसे व्यर्थ नहीं गँवाना। आहा..हा.. ! स्वयं का ज्ञान और ध्यान करने का समय निकाल लेना। आहा..हा.. ! अन्तर्मुख होने का समय निकाल लेना। ऐसा कहते हैं। बहिर्मुख के कार्य में से... आहा..हा.. ! छूटकर अन्तर में जाने का समय निकाल ले, भाई ! आहा.. ! ऐसा समय फिर से नहीं मिलेगा, प्रभु ! आहा..हा.. ! यह तो यह किया और यह किया और वह किया और यह बनाया और मन्दिर बनाया और पुस्तक बनायी – उसमें रुक गया। हो गया। आहा..हा.. ! समझ में आया ? बहुत पुस्तकें प्रकाशित की और बहुत बाहर आयी, उसमें तुझे क्या मिला ? आहा..हा.. ! समझ में आया ? बहुत मन्दिर बनाये। छब्बीस लाख का, अरे प्रभु ! कौन बनाता है ? भाई ! आहा..हा.. ! वह तो विकल्प आया हो तो उससे भी निवृत्ति ले ले। आहा..हा.. ! पर का तो कर नहीं सकता... आहा..हा.. ! **इसे व्यर्थ नहीं गँवाना।** आहा.. !

ज्ञायकपरिणति का दृढ़ अभ्यास करो। शुभभाव के कर्तृत्व में भी समस्त लोक का कर्तृत्व समाया हुआ है॥२२०॥

२२०, **ज्ञायकपरिणति का दृढ़ अभ्यास करो।** आहा..हा.. ! ज्ञायकभगवान

नित्यानन्द प्रभु की जो निर्मल परिणति, उसका अभ्यास करो। आहा..हा..! भाषा ऐसी। ज्ञायकपरिणति। ज्ञायक तो त्रिकाली है। उसकी दृष्टि और परिणमन हुआ, ज्ञान में ज्ञात हुआ कि यह भगवान ज्ञायक है, ऐसी जो परिणति - पर्याय-सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की (जो पर्याय), वह ज्ञायक की परिणति है। आहा..हा..! और दया, दान, व्रतादि के परिणाम, वह जीव की परिणति नहीं, प्रभु! आहा..हा..! ऐसी बातें कठिन पड़ती हैं, भाई! तेरे हित की बातें हैं, बापू! तू दूसरे प्रकार से मानकर बैठ गया, इससे कहीं तेरा हित होगा? आहा..हा..! ऐसा कहते हैं कि यह तो किसी को गिनते ही नहीं। परन्तु बापू! तुझे गिनाना है या अन्तर में दृष्टि करके पढ़ना है, अभ्यास करना है। आहा..हा..!

यह पुस्तक तो... अभी भाई लाये थे... पन्द्रह जगह यह हुई है। ऐसा कहा, पुस्तक.. क्या कहलाता है? ताड़पत्र, पन्ने.. पन्द्रह लेकर आये थे। पन्द्रह प्रकार से ये शास्त्र बाहर आया है। भाई लाये थे। ताड़पत्र पर चार-पाँच पन्ने हैं न वे। बहुत छपाये। ताड़पत्र पर है, उस पर है। आहा..हा..! पटिये पर है। आहा..हा..! चाँदी के पन्ने पर है। वह आया न? बापू! जो होना होता है, वह होता है। इतना सब बाहर आ गया, वह लोगों को पसन्द नहीं आता। आहा..हा..! बापू! यह तो सत्य की प्रसिद्धि है, भाई! आहा..हा..! तेरा नाथ अन्दर विराजमान है, उसकी ख्याति-प्रसिद्धि कर न! आहा..हा..! राग और पुण्य की प्रसिद्धि में रुककर तूने तेरा हित किया या अहित किया?

ज्ञायकपरिणति का दृढ़ अभ्यास करो। आहा..हा..! **शुभभाव के कर्तृत्व में भी...** शुभभाव जो राग आता है—दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का (राग आता है), उसमें जो कर्तृत्व की मान्यता है, उसमें **समस्त लोक का कर्तृत्व समाया हुआ है।** पूरे लोक का कर्तापना समाया हुआ है। क्या कहते हैं? ज्ञान में समस्त लोक ज्ञात होता है परन्तु जो राग का कर्ता हुआ, वह दया, दान, व्रत के विकल्प का कर्ता हुआ, वह पूरे लोक का कर्ता हुआ। वह ज्ञाता पूरे लोक का जाननेवाला है, उसे भूल गया। आहा..हा..! मैंने किया... मैंने किया... मैंने किया.. आहा..हा..!

'नरसिंह मेहता' अन्यमत में कहते हैं न? 'मैं करूँ मैं करूँ यही अज्ञान है शकट का भार ज्यों श्वान तांणे' शकट अर्थात् गाड़ी के नीचे कुत्ता होता है, वह मानता है कि मुझसे गाड़ी चलती है। इसी प्रकार दुकान पर बैठे, यह सब दुकान की व्यवस्था मुझसे चलती

है – कुत्ता है। आहा..हा..! मैं बराबर ध्यान रखता हूँ, मैं दुकान में आऊँ, वहाँ सब लोग एकदम बैठ जाते हैं। आहा..हा..! हमारे वहाँ बोटाद में था। 'रायचन्द गाँधी' की बड़ी दुकान थी। नौकर बहुत बड़े। सेठ आवे तो ध्यान रखे, नहीं तो लम्बे पैर करके बैठे हों। सेठ आवे वहाँ पुस्तक लेकर (बैठ जाये) रायचन्द गाँधी बड़ा व्यापारी था। दीनशा का बड़ा व्यापारी था, पचास हजार की आमदनी, उस समय, हों! उस समय, ६० वर्ष पहले। सेठ से डरते। यह क्या है? भाई! तूने यह क्या किया? भव भय से डर न! आहा..हा..! अरे रे! मैं यहाँ से कहाँ जाऊँगा? मेरा प्रभु कहाँ जायेगा? किस गति में? किस स्थिति में? आहा..हा..! उसका डर कर न! वह डर करके अन्दर में जा न! आहा..हा..! जहाँ भव और भव का भाव नहीं है। आहा..हा..! ऐसा भगवान..

ज्ञायकपरिणति का दृढ़ अभ्यास करो। यदि एक राग के कण का कर्तृत्व हुआ तो पूरे लोक का कर्तृत्व तेरे सिर पर आ गया। आहा..हा..! पर की क्रिया तो कोई कर सकता ही नहीं, परन्तु अपने में राग आता है, उसका कर्तापना माना... आहा..हा..! तो भगवन तो ज्ञातादृष्टास्वरूप है। वह ज्ञानस्वरूप, राग को करे? आहा..हा..! या उस राग को जानने में रहे? आहा..हा..! जिसने उस राग का कर्तृत्व स्वीकार किया..

करे करम सो हि करतारा जो जाने सो जाननहारा
जाने सो करता नहीं होई, करता सो जाने नहीं कोई॥

राग का कर्ता (ऐसा माना वह) मैं आत्मा ज्ञाता हूँ, उसे वह भूल गया। आहा..हा..! जगत ज्ञेय और मैं ज्ञान। जगत ज्ञेय, मैं ज्ञान। वह भी परज्ञेय की अपेक्षा से। बाकी अपना ज्ञेय, ज्ञाता और ज्ञान अपने में है। ऐसे तीन भेद भी मुझमें नहीं। ज्ञाता भी वह, ज्ञान भी वह, और ज्ञेय भी वह। अपना स्वरूप ज्ञेय, हों! आहा..हा..!

ऐसा कर्तृत्वपना छोड़कर... वह कब छूटेगा? अपना स्वरूप ज्ञान-जानना, वह मेरा स्वरूप है, उसमें राग का कर्तृत्व तो आता नहीं क्योंकि उसमें ऐसा कोई गुण नहीं कि विकार को करे। अनन्त गुण हैं। अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त अमाप गुण हैं। परन्तु ऐसा एक गुण नहीं कि राग को करे। ऐसा कोई गुण है? आहा..हा..! यह तो धमाल... धमाल.। गजरथ निकालते हैं और बड़े रथ निकालते हैं और हाथी... आहा..हा..! जयपुर में थे न? इक्कीस तो हाथी सामने और भगवान का रथ। चालीस हजार लोग, देखनेवाले

लाखों। उसमें हुआ क्या ? अरे प्रभु! उसमें प्रभावना हुई ? वह शुभभाव हो तो व्यवहार प्रभावना उस शुभभाव को कहने में आता है। बाहर की प्रवृत्ति व्यवहार प्रभावना ही नहीं है।

मुमुक्षु : भगवान का रथ चलाते हों...

पूज्य गुरुदेवश्री : लोग तो देखने आते थे। मैं रथ पर बैठा था। साधु देखने निकला कि यह है क्या ? इक्कीस तो हाथी, ऐ.. तुम्हारे गाँव में, जयपुर। तब चालीस हजार लोग साथ में। ऊपर देखनेवाले लाखों परन्तु यह तो बाहर की चीज़ है, प्रभु! उसमें तुझे क्या आया ? आहा..हा..! यह तेरा कार्य है वह ? वह तो नहीं परन्तु अन्दर राग आया, वह तेरा कार्य है ? प्रभु! आहा..हा..! राग के एक कण का भी कर्तृत्व मानता है, वह पूरे लोक का कर्ता होता है। समझ में आया ? क्या कहा ?

शुभभाव के कर्तृत्व में भी... व्रत का विकल्प आया, उसका कर्ता होता है तो वह पूरे लोक का कर्ता है क्योंकि जाननेवाले एक को जाने तो सबको जाने – ऐसा इसका स्वभाव है; तो कर्ता एक का हुआ तो पूरे लोक का कर्ता हुआ। आहा..! ऐसी बात। कहो, समझ में आया ? भगवान की भक्ति में स्वाहा.. स्वाहा.. (बोले), उस भाषा का कर्ता और उसमें राग आया, उसका कर्ता.. आहा..हा..! प्रभु! तू लोकालोक का जाननेवाला है न, नाथ! तू राग का कर्ता होता है तो लोक का कर्ता तू हो गया। मार्ग बहुत कठिन, बापू! जन्म-मरण के अन्त लेने की चीज़.. आहा..हा..! यह तीर्थ फण्ड का बड़ा विवाद चलता है। एक व्यक्ति को... प्रतिज्ञा है। करोड़ का नहीं हो तबतक... शरीर सूख गया है। हमने तो कभी कहा नहीं कि तीर्थ फण्ड करो और यह करो। कभी नहीं कहा। उसमें साठ लाख डाल दो तो करोड़ हो जाये तो उसकी प्रतिज्ञा (पूरी हो)। ये सोनगढ़िया अलग प्रकार के हैं – ऐसा कहते हैं। अरे! भगवान! प्रभु! सुन तो सही, भाई! तू चाहे जो कह, भाई! कितने शब्द आये हैं ?

एक शुभराग का-भाव का कर्ता होता है तो पूरे लोक का कर्ता होता है। मिथ्यादृष्टि है। आहा..हा..! क्योंकि आत्मा ज्ञानस्वरूप भगवान सबको जाने। अरे! अपने को भी स्वज्ञेयरूप से जाने, परन्तु कर्ता (होना) वह स्वरूप में नहीं है। समझ में आया ? रागरूप परिणमे, इसलिए कर्ता कहो, परन्तु कर्ता-करने योग्य है – ऐसा कर्तापने से पूरी दुनिया का कर्ता होता है। आहा..हा..! ऐसी बात कान में पड़ना, कठिन पड़ती है। भाई! भगवान

अन्तर प्रभु विद्यमान है, वह तेरा दृष्टि का विषय छोड़कर तू बाह्य की प्रवृत्ति में घुस गया, प्रभु! आहा..हा..! एक राग का कर्ता हो तो पूरी दुनिया का कर्ता होता है। पूरे लोक का कर्ता। आहा..हा..! चौदह ब्रह्माण्ड में जितने परमाणु और आत्मा हैं, उन सबका तू कर्ता हो गया। आहा..हा..! यह २२० (बोल पूरा) हुआ।

सर्वस्वरूप से उपादेय मात्र शुद्धोपयोग है। अन्तर्मुहूर्त को नहीं किन्तु शाश्वत अन्तर में रह जाना वही निज स्वभाव है, वही कर्तव्य है॥२२१॥

सर्वस्वरूप से उपादेय मात्र शुद्धोपयोग.. है। आहा..हा..! है न? सर्वस्वरूप से उपादेय मात्र शुद्धोपयोग है। **सर्वस्वरूप से उपादेय मात्र शुद्धोपयोग...** है तो त्रिकाली उपादेय परन्तु त्रिकाली, शुद्ध उपयोग में बना, इसलिए उस शुद्ध उपयोग को ही उपादेय कहने में आता है। शुभ-अशुभ उपादेय नहीं तो शुद्ध उपादेय है - ऐसा कहने में आया। आहा..हा..! समझ में आया? आहा..! गहन संसार। कितने जीव तो अभी निगोद में से निकले नहीं। अनन्त काल हुआ, निगोद में से निकले नहीं। त्रसपना प्राप्त नहीं हुए। आहा..हा..! छहढाला में तो आता है न? त्रसपना पाना, वह चिन्तामणि रत्न की तरह है - ऐसा आया है। छहढाला में आता है। आहा..हा..! उसमें भी मनुष्यपना मिले.. आहा..हा..! किसके लिये? अपने हित के लिये। आहा..हा..! स्त्री, पुत्र को सम्हालना और यह करना और धूलधाणी, उसके लिये यह मनुष्यभव है? आहा..!

सर्वस्वरूप से उपादेय मात्र शुद्धोपयोग... है। आहा..हा..! शुभ से इनकार किया है न? शुभ का कर्ता होता है तो (पूरे) लोक का कर्ता होता है। अतः अब उपादेय शुद्धोपयोग है। उपादेय तो त्रिकाली वस्तु है परन्तु शुभ उपयोग (का कर्तव्य) जब छूट गया तो शुद्धोपयोग स्वसन्मुख आया तो उस शुद्ध उपयोग को उपादेय कहने में आया है। आहा..हा..! समझ में आया?

अन्तर्मुहूर्त को नहीं किन्तु शाश्वत अन्तर में रह जाना... आहा..हा..! वस्तु जो शाश्वत् है, उसमें शुद्धोपयोग आ गया अन्दर में, अब वह शुद्धोपयोग कायम रखना, कहते हैं। जहाँ गया, वहीं का वहीं अब रहना। कमजोरी के कारण शुभभाव आता है परन्तु वह बोझ है। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं, लोगों को (एकान्त लगता है)। अभी प्ररूपणा ऐसी

चलती है कि व्रत करो, भक्ति करो, तप करो, इस मन्द कषाय से होगा... व्यवहार भी धर्म है या नहीं? आहा..हा..! वह व्यवहार धर्म तो किसे कहते हैं? जिसे अपने आत्मा का ज्ञान और आनन्द हुआ हो, उसमें राग आवे तो उसे व्यवहार धर्म आरोप से कहने में आता है। है नहीं उसे कहना, वह व्यवहार है। आहा..हा..! ऐसी बात है। यह पण्डितों को कठिन लगती है।

किन्तु शाश्वत अन्तर में रह जाना... यह क्या कहा? वस्तु जो शुद्धचैतन्यघन है, उसमें शुद्ध उपयोग लगा तो शाश्वत् उसी-उसी में रहना; वह चीज़ है। आहा..हा..! समझ में आया? 'बालपन खेल में खोया' - वहाँ हमारे बोलते थे। वे निकले तब (बोले) 'बालपन खेल में खोया, युवानी स्त्री में मोह्या, वृद्धपन देखकर रोया।' वृद्धावस्था (ऐसी)। अब? अरे! मैं बैठ नहीं सकता, बोल नहीं सकता, चल नहीं सकता। तूने क्या किया? आहा..हा..! बालपन खेल में खोया। खेल और खेल। आहा..हा..! जवानी में स्त्री और व्यापार-धन्धे में मोहित रहा। आहा..! वृद्धावस्था आयी तो शरीर जीर्ण हो गया। अरे रे! मैं कुछ नहीं कर सकता। मैं चल नहीं सकता। आहा..हा..! मैं बोल नहीं सकता। आहा..हा..! जिन्दगी खोयी, प्रभु! आहा..हा..!

किन्तु शाश्वत अन्तर में रह जाना वही निज स्वभाव है,.. आहा..हा..! **वही कर्तव्य है।** यह कर्तव्य बताना है न? शुभभाव, वह कर्तव्य नहीं, परन्तु अपने ज्ञायकस्वभाव में शुद्ध उपयोग से जाना और कायम रहना, वह कर्तव्य है। आहा..हा..! ध्याता, ध्यान और ध्येय—ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय—यह अपनी चीज़ है। यह जाननेवाला भी स्वयं; जाननेवाला यह, ज्ञान यह और ज्ञेय भी यह। आहा..हा..! ऐसे शुद्ध उपयोग में अभेद पर दृष्टि हुई, वहाँ से अब हटना नहीं; शाश्वत् वहाँ रहना - ऐसी भावना धर्मी को तो होती है। आहा..हा..! गजब काम, भाई! सबेरे आया था कि मुक्ति का उपाय तो इस प्रकार से है, अन्यथा नहीं। तब वे लोग ऐसा कहते हैं, व्यवहार से भी होता है और निश्चय से भी होता है। अरे! प्रभु! क्या हो? भाई! ऐसे आत्मा को मनायेगा और दुनिया को मनायेगा, प्रभु! इसका फल दुःख है। आहा..हा..! उसमें कहीं सुख नहीं मिलेगा। आहा..हा..!

सबेरे आया नहीं था? कि चारित्र के दस प्रकार के धर्म, वे सुखसार हैं। उसमें आनन्द का अनुभव है। उसमें आनन्द का अनुभव है और उससे आनन्द का अनुभव है और वह सुखसार है। आहा..हा..! दस प्रकार के धर्म में आनन्द का अनुभव है। उन दस

प्रकार के धर्म का सार आनन्द है। आहा..हा..! आकिंचन और त्याग आता है न? परन्तु उसका अर्थ क्या? पाठ में ऐसा है, पुस्तक देना, आहार देना, परन्तु वह तो विकल्प है। परन्तु अन्दर में.. आहा..हा..! आनन्द का उफान आना। अतीन्द्रिय आनन्द की बाढ़ आना, इन दस प्रकार के धर्मों का सार वह है। आहा..हा..!

क्षुल्लक धर्मदास तो ऐसा कहते हैं, अरे! भगवान आत्मा एक और दस प्रकार के धर्म, यह कहाँ आया? भगवान आत्मा एक और बाईस परीषह? आत्मा एक और बारह भावना। आहा..हा..! अन्तरस्वरूप में एकाग्र होना, उसमें फिर दूसरी भावना-वावना क्या है? आहा..हा..! वह तो निमित्त से कथन किया कि यह अनित्य भावना, यह अशरण भावना। बात तो वीतरागस्वभाव में एकाग्र होना, वह सब भावना है। आहा..हा..!

वही कर्तव्य है। आहा..हा..! शुभभाव भी कर्तव्य नहीं। तब है क्या? अन्तरस्वरूप भगवान में शुद्ध उपयोग लगाकर वहीं का वहीं कायम रहना। कमजोरी से राग आता है तो कर्ता नहीं होना। आहा..हा..! समझ में आया? कमजोरी से, शुद्ध उपयोग में से हटकर शुभभाव आता है, परन्तु कर्तृत्व नहीं करना। आहा..हा..! जानने-देखनेवाला रहना। आहा..हा..! उस राग को जानने-देखनेवाला कहना, वह भी व्यवहार है। आहा..हा..! अपनी पर्याय को ही जानता है, देखता है, बस। आहा..हा..! **वही कर्तव्य है।** आहा..!

मुनि बारम्बार आत्मा के उपयोग की आत्मा में ही प्रतिष्ठा करते हैं। उनकी दशा निराली, पर के प्रतिबन्ध से रहित, केवल ज्ञायक में प्रतिबद्ध, मात्र निजगुणों में ही रमणशील, निरालम्बी होती है। मुनिराज मोक्षपंथ में प्रयाण आरम्भ किया उसे पूर्ण करते हैं॥२२२॥

२२२, **मुनि बारम्बार आत्मा के उपयोग की आत्मा में ही प्रतिष्ठा करते हैं।** आहा..हा..! मुनि किसे कहें!? प्रभु! वह तो परमेश्वर पद। आहा..हा..! जिसमें तीन कषाय का अभाव होकर प्रचुर स्वसंवेदन भावलिंग जिन्हें प्रगट हुआ है। आहा..हा..! वे मुनि **बारम्बार आत्मा के उपयोग की आत्मा में ही प्रतिष्ठा करते हैं।** उपयोग बारम्बार अन्दर लाते हैं। आहा..हा..! छठवें गुणस्थान में विकल्प आता है, उतना जगपंथ है। आहा..हा..! अन्तर में बारम्बार उपयोग ले जाते हैं, अन्तर में जाते हैं। आहा..हा..! यह

मुनिपना है। समझ में आया? 'धन्य मुनिदशा' पुस्तक आयी है न? उसमें बहुत सरस बात डाली है। **उनकी दशा निराली,...** आहा..हा..! भाई! मुनिपना किसे कहना? आहा..! अन्तर में आनन्द की लहर उठती है। आहा..! अपना उपयोग बारम्बार अन्दर ले जाते हैं। आहा..हा..! छठवें में आते हैं तो विकल्प उत्पन्न होता है तो वह इतना जगपंथ है। आहा..हा..! महाव्रत के विकल्प, वह प्रमाद है। छठवें गुणस्थान में है न? वह प्रमाद है। आहा..हा..! व्रत का विकल्प, वह प्रमाद है। आहा..हा..! मुनि तो उस प्रमाद को छोड़कर अन्दर में उपयोग बारम्बार लगाते हैं। आनन्द.. आनन्द.. आनन्द.. आनन्द.. आहा..हा..! जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द का भरचक भगवान विराजमान है। आहा..हा..! वहाँ उपयोग को बारम्बार ले जाये, उसका नाम मुनिपना है। आहा..हा..! कठिन काम है। लोग ऐसा कहते हैं, तुम वर्तमान मुनि को मानते नहीं। प्रभु! तुझे मनवाने का क्या काम है? आहा..! मुनिपना हो और दूसरा न माने तो इससे कहीं मुनिपना चला जाता है? और मुनिपना नहीं है और मनवावे और दूसरे मानें तो मुनिपना आ जाता है? आहा..हा..!

मुमुक्षु : मुनि के पैर लगना (वन्दना करना) वह श्रावक का कर्तव्य है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो शुभविकल्प आवे तो होता है, कर्तृत्व नहीं। आहा..!

यह दशा निराली है। **पर के प्रतिबन्ध से रहित,...** कोई प्रतिबन्ध नहीं कि पाठशाला में तुम्हें एक घण्टे तो आना पड़ेगा। आहा..हा..! मन्दिर के लिये इतने पैसे इकट्ठा करना, तुम्हें ऐसा भाषण करना पड़ेगा। आहा..हा..! अरे! यह मुनि का काम नहीं प्रभु! आहा..हा..! है? **केवल ज्ञायक में प्रतिबद्ध, मात्र निजगुणों में ही रमणशील,...** आहा..हा..! निजगुण में रमणशील। **निरालम्बी होती है। मुनिराज मोक्षपंथ में प्रयाण आरम्भ किया उसे पूर्ण करते हैं।** अन्तर में आनन्द में गये तो उसे पूर्ण करते हैं। उसका नाम मुनिपना और उसका नाम शुद्धोपयोग है। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ला-६, शुक्रवार, दिनाङ्क ०८-०९-१९७८
वचनामृत-२२३-२२६ प्रवचन-८८

शुद्धात्मा में स्थिर होना वही कार्य है, वही सर्वस्व है। स्थिर हो जाना ही सर्वस्व है, शुभ भाव आये परन्तु वह सर्वस्व नहीं है॥२२३॥

२२३ बोल है। **शुद्धात्मा में स्थिर होना वही कार्य है,...** क्या कहते हैं? आहा..हा..! शुद्ध आत्मा चेतन में स्थिर होना, दृष्टि जमाकर स्थिर होना, वह कार्य है। आहा..हा..! चेतन की ऐसी छटपटी चाहिये कि चेतन बिना कहीं चैन न पड़े। मेरी चीज़ जो भगवान आत्मा चेतनस्वरूप भगवान 'सखी मुझे देखन दे चन्दप्रभु मुखचन्द्र, सखी मुझे देखन दे।' आहा..हा..! शुद्धपरिणतिरूपी सखी को आत्मा कहता है। सखी! मुझे चन्द्रप्रभु... (भक्ति में) चन्द्रप्रभु लिये हैं परन्तु यह चन्द्रप्रभु आत्मा, शीतलनाथ, शीतलस्वरूप चेतन मुझे देखने दे। मुझे दूसरी कोई चीज़ नहीं चाहिये। आहा..हा..! समझ में आया? चेतन के दर्शन करने की जिसे अन्दर छटपटी है, आहा..हा..! मुझे कोई चीज़ मेरी रुचि में नहीं आती। आहा..हा..! प्रभु! तेरे दर्शन मुझे दे। ऐसी बात है, प्रभु!

एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चोइन्द्रिय, पंचेन्द्रियपना में प्रभु तुझे कहीं नहीं देखा। आहा..हा..! अरे अनन्त बार मुनिपना लिया परन्तु तेरे दर्शन नहीं हुए, नाथ! आहा..हा..! तो एक बार चेतन के दर्शन करने दे। आहा..हा..! दूसरी सब झंझटें छोड़कर.. आहा..हा..! धर्मी जीव को चेतन का अनुभव करने में जिसकी लगन लगी है। आहा..हा..! दुनिया मान दे, न दे, उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। दुनिया गिनती में ले कि यह धर्मी है, वह कोई चीज़ नहीं। आहा..हा..!

मेरे चैतन्यभगवान पर दृष्टि करने से (वह) प्राप्त होता है तो हे सखी! मुझे स्वभाव पर दृष्टि करने दे। आहा..हा..! जगत के शरीर के प्राण भी भले जाओ, आहा..हा..! मेरा

चैतन्य भावप्राण मुझे दृष्टि में आवे और मेरे चैतन्य भावप्राण के मुझे दर्शन हो – ऐसी धर्मी की भावना होती है। आहा..हा..! समझ में आया?

शुद्धात्मा में स्थिर होना... भगवान! आहा..हा..! वह क्रियाकाण्ड सब राग आदि हो, उससे तुझे क्या लाभ है? आहा..हा..! मैं तो भगवान पूर्णस्वरूप शुद्ध चैतन्य हूँ। धर्मी की दृष्टि में शुरुआत से (ऐसा है कि) राग में तो नहीं, परन्तु पर्याय में रुकना नहीं। आहा..हा..! भाई! मार्ग तो ऐसा अलौकिक है। आहा..हा..! अन्तरस्वरूप भगवान में दृष्टि देना और भगवान चैतन्य की भेंट करना। आहा..हा..! प्रभु! मैंने राग और पुण्य-पाप की भेंट अनन्त बार की, वह तो परिभ्रमण का कारण हुआ। आहा..हा..! समझ में आया?

भगत को अन्दर से आत्मा की भक्ति उठती है। आहा..हा..! यह बात है, भाई! पूरी दुनिया छोड़कर मेरा भगवान पूर्णानन्द प्रभु, वह मुझे मिल जाये और मुझे उसकी भेंट हो। आहा..हा..! भभूतमलजी! यह तुम्हारे रुपये-वुपये तो कहीं धूल में रह गये। आहा..हा..! अनन्त काल में चैतन्य भगवान अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप प्रभु की भेंट हो जाये और भेंट होकर स्थिर हो जाना। आहा..हा..! शुद्धात्मा का कर्तव्य यह है। समझ में आया? भाई! मार्ग कोई अलौकिक चीज़ है।

चैतन्य जागृतस्वभाव का पिण्ड प्रभु, वह चैतन्य रत्नाकर सागर-समुद्र है, उसकी भेंट करके.. आहा..हा..! अन्दर स्थिर हो जाना – यह है। समझ में आया? **स्थिर होना वही कार्य है,...** आहा..हा..! पर का कार्य तो करना है नहीं, परन्तु दया, दान के कार्य, वे भी मेरे कार्य नहीं। प्रभु! मैं तो ज्ञातादृष्टा चैतन्यस्वरूप हूँ न! आहा..हा..! मेरा कार्य तो शुद्धात्मा प्रभु में रहना, वह मेरा कार्य है। आहा..हा..! मेरे निज घर में वास करना, स्थिर... स्थिर है न? निवास करना। आहा..हा..! अनादि से पुण्य और पाप और पर्याय में वास किया, प्रभु! वह तो मिथ्याबुद्धि थी। आहा..हा..!

यहाँ कहते हैं, प्रभु! चैतन्यप्राण... पहली जीवत्वशक्ति ली है न? उसमें चैतन्य— ज्ञान, दर्शन, आनन्द, सत्ताप्राण जो त्रिकाली प्राण... आहा..हा..! उस प्राण से जिसका जीवन है-ऐसे जीव की भेंट करना। ऐसी बात है, भाई! भभूतमलजी! यह सम्यग्दर्शन किस प्रकार हो उसकी बात चलती है। आहा..हा..! सम्यक् अर्थात् सत्य दर्शन। आहा..हा..! वह भी दूसरे कहते हैं वह नहीं। सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो सर्वज्ञस्वभावी, सर्वज्ञस्वभावी त्रिकाली वस्तु (जैसी देखी और कही)। आहा..हा..! उसमें दृष्टि करके और स्थिरता

करके लीन होना। आहा..हा..! यही शुद्धात्मा का कार्य है। लोगों को इसमें एकान्त लगता है परन्तु साधन चाहिए न? कुछ कार्य करना, मन्द रागादि करे, भक्ति आदि करे। अरे...! प्रभु! वह तो राग है न! प्रभु! आहा..! राग के अवलम्बन से शुद्ध आत्मा का अवलम्बन होता है? आहा..हा..!

चैतन्यघन वीतरागमूर्ति प्रभु का तो वीतराग शुद्धोपयोग से साक्षात्कार होता है। समझ में आया? यह ऊपर (२२२ बोल में) आ गया है। **उपयोग की आत्मा में ही प्रतिष्ठा करते हैं।** है न? शुद्धोपयोग, यह २२२ में आ गया है। आहा..हा..! शुभ-अशुभराग को छोड़कर... पर को तो छोड़ने का है ही नहीं, पर तो छूटा हुआ ही है। आहा..हा..! शरीर, कर्म, स्त्री, कुटुम्ब-परिवार वह परचीज़ तो छोड़नी कहाँ है? वह तो छूटी हुई ही है। आहा..हा..! समझ में आया? वह तो छूटी ही है। तेरे पास आयी नहीं और तेरी है नहीं। आहा..हा..! तुझमें जो पुण्य और पापादि के भाव हैं, वे तेरी पर्याय के पास हैं। आहा..हा..! और वे तेरी पर्याय में हैं। आहा..हा..! उन्हें भी छोड़कर। आहा..हा..! भगवान चैतन्यस्वभाव में चैतन्यमूर्ति प्रभु, स्वयंभू अनन्त-अनन्त गुण का रत्नाकर, भाई! उसमें मुझे रहने दे। आहा..हा..! ऐसे प्रभु को - आत्मा को कहते हैं, हों! आहा..हा..! ऐसी बातें लोगों को कठिन लगती हैं। कुछ बाहर के साधन हों और ऐसा हो... आहा..हा..!

कितने ही ऐसे निकले हैं, जैनधर्म में आया है, एक ब्रह्मचारी महिला है। सब धर्म में एक ही बात की है, यथार्थ, बस। अरे प्रभु! क्या कहता है? भाई! जिसमें सर्वज्ञस्वभावी आत्मा नहीं और जिसमें सर्वज्ञ प्रगट पर्याय वाला आत्मा नहीं... आहा..हा..! वहाँ उस सर्वज्ञस्वभावी आत्मा की बात कौन कर सकता है? समझ में आया? जहाँ सर्वज्ञस्वभावी आत्मा, वस्तु स्वभाव ही सर्वज्ञस्वभावी आत्मा है। ऐसा जिसमें नहीं और... जिसमें सर्वज्ञस्वभावी पर्याय प्रगट हुई.. क्योंकि वह सर्वज्ञस्वभाव है, आहा..हा..! उसमें **स्थिर होना वही कार्य है,...** स्थिर होता है उसे सर्वज्ञता हो जाती है। आहा..हा..! ऐसे सर्वज्ञ हुए, उन्हें जो ज्ञात हुआ और उस वाणी में जो आया कि तू वीतरागमूर्ति सर्वज्ञस्वरूपी प्रभु तू है। आहा..हा..! ऐसी बात कभी सुनने को मिली नहीं।

यह चौथी गाथा में आता है न? 'श्रुत परिचित अनुभूता' भगवान! शुभराग की क्रिया अनन्त बार परिचय में आयी और सुनने में भी आयी, अनुभव में भी आयी। आहा..हा..! परन्तु मेरा नाथ अन्दर चैतन्य आनन्द का नाथ, अनुभव में नहीं आया।

आहा..हा..! समझ में आया? उसमें एकाकार (होना)। सर्वज्ञ ने कहा और सर्वज्ञ हुए तो सर्वज्ञस्वभावी हैं, उसमें से सर्वज्ञ हुए। आहा..हा..! भाई! यह बात कहाँ है? आहा..हा..! समझ में आया? यह तो वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा के मार्ग में जो कहा, वह वस्तु अन्यत्र कहीं नहीं है। ऐसा भी जहाँ निर्धार नहीं... समझ में आया? सुनो! आहा..!

एक समय में तीन काल-तीन लोक (को) ज्ञान की पर्याय में जानते हैं, जानने में आ जाते हैं। आहा..हा..! ऐसी पर्याय जिन्हें प्रगट हुई, क्योंकि उनका स्वभाव ही ऐसा है। स्वभाव में स्थिर होकर शक्ति में से व्यक्तता प्रगट की। आहा..हा..! ऐसे सर्वज्ञ भगवान की वाणी में यह आया है। आहा..! प्रभु! तू शुद्धात्मा है न! हमने जो प्रगट किया, वैसी चीज़ तू है। आहा..! हमारी जाति का-जाति का तू आत्मा है, भाई! हमारे पर्याय प्रगट हुई, तुझमें स्वभाव-शक्ति परिपूर्ण भरी है। आहा..हा..! सात तत्त्व का निर्णय करे परन्तु एक आत्मा का निर्णय अन्दर आना.. आहा..हा..! यह **भूदत्थेणाभिगदा** आ गया न? (समयसार) १३वीं गाथा।

चैतन्य ज्ञायकभगवान परमानन्द प्रभु, आहा..हा..! ऐसी लगन लगे कि जिसमें स्थिर हो जाना। आहा..हा..! समझ में आया? यहाँ तो यह बात है। **वही सर्वस्व है।** देखो, आहा..हा..! सर्व-स्व। भगवान पूर्णानन्द प्रभु की दृष्टि लगाकर उसमें स्थिर होना, वह सर्वस्व है। आहा..हा..! बारह अंग में भी यह अनुभूति करने को कहा है। यह कलश-टीका में आया है। आहा..हा..! बोलना भी क्या? विकल्प वह क्या चीज़ है। आहा..हा..! शास्त्र का ज्ञान, वह भी क्या वस्तु है?

मुझे तो अन्दर ऐसा आ गया था कि शास्त्रज्ञान है, वह परद्रव्य है; वह स्वद्रव्य नहीं। आहा..हा..! यदि परद्रव्य न हो तो उसमें आनन्द आना चाहिए। परद्रव्य कहा तो दुःख है तो वह परद्रव्य है। आहा..हा..! समझ में आया? नियमसार में पर्याय को परद्रव्य कहा है, वह अलग वस्तु है। वह तो निर्मलपर्याय को भी वहाँ परद्रव्य कहा है। आहा..हा..! परन्तु यहाँ तो शास्त्र का ज्ञान और राग की मन्दता का महाव्रत का भाव.. आहा..हा..! वह स्वद्रव्य में नहीं है। इसलिए वह परद्रव्य है। आहा..हा..! उस परद्रव्य का लक्ष्य, अवलम्बन छोड़कर.. आहा..हा..! मैं तो शुद्धात्मा हूँ। आहा..हा..! उसमें सर्वस्व आ जाता है। आहा..हा..! समझ में आया?

स्थिर हो जाना ही सर्वस्व है,... आहा..हा..! चैतन्य-चैतन्य दल वस्तु में दृष्टि करके

स्थिर हो जाना। आहा..हा..! वह सर्वस्व है। वह सर्वस्व, वह कर्तव्य है। लोगों को कठिन लगता है, क्या हो? करना तो यह है। इसके बिना कभी संसार का अन्त नहीं आयेगा, प्रभु! आहा..हा..! बाहर से मानों हम सुखी हैं, पैसा और इज्जत और कीर्ति... धूल में भी है नहीं, भाई! आहा..! शास्त्र का ज्ञान करके मानना कि हम सुखी हैं, वह भी मिथ्यात्वभाव है। आहा..हा..! इसलिए यहाँ कहा, शुद्धात्मा में स्थिर होना। आहा..हा..! वहाँ तो अनादि से अटक गया है, प्रभु! शुभभाव आया, शास्त्रज्ञान हुआ, पंच महाव्रत आये, बाहर में मुनिपना लिया। मुनिपना बाहर में लिया परन्तु मुनिपना हुआ नहीं। आहा..हा..! मुनिपना कब होता है? शुद्धात्मा की दृष्टि करके अन्दर स्थिर होना, तब मुनिपना होता है। मुनिपना ले लेना-बनना वह अलग चीज़ है और मुनिपना होना, वह अलग चीज है। आहा..हा..!

शुभ भाव आये... आहा..हा..! अशुभ की तो बात यहाँ छोड़ दी है परन्तु दया, दान, भक्ति, पूजा, व्रत, शास्त्रवांचन, शास्त्र सुनना.. आहा..हा..! यह शुभभाव आवे **परन्तु वह सर्वस्व नहीं है।** वह कोई चीज़ सर्वस्व आत्मा नहीं है। आहा..हा..! समझ में आया? सर्व-स्व नहीं है। सर्व-स्व नहीं है, वह पर है। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं।

फिर किसी का बड़ा लेख आया है। अभी चाहिए तो कोई कानजीस्वामी के भक्त दिखाये, कोई मुनि भक्त दिखाये, परन्तु महावीर को भूल गये हैं - ऐसा लिखा है। अरे! प्रभु! उसे ऐसा कि अनेकान्त होना, वह महावीर का धर्म है। आहा..हा..! व्यवहार से भी धर्म होता है, निश्चय से भी होता है, निमित्त से भी होता है, उपादान से भी होता है - यह अनेकान्त। भगवान! आहा..हा..! स्व की अस्ति और पर की नास्ति - इसका नाम अनेकान्त है। आहा..हा..! अनेक धर्म कब कहलाते हैं? कि स्व की अस्ति और पर की नास्ति। आहा..हा..! उसका नाम अनेकान्त है। यहाँ की बात ऐसी आती है कि व्यवहार से लाभ नहीं होता है - यह एकान्त है। अरे प्रभु! सम्यक् एकान्त है। आहा..! वह शुभभाव आया परन्तु उसे छोड़कर शुद्ध भगवान अन्दर पूर्णानन्द का नाथ विराजमान है न? आहा..हा..! वहाँ नजर कर न, प्रभु! आहा..हा..! नजर बाहर में घूमती है। आहा..हा..! जहाँ निधान पड़े हैं, भगवान! वहाँ नजर कर न। आहा..हा..! वह सर्वस्व है। आहा..हा..! दुनिया मानो, न मानो, दुनिया की सत् की संख्या हो, न हो परन्तु सत्य तो यह है। आहा..हा..! **शुभभाव आये परन्तु वह सर्वस्व नहीं है।** आहा..हा..! २२३ (बोल पूरा) हुआ।

अन्तरात्मा तो दिन और रात अन्तरंग में आत्मा, आत्मा और आत्मा—ऐसा करते-करते, अन्तरात्मभावरूप परिणमते-परिणमते, परमात्मा हो जाता है ॥२२४॥

अन्तरात्मा तो दिन और रात... आहा..हा..! राग से भिन्न होकर, भगवान आत्मा का भेदज्ञान किया - ऐसा अन्तरात्मा **दिन और रात अन्तरंग में आत्मा, आत्मा और आत्मा...** आहा..हा..! शुद्ध परिब्रह्म भगवान मैं हूँ, बस! आहा..हा..! ऐसी रटन लगी है। आत्मा, आत्मा **ऐसा करते-करते,...** शुद्ध चैतन्य भगवान आत्मा को दृष्टि में लेकर, शुद्धात्मा.. आत्मा.. आहा..हा..! ऐसा करते-करते **अन्तरात्मभावरूप परिणमते-परिणमते,...** आहा..हा..! अन्तर आत्मभावरूप। रागरूप परिणमना, वह तो बाह्य भाव है। आहा..! अन्तरात्मारूप में शुद्ध आत्मा हूँ, आत्मा हूँ, आत्मा हूँ—ऐसा अन्तर में रटन करते-करते.. आहा..हा..! रटन शब्द से (आशय) विकल्प नहीं, हों! यहाँ। आहा..हा..! अन्तरात्मभावरूप, अन्तर-आत्म-भाव-रूप—ऐसा है न? अन्तरात्मभावरूप। आहा..हा..! रागादि कोई अन्तरात्मभाव नहीं। आहा..हा..! **परिणमते-परिणमते,...** आहा..हा..! शुद्ध आत्मा को दृष्टि में लेकर उसकी परिणति परिणमते-परिणमते.. आहा..हा..! **परमात्मा हो जाता है।** अन्तरात्मभावरूप से, अन्तरात्मभावरूप से परिणमते परिणमते परमात्मा हो जाता है। आहा..हा..! अन्तरात्मा जो परमात्मस्वरूप है, उसके अन्तरआत्मभावरूप से होने पर भी, उस परमात्मस्वरूप की भावना शुद्ध उपयोग करते-करते, आहा..हा..! वह परमात्मा पर्याय में हो जाता है। आहा..! दूसरा कोई कारण है नहीं। मनुष्यपना और संहनन—व्रजनाराचसंहनन और ऐसे साधन हों तो परमात्मा बन सकते हैं—ऐसा नहीं है। निमित्तरूप से हो, उससे क्या हुआ? आहा..!

यहाँ तो शुद्धात्मा परमात्मस्वरूप भगवान के उपयोग में रटन करते-करते—एकाग्रता करते-करते, शुद्धात्मा का परिणमन करते-करते परमात्मा हो जाता है। आहा..हा..! सुमनभाई! यह बात पूरी दूसरी है। दुनिया से अलग है, भाई! **परमात्मा हो जाता है।** आहा..हा..! २२४। अभी आधा भाग भी नहीं हुआ, हों! ४३२ बोल हैं न? बोल ४३२ हैं, अभी तो २३२ भी आया नहीं। तीन महीने तो हो गये। आहा..हा..!

अहा! अमोघ—रामबाण समान—गुरुवचन! यदि जीव तैयार हो तो विभाव टूट जाता है, स्वभाव प्रगट हो जाता है। अवसर चूकने जैसा नहीं है ॥२२५॥

अहा! अमोघ—रामबाण समान—गुरुवचन! सन्तों के-गुरु के-केवली के.. आहा..हा.. ! रामबाण वचन, कि जहाँ परिणति आत्मा की होती है, तब कल्याण है - ऐसे रामबाण वचन। आहा..हा.. ! चैतन्य भगवान अपनी शुद्धपरिणति में आता है.. आता है, उसका अर्थ - **जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो** (समयसार गाथा २) आहा..हा.. ! पर्याय में कहीं द्रव्य आता नहीं परन्तु शुद्ध परिणमन आत्मा करता है, उसमें रहता है - ऐसा कहना है। **जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो** वहाँ **चरित्त** शब्द पहले लिया है परन्तु दर्शन-ज्ञान-चारित्र में स्थित। आहा..हा.. ! सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र में जीव स्थित। आहा..हा.. ! वह स्वसमय, वह आत्मा है। आहा..हा.. ! और राग तथा पुण्य, दया, दान के विकल्प में स्थिर है, वह पुद्गल प्रदेश में स्थिर पर आत्मा-अनात्मा है। आहा..हा.. ! यह तो दूसरी गाथा। आहा..हा.. !

अहा! अमोघ—रामबाण... अमोघ अर्थात् ? मोघ अर्थात् निष्फल, अमोघ अर्थात् सफल। मोघ अर्थात् निष्फल, अमोघ अर्थात् सफल। अमोघ का अर्थ (यह है) । आहा..हा.. ! आनन्द का नाथ प्रभु अन्दर, आहा..हा.. ! उसकी दृष्टि करके स्थिर होना, वह गुरु के वचन हैं। ज्ञानी के, सन्तों के, केवली के वे वचन हैं। रामबाण है। वीतरागपर्याय से तेरे आत्मा को जान। आहा..हा.. ! वह रामबाण - फिरे नहीं। ऐसे वीतराग पर्याय द्वारा अन्दर (आत्मा को) जान। वह कभी फिरे नहीं। वह तुझे अनुभव में आयेगा। आहा..हा.. ! लोगों की लालच और लालसा की दृष्टि छोड़ दे, प्रभु ! आहा..हा.. ! लोग प्रसन्न हों और लोग मुझे पसन्द करें, बापू ! इसमें तेरा क्या आया ? आहा..हा.. !

यदि जीव तैयार हो तो विभाव टूट जाता है,... आहा..हा.. ! विभाव तोड़ने के वचन हैं, स्वभाव प्रगट करने के गुरु के वचन हैं। राग करना या राग छोड़ने का प्रश्न यहाँ नहीं हैं। आहा..हा.. ! समझ में आया ? यहाँ तो स्वरूप की दृष्टि और रमणता कर, ये गुरु के वचन हैं। आहा..हा.. ! कठिन बात, बापू ! लोगों को पसन्द पड़े न पड़े परन्तु क्या हो ?

भाई! तेरा भगवान रह गया एक ओर और सब शुरु किया तूने.. आहा..हा..! पुण्य और पाप शास्त्र के ज्ञान और महाव्रत का सब शुरु किया। भगवान को भूल गया। आहा..हा..! समझ में आया?

यदि जीव तैयार हो तो विभाव टूट जाता है,... आहा..हा..! क्योंकि वीतराग के सन्तों के वचन यह हैं कि ज्ञायकस्वरूप भगवान का अनुभव कर। अनुभव होता है। आहा..हा..! ऐसी दृष्टि करने से विभाव टूट जाता है। विभाव की एकता जो अनादि की मानी है, वह तोड़ने का उपाय भगवान कहते हैं और यह तैयार हो तो इसका विभाव टूट जाता है। आहा..! राग और भगवान के बीच सन्धि है, एकता नहीं। स्वभाव की दृष्टि के अभाव में राग के साथ एकता मान रखी है। तेरी मान्यता ऐसी है; वस्तु ऐसी नहीं है। आहा..हा..! ऐसी सन्तों की वाणी... आहा..हा..! वीतराग.. वीतराग.. वीतराग.. यह सन्तों की वाणी वीतरागता प्रगट करे, आहा..हा..! रागपना प्रगट है, उसे छोड़ दे। आहा..! यह वीतरागपना प्रगट करे, वह रामबाण वचन है। आहा..हा..! भगवान आत्मा में अन्तर में जा तो विभाव टूट जाते हैं। राग और स्वभाव की एकता की जो मान्यता थी, वह स्वभाव में जाने से एकता टूट जाती है, विभाव टूट जाते हैं। आहा..हा..! समझ में आया? आहा..!

एक बार स्तुति में कहा है, पद्मनन्दि पंचविंशति में। भगवान! मैंने जब तुम्हारे दर्शन किये.. बात ऐसे भगवान से ली है, वे बादल थे, वे अखण्ड थे और मैंने जहाँ दर्शन किये और मैंने हाथ ऐसे किये तो बादल टूट गये। ये टूटते बादल दिखते हैं। सिद्धान्त क्या कहना है? बादल थे न ऊपर? वे टुकड़े, टुकड़े, टुकड़े, टुकड़े... सन्तों ने अलंकार किया। अरे प्रभु! यह टुकड़े-टुकड़े दिखते हैं, वे क्या हैं? कि मैंने जब मेरे भगवान आत्मा के दर्शन किये, तुम्हारे दर्शन, वे मेरे दर्शन हैं। उस समय अखण्ड बादल के-कर्म का जोर अखण्ड था, जहाँ तुम्हारे दर्शन हुए और हाथ ऐसे किये- भेदज्ञान हुआ तो अखण्ड बादल थे, उसके अब टुकड़े-टुकड़े दिखते हैं। अखण्ड रहे नहीं। आहा..! समझ में आया? ऐसी बातें हैं। वहाँ तो ऐसा लिया है कि प्रभु! तेरे दर्शन किये और मैं भक्ति में आया, हाथ ऐसे हुए तो अखण्ड बादल टूट गये। इसी प्रकार मेरी भक्ति आत्मा में लगी तो अखण्ड बादल-जो कर्म थे, उनके टुकड़े हो गये। वहाँ विभाव टूट गये। मेरी वस्तु में नहीं - ऐसा हो गया। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं। अध्यात्म की बातें सूक्ष्म पड़ती हैं। आहा..हा..!

सर्वज्ञ परमात्मा वीतराग परमात्मा के श्रीमुख से निकली हुई दिव्यध्वनि का यह

सार है। समझ में आया? **स्वभाव प्रगट हो जाता है।** आहा..हा..! वीतराग के वचन रामबाण वीतरागपना प्रगट कर - एक ही सिद्धान्त। आहा..हा..! वीतरागता प्रगट कब होती है? भगवान वीतराग मूर्ति प्रभु का आश्रय लेने पर वीतरागी पर्याय उत्पन्न होती है। तब राग की एकता टूट जाती है और स्वभाव प्रगट होता है। आहा..हा..! भाषा सरल है, बापू! भाव कुछ कठिन है। आहा..हा..! समझ में आया?

वीतराग और सन्तों के—जैन सन्त, दिगम्बर सन्त और केवली परमात्मा की वाणी में तो यह आया। भगवान! तू वीतरागमूर्ति है तो वीतरागपर्याय प्रगट कर न, प्रभु! है उसमें से आयेगी। आहा..हा..! राग को छोड़ने-फोड़ने की यहाँ बात नहीं है। आहा..हा..! यहाँ तो अस्ति-वीतरागमूर्ति भगवान अन्दर है, अकषायस्वरूप प्रभु का आश्रय लेकर दृष्टि हुई.. आहा..हा..! राग टूट जाता है और स्वभाव प्रगट होता है। शक्तिरूप जो सर्वज्ञस्वभाव था, वह पर्याय में व्यक्तरूप से अंश प्रगट हो गया। आहा..हा..! ऐसा उपदेश अब। तुम्हारे पूरे दिन धन्धा करना हो, उसे दो घण्टे... सरल सीधा रास्ता, रास्ता ही यह है। सरल कहो, कठिन कहो, वस्तु तो यह है। दुनिया चाहे जिस प्रकार माने और मनवावे, उससे कहीं मार्ग हाथ नहीं आयेगा, प्रभु! आहा..हा..!

राग की एकता में तूने भगवान को देखने में पर्दा डाल दिया है। एक बार अन्दर उस भगवान को देख। आहा..हा..! राग का पर्दा टूट जायेगा और अरागी दशा प्रगट होगी। स्वभाव प्रगट (होगा) अर्थात् अरागी (दशा प्रगट होगी)। सम्यग्दर्शन ज्ञान वह सब आरागी दशा (पर्याय) है। समझ में आया? आहा..हा..!

अवसर चूकने जैसा नहीं है। आहा..हा..! प्रभु! तुझे अवसर आ गया है न, नाथ! आहा..! ऐसा मनुष्यपना मिला, जैनकुल में जन्म हुआ, वीतराग की वाणी तुझे मिली.. आहा..हा..! निगोद के जीव, अरे! ये छोटे-छोटे जन्तु होते हैं न? अब उन्हें कहाँ खबर है? बेचारों को, पानी में ऐसे-ऐसे उड़े, ऐसे पड़े, प्रकाश हो वहाँ जाये। आहा..हा..! वह प्रकाश होता है वहाँ जाते हैं। छोटे जन्तु होते हैं न? जंगल में बहुत होते हैं। बैटरी पड़ी हो न? अरे रे! कहा, यह देखो न। बाहर के प्रकाश के लिये घूमते हैं परन्तु अन्दर का चैतन्य प्रकाश है, उसकी तो उन्हें खबर भी नहीं। अरे! उसे सुनने को कब मिले? वह कब पंचेन्द्रिय हो? कब वह मनुष्य हो? कब वह जैनकुल में जन्म हो? कब वह सर्वज्ञ

त्रिलोकनाथ की वाणी सुनने को मिले। आहा..हा..! और सुनने को मिले तथा राग तोड़े। आहा..हा..! (तो काम हो)।

अवसर चूकने जैसा नहीं है। आहा..हा..! मोक्षमार्गप्रकाशक में तो एक जगह आया है, ***सब अवसर आ चुका है।*** भाई! आहा..हा..! समझ में आया? वाद्ययन्त्र होता है वाद्ययन्त्र (जरा दबाव करे) तब बजता है न? इसी प्रकार अनन्त आनन्द का नाथ भगवान है, उसमें जरा दबाव कर, तो शुद्धता प्रगट होगी। शुद्धता की आवाज आयेगी। आहा..हा..! समझ में आया? जिसकी... वहाँ करते होंगे न? इसी प्रकार भगवान आत्मा अनन्त आनन्द और अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, वहाँ दृष्टि से दबाव कर न! शुद्धता प्रगट होगी। अन्दर आवाज आयेगी। वह बाजा बजेगा। आहा..हा..! **अवसर चूकने जैसा नहीं है।**

अपना अगाध गंभीर ज्ञायकस्वभाव पूर्ण रीति से देखने पर समस्त लोकालोक भूत-भविष्य की पर्यायों सहित समयमात्र में ज्ञात हो जाता है। अधिक जानने की आकांक्षा से बस होओ, स्वरूपनिश्चल ही रहना योग्य है॥२२६॥

२२६, **अपना अगाध गंभीर ज्ञायकस्वभाव...** अपना। भगवान का भगवान के पास रहा। अपना अगाध, जिसकी गहराई का पार नहीं। ऊण्डा को (हिन्दी में) क्या कहते हैं? गहराई। अन्दर गिरीगुफा में गहरे-गहरे जाते हैं न? वहाँ तो गिरी की हद का पता लग जाता है। इसका पता नहीं लगता पर्याय में। आहा..हा..! इतने अनन्त गुण की अगाध शक्ति का भण्डार प्रभु, जिसमें अनन्त-अनन्त गुण और एक-एक उस अनन्त गुण की अनन्तता.. यह क्या कहते हैं यह? इतने क्षेत्र में होने पर भी, जिसके अनन्त गुण-धर्म-स्वभाव इतना है, अगाध - पार नहीं आता, इतने गुण हैं। आहा..हा..!

अपना अगाध गंभीर... आहा..हा..! अनन्त गुण गम्भीर **ज्ञायकस्वभाव...** ऐसा भगवान ज्ञायकस्वभाव **पूर्ण रीति से देखने पर...** आहा..हा..! यहाँ तो अन्तिम (बात) ली है न? सम्यग्दर्शन में देखने से प्रतीति आयी, वहाँ अल्प परिणति है, परन्तु ऐसा **अगाध गंभीर ज्ञायकस्वभाव पूर्ण रीति से देखने पर समस्त लोकालोक..** आहा..हा..! बात कठिन, भाई! गहन स्वभाव। आहा..हा..! **पूर्ण रीति से देखने पर...** पूर्ण आश्रय करके पूर्ण रीति से देखने पर। आहा..हा..! वैसी पर्याय प्रगट होगी। **समस्त लोकालोक...** पूरा लोक

और अलोक। आहा..हा..! **लोकालोक भूत-भविष्य की पर्यायों सहित...** लोकालोक भूत-भविष्य की पर्याय सहित चैतन्य की निर्मल वीतरागी पूर्ण पर्याय, पूर्ण देखने से पूर्ण पर्याय (प्रगट हो जाती है)। आहा..हा..! उसमें भूत-भविष्य की पर्याय भी, वर्तमान में नहीं, तथापि जानता है - ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! भूत अर्थात् भूतकाल - अतीत काल और भविष्य पर्यायसहित। आहा..हा..! अनन्त द्रव्यों की पर्याय का अन्त नहीं। अन्तिम.. आहा..हा..! और भूत की पर्याय की कहीं शुरुआत नहीं। ऐसे इन भूत और भविष्य की पर्यायों सहित **समयमात्र में ज्ञात हो जाता है।** वर्तमान। आहा..हा..! तेरी वस्तु ऐसी है, प्रभु! अपूर्ण रीति से देखने पर अभी सम्यग्दर्शनादि होते हैं परन्तु पूर्ण रीति से देखने पर... पूर्ण.. पूर्ण.. पूर्ण में जहाँ पूर्ण आश्रय लिया तो एक समयमात्र में, भूतकाल-भविष्य की पर्यायोंसहित द्रव्य (ज्ञात हो जाता है)। आहा..हा..!

कोई कहे कि परन्तु भविष्य की पर्याय का अन्त नहीं न? अन्त नहीं, परन्तु अन्त नहीं - ऐसा ज्ञात होता है। आहा..हा..! भविष्य की पर्याय, द्रव्य, गुण की पर्याय अन्तिम कौन सी? अन्तिम है कहाँ? आहा..हा..! उसका भी समयमात्र की पर्याय में ज्ञान हो जाता है। आहा..हा..! और पर्याय की शुरुआत कौन सी? पहली पर्याय कौन सी? पहले सिद्ध कौन से? निगोद का जीव पहला कौन सा? पहला है ही कहाँ? आहा..हा..! ऐसा तत्त्व, एक समय में पूर्ण आत्मा का आश्रय जिसने लिया, उस पर्याय में भूत-भविष्य सहित, द्रव्य-गुण-पर्याय अपने और पर के एक समय में (जान ले)। आहा..हा..! यह तो क्या बात है? भाई! वस्तु का स्वरूप ही कोई ऐसा है। आहा..हा..!

ज्ञान हो जाता है। **समयमात्र में ज्ञात हो जाता है।** एक समय। 'क' बोलने में असंख्य समय जाते हैं। अ, अ बोलने में असंख्य समय जाते हैं। आहा..हा..! एक समयमात्र में, प्रभु! यह कहीं अकेली भाषा नहीं। आहा..हा..! भूत-भविष्य पर्यायसहित द्रव्य-गुण समयमात्र में ज्ञात हो जाते हैं। आहा..हा..! पूर्ण द्रव्य की प्रतीति करने से एक समय में सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न होती है और उसमें विशेष आश्रय लेने से चारित्र की पर्याय (होती है) और पूर्ण रीति से आश्रय लेने से, पूर्ण रीति से देखने पर... आहा..हा..! भूत-भविष्य की पर्यायोंसहित... भूत की-अतीतकाल की पर्याय पहली कौन सी? अरे! पहली कहाँ है? प्रभु! यह गम्भीर चीज़ है। अन्तिम चीज़ कौन सी है? ज्ञात हो तो फिर अन्तिम वस्तु कौन सी? अलोक को जाना तो अलोक का अन्त कहाँ देखा? आहा..हा..!

अन्त नहीं, पर्याय का अन्त नहीं, शुरुआत नहीं – ऐसा देखा। आहा..हा..! यह सर्वज्ञपद। आत्मा को पूर्ण रीति से देखने पर होता है, किसी क्रियाकाण्ड से होता है और व्यवहार करने से होता है – ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..!

अधिक जानने की आकांक्षा से बस होओ,... आहा..हा..! प्रवचनसार में आता है। अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, विशेष क्षयोपशम का भाव न हो, जानने की आकांक्षा बस होओ। हम तो भगवान आत्मा को पूर्ण जानने से केवलज्ञान हो जायेगा। आहा..हा..! प्रवचनसार (गाथा-३३) में है। अमृतचन्द्राचार्य.. हमारे तो आत्मा है, उसमें एकाग्र होना, दृष्टि करके अवलम्बन लेना (वही है)। विशेष क्षयोपशम से **अलम**, ज्ञान का विशेष क्षयोपशम न हो, बस!

भाई में भी आता है 'निहालभाई' में। अन्त में है। नहीं न यहाँ? यह है, यह निकला, हों! किसी ने रखा लगता है। अन्तिम शब्द है। आप कौन से शास्त्र का वाचन करते हो? अन्तिम शब्द है ६४५ (बोल)। उत्तर – शास्त्र वाचन करने की खास आदत नहीं रही। आहा..हा..! और मुझे क्षयोपशम भी नहीं बढ़ाना है। मैं तो मेरी वस्तु में दृष्टि करके स्थिर होऊँ, यह मुझे करना है। ज्ञान का क्षयोपशम विशेष हो या न हो... आहा..हा..! समझ में आया? यह फिर निकला यहाँ से? तुम्हें 'द्रव्यदृष्टि प्रकाश' मिला है न? भाई! द्रव्यदृष्टि प्रकाश नहीं मिला? यह पुस्तक। एक यहाँ थी तुम्हारे लिये। यह तो किसी का ओम किया हुआ है। होगा, तुम्हारे नसीब का होगा। ओम किया हुआ है। इनके पास जाने का था। आहा..हा..! **अधिक जानने की आकांक्षा से बस होओ,...** बहुत पण्डिताई और बहुत व्याकरण और... उसमें आता है न? मोक्षमार्गप्रकाशक में। व्याकरण आदि सब पण्डिताई (का विषय है)। आहा..हा..! **अधिक जानने की आकांक्षा से बस होओ,...**

स्वरूपनिश्चल ही रहना योग्य है। आहा..हा..! अपना भगवान आत्मा दृष्टि और अनुभव में आया, उसमें स्थिर होना, वह कर्तव्य है। आहा..हा..! वह योग्य है। आहा..हा..! वाचन और विशेष ज्ञान का क्षयोपशम और सब उड़ा दिया। आहा..हा..! पूर्णानन्द का नाथ प्रभु निर्विकल्प अनुभव होकर अन्दर स्थिर हो जाना, यह कर्तव्य है। आहा..हा..! बाकी विशेष वाचन न हो, समझाना न आवे, वह कोई वस्तु नहीं। आहा..हा..! यह २२६ (बोल पूरा) हुआ।

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ला-७, शनिवार, दिनाङ्क ०९-०९-१९७८
वचनामृत-२२७-२२९ प्रवचन-८९

शुद्धनय के विषयभूत आत्मा की स्वानुभूति सुखरूप है। आत्मा स्वयमेव मंगलरूप है, आनन्दरूप है; इसलिये आत्मा की अनुभूति भी मंगलरूप एवं आनन्दरूप है॥२२७॥

वचनामृत २२७, सूक्ष्म अधिकार है, भगवान! अनन्त काल से अन्तरात्मा चीज़ क्या है, उसका कभी ज्ञान नहीं किया। अनन्त काल से इन्द्रियज्ञान, बाहर से शास्त्रज्ञान किया, वह सब इन्द्रियज्ञान है। आहा..हा..! अनन्त बार दया, दान, भक्ति, व्रत, तप किया, वह सब विकल्प / राग है। आहा..हा..! भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु, सत् कायम रहनेवाला, चिद् ज्ञान और आनन्द प्रज्ञाब्रह्मस्वरूप वह उसकी चीज़ है। आहा..हा..! उसका अनुभव लिये बिना अनन्त काल से चौरासी लाख योनि में भटकता है। 'नरसिंह मेहता' भी ऐसा कहते हैं न? 'ज्यां लगी आत्मतत्त्व चिह्नयो नहि त्यां लगी साधना सर्व झूठी' चाहे तो भगवान की भक्ति करो और पूजा करो.. आहा..हा..! प्रभु! तेरी चीज़ अन्दर क्या है, उसका भान हुए बिना क्रियाकाण्ड में जो कुछ रागादि होते हैं, सर्व बन्ध का कारण, संसार का कारण है। आहा..हा..! ....भाई! सूक्ष्म बात है, प्रभु! दुनिया की तो हमें खबर है न! यहाँ तो नब्बे वर्ष हुए। दुनिया किस प्रकार से कहाँ चलती है, सब खबर है। मार्ग, बापू! जन्म-मरणरहित होने की चीज़ कोई अलग चीज़ है। समझ में आया? वह यहाँ कहते हैं।

बहिन है, 'चम्पाबेन' है। असंख्य अरब वर्ष का जातिस्मरण है और उनके उपदेश में आया था। यहाँ चौसठ बाल ब्रह्मचारी लड़कियाँ हैं। उनमें से नौ ने लिख लिया तो यह

बाहर आ गया। तीन महीने से इसका व्याख्यान चलता है। सबेरे समयसार अध्यात्म ग्रन्थ है, (वह चलता है और) अभी यह चलता है। क्या कहते हैं? सुनो प्रभु!

शुद्धनय के विषयभूत... सब भाषा, सादी भाषा है। आत्मा जो अन्दर आनन्दस्वरूप प्रभु सच्चिदानन्द नित्यानन्द ध्रुव है, उसे जो ज्ञान की पर्याय-अवस्था से ज्ञात हो, उस ज्ञान को शुद्धनय कहा जाता है। यह तो अन्दर अनन्त काल में कभी किया नहीं। आहा..हा..! बाकी तो शास्त्रज्ञान भी किया। शास्त्र भी लोगों को समझाया, वह सब राग अज्ञान है। आहा..हा..! यहाँ तो आत्मज्ञान। वह आत्मज्ञान क्या? आत्मा चीज़ क्या है? आहा..हा..! राग का ज्ञान नहीं, संयोग का ज्ञान नहीं, उसकी वर्तमान दशा / अवस्था चलती है, उसका ज्ञान नहीं। त्रिकाली ज्ञायकभाव भगवान आत्मा, ज्ञानस्वभाव और ब्रह्म प्रज्ञाब्रह्म। वह ज्ञान और आनन्द जिसका अनादि स्वरूप है। आहा..हा..! उसका विषय। जो अन्तरज्ञान की दशा में अन्तर में आत्मा को विषयभूत बनाकर, आत्मा को विषय बनाकर, ध्येय बनाकर। आहा..हा..! वर्तमान दशा में ध्यान में त्रिकाली भगवान पूर्णानन्द को ध्येय बनाकर अर्थात्... विषय सूक्ष्म है, प्रभु! आहा..हा..!

इसने दूसरा सब बहुत किया है परन्तु यह एक आत्मज्ञान नहीं किया तो परिभ्रमण नहीं मिटा। बाकी भटकते.. भटकते.. भटकते दुनिया (में) चौरासी के अवतार में, भाई! आहा..हा..! जन्म-मरण कर-करके कचूमर निकल गया है, बापू! यह चींटी के, कौवे के, कुत्ते के भव हैं। नरक के भव हैं, नरक एक योनि है। सूक्ष्म पड़ेगा। माँस आदि खाता है और मनुष्य को मारता है, वह बाहर पड़े कि मनुष्य को मारता है और कोर्ट में गवाही हो तो कदाचित् एक बार फाँसी मिले परन्तु इसने करोड़ों लोगों को या लाखों को मारा हो, उसका फल कहाँ है? लाख बार फाँसी पर चढ़ावे? जो लाखों लोगों को मारकर संहार करता है न? आहा..हा..! विलायत में बहुत होता है। सब पता है न? लाखों लोगों के संहार करने का जो पाप है, लाखों लोगों को दुःख देने का भाव, जितना दुःख दिया वैसे दुःख जहाँ हों, वहाँ जन्म लेना, इसका नाम नरक योनि कही जाती है। अरे रे!

इस प्रकार नरक योनि में.. सात नरक पाताल है नीचे। बहुत युक्ति से लॉजिक से सिद्ध करने जाये तो चले नहीं। नीचे सात पाताल हैं। जैसे यह मनुष्यक्षेत्र है, पशु है, ऊपर स्वर्ग है, यह चन्द्र-सूर्य आदि अन्दर देव है। सौधर्म इन्द्र आदि है। नीचे नरक हैं। सात पाताल हैं। उस पाताल में भी अनन्त बार आत्मज्ञान बिना गया है। भगवान प्रभु शुद्ध

चिदानन्द प्रभु का अनुभव में आनन्द आये बिना उसके चौरासी के अवतार अनन्त बार हुए हैं। आहा..हा..! सूक्ष्म है, प्रभु! यह श्लोक (बोल) ही मौके से आया है। बहिन के अनुभव में से (निकले हुए) वचन हैं। आहा..! सूक्ष्म बात है, भाई!

प्रभु! तू कौन है? तेरी प्रभुता कहाँ है? कितनी है? भाई! तुझे खबर नहीं। आहा..हा..! तुझमें तो अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. (ज्ञानादि गुण भरे हैं)। क्षेत्र का कहीं अन्त है? प्रभु! यह क्षेत्र है न? यह चौदह ब्रह्माण्ड है, वह तो असंख्य योजन में है। फिर कोई खाली भाग है या नहीं? अलोक.. अलोक। यह चौदह राजू लोक ब्रह्माण्ड है, वह तो असंख्य योजन में है, अनन्त योजन में नहीं। पश्चात् कोई क्षेत्र है या नहीं? नास्तिक को भी एक बार विचार करना पड़ेगा या नहीं? आहा..! उस क्षेत्र का अन्त कहाँ है? कि क्षेत्र अब पूरा हो गया। समझ में आया? आहा..हा..!

यह क्षेत्र, जिसे आकाश कहते हैं... सूक्ष्म बात है, प्रभु! आकाश नाम का एक अरूपी पदार्थ है। लोक में भी है और खाली अलोक में भी है। वह आकाश... आकाश.. आकाश.. ये बादली रंग का दिखता है, वह आकाश नहीं, हों! यह बादली रंग दिखता है, वह तो रूपी जड़ है। आकाश तो एक अरूपी पदार्थ है। जो लोक-यह जगत और खाली (भाग) सबमें व्यापक है। आहा..हा..! उसका अन्त कहाँ? कि अब बाद में क्षेत्र नहीं। लॉजिक से कुछ विचार तो करना पड़ेगा या नहीं? ऐसे का ऐसे अन्धश्रद्धा से जिन्दगी बितायी है जगत ने।

यह वस्तु क्या है? इस क्षेत्र का पार नहीं। अन्त नहीं, अन्त नहीं, अन्त नहीं। अनन्त को अनन्त वर्ग करो, अनन्त को अनन्त वर्ग। वर्ग का अर्थ क्या? एक अनन्त को एक अनन्त से एक बार गुणा करो, पश्चात् जो भाग आवे उस दूसरे अनन्त को अनन्त बार गुणा करो, ऐसा अनन्त बार गुणाकार हो तो भी क्षेत्र का अन्त नहीं है, इतना अनन्त क्षेत्र है। आहा..हा..! उस क्षेत्र का जाननेवाला भगवान आत्मा.. आहा..हा..! क्षेत्रज्ञ है। वह अमाप क्षेत्र है, उसे जाननेवाला क्षेत्रज्ञ प्रभु है। प्रभु अर्थात् यह आत्मा, हों! आहा..! कैसे जँचे? दो बीड़ी, सिगरेट ठीक से पीवे तब भाईसाहब को पाखाना / जंगल उतरे। ऐसे तो अपलक्षण, अब उसे ऐसा आत्मा (समझाना)। दो बीड़ी पीकर आवे और डेढ़ पाव सेर चाय पीकर यहाँ आवे तो मस्तिष्क ठिकाने रहे। आज चाय नहीं पी, इसलिए मस्तिष्क ठिकाने (नहीं है)। ऐसी यह मूर्खायी! अब इसे कहना कि तू प्रभु है।

तुझमें प्रभु! क्या कहें? ज्ञान, दर्शन, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता ऐसी शक्तियाँ जो गुण हैं,.. सूक्ष्म पड़ेगा प्रभु! यहाँ तो अनेक बार बात हो गयी है। वे अनन्त धर्म जो गुण हैं, जानन-देखन आस्था, अस्ति, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, प्रमाणत्व, ऐसे जो अनन्त-अनन्त गुण हैं, उनका कहीं अन्त नहीं इतने तुझमें गुण हैं। जैसे क्षेत्र का अन्त नहीं... आहा..हा..! प्रभु! तू शरीरप्रमाण भले हो, परन्तु तेरे गुण की संख्या का पार नहीं, इतने गुण तुझमें हैं। यह गुण अन्तिम है - ऐसा कहीं अन्त नहीं है। क्या कहते हैं यह? अरे रे!

ऐसा आत्मा **शुद्धनय के विषयभूत...** आहा..हा..! अपने ज्ञान की निर्मल पर्याय का विषय अर्थात् ध्येयभूत। वह राग से ध्येयभूत नहीं होता। दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का राग तो विकल्प है, उनसे वह ध्येयभूत नहीं होता। आहा..हा..! अरे! भगवान! समझ में आया? वह तो अन्तर की निर्मल पर्याय द्वारा (ध्येय होता है)। आहा..हा..!

मेरे द्वारा एक (बात) कही गयी थी, भाई! शास्त्रज्ञान वह पुद्गल है, वह आज इसमें निकला योगीन्द्रदेव (कृत) योगसार में। योगसार में। मुझे तो अन्दर से आया था। यह शास्त्रज्ञान जड़ है, आत्मज्ञान नहीं। आज पढ़ते हुए आ गया। योगसार है न, लो, यही निकला 'वैश्विक ज्ञान सब पौद्गलिक है', ७६ श्लोक है, योगसार। भगवान आत्मा में योग अर्थात् वीतरागी निर्दोष दशा में जुड़ान करना। कठिन बातें, बापू! वर्तमान ज्ञान की दशा में अनन्त काल से राग, पुण्य, भक्ति और पाप के परिणाम में जोड़ दिया है, वह मिथ्या भ्रान्ति है। अन्दर भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उसे इन्द्रियज्ञान जो होता है, उसे भी पौद्गलिक कहने में आया है। आहा..हा..! अन्तर अतीन्द्रिय भगवान जो आत्मा है। आहा..हा..! अनादि से इन्द्रियज्ञान ही करता है, परन्तु अपना स्वरूप अन्दर अतीन्द्रिय तत्त्व है न? अस्ति है न? वस्तु है न? पदार्थ है न? है तो उसकी कोई शक्तियाँ भी हैं या नहीं? आहा..हा..! शक्ति भी अनन्त है। संख्या से अनन्त है। अनन्त संख्या से (रही हुई) एक-एक शक्ति की अनन्त-अनन्त अमाप ताकत है। आहा..हा..! अरे रे! कभी इसने आत्मा क्या है, (उसकी दरकार नहीं की)। निज को जाना नहीं, पर की सिरपच्ची कर-करके मर गया। बड़े एल.एल.बी. के पूंछड़े लगाये वकील और इन डॉक्टर ने एम.ए. का पूंछड़ा लगाया। यह हमारे रामजीभाई तीस वर्ष पहले पाँच घण्टे जाते थे, दो सौ रुपये लेते थे। वकील है न! बड़े वकील, पूरे काठियावाड़ के, परन्तु सब कुज्ञान।

मुमुक्षु : उसकी कीमत क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई कीमत नहीं। धूल की कीमत पाप की है। कोर्ट में जाते थे पाँच घण्टे। बड़े वकील, जज को कान पकड़ावे। बड़े मस्तिष्कवाले हैं, ९६ वर्ष के हैं। भाद्र शुक्ल चौथ को ९६ वाँ वर्ष लगा है। ३५ वर्ष पहले पाँच घण्टे के दो सौ रुपये लेते थे। परन्तु वह सब अज्ञानदशा और मूर्खाई थी। ऐसी बातें, बापू! भाई! क्या कहें तुझे?

मुमुक्षु : यह महिमा की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह महिमा कहाँ है? यह तो निन्दा है। भाई गये? सुमनभाई गये होंगे। उनके पुत्र हैं, मुम्बई में। मासिक आठ हजार का वेतन है। मासिक आठ हजार का वेतन है। जामनगर का एक बनिया है। साढ़े तीन करोड़ की आमदनी है। आमदनी, हों! आमदनी साढ़े तीन करोड़ की, पूँजी नहीं। साढ़े तीन करोड़ की आमदनी। उसमें नौकर है। यहाँ था, आ गया था। आठ हजार का वेतन है परन्तु वह सब धूलधाणी और वाहपाणी है, बापू! अरे रे! यह तेरी बुद्धि क्या? और तेरा पैसा (कैसा)? जो ज्ञान की पर्याय पर को विषय करे, विषय करे, वह ज्ञान अज्ञान है। आहा..हा..! जो ज्ञान की दशा स्व को-भगवान को विषय बनावे.. आहा..हा..! अन्दर ज्ञान की दशा, वर्तमान ज्ञान की दशा चलती है, उससे अन्तर में भगवान को ध्येय बनावे, उसे **शुद्धनय के विषयभूत आत्मा की स्वानुभूति सुखरूप है।** आहा..हा..!

मुमुक्षु : यह तो अतीन्द्रिय ज्ञान हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : अतीन्द्रिय ज्ञान। भगवान! क्या कहें? इसे खबर ही नहीं। भगवान अन्दर अतीन्द्रियस्वरूप है, वह इन्द्रियों से ज्ञात नहीं होता। वह विकल्प—दया, दान, व्रत, भक्ति लाख-करोड़-अरब करे और अरबों के दान करे और अरबों मन्दिर बनावे, इसलिए उससे आत्मा का ज्ञान होता है (-ऐसा) तीन काल-तीन लोक में नहीं है। समझ में आया? यहाँ तो हमारे ४३ वर्ष से चलता है, यह ४४ वाँ वर्ष चलता है। यह सोनगढ़ जंगल था। यहाँ भैंसे बैठते थे। यहाँ ४४ वर्ष हुए। ४५ वर्ष में आये थे और अभी ४४ हुए, ८९ पूरे हुए। शरीर को, हों! आत्मा को वर्ष-वर्ष है नहीं। आत्मा तो भगवान अनादि-अनन्त है। आहा..! उसे जन्म भी नहीं और मरण भी नहीं। शरीर के संयोग को जन्म कहते हैं, शरीर के वियोग को मरण कहते हैं। वस्तु तो भगवान अनादि-अनन्त अन्दर पड़ी है। शान्तिभाई! वहाँ दवाखाना में कुछ है नहीं अन्दर। आहा..हा..! यह तो अन्दर का इंजैक्शन है।

वर्तमान ज्ञान की दशा को शुद्धनय अर्थात् पवित्र ज्ञान का अंश जो है, आहा..हा..! उसे अन्दर में त्रिकाली ज्ञायक प्रभु है, नित्यानन्द ध्रुव है - उसे ध्येय बनाकर अनुभव करना। है ? **आत्मा की स्वानुभूति...** अनुभूति। स्व-अनुभव। राग और पुण्य-पाप का अनुभव तो अनन्त काल से किया। वह तो दुःखरूप वेदन है। आहा..हा..! यह विषय की वेदना, स्त्री के भोग और रमणता, यह उसके शरीर को नहीं भोगता। वह तो जड़ है, मिट्टी-धूल है और भगवान तो अरूपी है। अतः अरूपी जड़ को किस प्रकार भोगे ? परन्तु वह रूपी मुलायम है और अनुकूल देखकर राग करता है - उस राग को / दुःख को भोगता है। उसे ऐसा कहता है कि मैंने स्त्री को भोगा। ऐसा अज्ञानी मानता है। आहा..हा..! समझ में आया ? वह पर में सुख माना, यह मिथ्याभ्रम अज्ञान है। सुख तो भगवान आत्मा में है।

हिरण की नाभि में कस्तूरी, परन्तु हिरण को कस्तूरी की कीमत नहीं। आहा..हा..! इसी प्रकार भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय प्रभुता पूर्ण भरी है, परन्तु पामर प्राणी, राग के प्रेमी... आहा..हा..! उसकी इसे गन्ध नहीं आती। बहुत गुजराती हो जाता है। हम तो गुजराती हैं न ? हिन्दी बहुत (नहीं आती)। समझ में आया ? आहा..हा..! यहाँ कहा, यह एक लाईन का अर्थ है। **शुद्धनय के विषयभूत...**

मुमुक्षु : शब्द ही समझ में आते हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो भाई! यह तो शास्त्र भाषा अध्यात्म भाषा है। उसे तो पहले समझना पड़ेगा न, प्रभु! दुःखी है, दुःखी। ये अरबोंपति रंक-भिखारी दुःखी हैं। अपनी लक्ष्मी की खबर नहीं और बाह्य लक्ष्मी के प्रेम में मूढ़ जैसे उलझ गये हैं।

दरबार आये थे, तब कहा था। दरबार आये थे न अपने ? कृष्णकुमार। गुजर गये। भावनगर दरबार आये थे न! सब आते तो हैं। बड़ा नाम सुनकर। क्या है यह ? आत्मधर्म.. आत्मधर्म। ४४ वर्ष से यहाँ लगा रखी है। भैंसे बैठते थे वहाँ करोड़ों रुपये डल गये हैं। बापू! यह वस्तु अलग, भाई! उसे कहा था, भाई! दरबार! महीने में पाँच लाख माँगे, वह भिखारी, छोटा भिखारी है, हों! भिखारी। करोड़ माँगे, वह बड़ा भिखारी, भिखारी है। हमें कहाँ उससे चन्दा लेना था या चिट्ठा कराना था कि प्रसन्न हो। नरम व्यक्ति था। कृष्णकुमार थे न ? अभी है, उसका पिता। बापू! करोड़ माँगे और अरब माँगे, वह बड़ा भिखारी है।

अन्तर आनन्द का नाथ, अन्दर अतीन्द्रिय केवलज्ञान पड़ा है.. आहा..हा..! जिसके

तत्त्व के सत्त्व में, वस्तु के सत्त्व में, सत्त्व - उसके कस में अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान और अनन्त शान्ति अन्दर पड़ी है। उस लक्ष्मी की जिसे कीमत नहीं और बाहर की यह धूल मिले, पाँच-पचास करोड़ या अरब धूल... आहा..हा..!

मुमुक्षु : ...सब्जी नहीं आती।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब्जी पैसे से आती हो तो.. पैसे छोटे बालक को आते हैं या नहीं? यह तो अपने एक कहावत है। लोग नहीं समझते, बाकी अपनी एक कहावत है कि खानेवाले का नाम दाने-दाने पर है। ऐसी कहावत है, अपनी गुजराती और हिन्दी में। है? डॉक्टर! खानेवाले का नाम दाने-दाने पर (लिखा है)। उसका अर्थ नाम है? परन्तु जो दाना आनेवाला है, वह आयेगा, जो दाना नहीं आनेवाला है, वह नहीं आयेगा - उसका अर्थ यह है।

मुमुक्षु : जो दाना पैसे से आनेवाला है, वह पैसे से आयेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पैसे से नहीं आता। पैसा भी उसके कारण आता है और सब्जी भी परमाणु है। सब्जी का शरीर जो है, वह परमाणु का है, पुद्गल का है। वह पुद्गल अपनी क्रिया से यहाँ आता है, उसके कारण नहीं। आहा..हा..! ऐसी बातें कठिन पड़ती हैं, भाई! क्या हो? सत्य वस्तु ऐसी कोई है। उस सत्य को इसने कभी देखा नहीं, खोजा नहीं। और बाहर ही बाहर में महिमा करके जिन्दगी गँवायी और जाये नरक-निगोद में, कौवे और कुत्ते के अवतार में। आहा..हा..!

जिसने आत्मा का वास्तविक स्वभाव शुद्धनय का विषयरूप, उसकी अनुभूति की नहीं। उसने काम और क्रोध, दया और दान, व्रत और भक्ति आदि कषायभाव है, वे कषायभाव करके भगवान से वक्रता की। आडोडाई समझे? टेढाई (वक्रता)। आहा..हा..! उस वक्रता के फल में यह आड़ा शरीर मिला। मनुष्य ऐसा (खड़ा) है, तिर्यंच है न? गाय, भैंस, घोड़ा आड़ा है। शरीर आड़ा है। क्यों आड़ा हुआ? कि अपनी वस्तु को भूलकर वक्रता बहुत सेवन की। राग और द्वेष, विषय और कषाय के परिणाम इतने किये कि परिणाम में आत्मा आड़ा हो गया। उसके फल में शरीर पशु का, गाय का आड़ा हो गया। भाई! ऐसा तूने अनन्त बार किया है, बापू! अरे रे! तुझे तेरी दया नहीं, भाई! तुझे तेरी दया नहीं और पर की दया करने चल निकला। यह डॉक्टर भी पहले महीने-दो महीने

ऑर्डिनरी काम करते हैं न कहीं। हेतु दूसरा होता है। बाद में अपना डॉक्टरी का काम चले। वे कहें नि:शुल्क करते हैं, धूल में भी नि:शुल्क नहीं, सुन न अब, ऐई! ऐसा है न? बापू! राजकोट में बड़े-बड़े दवाखाना है। हमारे तो बहुत आते हैं न! महीने, दो महीने, चार महीने नि:शुल्क करते हैं। ओहो..! मुफ्त करते हैं। मुफ्त नहीं, उसके बाद बाहर निकलकर दवाखाना चले - ऐसे लोभ के लिये करते हैं। जगत की उघाड़ी करने जैसा है। आहा..हा..!

प्रभु! तू कौन है? उसकी अनुभूति सुखरूप है। आहा..हा..! है? क्या कहते हैं? आनन्द का नाथ, सच्चिदानन्द प्रभु की ओर के झुकाव से जो आत्मा का अनुभव होता है, आत्मा का ज्ञान होता है, वह सुखरूप है। अतीन्द्रिय सुखरूप है। आहा..हा..! इन्द्रिय का सुख, वह तो जहर का प्याला पीता है। अमृत का सागर अन्दर भगवान डोलता है। आहा..हा..! अमृतस्वरूप से भरा हुआ प्रभु, वह इस पुण्य और पाप के भाव का वेदन करता है, वह जहर का प्याला पीता है। आहा..हा..! यहाँ तो कहते हैं, उसे छोड़कर, भगवान पूर्णानन्दस्वरूप है, उस पर दृष्टि लगाकर, ध्येय बनाकर जो दशा में अनुभूति अर्थात् अनुभव हुआ, उसमें आनन्द आता है। आहा..हा..! उस आनन्द का नाम धर्म है, बाकी सब व्यर्थ है। समझ में आया? भक्ति बहुत की और पूजा बहुत की और ईश्वर को ऐसा किया... धूल में भी नहीं कुछ, सुन न! तेरा नाथ ईश्वर पड़ा है, उसे प्रसन्न किया नहीं और पर को प्रसन्न करने जाता है? समझ में आया? दुनिया से अलग प्रकार है। आहा..हा..!

सुखरूप है। आहा..हा..! इन्द्रिय के विषय—चाहे तो शास्त्र का ज्ञान (हो परन्तु वह) दु:खरूप है। जुगलजी! भगवान का मार्ग बहुत अलग, प्रभु! क्या कहें? आहा..हा..! अन्तर भगवान अन्तर में परमात्मस्वरूप विराजता है। परम आत्मा अर्थात् परम स्वरूप। परम आत्मा अर्थात् परम स्वरूप। परम स्वरूप से नित्यानन्द प्रभु को ध्येय बनाकर जो अनुभव पर्याय में / दशा में-वर्तमान दशा में हुआ, वह सुखरूप है, वह आनन्दरूप है, वह अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद है। आहा..हा..! समझ में आया? अनन्त काल व्यतीत हुआ परन्तु कभी ऐसे आत्मा का ज्ञान करने का प्रयत्न नहीं किया। बाहर ही बाहर में जिन्दगी गँवायी। आहा..हा..! उसमें फिर पाँच हजार का वेतन हो और आठ हजार का हो जाये तो वहाँ मानो लापसी करो घर में। करो, आज तो आठ हजार हुए। धूल में भी नहीं, सुन न! मुसीबत है सब। आहा..हा..!

नाथ! तेरी चीज़ को अन्तर में अनुभव करने से जो आनन्द आता है, वह आनन्द

दुनिया में कहीं नहीं है। इन्द्र के इन्द्रासनों में वह राज, राजपाट, बड़े अरबोंपति राजा और यह सेठ जो धूल के धनी कहलाते हैं, सेठ... सेठ, धूल के सेठ। धूल, वे सब दु:खी प्राणी हैं बेचारे। आहा..हा..! परन्तु अन्दर आत्मा के आनन्दस्वरूप का अनुभव करता है, वह सुखी है।

सुखीया जगत में सन्त दुरिजन दुखिया रे..
सुखीया जगत में सन्त दुरिजन दुखिया रे..

आहा..हा..! प्रभु भगवान अन्तर सच्चिदानन्दप्रभु का अनुभव करे, वह सुखी सन्त है। आहा..हा..! सत्य बात होगी? यह तुम्हारे दो करोड़ में चालीस लाख आमदनी हुई तो धूल आयी। बैंगलोर के सेठ हैं। पन्द्रह लाख का मन्दिर बनाया। वहाँ गये थे। आठ लाख इन्होंने दिये, चार लाख दूसरे ने दिये, ऐसे बारह लाख का मन्दिर बैंगलोर में (बनाया)। आठ लाख (दिये)। पन्द्रह दिन हमारा ठहरना था। दो करोड़ की स्टील थी, चालीस लाख बढ़ गये। धूल। वहाँ घुस गये। आहा..हा..!

अरे! प्रभु! तुझमें अनन्त लक्ष्मी क्रोड़ाक्रोड़ का पार नहीं, इतनी लक्ष्मी आनन्द की पड़ी है न, प्रभु, आहा..हा..! उसके सन्मुख तुझे देखना नहीं और उससे विमुख होकर तुझे पर में देखना है। आहा..हा..! तेरी स्थिति का निषेध करके तूने तेरी हिंसा की है। तेरा जीवन वस्तु अन्दर आनन्द और शान्ति का जीवन, अन्दर जीव, जीवे वह जीव। अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान से जीवे, वह जीव। उस जीव का निषेध करके राग से मुझे लाभ हुआ—ऐसा जीवन व्यतीत किया, उस स्वभाव का अनादर किया। आहा..हा..! अरे! ऐसी क्या बात परन्तु यह? समाज में ऐसा (चले)? बापू! समाज अन्दर भगवान आत्मा है। समाज कौन है? आत्मा है या नहीं अन्दर? आहा..हा..! समझ में आया? उस आत्मा की अनुभूति सुखरूप है।

आत्मा स्वयमेव मंगलरूप है,... क्या कहते हैं यह? स्वयमेव मंगलरूप। मंग-ल= मंग-ल। मंग अर्थात् पवित्रता, ल अर्थात् प्राप्ति, लाती। भगवान आत्मा मंगलरूप है क्योंकि पवित्रता की प्राप्ति अन्दर पड़ी है, उसमें से अनुभव करे तो पवित्रता प्रगट होती है। आहा..हा..! मं.. ग.. ल। यह तो बाहर में एक लड़का हुआ और पच्चीस हजार की कमाई हुई और मकान बनाया तो किया मांगलिक। धूल में भी मांगलिक नहीं, सुन न! सब

अमांगलिक है। ऐई! तुम तो व्याख्यान में आ गये हो। डॉक्टर भी आते थे। चतुर्वेदी पहले थे न, वे आते थे। आहा..हा..! अरे रे! बापू! क्या कहें? आहा..हा..! यह भगवान आत्मा मंगलरूप है। आहा..हा..! पुण्य और पाप तथा सभी चीज़ें अमांगलिक पर है। आहा..हा..!

मंग-अन्दर प्रभु में पवित्रता की पूर्णता पड़ी है, उसे ल अर्थात् प्राप्ति हो, उसका नाम मंगल है। आत्मा मंगलरूप है तो उसका अनुभव करने से मंगलता का प्राप्ति होती है।

दूसरा बोल। मं और गल, मंग और ल कहा था। अब मं और गल। आहा..हा..! क्या? निज स्वरूप को छोड़कर वर्तमान दशा में दया, दान, व्रत, काम, क्रोध के भाव हुए, वह मं अर्थात् वे मेरे हैं - ऐसा मानना, वह भ्रम अज्ञान है। उसे गल अर्थात् गाले, उसका नाम आत्मा कहलाता है। अलग प्रकार का उपदेश है। दुनिया क्या कहती है, वह सब खबर है। यहाँ तो ८९-९० वर्ष हुए। ७२ वर्ष से तो शास्त्र का अभ्यास है। ६६ वर्ष से तो दुकान छोड़ दी है। ६६ वर्ष। पालेज में दुकान है। भरूच और बड़ोदरा के बीच पालेज है। जन्मस्थान उमराला है। यहाँ से ग्यारह मील (दूर है)। वहाँ जन्म लिया। नौ वर्ष वहाँ (रहे)। दुकान है, बड़ी दुकान है, अभी दुकान है। पाँच वर्ष मैंने दुकान चलायी थी, पाप की। १७ वर्ष से २२ वर्ष। अभी बड़ी दुकान है। ३५-४० लाख रुपये हैं। तीन-चार लाख की आमदनी है। वह धूल की दुकान है। यह तो चैतन्य की दुकान लगायी। आहा..हा..! अरे भगवान! तेरे जन्म-मरण का अन्त न आवे, वह कौनसी क्रिया?

यहाँ तो कहते हैं, आत्मा **मंगलरूप है, आनन्दरूप है;...** आहा..हा..! अतीन्द्रिय आनन्दमूर्ति प्रभु तो है, भाई! तुझे खबर नहीं। हिरण की नाभि में कस्तूरी, हिरण को कीमत नहीं। इसी प्रकार तेरी चीज़ में अतीन्द्रिय आनन्द है, प्रभु! तुझे खबर नहीं। जहाँ तहाँ खोज में जाता है। पैसे में और स्त्री में और परिवार में और कोई गुणगान करे, वहाँ प्रसन्न-प्रसन्न (हो जाता है)। मूर्खता से भरी हुई तेरी दशा है, भाई! आहा..हा..!

यह आनन्दस्वरूप प्रभु है **इसलिये...** इस कारण से **आत्मा की अनुभूति भी...** जो भगवान आत्मा का अनुभव करना, स्वस्वरूप का आश्रय लेकर.. आहा..हा..! वह भी **मंगलरूप एवं आनन्दरूप है।** आहा..हा..! आत्मा शब्द में कितना भरा है। समझ में आया? परन्तु वह आत्मा क्या है, यह बात ही जगत को बैठती नहीं। कभी सुनी नहीं और उस ओर का झुकाव किया नहीं। इस जगत की बाहर की हो.. हा.., हो..हा.. और दो, पाँच

करोड़ हों तो लोग महिमा करे। ओहो..! उद्योगपति यह तो, बापू! उसमें पदवी लगा दे। पाप का उद्योगपति। आहा..हा..! अपने थे न? साहूजी। चालीस करोड़ रुपये। यहाँ आते थे, व्याख्यान में आते थे। दिल्ली, साहूजी, शान्तिप्रसाद, चालीस करोड़, उद्योगपति। बेचारे ६६ वर्ष की उम्र में मर गये। दो महीने पहले यहाँ व्याख्यान सुनने आये थे। यहाँ हमेशा आते थे। क्या वस्तु धूल में? आहा..हा..!

यहाँ कहते हैं, प्रभु! तेरा स्वरूप तो त्रिकाली तो आनन्दस्वरूप और मंगल है, तुझे खबर नहीं भाई! तो उसका अनुभव करने से मंगल और आनन्द प्रगट होगा। आहा..हा..! उसका नाम धर्म है। बाकी सब बातें हैं। आहा..हा..! है? यह २२७ (बोल पूरा) हुआ। साढ़े तीन लाईन का अर्थ हुआ।

आत्मा के अस्तित्व को पहिचानकर स्वरूप में स्थिर हो जा, बस!... तेरा अस्तित्व आश्चर्यकारी अनन्त गुणपर्याय से भरा है; उसका सम्पूर्ण स्वरूप भगवान की वाणी में भी पूरा नहीं आ सकता। उसका अनुभव करके उसमें स्थिर हो जा॥२२८॥

२२८, **आत्मा के अस्तित्व को पहिचानकर...** क्या कहते हैं? भगवान आत्मा की अस्ति, मौजूदगी को पहिचानकर। आत्मा के अस्तित्व की मौजूदगी को पहिचानकर। आहा..हा..! मैं आत्मा, अस्तित्व अर्थात् मेरी सत्ता, पूर्ण सत्ता, आनन्द सत्ता, ज्ञान सत्ता, ऐसी पूर्णता से मेरी सत्ता है। अस्तित्व अर्थात् होना, मौजूदगी रूप से रहना, ऐसा भगवान आत्मा। पर्याय वर्तमान में विचार बदलते हैं, उस पर्याय का लक्ष्य छोड़ दे और उसका अस्तित्व जो शाश्वत अस्तित्व, अनादि-अनन्त अपनी सत्ता में रहनेवाला। आहा..हा..! पर की सत्ता में जाता नहीं और पर की सत्ता से अपने में कुछ होता नहीं। आहा..हा..! ऐसा उपदेश अब। क्या हो? बापू! आहा..!

भगवान! तेरी महिमा का पार नहीं होता। वह चीज़ अन्दर ऐसी है। आहा..हा..! जिसका अस्तित्व.. यह शरीर है तो शरीर का अस्तित्व है न? वाणी का अस्तित्व है न? है, वह ज्ञात होता है न? तो आत्मा का-अपना कोई अस्तित्व है या नहीं? वह कायमी अस्तित्व है, उसे जानना; है, उसे जानना - इसका नाम सम्यग्ज्ञान है। आहा..हा..! कहो,

रंगुलालजी! वहाँ दिल्ली में, और कलकत्ता में कुछ नहीं मिलेगा। सब देखा है न, सर्वत्र देखा है न, दिल्ली देखा और कलकत्ता (देखा है)। पूरे हिन्दुस्तान में दस हजार मील तीन बार घूमे हैं। दस हजार मील। है न एक मोटर? उसे लेकर। चलकर तो कहाँ पहुँचाये? अरे! बापू! प्रभु! क्या कहें? कहते हैं।

ये बहिन के वचन अनुभव में से निकले हैं, आनन्द के अनुभव में से। समझ में आया? परन्तु बैठना कठिन पड़े। आहा..हा..! **आत्मा के अस्तित्व को...** आत्मा की अस्ति को, आत्मा की मौजूदगी को। आहा..हा..! **पहिचानकर...** इस त्रिकाली अस्ति को जानकर। 'जानकर' वह दशा है और त्रिकाली अस्ति आत्मा है। उसे जाननेवाली उसकी दशा है। आहा..हा..! बापू! यह तो अध्यात्म का मार्ग है। यह कहीं कोई वार्ता-कथा नहीं है। छोटी उम्र में सीखते थे न? चिड़िया लाई चावल का दाना, और चिड़ा लाया मूँग का दाना, उसने बनायी खिचड़ी, और कुम्हार को दी और उसने घड़ा दिया... छोटी उम्र में सीखे थे। ऐसी यह बातें। जगत की सब बातें ऐसी हैं। यह तो अध्यात्म की बात है, प्रभु! आहा..हा..! भव का अन्त आकर निज आनन्द की पूर्ण दशा किस प्रकार प्राप्त हो, वह बात है, नाथ! आहा..हा..!

तेरे **अस्तित्व को पहिचानकर स्वरूप में स्थिर हो जा,...** तेरा अस्तित्व अर्थात् सत्ता-होनेपने में, उसका ज्ञान करके कि यह मैं आत्मा पूर्णानन्द हूँ, वह मेरा अस्तित्व है, उसे पहिचानकर अन्दर स्थिर हो जा। आहा..हा..! स्वरूप में रमणता में रम जा। 'निजपद रमे सो राम कहिये, राग में रमे वह हराम कहिये' ऐई! निजपद प्रभु आनन्द के नाथ में रमे, वह आतमराम है। उसे राम कहते हैं। बाकी इन पुण्य और पाप, शुभ और अशुभ, विषय-कषाय और दया, दान के भाव में रमे, उसे हराम कहते हैं। कठिन बात है, भाई! कोड़े पड़ें ऐसा है सिर पर। चमड़ी उतारकर नमक छिड़के तो कैसा कठोर लगे! यों ही नमक छिड़के तो (कुछ नहीं लगे)। चमड़ी उतारकर (छिड़के तो कठोर लगता है।) भगवान! तुझे खबर नहीं, प्रभु! इस रागरहित-चमड़े रहित तेरी चीज़ अन्दर है। आहा..हा..! अन्दर आनन्द का नाथ है, प्रभु! तूने कभी देखा नहीं, तूने कभी सुना नहीं और करनेयोग्य कार्य है, वह तो कभी किया नहीं। आहा..हा..! पहिचानकर स्थिर हो।

अब इतनी बात करते हैं, **तेरा अस्तित्व...** तेरी मौजूदगी, तेरी अस्ति। आहा..हा..!

यह किस प्रकार की भाषा ? भाषा तो सादी गुजराती है। यह तो हिन्दी बनाया है, बाकी बहिन की भाषा गुजराती है। समझ में आया ? **तेरा अस्तित्व आश्चर्यकारी अनन्त गुणपर्याय से भरा है;...** आहा..हा.. ! तेरा होनापना - अस्तित्व है, वह आश्चर्यकारी है, प्रभु ! अनन्त गुण के भेद, गुणपर्याय से भरपूर है। वह गुण-पर्याय अर्थात् भेद। आहा..हा.. ! यह क्या कहते हैं ?

जैसे शक्कर है, वह मिठास से, सफेदाई से भरी पड़ी है; वैसे भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञान आदि अनन्त गुण के भेद से भरा है। आहा..हा.. ! अरे ! ऐसा आत्मा अब ! यह आत्मा तत्त्वज्ञान जब तक न करे, तब तक सब साधना ईकाई रहित शून्य है। कोरे कागज में अंक रखे बिना शून्य करे, लाख करोड़ संख्या में गिने जाते हैं ? लाख, करोड़ किये हैं न ? इसी प्रकार भगवान आत्मा के ज्ञान और अनुभव बिना जितना क्रियाकाण्ड और दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा सभी धमाल, निरर्थक राग है। निरर्थक अर्थात् स्वभाव के लिये निरर्थक; भटकने के लिये सार्थक। बड़े.. होते हैं न ?

गाँधीजी व्याख्यान में आये थे। गाँधीजी राजकोट आये थे। बहिन.. क्या कहलाती हैं ? कस्तूरबा, उनके साथ वह व्यक्ति था न ? महादेवभाई। सब आते थे। वहाँ तो (संवत्) १९९५ का चातुर्मास था न ? ३९ वर्ष पहले की बात है। वहाँ आये थे। व्याख्यान में आये थे परन्तु हमारी बात तो यह है, बापू ! बाकी सब लौकिक बातें हैं। गाँधी की भी लौकिक बात थी। ऐई ! आहा..हा.. ! भाई ! तेरी चीज़ में-अस्तित्व में क्या पड़ा है ? तेरे अस्तित्व में प्रभु ! अनन्त शक्ति अनन्त गुणरूपी पर्यायभेद पड़े हैं। आहा..हा.. ! जिस गुण की संख्या को अन्त नहीं। संख्य नहीं, असंख्य नहीं, अनन्त परन्तु अनन्त का अन्त नहीं। यह बात बैठना कठिन है। अन्दर में-गुफा में जा, भगवानस्वरूप विराजता है वहाँ। वह उसके गुण-पर्याय से भरपूर भरा हुआ है। अरे ! यह क्या है यह ? ऐसा मार्ग कौन सा ? बापू ! मार्ग तो यह है। दुनिया ने बिगाड़कर मार डाला। मार्ग कुछ कर डाला, विपरीत। आहा..हा.. ! जिससे आत्मज्ञान हो और जिससे भव का अन्त आवे, वह चीज़ प्रभु ! कोई अलग है। वह कोई विद्वत्ता का विषय नहीं है। आहा..हा.. ! कि बड़े विद्वान हो गये और लाखों-करोड़ों को समझाया, इसलिए वह ज्ञान सच्चा है (-ऐसा बिल्कुल नहीं है)। आहा..हा.. !

यहाँ तो कहते हैं, तेरे अस्तित्व में-तेरी मौजूदगी में आश्चर्यकारी अनन्त गुण-शक्ति

आदि भरे हैं। **उसका सम्पूर्ण स्वरूप...** आहा..हा..! आत्मा का सम्पूर्ण स्वरूप **भगवान की वाणी में भी पूरा नहीं आ सकता।** जिन्हें सर्वज्ञपना प्रगट हुआ.. क्योंकि सर्वज्ञस्वरूपी प्रभु, सर्वज्ञ-ज्ञ स्वरूपी, ज्ञ-स्वरूपी, सर्वज्ञस्वरूपी आत्मा का अनुभव करके उसमें लीन होकर जब पर्याय / दशा में सर्वज्ञपना हुआ तो तीन काल-तीन लोक ज्ञात हुए। उन्हें यहाँ अरिहन्त भगवान कहने में आता है। यह णमो अरिहन्ताणं, वह पक्ष का शब्द नहीं है। अरि अर्थात् राग-द्वेष और अज्ञानरूपी अरि, उन्हें हंताणं अर्थात् हनकर और वीतराग तथा सर्वज्ञपना प्रगट किया, उसका नाम अरिहन्त कहा जाता है। यह पहला नमस्कार णमो अरिहन्ताणं में आये। आहा..हा..! उन भगवान की वाणी द्वारा भी आत्मा (पूर्णरूप से) कहा नहीं जा सकता। आहा..हा..!

गूँगे को गुड़ दे, गूँगे को गुड़। गूँगा! गुड़ कैसा है? बस, भाषा में (नहीं आता)। आहा..हा..! जिसने चखा, उसे खबर पड़ती है। वह वाणी द्वारा नहीं कह सकता। आहा..हा..! 'जो स्वरूप सर्वज्ञ ने..' श्रीमद् राजचन्द्र हुए। बहुत ज्ञानी (थे,) ३४ वर्ष में देह छूट गयी, २२ वर्ष में आत्मज्ञान हुआ था। लाखों का जवाहरात का धन्धा था, तथापि अन्दर आत्मज्ञान (था)। जैसे नारियल का गोला भिन्न / पृथक् पड़े और पृथक् रहे। कांचली से पृथक्। कांचली समझते हो? नरेली कहते हैं? क्या कहते हैं तुम्हारे हिन्दी में? नरेली। इसी प्रकार यह देह और राग से भिन्न भगवान है - ऐसा ज्ञान हुआ, वह गोला भिन्न पड़ता है। उन्होंने एक अपूर्व अवसर बनाया है।

'जो पद झलके श्री जिनवर के ज्ञान में' जो स्वरूप सर्वज्ञ ने ज्ञान में देखा 'कह न सके वह भी श्री भगवान जब, उस स्वरूप को अन्य वचन से क्या कहूँ?' उस स्वरूप को अन्य वाणी क्या कहे? 'अनुभवगोचर मात्र रहा वह ज्ञान जब' आहा..हा..! घी का स्वाद जन्मघुटी में से मिला है। घी.. घी, जन्म होता है, तब जन्मघुटी देते हैं न? जन्मघुटी। कैसा स्वाद है? बताओ। किसी पदार्थ के साथ मिलान करो। शक्कर जैसा? गुड़ जैसा.. आता है न तालाब में, उसके जैसा? कैसा? ख्याल में परन्तु किसी पदार्थ के साथ तुलना करके कहा जा सके ऐसी चीज़ नहीं है। अरे! घी के स्वाद जैसी जड़ की चीज़ के स्वाद को ख्याल में आया होने पर भी किसी पदार्थ के साथ मिलान करके नहीं कहा जा सकता तो प्रभु! आत्मा के आनन्द के स्वाद की तुझे किसके साथ तुलना करनी है? आहा..हा..! भगवान आत्मा का प्रथम बार ज्ञान होता है, तब उसका आनन्द आता है, वह बात कौन

कहे ? किस प्रकार कहे ? आहा..हा.. ! भले वह गृहस्थाश्रम में हो परन्तु आत्मज्ञान होता है... आहा..हा.. ! वह आत्मा में है, गृहस्थाश्रम में नहीं। आहा..हा.. !

उसका सम्पूर्ण स्वरूप भगवान की वाणी में भी पूरा नहीं आ सकता। आहा..हा.. ! **उसका अनुभव करके उसमें स्थिर हो जा।** बहुत मक्खन है। मक्खन होता है न ? वह ऐसे पृथक् रखे। छाछ नितर जाये और मक्खन ऊपर रह जाये। ऐसा करके न निकाले। छाछ नितरे नहीं और मक्खन पृथक् पड़े नहीं। इसी प्रकार भगवान के आनन्द के स्वाद में राग का स्वाद भिन्न हो जाता है, नितर जाता है। आहा..हा.. ! ऐसी बातें अब कहाँ.. ? दुनिया के चतुर होकर घूमते हैं। दुनिया के चतुर दुनिया में जानेवाले, भटकनेवाले हैं। आहा.. ! भगवान आत्मा के चतुर भटकना बन्द करके परमानन्द को प्राप्त करेंगे। समझ में आया ? आहा..हा.. ! क्या कहा ? देखो ! **उसका अनुभव करके उसमें स्थिर हो जा।** यह चारित्र। पहले स्वरूप जो शुद्ध अखण्ड आनन्दकन्द है, उसकी पहिचानकर स्वरूपसन्मुख होकर, पर से विमुख होकर स्वरूप के सन्मुख होकर अनुभव करना और पश्चात् उसमें स्थिर हो जाना, वह चारित्र है। चारित्र, वह कहीं बाहर की क्रिया नहीं कि यह व्रत पालता है और महाव्रत पालता है और शरीर से ब्रह्मचर्य पालन किया; इसलिए चारित्र है - ऐसा नहीं है। ब्रह्मचर्य अर्थात् ? ब्रह्म अर्थात् आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु में चर्य अर्थात् रमना, उसका नाम चारित्र कहलाता है। अरे ! शब्द-शब्द में अन्तर है। वह कहता है न ? 'आनन्द कहे परमानन्दा माणसे माणसे फेर, एक लाखे तो न मले ने एक तांवियाना तेर' इसी प्रकार यहाँ कहते हैं, तुझे और मुझे, बापू ! भाव-भाव में अन्तर है। प्रभु ! क्या कहें ? कहते हैं। आहा..हा.. ! यह २२८ (पूरा हुआ)। यह सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान की बात की है।

अन्तर सम्यक्-सत्यदर्शन, त्रिकाली सत्यार्थ प्रभु, मौजूदगी चीज़ अनन्त-अनन्त गुण से भण्डार भरा है। उसकी अनुभव में प्रतीति हुई और ज्ञान हुआ, आनन्द का स्वाद आया। यहाँ तक तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान की बात की। अब मुनि। वह मुनि किसे कहते हैं ! आहा..हा.. ! यह साधु हो गये, स्त्री-पुत्र छोड़े, वस्त्र छोड़े.. और साधु। धूल में भी साधु नहीं। साधु तो उसे कहते हैं कि जो वस्तु का स्वरूप है, उसे साधते इति साधु। आहा..हा.. ! जिस वस्तु की खबर नहीं, उसे साधे कहाँ से ? समझ में आया ? यह कहते हैं।

मुनि को संयम, नियम और तप—सबमें आत्मा समीप होता है। अहा! तू तो आत्मा की साधना करने निकला है... वहाँ यह लौकिकजनों के परिचय का रस क्यों?

तुझे शुद्धि बढ़ाना हो, दुःख से छूटने की भावना हो, तो अधिक गुणवाले या समान गुणवाले आत्मा के संग में रहना।

लौकिक संग तेरा पुरुषार्थ मंद होने का कारण होगा। विशेष गुणी का संग तेरे चैतन्यतत्त्व को निहारने की परिणति में विशेष वृद्धि का कारण होगा।

अचानक आ पड़े असत्संग में तो स्वयं पुरुषार्थ रखकर अलग करे, परन्तु स्वयं रसपूर्वक यदि असत्संग करेगा तो अपनी परिणति मन्द पड़ जायगी।

—यह तो स्वरूप में झूलते हुए मुनियों को (आचार्यदेव की) सीख है। निश्चय-व्यवहार की संधि ही ऐसी है। इस प्रकार अपनी भूमिकानुसार सबको समझ लेना है॥२२९॥

मुनि को... यह सन्त की उत्कृष्ट बात ली है। **संयम,..** में आत्मा समीप है। संयम अर्थात् इन्द्रिय दमन करके जो अनुभव हुआ। सं-यम, सं-यम। सम्यक् प्रकार से यम। त्रिकाली ज्ञायकभाव को सम्यक् प्रकार से जानकर, फिर यम अर्थात् स्थिर हुआ, उसका नाम संयम। अरे.. अरे! ऐसी भाषा। वह संयम है और **नियम..** कठोर नियम धारण करे। यह जरा सूक्ष्म बात है। ऐसा नियम धारण करे कि मैं भिक्षा लेने जाऊँ तो बहिन का नाम मोती हो, मोतीचूर का लड्डू खाती हो, मोतीचूर की साड़ी पहनी हो, साडलो समझे? साड़ी। उसके हाथ से लेना, नहीं तो देह छूट जाये तो भी नहीं लेना। ऐसे नियम भी अनन्त बार लिये। परन्तु यह नियम जो है, उसमें आत्मा समीप वर्तता है। आहा..हा..! आनन्द का नाथ भगवान, नियम के समीप में वर्तता है। जिसे आत्मा समीप में नहीं है, उसके संयम और नियम नहीं कहलाते। आहा..हा..! समझ में आया?

यह शास्त्र का शब्द है। '**जस सन्निहो अप्पा**' '**जस सन्निहो अप्पा**' जिसे समीप में आत्मा है। उसे '**संयमे नियमे तवे**' वह तप अर्थात् वीतरागीदशा उत्पन्न होती है। इच्छा निरोध करके अतीन्द्रिय आनन्द का उग्र स्वाद आता है, उसे तप कहते हैं। 'तपंते इतिः

तपः' जैसे स्वर्ण गेरु से ओपता है, शोभता है; इसी प्रकार भगवान आत्मा अन्तर आनन्द की दशा में उग्ररूप से शोभता है, उसे तप कहते हैं। बाकी सब लंघन कहलाता है। लंघन.. लंघन। आहा..हा..! यह सत्याग्रह के लिये करते हैं न? क्या कहलाता है? शहीद हो जाते हैं और मर जाये, बहुत देखे हैं, बहुत सुने हैं। वहाँ धूल भी संयम नहीं है। आहा..हा..! राग की क्रिया है, बंधन की क्रिया है। बंधन के फल में गति मिलती है। आहा..हा..! देह छूटेगा तो आत्मा कहीं छूटेगा? आत्मा का नाश होगा? और लोग भी कहते हैं न देह छूटते समय? ए.. जीव गया। जीव गया – ऐसा कहते हैं या जीव मर गया – ऐसा कहते हैं? यह डॉक्टर पल्स देखते हैं। हाथ नहीं आती। यहाँ से चला गया। यह वस्तु थी, वह गयी या वस्तु नहीं थी? आहा..हा..!

ऐसा जो आत्मा, उसे जो संयम होता है और नियम होता है और तप, **सबमें आत्मा समीप होता है।** आनन्द का नाथ जिसकी नजर में–समीप में है तो वह संयम और नियम कहलाता है। आहा..हा..! गजब भाई! भाषा–भाषा में अन्तर, वाणी–वाणी में अन्तर, बापू! मार्ग ऐसा है, भाई! आहा..! अनन्त काल से परिभ्रमण (कर रहा है)। आहा..हा..!

'अनन्त काल से आथड्यो' आथड्यो अर्थात् भटका। 'बिना भान भगवान, सेवे नहीं गुरु संत को छोड़ा नहीं अभिमान।' अनन्त–अनन्त काल से अथाड्यो। आथड्यो अर्थात् भटका। 'बिना भान भगवान, सेये नहीं गुरु संत को...' ज्ञानी धर्मात्मा क्या कहते हैं, उनकी सेवा अर्थात् आज्ञा नहीं मानी। सेवा अर्थात् कहीं पैर दबाना वह सेवा–वेवा नहीं है। समझ में आया? उन्होंने जो कहा, वह इसने मान्य नहीं किया – सेवा नहीं की। आहा..हा..! 'छोड़ा नहीं अभिमान' मैं जानता हूँ, मुझे खबर है। अभिमान में और अभिमान में तेरी जिन्दगी गयी प्रभु! ऐसे अनन्त भव गये। आहा..हा..!

भव का अन्त है? कब से भव शुरु हुए? आत्मा कब से है? वह तो अनादि से है। अतः भव भी कब से शुरु हुए, ऐसा कोई है? अनादि से भव हैं। ऐसे भूतकाल.. भूतकाल देखो तो भव.. भव.. भव.. भव.. भव अन्तरहित। आहा..हा..! अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त भव किये। आहा..हा..! परन्तु भव का अन्त लानेवाली चीज़ जो अन्दर है, उसके समीप नहीं आया। उससे दूर रह गया। राग की क्रिया और दया, दान, पुण्य, भक्ति, पूजा और.. यह सब राग की क्रिया है। वे तो भगवान से दूर है। आहा..हा..! ऐसा जगत को कठिन पड़ता है। क्या हो? भाई!

अहा! तू तो आत्मा की साधना करने निकला है... है न, प्रभु! यह मुनि कहते हैं। साधु अर्थात् अन्तर आनन्दस्वरूप को साधे। शक्ति में से व्यक्तता प्रगट करे। आहा..हा..! जैसे चौसठ पहरी छोटी पीपर, छोटी पीपर में चौंसठ पहरी शक्ति अन्दर भरी है। चौंसठ पहर घोंटे तो चौंसठ पहरी शक्ति है, वह बाहर आती है। प्राप्त की प्राप्ति, है वह बाहर आती है। यह छोटी पीपर होती है न? कद में छोटी और रंग में काली परन्तु अन्दर में हरा (और चरपराहट की) शक्ति चौंसठ अर्थात् रुपया, रुपया, सोलह आना चरपराहट से भरी है। आहा..हा..! उसे चौंसठ पहर घोंटने से वह बाहर आती है। इसी प्रकार भगवान आत्मा में सर्वज्ञ और पूर्ण आनन्द भरा है, प्रभु! तुझे खबर नहीं। आहा..हा..! चौंसठ अर्थात् रुपया। चौंसठ अर्थात् सोलह आना। चौंसठ अर्थात् पूर्ण। आहा..हा..! वह पूर्ण ज्ञान और आनन्द अन्दर पड़े हैं। आहा..हा..! उसकी एकाग्रता से उसे समीप लेकर राग को दूर करके.. आहा..हा..! भगवान जब आये हैं... **आत्मा की साधना करने निकला है... वहाँ यह लौकिकजनों के परिचय का रस क्यों?** आहा..हा..! राजा आया और सेठिया आया और इसे पसन्द करे.. यह क्या है तुझे? समझ में आया? दुनिया को प्रसन्न रखना, सभा कैसे प्रसन्न हो? क्या है तुझे? लोकरंजन करना है तुझे? ऐसा कहते हैं। आहा..! आहा..हा..! लौकिकजनों, हों! जिन्हें तत्त्व की दृष्टि का कुछ भान नहीं होता, उनका परिचय करने से तुझे क्या लाभ है? वह परिचय छोड़ और स्वभाव का परिचय कर।

विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

जिस प्रकार डूबते हुए मनुष्य को कोई जहाज में बैठने के लिए कहे तो क्या वह जरा भी प्रमाद करेगा? नहीं करेगा। इसी प्रकार संसार से तिरने के अभिलाषी आत्मार्थी जीव को ज्ञानी सन्त, भेदज्ञानरूपी जहाज में बैठने को कहते हैं, वहाँ वह आत्मार्थी जीव, भेदज्ञान में प्रमाद नहीं करता और भेदज्ञान का उपाय दर्शानेवाले सन्तों के प्रति उसे महान् उपकारबुद्धि होती है कि हे नाथ! अनन्त जन्म-मरण के समुद्र में से आपने मुझे बाहर निकाला। भवसमुद्र में डूबते हुए मुझे आपने बचाया। संसार में जिसका कोई प्रत्युपकार नहीं है - ऐसा परम उपकार आपने मुझ पर किया है।

(पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, आतम के हित पंथ लाग! में से)

भाद्र शुक्ला-८, रविवार, दिनाङ्क १०-०९-१९७८
वचनामृत-२२९-२३१ प्रवचन-९०

वचनामृत का २२९ (बोल) चलता है। मुनि की मुख्यता से अधिकार है। **तुझे...** वहाँ आया है। **शुद्धि बढ़ाना हो,...** आहा..हा..! यहाँ मुख्यरूप से मुनि को कहते हैं, हों! अपना आत्मा, राग के संग से भिन्न है - ऐसा अनुभव हुआ हो और पश्चात् स्वरूप में संयम, नियम में भगवान समीप वर्तता हो, उसका नाम मुनिपना है। उस मुनि को कहते हैं, **तुझे शुद्धि बढ़ाना हो,...** आत्मा पूर्णानन्द प्रभु तेरे अनुभव में आया है और चारित्र में भी रमणता तो है परन्तु विशेष शुद्धि बढ़ाना हो और **दुःख से छूटने की भावना हो, तो अधिक गुणवाले...** अपने से अधिक गुण हों, उनका संग करना अथवा **समान गुणवाले आत्मा के संग में रहना।** आहा..हा..!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो संग करे तो किसका करे, यह बात है। संग करने में संग करे तो किसका करे? संग न करे तो असंग में रहे, परन्तु असंग में हमेशा नहीं रह सकता। मुनि भी हमेशा असंग में नहीं रह सकते। आहा..हा..! उन्हें भी विकल्प आता है, प्रभु! आहा..हा..! वीतरागी निर्विकल्प भगवान जागृत हुआ है और जागृत में भी अभी कमी है, रागादि आते हैं, तो उन्हें कहते हैं। आहा..हा..! अपने से **अधिक गुणवाले या समान गुणवाले आत्मा के संग में रहना।** आता है न? प्रवचनसार चरणानुयोग के अधिकार में।

लौकिक संग तेरा पुरुषार्थ मंद होने का कारण होगा। आहा..हा..! सेठों और राजाओं इन सबका संग तो तुझे नुकसान करेगा। आहा..हा..!

मुमुक्षु : मुनि को लक्ष्य करके बात है?

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि को मुख्य लक्ष्य करके बात है। यह तो अभी धन्धा छोड़ा

नहीं। यह तो जिसने धन्धा छोड़ा है, अन्तर में शुद्धि की वृद्धि हुई है, उसे शुद्धि की वृद्धि करनी हो तो उसे अपने से गुण में अधिक हो उसके संग में रहना। अपने समान गुणवाले हों तो उनका संग करना। **लौकिक संग तेरा पुरुषार्थ मंद होने का कारण होगा।** राजा और सेठ आये और उन्हें उपदेश देना तथा उन्हें प्रसन्न रखना... सेठों को, राजाओं को प्रसन्न रखने के संग का विकल्प तुझे नुकसान करेगा। आहा..हा..!

विशेष गुणी का संग तेरे चैतन्यतत्त्व को निहारने की परिणति में विशेष वृद्धि का कारण होगा। निमित्त। **अचानक आ पड़े असत्संग में तो स्वयं पुरुषार्थ रखकर अलग करे,..** कहीं एकदम लौकिक संग आ गया तो वहाँ से अलग रहे। **परन्तु स्वयं रसपूर्वक यदि असत्संग करेगा...** आहा..हा..! **तो अपनी परिणति मन्द पड़ जायेगी।** आहा..हा..! यह तो वीतरागभाव.. जंगल में गिरिगुफा भगवान आत्मा, आनन्द की गुफा है भगवान आत्मा, वहाँ जाना है तो पर का संग छोड़ दे। आहा..हा..! समझ में आया? अधिकार चलता हो वह चले। आहा..हा..! **अपनी परिणति मन्द पड़ जायेगी।**

यह तो स्वरूप में झूलते हुए मुनियों को (आचार्यदेव की) सीख है। है? धन्य अवतार! अपना आनन्दस्वरूप भगवान में अन्दर झूलते हैं। झूले में झूले; वैसे आनन्द में झूलते हैं। विकल्प आ जाये, आहा..हा..! वहाँ से हटकर अतीन्द्रिय आनन्द में झूलते हैं। वह चारित्र साधन है, भगवान! वह साधन साक्षात् मोक्ष का कारण है। आहा..हा..! समझ में आया? यह दशलक्षणी पर्व चारित्र के भेद हैं। अपना सम्यग्दर्शन / सत्यदर्शन, राग से भिन्न भेदज्ञान से हुआ, उसमें लीन होकर चारित्र हुआ, उसका नाम दश पर्व, शान्ति बढ़ाना, आनन्द बढ़ाना, वह यह दश पर्व है। समझ में आया? यहाँ मुनि की बात है।

निश्चय-व्यवहार की संधि ही ऐसी है। क्या कहते हैं? व्यवहार अधिकार चलता होगा न? अन्दर में जाना और व्यवहार का विकल्प आवे तो अधिक गुणी का संग करना - ऐसी व्यवहावर संधि आती है। **इस प्रकार अपनी भूमिकानुसार सबको समझ लेना है।** अपनी-अपनी भूमिकानुसार समझ लेना है।

आहा..हा..! सम्यग्दर्शन के अभिलाषी को कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र का संग छोड़ देना। समझ में आया? सच्चा संग आदि मिले, वह है तो पर के प्रति लक्ष्य जाना, वह विकल्प है परन्तु कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र किसे कहना - इसका पहले निर्णय करना

पड़ेगा। आहा..हा..! और उनका संग छोड़ना पड़ेगा। अपने स्वरूप की दृष्टि हुई तो सत्समागम / सच्चा संग है, उसका विकल्प आता है। सच्चे देव-गुरु-शास्त्र (का विकल्प आता है)। है तो बन्ध का कारण। आहा..हा..!

आत्मा तो आश्चर्यकारी चैतन्यमूर्ति! प्रथम उसे चारों ओर से पहिचानकर, पश्चात् नय-प्रमाणादि के पक्ष छोड़कर अन्तर में स्थिर हो जाना। तब अन्तर से ही मुक्त स्वरूप प्रगट होगा। स्वरूप में स्थिर हुए ज्ञानी ही साक्षात् अतीन्द्रिय आनन्दामृत का अनुभव करते हैं—'त एव साक्षात् अमृतं पिबन्ति'॥२३०॥

२३०, **आत्मा तो आश्चर्यकारी चैतन्यमूर्ति!** आहा..हा..! भगवान आत्मा आश्चर्यकारी अद्भुता-अद्भुतम् चैतन्यमूर्ति है। चैतन्य प्रतिमा भगवानस्वरूप है। आहा..हा..! जिसमें राग तो नहीं परन्तु अल्पज्ञता भी जिसमें नहीं। आहा..! ऐसा भगवान आत्मा, आश्चर्यकारी चैतन्यमूर्ति.. आहा..हा..! क्षेत्र और काल भी आश्चर्यकारी, कहीं अन्त न दिखायी दे। आहा..हा..! तो उन्हें जाननेवाला भगवान.. भाई! जरा विचार में लेना चाहिए। ऐसे का ऐसा नहीं चलता। आहा..! आश्चर्यकारी मूर्ति अद्भुता-अद्भुतम् अनन्त.. अनन्त.. आनन्द आदि गुण, सामान्य सदृशरूप से अन्दर पड़े हैं। आहा..हा..! ऐसी जिनप्रतिमा प्रभु, चैतन्यमूर्ति। आहा..हा..!

प्रथम उसे चारों ओर से पहिचानकर,... चारों ओर से भगवान पूर्णानन्द है, उसे पहिचानकर। आहा..हा..!

मुमुक्षु : चारों ओर कौन से हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : चार अर्थात् सभी पहलुओं से, ऐसा। समस्त पहलुओं से। व्यवहार से, निश्चय से, निमित्त से, उपादान से, ऐसा। अनेक पहलू हैं, उन सब पहलुओं से उसे पहिचानना। आहा..हा..! यह सूक्ष्म बातें। सब पहलू नाम अनेक प्रकार के नय-निक्षेप प्रमाण हैं या नहीं? नय, निक्षेप, प्रमाण चारों ओर से पहले आत्मा की पहिचान करे। आहा..हा..! निश्चय से भगवान पूर्णानन्द है, व्यवहार से पर्याय है। आहा..हा..! पर्याय है, ऐसे दोनों का निर्णय यथार्थ करे। समझ में आया? वस्तुरूप से ध्रुव है, वह पलटता नहीं। पलटती है, वह पर्याय है, ऐसा उसे जैसी वस्तु है, वैसा निर्णय करे।

उसे **पहिचानकर, पश्चात्...** देखो! **नय-प्रमाणादि के पक्ष छोड़कर...** पहले नय, प्रमाण से उसे जानना - ऐसा कहते हैं। पश्चात् पक्ष को छोड़कर। आहा..हा..! निश्चय से ऐसा अबन्ध है और व्यवहार से राग का सम्बन्ध है - ऐसा जो निश्चयनय और व्यवहारनय से निर्णय किया परन्तु वह सब विकल्प है, राग है। आहा..हा..! यह नय, निक्षेप, प्रमाण आदि का पक्ष छोड़कर **अन्तर में स्थिर हो जाना।** आहा..हा..! ध्यान में आत्मा को लेकर ध्यान में मस्त होना.. आहा..हा..! - ऐसा कहते हैं। एकान्त में और एक-अन्त, एक ही धर्म, वह निश्चय। आहा..हा..! एकान्त में एकाग्र होकर, ध्यान लगाना। आहा..हा..! उसमें स्थिर हो जाना। **तब अन्तर से ही मुक्तस्वरूप प्रगट होगा।** आहा..हा..! चैतन्यमूर्ति मुक्तस्वरूप अबद्धस्वरूप है। आहा..हा..! भगवान अन्दर चैतन्यमूर्ति अनन्त-अनन्त गुण का अरूपी स्वरूप, वह अन्तर में मुक्तस्वरूप है। आहा..हा..! ऐसी बात।

मुक्तस्वरूप का अन्तर-ध्यान करने से पर्याय में मुक्ति प्रगट होगी। समझ में आया? **तब अन्तर से ही मुक्तस्वरूप प्रगट होगा।** किसी बाह्य के कारण से नहीं, वह कोई बाह्यवस्तु नहीं है। आहा..हा..! निमित्त में आत्मा नहीं, राग में आत्मा नहीं और एक समय की पर्याय में पूर्ण आत्मा नहीं। आहा..हा..! पूर्ण आत्मा का अन्तर में जो स्वरूप है, उस पर दृष्टि करके ध्यान में स्थिर हो जाना। आहा..हा..! और ध्यान करना तो आता है न? आर्तध्यान, रौद्रध्यान करना आता है या नहीं? विचार में रुक जाना, पैसे की आमदनी हो उसमें। पुत्र का विवाह था, एक पिता के पुत्र का और बड़े गृहस्थ थे। बड़ी शोभायात्रा निकली। विचार में चढ़ गया, कल ऐसा करना है और वैसा करना है। खबर नहीं रही कि शोभायात्रा कहाँ गयी? एक ओर बैठा था। वह कहे, इसका पिता कहाँ गया? इसका पिता अन्दर विचार करता था, कल ऐसा करना और वैसा करना। आहा..हा..! आर्तध्यान में चढ़ गया। वह ध्यान करना तो आता है। ऐसा ध्यान, स्वरूप का लगाना। अरे! भाई! मार्ग ऐसा है, भाई! वह कोई दया, दान, व्रत, भक्ति से नहीं मिलेगा। वह तो राग है, भगवान! आहा..हा..!

अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु, आहा..हा..! जैसे कन्दमूल में एक टुकड़े में अनन्त आत्मायें हैं। वैसे एक आत्मा में अनन्त गुण हैं। आहा..हा..! भाई! तेरी रिद्धि की तुझे खबर नहीं है। आहा..हा..! 'रिद्धि सिद्धि बुद्धि दीसै घट में प्रगट सदा।' तीन लोक का नाथ प्रभु तू, आहा..हा..! तेरे स्वभाव की सामर्थ्यता, सिद्ध की एक समय की पर्याय

से भी अनन्तगुनी है। आहा..हा..! ऐसा चैतन्यतत्त्व, उसके ज्ञान का अंश और प्रमाण आदि से निर्णय करके, पश्चात् वह विकल्प छोड़ देना; अन्दर में प्रवेश (करना)।

गुफा में जाना हो, वहाँ तक घोड़ा गाड़ी या वाहन आते हैं। पश्चात् अन्दर जाना हो, वहाँ वाहन काम नहीं करते। इसी प्रकार भगवान आत्मा के विचार के लिये विकल्प आवे परन्तु अन्दर प्रवेश करने में वह विकल्प काम नहीं करता। सम्यग्दर्शन प्रगट करने में... आहा..हा..! अभी तो धर्म की पहली सीढ़ी, भाई! समझ में आया? अन्तर भगवान पूर्ण स्वरूप है—ऐसा प्रमाण, निश्चय से निर्णय किया परन्तु वह विकल्प है, वह वृत्ति का उत्थान है। वृत्ति उठती है, वह राग है। आहा..हा..! मैं ऐसा हूँ और वैसा हूँ। अरे! मैं अबद्ध हूँ और पूर्ण हूँ और शुद्ध हूँ.. आहा..हा..! ऐसा भी जो विकल्प उठता है, उससे क्या? उससे तुझे क्या लाभ है? ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! समझ में आया? उस विकल्प का-राग का पक्ष छोड़ दे। तुझे भगवान आत्मा की भेंट करना हो तो। कठिन काम, भाई! इसे मिला नहीं। जिन्दगी ऐसी की ऐसी चली जा रही है। आहा..हा..! उसमें फिर पाँच-पचास लाख, करोड़, दो-पाँच-दस करोड़ मिले, मर गया उसमें, फँस गया, हो गया। आहा..हा..! ऐई! यह दो करोड़ और ढाई करोड़ रुपये-धूल एकत्रित हुई है इसके पास। वहीं का वहीं फँस गया है। आहा..हा..!

अरे प्रभु! तेरे पास तो अन्तर में... तुझे खबर नहीं, भाई! तेरे पास तो अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, अनन्त ईश्वरता, स्वच्छता, जीवत्वयता आदि अनन्त शक्तियों का भण्डार है। महालक्ष्मी पड़ी है। एक बार नजर से निहार तो सही, प्रभु! नजर में जगत को जानने में रुक गया, परन्तु जाननेवाला कौन है, उसे तूने जाना नहीं, प्रभु! आहा..हा..!

यह तो सबेरे आया था, परज्ञेय जो है—यह शरीर, वाणी, मन, स्त्री-पुत्र, कुटुम्ब, देव-गुरु-शास्त्र और राग, दया, दान, व्रतादि, ये सब परद्रव्य-परवस्तु है। आहा..हा..! उसमें तेरा ज्ञान उसे जानने के लिये रुका है परन्तु जाननेवाला कौन है, उस ओर तेरा ज्ञान नहीं आया। तूने क्या किया? आहा..हा..! समझ में आया? पर की ओर के लक्ष्य में जो ज्ञेय वेदन में-ख्याल में आते हैं, वे वेदन में आते हैं, उन्हें जाना, परन्तु वेदन करनेवाला अन्दर कौन है। आहा..हा..! उस ओर नजर नहीं की तो एक बार (नजर कर)।

अन्तर से ही मुक्तस्वरूप प्रगट होगा। स्वरूप में स्थिर हुए ज्ञानी... आहा..हा..! भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु में स्थिर-लीन, ध्यान में लीन होते हैं। आहा..हा..! **साक्षात् अतीन्द्रिय आनन्दामृत का अनुभव करते हैं...** आहा..हा..! साक्षात् अमृत। अमृतस्वरूप तो है। अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप तो प्रभु है। अरे! परन्तु यह कैसे बैठे? उड़द की दाल ठीक से (न हुई हो)-किसने पकायी है ऐसी? ऐसे कषायवाले। अर र! इसे आनन्दामृत भगवान (कैसे जँचे)? उसमें फिर लड़की का ससुर सत्ताप्रिय आया हो और चूरमे के लड्डू बनाये हों और उड़द की दाल (बनायी हो), बेस्वाद हो गयी हो और वह (सामनेवाला व्यक्ति) सत्ताप्रिय मनुष्य हो और ऐसा देखे वहाँ, किसने यह बनाया है? अरे रे! परन्तु क्या है? बापू! तू कौन है, उसे देखता नहीं तो तुझे यह क्या हुआ? आहा..हा..! तेरे अपलक्षण तो देख! जो वस्तु कर नहीं सकता, बना नहीं सकता, उसे बनाने में तू रुक गया। यह मुझे ऐसा करना और मुझे ऐसा करना और लड़की जवान हो गयी, पच्चीस वर्ष की (हो गयी), उसे ठिकाने लगाना है (उसका विवाह करना है) पुत्र को अच्छे घर में (विवाह करना है) हमारा घर पाँच करोड़ का आसामी, उसके प्रमाण में-घर के प्रमाण में बहू आनी चाहिए न! साधारण की लेवें तो अपनी इज्जत क्या? अरे भगवान! यह तू क्या करता है? भभूतमलजी! यह भभूति अलग प्रकार की है। आहा..हा..!

सबेरे नहाकर टीका करते समय छोटा दर्पण होता है न? छोटा, तो पूरा मुँह नहीं दिखाई देता, इसलिए ऐसा (करे) भूत देखना हो तो उस समय। आहा..हा..! क्या है यह तुझे? इस व्यन्तर की क्रीड़ा-भूत तुझे कहाँ से लगे? भगवान अन्दर पड़ा है, उसे देखने को निवृत्त नहीं होता। यहाँ तो विद्वान नाम धरानेवाले को भी कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन! तेरी विद्वत्तता का अभिमान एक बार छोड़ दे। आहा..हा..! और अन्दर भगवान पूर्णानन्द का नाथ, वहाँ तेरी नजर लगा दे। तेरी पर्याय में मुक्तता आयेगी। मुक्तस्वरूप है तो पर्याय में आंशिक मुक्तता प्रगट होगी। आहा..हा..!

मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी की कषाय से मुक्त हुआ तो उतनी तो मुक्ति सम्यग्दर्शन होने पर हुई। अरे! यह तो क्या बात है? समझ में आया? यह चैतन्य बादशाह भगवान, इसकी ओर दृष्टि करने से, स्थिरता करने से अतीन्द्रिय **साक्षात् अतीन्द्रिय...** आहा..हा..! जो अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप तो प्रभु है, वह सच्चिदानन्द प्रभु है। आहा..हा..! सत् शाश्वत् आनन्द और ज्ञान की मूर्ति प्रभु तो है। **साक्षात् अतीन्द्रिय आनन्द...** अन्दर में जाने से, प्रभु!

तुझे सम्यग्दर्शन-ज्ञान में.. आहा..हा..! साक्षात् प्रत्यक्ष वर्तमान अतीन्द्रिय आनन्दामृत-अतीन्द्रिय आनन्द के अमृत का अनुभव करता है। आहा..हा..!

'त एव साक्षात् अमृतं पिबन्ति' समयसार.. आहा..हा..! व्यवहार से बन्ध है, निश्चय से अबन्ध है, ऐसा व्यवहार का तो निषेध करते आये हैं परन्तु निश्चय से-वस्तु दृष्टि से अबद्ध है, मुक्त है, सामान्य है, एकरूप है—ऐसी जो विकल्प की वृत्ति उठती है, राग की वृत्ति उठती है, वह विकार है, दुःख है। आहा..हा..! और व्रत, तप, भक्ति का भाव, वह तो राग और दुःख है, भाई! तुझे खबर नहीं, भाई! भगवान! तू अतीन्द्रिय अमृत की मूर्ति प्रभु अन्दर है। उसमें जाने से अतीन्द्रिय आनन्दामृत का अनुभव करते हैं। सम्यग्दृष्टि जीव अन्तर में जाकर अतीन्द्रिय अमृत का अनुभव करते हैं, वहाँ शून्य नहीं है। आहा..हा..! समझ में आया? विकल्प से शून्य है।

मैं पूर्ण हूँ और शुद्ध हूँ और अखण्ड अभेद हूँ - ऐसी जो वृत्ति उठती थी, वह राग है। आहा..हा..! और पर की दया पालने का भाव भी राग है, स्वरूप की हिंसा है। अरे! तुझे खबर नहीं, प्रभु! आहा..हा..! पर की दया तीन काल में पाल नहीं सकता, परन्तु पर की दया का भाव आना, वह राग है, वह तेरे स्वरूप की हिंसा है। आहा..हा..! यह बात कैसे जँचे? आहा..हा..! यहाँ तो दया-धर्म को मूल... क्या कुछ कहते हैं न? 'दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान, दया सुख की वेलडी' कौन सी दया प्रभु! तुझे खबर नहीं। इस स्वरूप की रागरहित अहिंसा दृष्टि प्रगट करना, वह अपने में दया है। आहा..हा..! 'दया वह सुख की वेलडी, दया सुख की खान, अनन्त जीव मुक्ति गये दया के...' पहाड़े बोल लिये। कुछ भान नहीं होता बेचारे को।

(संवत्) १९८१ में गढडा में चातुर्मास था। घडियाल के पास रचा था, संवत् १९८१ की बात है। 'दया सुख की वेलडी' परन्तु कौन सी दया? बापू! यह तो पर की दया पालना। कौन पर की दया पाले? प्रभु! उसकी आयु हो तब तक रहे और आयु न हो तब छूट जाये। तुझसे दया पाली जा सकती है? आहा..हा..!

यहाँ तो कहते हैं कि वह तो विकल्प / राग है। परदया का भाव, सत्य बोलने का भाव, वह राग है - शुभराग है। आहा..हा..! उसे तो छोड़ दे, परन्तु मैं त्रिकाली आनन्द का नाथ हूँ - ऐसी शुभ की वृत्ति उठती है, उसे छोड़ दे तो तुझे अन्तर में अतीन्द्रिय अमृत का

स्वाद आयेगा। आहा..हा..! ऐसी बात! अरे! जिन्दगी में सुनने को मिले नहीं, ऐसी की ऐसी जिन्दगी मजदूरी में चली जाती है। आहा..हा..! समझ में आया? जगत से वीतराग जैन परमेश्वर कोई अलग प्रकार कहते हैं। समझ में आया? आहा..हा..!

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ विराजमान हैं। महाविदेह में सीमन्धर प्रभु विराजते हैं। आहा..! इन्द्र और गणधरों के समक्ष में भगवान तो वहाँ यह कहते हैं, वह बात यहाँ है। समझ में आया? प्रभु विराजते हैं। पाँच सौ धनुष की देह है, दो हजार हाथ ऊँचे हैं। महाविदेह में वर्तमान में विराजते हैं। मनुष्य क्षेत्र में मनुष्यरूप से, आहा..हा..! वे जगत को प्रसिद्ध करते हैं, वह वाणी कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ से लाये। समझ में आया? उस वाणी का यह सार है। ऐसी बातें हैं, प्रभु! क्या हो? आहा..!

प्रभु! तू आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञान की मूर्ति त्रिकाल है न! उसमें जा, प्रभु के समीप जा। दूर-दूर, राग में तू दूर-दूर वर्तता है। पर का करना, पढ़ना, सुनना, उस विकल्प में तो भगवान से तू दूर वर्तता है। आहा..हा..! भगवान कौन? यह आत्मा, हों! वे भगवान, भगवान के पास रहे। आहा..हा..! कैसे जँचे? आहा..हा..! जिसे हित करना हो तो अनुभव करना पड़ेगा, प्रभु! आहा..हा..! अभी प्रथम धर्म की बात है, हों! चारित्र और संयम वह तो कोई अलौकिक बातें हैं। अभी तो वे हैं ही नहीं। यह तो अभी सम्यग्दर्शन की बात है। आहा..हा..!

भगवान अन्दर में सर्वज्ञ पर्याय प्रगट होती है, भगवान को अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट होता है, वह आया कहाँ से? कहीं बाहर से आता है? अन्दर में पूर्ण विद्यमान है, प्रभु! तुझे खबर नहीं। आहा..हा..! बाह्य के पदार्थ की आश्रयता छोड़, अन्तर के पदार्थ की आश्रयता में जा। आहा..हा..! तुझे अतीन्द्रिय साक्षात् आनन्द के अमृत का अनुभव होगा और वहाँ अमृत का पान-घूँट आयेगा। आहा..हा..! गन्ने का रस जैसे घूँट भरकर पीता है न? गट.. गट..गट..। भगवान! तेरी वस्तु जो अन्दर है, वहाँ यदि देखेगा तो आनन्द का घूँट पियेगा। आहा..हा..! बाकी तो तू पुण्य और पाप के दुःख के घूँट पी रहा है, भाई! आहा..हा..! ऐसी बात भी कहाँ से आयी? यह नयी बात होगी? हमने तो सम्प्रदाय में ऐसा कुछ सुना नहीं था।

हमारे हीराजी महाराज थे। बेचारे बहुत (भद्रिक थे)। काठियावाड़ में हिन्दुस्तान में हीरा कहते थे। ऐसी उनकी बाहर की क्रिया। आहार-पानी निर्दोष। उनके लिये बनाया

हो तो लें नहीं। दृष्टि मिथ्यात्व, अज्ञान। आहा..हा..! वे ऐसा कहते थे, समाज में बड़ी छाप थी। हजारों लोग (आते थे) राजकोट जायें, पोरबन्दर जायें, वे ऐसा कहते थे। अरे! प्रभु! भगवान तो ऐसा कहते हैं। अहिंसा परमोधर्म। ...ज्ञानी का यह सार। ...किसी प्राणी को घात नहीं करना। अब यह तो व्यवहार की बात (हुई)।

मुमुक्षु : किसी प्राणी में स्वयं नहीं आया?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह स्वयं नहीं, पर।.. सिद्धान्त का यह सार है। हाथ ऐसे रखे, हों! सभा पर नजर नहीं। स्त्रियों का समुदाय हो तो नजर नहीं। ऐसे थे। वस्तुदृष्टि मिथ्यात्व। आहा..हा..! वह पर की अहिंसा पाल सके, उसमें धर्म है - ऐसा मानते थे। आहा..हा..! समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! पहले तेरी दया तो पाल। आहा..हा..! पर की कौन पाल सकता है? भाई! आहा..हा..! प्रिय में प्रिय स्त्री जिसे अर्धांगिनी कहते हैं, आधा अंग कहे, दो होकर एक। मूर्खायीवाले। आहा..हा..! वह जब मरने पड़े, देह छूटे, तब रखना चाहता है या नहीं? रख सकता है? पर की दया पालने जाये और इसकी दया नहीं? समझ में आया? एक महिला तो मरते हुए बोल गयी, उसके पति को (कहा), मैं जाती हूँ, परन्तु तुम्हारी प्रकृति ऐसी है कि तुम फिर से विवाह करना, हों! यह तो हमारे घर में सब अनुभव हो गया। हमारे भागीदार थे न शिवलालभाई? पालेज। दुकान है न पालेज (में) अभी? उनकी बहू छोटी उम्र में मर गयी। इनकी उम्र ५३ वर्ष थी और वे साधारण थे। बनिया अवश्य परन्तु बुद्धि सब लौकिक कोली जैसी बुद्धि। पुण्य के कारण कमा खाते हों। धूल में क्या है? उनकी स्त्री मर गयी तो कह गयी उन्हें। तुम वापस (विवाह) करना, हों! तुम्हें तुम्हारी प्रकृति सम्हालना मुश्किल पड़ेगी। तुम्हें नंगे, भूखे ढँके कौन रखेगा? अर र! चला नहीं फिर कुछ। कौन दे? ५३ वर्ष की उम्र और पूँजी में दस हजार। इतने थे। अधिक पैसे तब कहाँ थे? यह तो (संवत्) १९९२ के साल की बात है। आहा..हा..! हम तो दुकान में शामिल थे न? (संवत्) १९६३-६८ पाँच वर्ष तक मैंने भी दुकान चलायी थी, हिस्सेदारी में। सब पाप के पोटले थे। आहा..हा..! अरे! उसने भी विवाह करने की बहुत मेहनत की, परन्तु फिर कौन दे? और अभी भी विवाह करते हैं न? ५३ वर्ष के, ५५ वर्ष के विवाह करते हैं। मरने की तैयारी हो तो भी विवाह करते हैं, दूसरी उपाधि लगाते हैं। आहा..हा..!

मुमुक्षु : देनेवाले भी मिलते हैं न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : देनेवाले तो पैसा-वैसा दे और ऐसी इज्जत हो तो देते हैं। उसमें क्या है ? एक बार गये थे न वहाँ ? वह गाँव कौन सा ? दरबार बड़े वृद्ध थे। वहाँ व्याख्यान पढ़ा था। कौन सा गाँव ? भूल गये। गोंडल के पास। राजा 'चोरड़ी' नहीं। उपाश्रय में उतरे थे। लोगों को बहुत प्रेम था। दरबार वृद्ध थे, परन्तु जवान महिला से विवाह किया। महिला दूसरी थी। एकदम जवान, और इनकी उम्र हुई ७० वर्ष की और महिला की उम्र २० वर्ष की। आहा..हा..! वे आ नहीं सकते थे तो उनके बंगले में व्याख्यान करने गये थे। सब सुनते थे। बातें सब आयीं। अर र! मूर्खाई का पार नहीं होता। आहा..हा..! जिसे आत्मा के आनन्द का रस लेना है, उसे विषय का रस छोड़ देना पड़ेगा। आहा..हा..! सम्यग्दर्शन प्रगट करने में.. आहा..हा..! वह विषय का रस जिसे लगा है, उसे आत्मा का रस नहीं आयेगा। आहा..हा..!

यह यहाँ कहते हैं, **साक्षात् अतीन्द्रिय आनन्दामृत का अनुभव करते हैं,...** मुनि, धर्मात्मा समकिती। साक्षात् कहा न ? अतीन्द्रिय अमृतस्वरूप तो आत्मा है ही। पर्याय में साक्षात् अमृत का अनुभव करते हैं। आहा..हा..! इसका नाम सम्यग्दर्शन, इसका नाम सम्यग्ज्ञान, इसका नाम धर्म की शुरुआत। बाकी सब व्यर्थ है। आहा..हा..! यहाँ तो थोड़ा प्रौषध करे और प्रतिक्रमण करे और हो गयी सामायिक। थी कब सामायिक और प्रौषध तुझे ? जहाँ दृष्टि मिथ्यात्व है। आहा..हा..!

यहाँ कहते हैं, प्रभु! अन्दर में जा न! अन्दर भगवान विराजता है न! आहा..हा..! बाहर में ढूँढ़ता है परन्तु बाहर में वह चीज़ नहीं है। आहा..हा..! अन्दर में खोज न, प्रभु को! आहा..हा..! तुझे आनन्द अमृत का स्वाद आयेगा। आहा..! वह क्या चीज़ है ? यह २३० (बोल पूरा) हुआ।

आत्मा के गुण गाते-गाते गुणी हो गया—भगवान हो गया; असंख्य प्रदेशों में अनंत गुणरत्नों के कमरे सब खुल गये॥२३१॥

आत्मा के गुण गाते-गाते गुणी हो गया... आहा..हा..! अन्दर में निर्विकल्प आत्मा के गीत गाते-गाते अन्दर गुणी-समकिती हो गया, गुणी हो गया। आहा..हा..! यह

क्या कहते हैं ? भगवान आत्मा में अपार.. अपार.. अपार.. अपार संख्या में इतने गुण भरे हैं कि पार नहीं अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त को अनन्तगुने गुणा करो, एक अनन्त को संख्य, असंख्य से भिन्न अनन्त, उस अनन्त को अनन्तगुना गुणा करो और उसे भी अनन्तगुना गुणा करो ऐसे अनन्त बार गुणाकार करो तो भी भगवान आत्मा में गुण की संख्या का पार नहीं आता। अरे रे ! ऐई ! तुम्हारी दो करोड़ और ढाई करोड़ धूल तो कहीं रह गयी। आहा..हा.. ! अब निवृत्ति लेनी है – ऐसा कहते हैं अभी। कहो, समझ में आया ? आहा..हा.. !

ज्ञान, आनन्द शक्ति गुण, अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व, अकर्तृत्व, अभोक्तृत्व—ऐसे-ऐसे अनन्त गुणस्वरूप प्रभु जो कि अनन्त गुण की संख्या का कहीं अन्त नहीं कि यह गुण अन्तिम है। अरे ! क्या है यह वस्तु ? अरे रे ! समझ में आया ? इस भगवान आत्मा के गुण गाते-गाते, ऐसे अनन्त गुण की महिमा करते-करते.. आहा..हा.. ! एक स्त्री अच्छी मिली हो तो उसमें घुस गया, मार डाला आत्मा को।

यहाँ तो तीन लोक का नाथ अन्दर विराजता है, प्रभु ! आहा..हा.. ! उसके गुण गाते-गाते अन्दर से भगवान मिल गया। आहा..हा.. ! कोई क्रियाकाण्ड करते-करते सम्यग्दर्शन हो – ऐसी वस्तु नहीं है। आहा..हा.. ! ऐसी बातें जगत से उल्टी। इस भगवान में एक समय में अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त गुण। आहा..हा.. ! ऐसे अनन्त-अनन्त गुण की विस्मयता दृष्टि में करने से वह गुणी हो गया। आहा..हा.. ! पर्याय में अनुभव, दृष्टि आदि हो गये, ऐसा कहते हैं। गुणी के गुण गाते गुणी हो गया। भाई ! यह किस प्रकार की बातें ? अन्य तो कहते हैं दया पालो, व्रत करो, इच्छामि पडिक्कमा.. तस्स मिच्छामि दुक्कडम्। यह तो सब राग की बातें हैं। तस्सूतरी करणेन... लोगस्स किया, इसलिए हो गयी सामायिक उसे। धूल भी नहीं, सुन न ! आहा.. !

प्रथम सामायिक किसे कही जाती है, इसकी खबर नहीं। उसे सामायिक चारित्र की सामायिक आ गयी ? आहा..हा.. ! यहाँ तो परमात्मा अनन्त वीतरागी शक्ति का पिण्ड है, वह सर्वज्ञ भगवान ने कहा वह, हों ! अज्ञानी कोई कहे, आत्मा.. आत्मा तो बहुत सब कहते हैं (वह नहीं)। परन्तु वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वरदेव ने जो आत्मा देखा और कहा... आहा..हा.. ! जिसके अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. मर्यादा नहीं ऐसे गुण

सागर से भरपूर भगवान, उसके अनन्त गुण की महिमा करते-करते... आहा..हा..! वह आत्मा गुणी हो गया।

मुमुक्षु : महिमा करते-करते होता है या... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : महिमा करते-करते गुणी हो गया - ऐसा कहा। गाते-गाते का अर्थ यह है। आहा..हा.! भले शरीरप्रमाण आत्मा भगवान है, उसका कद, परन्तु उसके गुण अपार, इतने गुण हैं भगवान त्रिलोकनाथ कहते हैं। आहा..हा..! कि आकाश का पार नहीं होता, आकाश का अन्त है ? अलोक में आकाश कहाँ पूरा हुआ ? तो उस सब आकाश में एक रजकण परमाणु का रखो, जो प्रदेश कहलाता है, उसके प्रदेश कितने हैं ? उसके प्रदेश से एक आत्मा में अनन्त गुणे गुण हैं। आहा..हा..! कब सुना है ? बेचारे ने सुना नहीं। भिखारीपन में (पूरा जीवन) निकाला। बाहर से भीख माँगता है, बाहर से दो, यहाँ से दो, यहाँ से दो। भगवान को ऐसा कहे, प्रभु! मुझे शिवपद दो। भगवान कहते हैं - शिवपद तो तेरे पास है, हम कहाँ देते हैं ? सिद्धासिद्धि मम दिसंतु - हे सिद्ध भगवान! मुझे सिद्धपना दिखलाओ। दिखलाओ - ऐसा कहते हैं, हों! उसका अर्थ कि मैं भी केवलज्ञान पाऊँ और सिद्धपद को प्राप्त करूँ। आहा..हा..! उसकी भी कहाँ खबर है ? अर्थ क्या है, भगवान जाने!

यहाँ कहते हैं कि आत्मा वस्तु एक प्रभु आत्मा, ऐसे अनन्त आत्मायें। आहा..हा..! एक प्याज और लहसुन का इतना टुकड़ा लें तो उसमें असंख्य तो औदारिकशरीर हैं और एक शरीर में अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त आत्मायें हैं। कौन माने ? भगवान त्रिलोक के नाथ का यह कथन है। तथापि उसमें एक आत्मा, अनन्त में जो एक आत्मा है, उसमें अनन्त.. अनन्त.. अनन्त अपार गुण हैं। आहा..हा..! अरे.. अरे.! ऐसी बातें अब, भाई! तेरा नाथ अनन्त गुण से विराजमान प्रभु है, भाई! उसकी बादशाही तो उसके गुण में है। आहा..हा..! इन पुण्य-पाप के भाव में और पर में उसकी बादशाही नहीं है। आहा..! उनका वह मालिक नहीं है।

अनन्त-अनन्त गुण,... गुणी अर्थात् भगवान आत्मा, उसके अनन्त-अनन्त गुण को लक्ष्य में लेकर विस्मयता करने से अन्दर में जाता है। तब सम्यग्दृष्टि होता है-गुणी हो जाता है। भले अभी बाह्य में चक्रवर्ती पद में हो, परन्तु अन्तर में अनुभवी समकिती हो जाता है। आहा..हा..! शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ चक्रवर्ती थे, तीर्थंकर थे, कामदेव

थे। छहखण्ड में उनके जैसा रूप नहीं, तथापि वह सब छोड़कर अन्तर में अनुभव में गये थे। समकित लेकर तो जन्मे थे। भगवान तीन लोक के नाथ केवली तो बाद में हुए। माता के गर्भ में स्वर्ग में से (आये तो समकित लेकर आये थे)। आहा..हा..! अरे! वह क्या चीज़ है? कहते हैं कि भगवान अनन्त गुण का धनी, उसका अनुभव लेकर तो माता के गर्भ में आये थे। समझ में आया? आहा..हा..! चक्रवर्ती ने छह खण्ड साधे – ऐसा कहा जाता है, वह सब विकल्प की बातें हैं। उन्होंने तो भगवान अनन्त गुण का पिण्ड अखण्ड को साधा, अखण्ड को साधा था। आहा..हा..! अखण्ड का साधन किया था। आहा..हा..! यह तो पागल जैसा लगे, ऐसा है। है ऐसी बातें, भाई! आहा..! इसने आत्मा क्या चीज़ है? उसमें कितने अपार गुण हैं? प्रभु! तूने सुना नहीं। सुना नहीं तो जानने में तो कहाँ से आवे? आहा..हा..!

आत्मा के गुण गाते-गाते अर्थात्? गुण की महिमा / एकाग्रता करते-करते गुणी हो गया। अरे! **भगवान हो गया;...** ऐसा कहते हैं, लो! भगवान गुणी के गुण में एकाग्र होते-होते पर्याय में अरिहन्त भगवान हो गया। तीन लोक का नाथ अरिहन्त-णमो अरिहन्ताणं। आहा..हा..! जो अन्तर में अनन्त गुण की महिमा में रहते-रहते केवली हुए हैं। आहा..हा..! वे कोई व्रत और तप किये, इसलिए केवली हुए हैं – ऐसा नहीं है। वह सब क्रिया राग है। आहा..हा..! यहाँ यह बताना है। **भगवान हो गया;...** भगवान के गुण गाते-गाते- गुण में एकाग्र होते-होते आत्मा भगवान हो गया। आहा..हा..! अनन्त भगवान हो गये। अनन्त सिद्ध हुए न? छह महीने आठ समय में छह सौ आठ सिद्ध ढाई द्वीप में से होते हैं। छह महीने और आठ समय। उसमें छह सौ आठ तो मुक्ति पाते हैं। आहा..हा..! वे किस प्रकार मुक्ति पाते हैं? अभी भी वहाँ महाविदेह में मुक्ति पाते हैं। यहाँ नहीं (पाते)। महाविदेहक्षेत्र में सिद्ध होते हैं। आहा..हा..! किस प्रकार होते हैं? कि अनन्त गुण का भगवान, अपार गुण का समुद्र, उसकी महिमा अन्तर में करते-करते – एकाग्र होते-होते वह भगवान हो गया, सिद्ध हो गया। आहा..! समझ में आया? ऐसी बातें अब। किस प्रकार की बात यह? बापू! मार्ग यह है, भाई! दुनिया ने मार्ग को उल्टे रास्ते चढ़ा दिया है। वीतराग सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमेश्वर का पंथ तो यह है। आहा..हा..! समझ में आया?

असंख्य प्रदेशों में अनंत गुणरत्नों के कमरे सब खुल गये। आहा..हा..! क्या कहते हैं? भगवान आत्मा में असंख्य प्रदेश हैं। जैसे सोने की सांकल होती है न? चैन,

दो सौ-पाँच सौ मकोड़े होते हैं न? मकोड़े को क्या कहते हैं? कड़ी.. कड़ी। यह पाँच सौ, हजार कड़ी की। हमारे काठियावाड़ में सांकल कहते हैं। तुम्हारे बाहर में चैन कहते हैं, लो न! यह पूरी सांकल है, वह हजार मकोड़े की बनी है। मकोड़ा अर्थात् कड़ी। इसी प्रकार यह भगवान आत्मा असंख्य प्रदेशी हैं। यहाँ प्रदेश है? यह तो मिट्टी-धूल है। यहाँ आत्मा जो है, यहाँ जो प्रदेश हैं, वे यहाँ नहीं, यहाँ नहीं, भिन्न-भिन्न ऐसे असंख्य प्रदेश हैं। आहा..हा..! भगवान असंख्य प्रदेशी स्वदेश में आत्मा विराजता है। समझ में आया? ऐसी बातें हैं। हम पामर को भगवानरूप से बुलाओ! आहा..हा..! भगवान! तू पामर नहीं, प्रभु! तू भगवानस्वरूप है, भाई! तुझे खबर नहीं है। आहा..हा..!

भगवान हो गया; असंख्य प्रदेशों में... जैसे एक कड़ी है, वैसे आत्मा में प्रदेश है। परन्तु कड़ी-कड़ी में सोना भरा है; वैसे प्रदेश-प्रदेश में सब अनन्त गुण भरे हैं। आहा..हा..! भगवान त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव का यह हुकम है, प्रभु! सुन न! आहा..हा..! असंख्य प्रदेश तेरा देश है, उसमें अनन्त गुण की प्रजा अन्दर पड़ी है। आहा..हा..! समझ में आया? उन असंख्य प्रदेशों में अनन्त गुण रत्न, असंख्य प्रदेश में अनन्त गुण रत्न। आहा..हा..! क्या कहते हैं? यह पकड़ना कठिन अभी तो, समझे तो कब? आहा..हा..! भगवान असंख्य प्रदेशी यह एक आत्मा, इसके प्रत्येक प्रदेश में अनन्त गुण के रत्न भरे हैं। उन गुण रत्न के कमरे भरे हैं। ये सब तुम्हारे कमरे होते हैं न? दो, पाँच, दस लाख का मकान बनाया, यह लड़के का कमरा है, यह लड़की का कमरा है और अमुक... अपने पुरुभाई के यहाँ है न? मुम्बई में छह लड़कों का एक-एक लड़के का पाँच-पाँच लाख का कमरा अलग। पुरुभाई का स्वयं का अलग। पुरुभाई अभी गुजर गये। पोपटलाल मोहनलाल वढ़वाण, कितने ही करोड़ कहलाते हैं उनके पास। एक व्यक्ति था वह कहता था, मैं जाकर छोटे भाई को भेजूँगा, परन्तु अभी आये नहीं। वे कमरे अलग-अलग। छहों लड़कों के पाँच-पाँच लाख के अलग कमरे। उनके पिता का अलग। इसी प्रकार इस असंख्य प्रदेशी कमरे में अनन्त गुण भरे हैं शान्तिभाई! इस जवाहरात की धूल में कुछ नहीं है।

मुमुक्षु : आप तो ऐसा ही कहोगे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर में अनन्त जवाहरात पड़े हैं, कमरे भरे हैं। एक-एक कमरे में लाखों-करोड़ों की कीमत होती है। आहा..हा..! समझ में आया? एक व्यक्ति था, वह

स्नान करने गया तो वहाँ रत्न के ढेर थे। मणिरत्न के। वहाँ गया तो एक रत्न ले आया, पत्थर जानकर, पत्थर जानकर। केरोसीन जलाना मिट गया। इसके प्रकाश में रोटी बनेगी। इसलिए रखा। उसमें एक सेठ आ गया। उसे वहाँ लेना था। उसने यह देखा। ओहो भैया! यह तू कहाँ से लाया? साहेब! मैं गया वहाँ तो करोड़ों, अरबों ढेर थे, उसमें से एक लिया। इसमें मुझे रोटी बनाने में केरोसीन जलाना नहीं रहा। केरोसीन जलाना पड़ता है न? अरे! भगवान! मेरे करोड़ गोदाम हैं, एक-एक गोदाम में करोड़ों सोने की मोहर है, वह सब तुझे दूँगा, यह मुझे दे। अरे! ऐसे तो करोड़ों रत्न वहाँ पड़े थे। वे इतने कीमती!

यहाँ परमात्मा तीन लोक के नाथ कहते हैं, आहा..हा..! प्रभु! असंख्य प्रदेश में गुण के अनन्त कमरे भरे हैं। आहा..हा..! खोल.. खोल उन्हें। ताला लगाया है, प्रभु तूने। राग की एकता, पुण्य और दया, दान किये, मैंने दया पाली, उसमें मिथ्यात्व का ताला लगाया। मैंने पर की क्रिया की, यह मान्यता मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व का ताला लगाया और रत्न का कमरा नहीं खोला इसने। वे सब कमरे खुल गये। आहा..हा..! विशेष बात आयेगी...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

जिस प्रकार थके हुए व्यक्ति को विश्राम मिलने पर अथवा वाहन आदि की सुविधा मिलने पर वह हर्षित होता है और रोग से पीड़ित मनुष्य को वैद्य मिलने पर वह उत्साहित होता है; इसी प्रकार भव-भ्रमण कर करके थके हुए और आत्मभ्रान्ति के रोग से पीड़ित जीव को थकान उतारनेवाली और रोग मिटानेवाली चैतन्यस्वरूप की बात कान में पड़ते ही, वह उत्साहपूर्वक उसका सेवन करता है। सच्चे सद्गुरु वैद्य ने जिस प्रकार कहा हो, उस प्रकार वह चैतन्य का सेवन करता है। सन्त के समीप दीन होकर भिखारी की तरह 'आत्मा' माँगता है कि प्रभु! मुझे आत्मा का स्वरूप समझाओ।

(पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, आतम के हित पंथ लाग! में से)

भाद्र शुक्ला-९, सोमवार, दिनाङ्क ११-०९-१९७८
वचनामृत-२३१-२३५ प्रवचन-९१

२३१ फिर से। चल गया है थोड़ा एक लाईन का। आहा..हा..! **आत्मा के गुण गाते-गाते गुणी हो गया...** क्या कहते हैं? भगवान अनन्त गुण सम्पदास्वरूप प्रभु के गुण गाते अर्थात् गुण की एकाग्रता करते-करते। आहा..हा..! गाते का अर्थ यह (है)। गाने का विकल्प है? उस गुण गाने का अर्थ यह है। आहा..हा..! अनन्त-अनन्त गुण की जहाँ महिमा अन्तर में आयी, उस महिमा को एकाग्रता कहते हैं। उसे गुण गाते-गाते कहने में आता है। आहा..हा..!

आत्मा के गुण गाते-गाते गुणी हो गया... पर्याय में केवलज्ञान आदि दशा हो गयी। आहा..हा..! कोई क्रियाकाण्ड करते-करते होता है - ऐसा नहीं, भाई! ऐसा कहते हैं। और आत्मा के गुण गाते (गाते) **भगवान हो गया;...** आहा..हा..! ज्ञानस्वरूपी प्रभु, आनन्दस्वरूप प्रभु त्रिकाली ध्रुव ज्ञातास्वभाव की एकाग्रता होने से। इस गुण गाने का अर्थ उसका सत्कार और एकाग्रता होने से भगवान हो जाता है। जैसा स्वभाव में भगवान है, वैसा पर्याय में भगवान हो जाता है। आहा..हा..! ऐसी बात है। और यह भगवान हुआ, उसकी दशा..

आज एक बड़ी गड़बड़ आयी है। कलकत्ता का विश्वविद्यालय है, उसका अध्यक्ष है। उसने दो-तीन महीने पहले बड़ी अंग्रेजी पुस्तक बनायी है। उसमें यह डाला है कि भगवान महावीर... आहा..हा..! गोशाला के साथ वाद-विवाद करते-करते बुखार आ गया और फिर माँस खाया। आहा..हा..! बुखार आ गया - ऐसा उनके शास्त्र में नहीं। श्वेताम्बर का भगवतीसूत्र है, उसमें पन्द्रहवाँ अध्याय है, उसमें ऐसा आया है, बात तो सब कल्पित है, गोशाला एक... ऐ..! यह तुम्हारे श्वेताम्बर शास्त्र की बात चलती है। वे तो बड़े

अध्यक्ष हैं और करोड़पति। आहा..हा..! पन्द्रहवें शतक में ऐसा आया है, हमने तो बहुत बार पढ़ा है न! यहाँ एक बेचरदास आया था, श्वेताम्बर पण्डित है, उससे कहा कि उसमें यह क्या लिखा है? पन्द्रहवें अध्याय में ऐसा आया है कि भगवान को लोहीखण्ड झाड़ा हो गया। झाड़ा को क्या कहते हैं? कलशा का रोग हो गया। लोहीखण्ड... लोहीखण्ड। खून गिरता था। भगवान को खून गिरता था। आहा..हा..! पेचीस.. पेचीस.. उन्होंने एक मुनि को कहा, जाओ आहार लाओ। आहार लाये। वहाँ पाठ में ऐसा है कि 'कुकड़ मुंसे'। मुर्गे का माँस - ऐसा पाठ है। हमने तो सब देखा है। उस समय पण्डित को दिखाया था। अरे! यह क्या लिखा है? कहा।

मुमुक्षु : उसका अर्थ अलग किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्थ अलग किया परन्तु अन्दर स्पष्ट लिखा है उसने। चेतनजी को पत्र बताया था। है पत्र यहाँ? वहाँ है। आज आया है कि भगवान को भी रोग हुआ। भगवान हुए और रोग हुआ और पेचीस रोग में... उसने तो बुखार लिखा है, माँस खाया, ऐसा संस्कृत टीका में है। श्वेताम्बर की संस्कृत टीका में है। आहा..हा..! गजब बात। भगवान को आहार नहीं, आहार-पानी नहीं और उन्हें माँस! अर..र!

सम्यग्दृष्टि हो, वह भी माँस नहीं खाता। पशु, सिंह, असंख्य सिंह जो (ढाई द्वीप के) बाहर है, सम्यग्दर्शन पाते हैं। अन्दर आत्मा के ज्ञातादृष्टा का भान (होता है), जिन्हें माँस का आहार था, वह छोड़ दिया और एक हजार योजन का कमल होता है। उस कमल के डंठल खाते हैं - ऐसा शास्त्र में पाठ है। आहा..हा..!

श्वेताम्बर के शास्त्र में ऐसा लिखा है। उसने दो-तीन माह पहले उसकी अंग्रेजी पुस्तक में लिखा है। पहले बहुत चर्चा हो गयी है। यह क्या लेख? यह तो कहीं ज्ञानी के वाक्य हैं? है शास्त्र में पाठ है, ठीक है। भगवतीसूत्र पन्द्रहवाँ शतक। और नीचे लिखा है कि कुकड़ माँस अर्थात् जो माँस है वह चीज़। पुराने आचार्य कहते हैं कि वह है। अर र! मूल कल्पित शास्त्र। श्वेताम्बर जो है, स्थानकवासी या मन्दिरमार्गी, वे जब दिगम्बर में से निकले तो सब कल्पित शास्त्र बनाये हैं। आहा..हा..! कल्पित में संस्कृत टीका में ऐसा डाल दिया है। मूल पाठ ऐसा है। कुक्कड मंसे। फिर साधारण व्यक्ति ने अर्थ किया, मुर्गा माँस जैसा काशीफल, ऐसा लिया। यह काशीफल होता है न? काशीफल, काशीपाक

परन्तु पाठ में कुकड़ मंसे है। मूल सूत्र में, भगवती सूत्र मूल पाठ। हमने तो सत्रह बार पढ़ा है। सत्रह बार। सोलह हजार श्लोक हैं, सवा लाख श्लोक की टीका है। सत्रह बार पढ़ा है परन्तु वह कल्पित, श्वेताम्बर मिथ्यादृष्टि साधु हुए, उन्होंने बनाया है। आहा..हा..! बहुत चर्चा चली है। आहा..हा..! अरे रे! भगवान को रोग! भगवान जहाँ हुए, आत्मा का आनन्द.. यहाँ यह कहते हैं देखो!

असंख्य प्रदेशों में अनंत गुणरत्नों के कमरे सब खुल गये। आहा..हा..! परमात्मा तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ जिनेश्वर कहते हैं, वह यह बात है। आत्मा में असंख्य प्रदेश हैं। कल कहा था, जैसे हजार कड़ी की सांकल-चैन होती है न? उसी प्रकार आत्मा में असंख्य प्रदेश कड़ी की तरह हैं। असंख्य कड़ी हैं, (वैसे) असंख्य प्रदेश हैं। यह सर्वज्ञ ने ही देखा है, यह सर्वज्ञ के अलावा कहीं नहीं है। आहा..हा..! उन असंख्य प्रदेश में... है? **अनंत गुणरत्नों...** आहा..हा..! एक-एक प्रदेश में अनन्त गुण। ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्त गुण हैं। आहा..हा..! उस ज्ञाता भगवान अद्भुतस्वरूप प्रभु में एकाग्र होते-होते.. आहा..हा..! भगवान हो गया। अरहन्त सर्वज्ञ हो गया।

और असंख्य प्रदेश में अनन्त गुण हैं, वे गुण कमरे हैं। अपनी गुजराती भाषा में ओरडा लिखा है। (हिन्दी में) कमरा लिखा है। बहिन के शब्द में ओरडा... ओरडा। अनन्त कमरे अन्दर हैं। एक-एक प्रदेश में अनन्त गुणरूपी कमरे हैं। कहो, पण्डितजी! आहा..हा..! अरे प्रभु! तुझे तेरी खबर नहीं कि तू क्या चीज़ है? आहा..हा..! असंख्य प्रदेश में एक-एक अंश में अनन्त गुणरूपी रत्न के कमरे हैं। उसमें से एक-एक गुण में अनन्त पर्यायें प्रगट होती हैं। उन अनन्त पर्यायों का खजाना एक-एक गुण; ऐसे अनन्त गुण के कमरे असंख्य प्रदेश में हैं। आहा..हा..! अरे! ऐसी बातें अब।

अनंत गुणरत्नों के कमरे सब खुल गये। परमात्मा को असंख्य प्रदेशों में अनन्त गुणरत्न खिल गये, खुल गये। अरहन्त सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमेश्वर-जिन्हें णमो अरिहंताणं कहते हैं, उन्हें अब रोग? उन्हें दवा? और उसमें भी माँस? अर र! गजब कर दिया, भाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु रोग किसे? परन्तु वह श्वेताम्बर शास्त्र में पाठ है। भगवतीसूत्र में। मूल कल्पित बनाकर लोगों को खबर नहीं होती। श्वेताम्बर पन्थ दो हजार

वर्ष पहले निकला है। पश्चात् स्थानकवासी तो अभी निकले हैं तो उन्हें तो कुछ खबर नहीं होती। वे तो जो कहते हैं, वे शास्त्र भगवान के हैं – ऐसा मानकर निकले हैं। उसमें से यह तेरापंथी निकले, तुलसी। समझ में आया? ऐई!

मुमुक्षु : ऐसी मिथ्या बात लिखने का कारण क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : अपना मत चलाने को। वस्त्रसहित मुनिपना स्थापित करना था तो केवली को भी रोग होता है, वे दवा लेते हैं (–ऐसा स्थापित किया)। आहा..हा..! (श्वेताम्बर) शास्त्र में बहुत गड़बड़ है। श्वेताम्बर लोग ४५ मानते हैं, स्थानकवासी उनमें से ३२ मानते हैं, परन्तु सब कल्पित हैं। सर्वज्ञ के द्वारा कथित नहीं, परन्तु मिथ्यादृष्टि ने बनाये हुए शास्त्र हैं। आहा..हा..! उसमें ऐसी बात मूल पाठ में है कि भगवान को रोग हुआ तो सिंहणगार एक अनगार मुनि थे। वे जंगल में रोते थे कि अरे रे! भगवान को रोग है। ऐसे रोते थे। ऐसा शास्त्र में पाठ है, हों! सब कल्पित – झूठी (बातें हैं)। रोते थे तो भगवान ने बुलाया, यहाँ आ, क्या है? भगवान को वाणी कहाँ है? भगवान को तो ओम ध्वनि होती है। जा। क्या–कैसी महिला कही? रेवती। भूल गये। सब मुखाग्र–कण्ठस्थ था। रेवतीरानी के यहाँ आहार लेने जा, वहाँ मेरे लिये आहार बनाया है, वह नहीं लेना परन्तु उसके घोड़े के लिये बनाया है, वह लेना – ऐसा पाठ है। आहा..हा..! वह आहार लाता है, भगवान खाते हैं, रोग मिट जाता है। सब सन्तोष... सन्तोष.. देव प्रसन्न (हो जाते हैं)। ऐसा पाठ है। भगवतीसूत्र मूल पाठ। आहा..हा..! मार्ग भ्रष्ट कर दिया। समझ में आया?

निश्चय से तो प्रभु! क्या कहें? यह श्वेताम्बर और स्थानकवासी, वह जैनधर्म / जैन ही नहीं हैं – ऐसी बात है। हम तो अन्दर उतर गये थे न! परन्तु हमें तो पूर्व की बात अन्दर से आयी। भगवान के पास थे। यह मार्ग नहीं। यह मार्ग ही खोटा है। पूरा श्वेताम्बर और स्थानकवासी धर्म, वह जैनधर्म नहीं, अन्य धर्म है। आज मानो, कल मानो, बाद में मानो, यह मानने से ही छूटकारा है। ऐई! आहा..हा..! परन्तु लोगों को कठिन लगता है। ७०–७० वर्ष स्थानकवासी और मन्दिरमार्गी जैनधर्म में निकाले हों, उन्हें ऐसा कहना कि तेरा जैनधर्म नहीं है। कठिन लगे बेचारे को। क्या हो भाई! वस्तुस्वरूप ऐसा है।

मैंने तो एक पण्डित को कहा था, बेचरदास ने लिखा था। यहाँ आया था, स्थानकवासी का पण्डित है। क्या लिखा है यह? यह तो संस्कृत टीका में है, पाठ में है। वृद्ध साधु ऐसा

मानते हैं - ऐसा उसमें लिखा है। ठीक! संस्कृत में है। हमारे पास सब पुस्तकें हैं। बड़ी पुस्तक है, श्रीमद् (संस्था) की ओर से प्रकाशित है। अरे भगवान को रोग कैसा? आहा..हा..! उन्हें दवा कैसी? और उसमें माँस?

प्रभु को आहार-पानी का अभाव है। अमृत का अनुभव जहाँ करते हैं, (अनन्त गुण) खिल गये। असंख्य प्रदेश में अनन्त-अनन्त गुणरत्न खिल गये। अनन्त अमृत का भगवान अनुभव करते हैं। आहा..हा..! मोहनलालजी! किसने लिखा यह? कहते हैं अपना पंथ चलाने को लिखा है, भगवान! क्या करें?

यह सब परिवर्तन किया, तो अन्दर से कुछ दूसरा लगा तब किया न? नहीं तो हमारी मान्यता तो स्थानकवासी में बहुत थी। दीक्षा बहुत धूमधाम से (हुई थी)। बड़े भाई ने अठारह सौ, दो हजार रुपये ६५ वर्ष पहले खर्च किये थे। अभी तीस गुने गिने जाते हैं। फिर मैंने तो कह दिया, भाई! यह मार्ग नहीं है। यह मार्ग, वीतरागमार्ग नहीं है। मैं तो छोड़ दूँगा, यह साधुपना नहीं है। मैं तो कड़क क्रिया करता था। यह साधुपना नहीं, मैं साधु नहीं हूँ। वस्तु दूसरी है। बड़े भाई को हमारे प्रति बहुत प्रेम था तो कहा, महाराज! आपकी प्रसिद्धि बहुत है तो धीरे-धीरे छोड़ना। बड़े भाई! (ने ऐसा कहा) धीरे-धीरे छोड़ना। यह बात (संवत्) १९८७ में की थी, १९८७। मैं यह छोड़ दूँगा। यह मार्ग नहीं है। यह जैनधर्म नहीं है। उनकी उपस्थिति में (संवत्) १९९१ में छोड़ा। यहाँ बंगला है न? फिर तो दुकान छोड़कर यहाँ रहते थे। पति-पत्नी थे। आजीविका के लिये पैसे थे। दुकान, धन्धा छोड़ दिया। १९९३ में गुजर गये परन्तु उनकी उपस्थिति में (परिवर्तन) किया। यह मार्ग नहीं, बापू! हाथी के हौदे बड़ी दीक्षा, धामधूम और साढे तेईस वर्ष की उम्र, जवान अवस्था।

मुमुक्षु : धोती फट गयी थी?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, धोती फट गयी थी, हाथी के हौदे (पर चढ़ते समय फट) गयी थी। घर में बड़ा हाथी लाये थे। हाथी बड़ा था, निसरनी होती है न? निसरनी... निसरनी.. चढ़ते हुए, मैं तो कपड़े ऊँचे पहनता था। दुकान पर भी। जगन्नाथी की धोती, आलपाक का कोट, जरी की टोपी, ऐसा पहनता था। (उस दिन) भी जगन्नाथ की पहनकर ऊपर गया था, वहाँ निसरनी में वस्त्र फटा। मुझे शंका पड़ी कि यह क्या? हुआ क्या? मैं अभी दीक्षा लेने जाता हूँ और.. और लोग दो-दो हजार लोग। यहाँ जन्मधाम में

किसान के गाँव में हमारा मकान है न ? बहुत लोग थे। शंका पड़ी की कुछ अन्तर है। हो वह ठीक। इसका अर्थ कि वस्त्रसहित मुनिपना तीन काल में होता ही नहीं। कठिन बात, भगवान! क्या कहें ? आहा..हा..!

एक बार तो हमारे गुरु थे, (संवत्) १९८३ के साल की बात है। पात्र रंगते थे। पात्र होते हैं न ? दो-दो घण्टे रंगने में जाते थे। उन्हें रंगना और सुखाना और ध्यान रखना। मैंने तो महाराज को कहा - महाराज! यह क्या है ? यह उपाधि ? यह क्या है ? स्वाध्याय करना छोड़कर दो-दो घण्टे पात्र रंगना और यह... हमारे गुरु बेचारे नरम व्यक्ति थे, परन्तु ऐसा बोले कि तेरे पात्ररहित साधु ढूँढ लाना। समझे न ? पात्ररहित साधु। यह पात्ररहित ढूँढ़ लाये, ये कुन्दकुन्दाचार्य रहे। जुगलजी! हमारे तो ऐसी बातें बीत गयी। मार्ग यह है, दूसरा कोई मार्ग नहीं। मुनि को पात्र होता नहीं और वस्त्र का टुकड़ा नहीं होता। एक वस्त्र का टुकड़ा रखकर मुनि हूँ - ऐसा माने, मनावे नरक निगोद में जायेगा। ए...! भभूतजी! ऐसी बात है भगवान! शान्ति से कहते हैं, धीरे से कहते हैं, मार्ग प्रभु! यह है, भाई! अरे! जगत को जँचना कठिन पड़े, भाई!

यहाँ तो कहते हैं आहा..हा..! असंख्य प्रदेश में अनन्त गुणरत्न। अनन्त-अनन्त पर्याय की शक्ति एक-एक गुण में पड़ी है। ऐसे अनन्त गुण असंख्य प्रदेश में एक-एक में (भरे हैं)। आहा..हा..! यह ज्ञातादृष्टा का ध्यान करते-करते.. आहा..हा..! इन असंख्य प्रदेश में अनन्त गुणरत्न के कमरे खुल गये। आहा..हा..! जिसकी पर्याय में अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता, अनन्त ईश्वरता प्रगट हो गयी, उन्हें अरिहन्त कहने में आता है। अभी अरिहन्तदेव की भी खबर नहीं होती कि अरिहन्त कौन ? और कैसे ? जय भगवान! वाड़ा में पड़े (इसने मान लिया)। आहा..हा..! देव ऐसे होते हैं और गुरु वस्त्ररहित (एक) टुकड़े रहित निर्ग्रन्थ और अतीन्द्रिय आनन्द में झूलनेवाले को गुरु कहते हैं। आहा..हा..! समझ में आया ?

वह यहाँ कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन तो सही! आहा..हा..! तेरे असंख्य प्रदेश में अनन्त गुणरत्न के कमरे भरे हैं। आहा..हा..! एक-एक कमरे में भरे हैं न ? ये बड़े गोदाम नहीं ? मुम्बई में केसर के और केसर के डिब्बों के बड़े गोदाम होते हैं। हम तो माल लेने जाते तो बहुत देखा है न ? बड़े-बड़े हजारों केसर के डिब्बे। तब तो रुपया भर केसर थी।

तब केसर का धन्धा था न हमारे ? आहा..हा.. ! इसी प्रकार यह भगवान आत्मा अनन्त गुण का गोदाम परमात्मा है। आहा..हा.. ! अरे ! इसे कैसे जँचे ? यह शरीर जड़, मिट्टी-धूल है। कर्म अन्दर धूल, अन्दर अलग चीज़ है और दया, दान, व्रत, काम, क्रोध के भाव वे भिन्न विकृत भाव हैं। आहा..हा.. ! उनसे भिन्न भगवान आत्मा ज्ञातादृष्टा और अनन्त आनन्द (स्वरूप है)। उसका ध्यान करते-करते शक्ति में जो अनन्त शक्ति प्रदेश में पड़ी है, वह सब खुल गयी। आहा..हा.. ! उन भगवान को आहार कैसा ? और उन भगवान को रोग कैसा ? भाई ! यह सब कल्पित बातें हैं, जैनधर्म की बात नहीं है। इसे उसमें से निकलने पर इकतालीस हजार रुपये भरने पड़े थे। उसके सम्प्रदाय में से (निकलने के लिये)। लोग... उत्तेजित हो यह तो वहाँ सोनगढ़ (जाता है)। करो दण्ड। इसे जाति में मिलने के लिये इकतालीस हजार भरे थे। फिर यहाँ रह गया। अरे भगवान ! बहुत कठिन काम !

ऐसा परमात्ममार्ग प्रभु, आहा..हा.. ! जिसे अन्तर में सम्यग्दर्शन होता है, वहाँ अनन्त कमरे जो भरे हैं, उनमें से अंश व्यक्त-प्रगट होता है। आहा..हा.. ! चारित्र हो, तब अनन्त कमरे में से उग्र शुद्धि बहुत बढ़ जाती है। केवलज्ञान हुआ तो... आहा..हा.. ! जितनी अनन्त शक्ति असंख्य प्रदेश में है, वह सब खुल गयी। आहा..हा.. ! तीन लोक का नाथ - णमो अरिहंताणं, उन्हें अरिहन्त कहते हैं। आहा..हा.. !

यह यहाँ कहते हैं। **भगवान हो गया;...** आहा..हा.. ! भगवान अर्थात् भग अर्थात् लक्ष्मी। भग का अर्थ लक्ष्मी होता है। अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान, अनन्त गुणरूपी लक्ष्मी, उसका वान। वह लक्ष्मीवान प्रभु आत्मा है। आहा..हा.. ! इस धूल का लक्ष्मीवान नहीं। समझ में आया ? आहा..हा.. ! धूल की लक्ष्मी मेरी है, यह मान्यता मूढ़ की है। सबेरे आया था। आहा.. ! जड़ है, मिट्टी-धूल है। तेरी कहाँ से हुई ? आहा..हा.. ! यहाँ तो अनन्त-अनन्त लक्ष्मी पड़ी है, प्रभु ! तुझे खबर नहीं। तू कितना महान प्रभु अन्दर है !! आहा.. ! उस शक्ति का ध्यान करते-करते.. आहा..हा.. ! भगवान हो गया। गुणरत्न के कमरे खुल गये। गुजराती में, भाई ! ओरडा है। अपने यहाँ हिन्दी में कमरा लिखा है। गुजराती में ओरडा है। अनन्त कमरे भरे हैं। आहा..हा.. !

ज्ञाता का ध्यान करते-करते आत्मा ज्ञानमय हो गया, ध्यानमय हो गया—एकाग्रतामय हो गया। अन्दर चैतन्य के नन्दनवन में उसे सब कुछ मिल गया; अब बाहर क्यों जाये ? ग्रहण करने योग्य आत्मा को ग्रहण कर रलिया, छोड़ने योग्य सब छूट गया; अब किसलिये बाहर जाये ?॥२३२॥

२३२, **ज्ञाता का ध्यान करते-करते...** आहा..हा..! इन पुण्य और पाप से भिन्न भगवान, ज्ञातादृष्टा। जगत ज्ञेय और दृश्य, भगवान ज्ञाता और दृष्टा। आहा..हा..! राग से लेकर परज्ञेय वस्तु, उसका आत्मा ज्ञातादृष्टा है। आहा..हा..! ऐसे ज्ञातादृष्टा का ध्यान करते। आहा..हा..! इस भगवान आत्मा को ध्येय बनाकर ध्यान करते-करते, एकाग्र होते -होते। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं। ज्ञाता अर्थात् भगवान प्रभु त्रिकाली का ध्यान करते-करते **आत्मा ज्ञानमय हो गया,...** आहा..हा..! पर्याय में ज्ञानमय हो गया।

पर्याय क्या और फिर द्रव्य क्या ? आहा..हा..!

द्रव्य, वह त्रिकाली वस्तु; गुण, त्रिकाली शक्ति और पर्याय उसकी अवस्था - हालत। उसमें—इस पर्याय में जब द्रव्य का ध्यान करते-करते पर्याय में ज्ञानमय हो गया, केवलज्ञानमय हो गया। नीचे मति-श्रुतज्ञानमय हो गया, पूर्ण हुआ तब केवलज्ञानमय हो गया। आहा..हा..! ऐसा उपदेश किस प्रकार का ? दिगम्बर में भी अभी चलता नहीं। श्वेताम्बर में, स्थानकवासी में तो है ही नहीं। दिगम्बर में भी चलता नहीं। ऐई! ये सब दिगम्बर के रहे। ये पहले दिन आये, तब ऐसा कहते थे, ऐसी बात कहीं नहीं - ऐसा कहते थे। अपने वहाँ कलकत्ता के प्रमुख हैं। आहा..हा..!

प्रभु! क्या करते-करते आत्मा ज्ञानमय हो जाता है ?

इस ज्ञाता का ध्यान करते-करते पर्याय में ज्ञानमय हो जाता है। जो पुण्य और पाप राग मेरा है - ऐसी एकत्वबुद्धि है, वह मिथ्यात्व, भ्रान्ति, अज्ञान है। ऐसा आत्मा.. तीन लोक का नाथ परमात्मा ऐसा फरमाते हैं कि ज्ञाता का ध्यान करते-करते ज्ञानमय हो गया। पर्याय में ज्ञानमय दशा हो गयी।

ध्यानमय हो गया... आहा..हा..! **एकाग्रतामय हो गया।** तीन शब्द हैं। आहा..हा..! मार्ग भाई! बहुत अलौकिक है, भाई! अभी तो मार्ग बिगाड़कर यह करो और यह करो और

यह करो (– ऐसा चलता है) (परन्तु) करना, वह मरना है। आता है? किसमें? सोगानी। भाई! जुगलजी! सोगानी के द्रव्यदृष्टि प्रकाश में है। मैं कुछ करूँ, राग करूँ, मैं यह करूँ, यह तेरा मरना है। आहा..हा..! भगवान ज्ञातादृष्टा में करना, राग करना, दया-दान के विकल्प करना, वह कहाँ से आया? आहा..हा..! समझ में आया? ऐसा मार्ग है, प्रभु! इसलिए लोगों को ऐसा लगता है न, ऐई! सोनगढ़ियों का धर्म निश्चयाभास एकान्त है। कहो, प्रभु! तुझे खबर नहीं, बापू! आहा..हा..! और सोनगढ़िया सिद्ध करे। उस तीर्थ (फण्ड में) भी सोनगढिया सिद्ध करते हैं। तीर्थ फण्ड किया है न! मैंने तो किसी को कहीं कहा नहीं, हों! कि तीर्थ फण्ड करो या यह मन्दिर बनाओ, हमने किसी को कभी कहा नहीं। बाबूभाई ने तीर्थ फण्ड उठाया है। साठ लाख इकट्ठे किये हैं। करोड़ इकट्ठे करनेवाले हैं। चालीस लाख बाकी है। वह तो ठीक। वे लोग कहते हैं कि देखो! सोनगढ़ियों ने तीर्थ फण्ड बनाया।

मुमुक्षु : सब तीर्थों को अधिकार में कर लेना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हमको दे दो – ऐसा कहते हैं। एक साधु ने प्रतिज्ञा की है न? एक करोड़ रुपया न हो, तब तक अमुक नहीं खाऊँगा। हमारे हुए नहीं, तुम दे दो तो इकट्ठे हो जायें। हमने तो कुछ कहा नहीं कि फण्ड करो और पैसा इकट्ठा करो, मैंने तो कभी किसी को कहा नहीं। हम तो तत्त्व की बात करते हैं। समझ में आया? बाबूभाई है न? फतेहपुर के हैं न? गृहस्थ है, चालीस-पचास लाख रुपये हैं और स्वयं बहुत वर्षों से ब्रह्मचारी है। बहुत वर्ष से आजीवन ब्रह्मचर्य ले लिया है। एक लड़की ही है। उपदेश देते हैं, पाँच-पाँच हजार, दस-दस हजार लोगों में। अफ्रीका गये थे न? यह पन्द्रह लाख का मुहूर्त हुआ न? दो व्यक्ति बाबूभाई और लालचन्दभाई। लालचन्द मोदी राजकोटवाले और बाबूभाई। लालचन्दभाई की बहुत निर्मल दृष्टि है।

मुमुक्षु : महाराज! साठ लाख आपके प्रताप से हुए या नहीं..?

पूज्य गुरुदेवश्री : हमारा प्रताप यहाँ रहा, वहाँ कहाँ गया प्रताप? परन्तु लोगों को ऐसा हो जाता है कि यह सोनगढ़ का तीर्थ है, इसलिए दो। हमने तो कभी कहा नहीं कि यह मकान बनाओ, यह स्वाध्यायमन्दिर बनाओ। हमने तो कभी कहा नहीं, भाई! लोग आवें कि हमें यह करना है, हम सुनते हैं। राजकोट में मन्दिर (हुआ)। नानालालभाई

करोड़पति हैं, वे मेरे पास आये, मुझे एक मन्दिर बनाना है। तुम्हारी इच्छा, हमने कहा नहीं। मन्दिर बड़ा बनाया है। मन्दिर, मानस्तम्भ, समवसरण। आठ-दस लाख (खर्च हुए)। बने, बननेवाला हो वहाँ बने। उसे ऐसा निमित्त आ जाता है। उसमें कहीं इससे हुआ है (ऐसा नहीं है)। अरे रे!

यहाँ तो राग का कर्ता होना (वह मरने बराबर है)। इस ज्ञानस्वरूपी प्रभु को राग का रजकण कैसे हो? जैसे आँख में एक रजकण हो, वह खटक-खटक खटकता है; इसी प्रकार भगवान ज्ञानस्वरूपी प्रभु में दया, दान के विकल्प हों, वे खटकते हैं। अरे रे! ऐसी बात सुनने को मिलना कठिन है। क्या हो? भाई! यह तो कहा पहले, नहीं? भगवान का विरह पड़ा, प्रभु वहाँ रह गये। आहा..हा..! यहाँ सर्वज्ञपना उत्पन्न होने का विरह पड़ गया। देव का आना रुक गया, एक भावश्रुतज्ञान रहा, उसमें यह मार्ग जगत को कठिन पड़ता है। क्या हो? भाई! अरे! चौरासी के अवतार करके बापू! कचूमर निकल गया है, नाथ! तेरे दुःख का (पार नहीं है)। भगवान तो ऐसा कहते हैं कि नरक के एक क्षण के दुःख, प्रभु! तैंतीस सागर तूने अनन्त बार भोगे परन्तु एक क्षण के दुःख करोड़ों जीभ से, करोड़ भव में नहीं कहे जा सकते, बापू! तूने ऐसे दुःख सहन किये हैं, वह तू भूल गया। भूल गया, इसलिए नहीं था - ऐसा कैसे कहा जाये? समझ में आया? जन्म लेने के पश्चात् छह महीने क्या स्थिति थी, वह अभी खबर है? (खबर नहीं), इसलिए नहीं थी? खबर नहीं थी इसलिए नहीं थी - ऐसा कौन कहे? आहा..हा..! थी, है, मैं यहाँ हूँ तो जन्म के बाद छह महीने, बारह महीने में मैं था या नहीं? आहा..हा..! ऐसा मैं हूँ, तो अनादि-अनन्त काल में अनादिकाल में मैं कहाँ रहा? आहा..हा..! नरक और निगोद, भाई! ये अनन्त अवतार करते-करते यह दुःखी है, दुःखी है। सन्निपातवाला प्रसन्न होता है, दाँत निकालता है परन्तु वह दुःखी है। आहा..हा..! इसी प्रकार अज्ञानी कुछ पैसा और शरीर अनुकूल (हो उसमें) प्रसन्नता (अनुभव करता है) वह तो सन्निपाती के दाँत हैं। आहा..हा..! यहाँ कहते हैं कि वह दुःख मिटाने का उपाय यह है। आहा..हा..! ज्ञाता का ध्यान करते-करते (ध्यानमय हो गया)।

अरे! भगवान के नाम से ऐसा लिखा? गजब किया, प्रभु! टीका में लिखा, माँस खाते हैं। अर र र!

मुमुक्षु : अभी के आचार्य ने नहीं, वृद्ध आचार्य ने लिखा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वृद्ध; श्वेताम्बर के सब पुराने साधु मिथ्यादृष्टि, उन्होंने लिख डाला उसमें। अरे! भगवान! इस दुनिया को बेचारे को खबर नहीं होती। बनिया-धन्धे के कारण निवृत्त नहीं होते। छह-सात घण्टे सोवें, छह-सात घण्टे स्त्री-पुत्र को प्रसन्न रखने में रहना, आहा..हा..! एकाध-दो घण्टे सुनने को मिले तो सब उल्टा सुनने को मिले। अरे! जिन्दगी जाती है, भाई! आहा..हा..! इसलिए इस सत्य का निर्णय करने का इसे समय नहीं मिलता।

यहाँ तो भगवान ज्ञानमय हो गया। ध्यानमय हो गया, एकाग्रतामय हो गया। आहा..हा..! **अन्दर चैतन्य के नन्दनवन में...** मेरुपर्वत में नन्दनवन है। वहाँ नन्दनवन में अनेक फल और फूल फलते हैं। इसी प्रकार यह भगवान आत्मा **चैतन्य के नन्दनवन में...** आहा..हा..! अनन्त गुण का नन्दनवन, प्रभु! आहा..हा..! **उसे सबकुछ मिल गया;...** अन्दर में अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ प्रभु, वह जहाँ अन्तर में मिल गया, सबकुछ मिल गया। आहा..हा..! समझ में आया? सम्यग्दर्शन में नन्दन वन मिल गया! केवलज्ञान की तो बात क्या करना!! आहा..हा..! मुनि की दशा... आहा..हा..! मुनिदशा का क्या कहना! आहा..हा..! जिन्हें-मुनि को तो नन्दन वन खिल गया। अनन्त-अनन्त प्रचुर आनन्द के वेदन की मोहरछाप जिन्हें पड़ी है। आहा..हा..! वह मुनि किसे कहें, भाई! आहा..हा..! यह कहते हैं कि हमारे चैतन्य के नन्दनवन में सबकुछ मिल गया। आनन्द, शान्ति, प्रभुता, स्वच्छता (आदि सब मिल गया)। भगवान आत्मा का स्वभाव निरोग है। राग का रोग उसमें है ही नहीं। **सबकुछ मिल गया;...** आहा..हा..! अन्तरस्वरूप भगवान, अनन्त गुण-रत्न का भण्डार असंख्य प्रदेश की दृष्टि और अनुभव हुआ और मिल गया - सब चीज़ मिल गयी। आहा..हा..! **अब बाहर क्यों जाये?..** आहा..हा..! जहाँ भगवान अनन्त आनन्दादि अन्दर में मिल गया, वह बाहर क्यों जाये? आहा..हा..! वह भगवान बाहर किसलिए आवे? विकल्प आहार लेने का और... आहा..हा..!

ग्रहण करने योग्य आत्मा को ग्रहण कर लिया,... आहा..हा..! परमानन्द का नाथ प्रभु, जैसे पचास मण की बर्फ की शिला होती है या नहीं? मुम्बई में बहुत होती है। पचास-पचास मण की शिला ट्रक भरकर जा रही होती है। पचास-पचास मण की शिला, किसकी? बर्फ.. बर्फ। खुली, हों! उसे कोई वस्त्र ढँका न हो। इसी प्रकार यह भगवान अनन्त आनन्द की शिला अन्दर पड़ी है। आहा..हा..! अरे रे! कैसे जँचे? वह शिला मिल

गयी। आहा..हा..! जैसे वह शीतलता है, वैसे इसमें शान्ति.. शान्ति. शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. और आनन्द.. आनन्द.. आनन्द.. अतीन्द्रिय आनन्द – ऐसी शिला अन्दर से मिल गयी। आहा..हा..! वह बाहर क्यों जाये? बाहर विकल्प में किसलिए जाये? आहा..हा..! **ग्रहण करने योग्य आत्मा को ग्रहण कर लिया,...**

छोड़ने योग्य सब छूट गया;... रागादि, पर्यायबुद्धि आदि सब छूट गया। आहा..हा..! **अब किसलिये बाहर जाये?** आहा..हा..! यह २३२ (बोल पूरा हुआ।) ४३२ (बोल) है। यह २३२ आया। इसमें ४३२ बोल हैं। २०० बाकी रहे। सवा तीन महीने हुए। आहा..हा..! किसी की पुस्तक है न? उसमें भी इसका लेख आया है। चेतनजी! यह बताया न? उसमें भी बहिन का आया है। बहिन के वचनामृत। पुस्तक की समालोचना करते हैं न? उसमें आया है। भगवान माँस खाये, यह आया न? उसमें यह आया है, बहिन के वचनामृत आये हैं, आये हैं ऐसे हैं – ऐसा करके महिमा की है। अन्यमती वह... अन्यमती, अर्थात् यह जैनी भी कहाँ समझदार हैं? उन लोगों ने भी यह पढ़कर उसे ऐसा हो गया कि अहा! यह पुस्तक आज आयी है।

अन्दर से ज्ञान एवं आनन्द असाधारणरूप से पूर्ण प्रगट हुए उसे अब बाहर से क्या लेना बाकी रहा? निर्विकल्प हुए सो हुए, बाहर आते ही नहीं॥२३३॥

२३३, **अन्दर से ज्ञान एवं आनन्द असाधारणरूप से पूर्ण प्रगट हुए...** अन्दर से ज्ञान और आनन्द असाधारण अर्थात् दूसरी वस्तु में नहीं, ऐसे पूर्ण प्रगट हुए। आहा..हा..! अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द पर्याय में परमात्मा को प्रगट हुए। आहा..हा..! त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव परमेश्वर वीतराग परमात्मा को अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द असाधारण, अन्यत्र नहीं – ऐसे पूर्ण प्रगट हुए। **उसे अब बाहर से क्या लेना बाकी रहा?** आता है न? बाकी क्या रहा? आहा..हा..!

निर्विकल्प हुए सो हुए,... वह तो पूर्णानन्द के नाथ में निर्विकल्प अर्थात् विकल्परहित हुए, वह हुए सो हुए। **बाहर आते ही नहीं।** आहा..हा..! यह २३३ (बोल), **आते 'ही' नहीं।** सम्यग्दृष्टि ज्ञानी-धर्मात्मा अन्दर में जाते हैं तो निर्विकल्प अनुभव होता है परन्तु उन्हें

कमजोरी है तो विकल्प आता है। नीचे राग आता है, परन्तु वह राग आता है, वह दु:खरूप लगता है। आहा..हा..! व्रत का, भक्ति का विकल्प आता है परन्तु धर्मी को वह दु:खरूप लगता है। आहा..हा..! ऐसी बात है। पूरी बात में ही अन्तर है। वे लोग कहते हैं न? 'आणंद कहे परमाणंदा माणसे माणसे फेर, एक लाखे तो न मले न एक तांबियाना तेर।' इसी प्रकार भगवान कहते हैं कि तुझमें और मुझमें बात-बात में अन्तर है। आहा..हा..! **निर्विकल्प हुए सो हुए,...** आहा..हा..!

मुझे अभी बहुत करना बाकी है—ऐसा माननेवाले को ही आगे बढ़ने का अवकाश रहता है। अनन्त काल में 'मुझे आत्मा का कल्याण करना है' ऐसे परिणाम जीव ने अनेकों बार किये, परन्तु विविध शुभभाव करके, उनमें सर्वस्व मानकर वहाँ सन्तुष्ट हो गया। कल्याण करने की सच्ची विधि नहीं जानी ॥२३४॥

२३४, **मुझे अभी बहुत करना बाकी है...** आहा..हा..! मेरा आत्मा शुद्ध चैतन्य भगवान, उसका सम्यग्दर्शन हुआ, उसका ध्यान करने से निर्विकल्पदशा प्रगट हुई, तथापि धर्मी समकिती अभी गृहस्थाश्रम में है, (उसे ऐसा लगता है कि) **मुझे अभी बहुत करना बाकी है...** आहा..हा..! स्वरूप में लीनता करना बहुत बाकी है। आहा..हा..! समझ में आया? यह लीनता करना बहुत बाकी है, हों! आहा..हा..!

मुझे अभी बहुत करना बाकी है—ऐसा माननेवाले को ही आगे बढ़ने का अवकाश रहता है। परन्तु कुछ ज्ञान हुआ और हम हो गये पूर्ण.. आहा..हा..! उसे बढ़ने का अवकाश नहीं रहा, वहाँ रुक गया। आहा..हा..! **अनन्त काल में...** अनन्त-अनन्त काल हुआ। **'मुझे आत्मा का कल्याण करना है' ऐसे परिणाम जीव ने अनेकों बार किये,...** दिगम्बर जैन साधु अनन्त बार हुआ। दिगम्बर साधु, हों! वस्त्र का टुकड़ा नहीं, ऐसा मुनि हुआ, परन्तु मिथ्यादृष्टि (रहा)। यह राग की क्रिया मेरी है और राग पर उसका लक्ष्य है। आहा..हा..!

'मुझे आत्मा का कल्याण करना है' ऐसे परिणाम जीव ने अनेकों बार किये, परन्तु विविध शुभभाव करके, उनमें सर्वस्व मानकर वहाँ सन्तुष्ट हो गया। साधु हुआ।

पंच महाव्रत के भाव आये, बस! वे पंच महाव्रत, वह शुभराग है। वह कहीं चारित्र नहीं, समकित नहीं, वह वस्तु नहीं। पंच महाव्रत के विकल्प, हों! वह तो अभी है ही नहीं। आहा..हा..! नौवें ग्रैवेयक गया, प्रत्येक प्राणी 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो' मुनिव्रत धारण करके प्रत्येक प्राणी ने हजारों रानियाँ छोड़ी, बाल ब्रह्मचारी रहा, मुनिपना ले लिया। बाह्य की क्रिया (की) परन्तु आत्मज्ञान नहीं, सम्यग्दर्शन नहीं। समझ में आया? यह कहा न?

मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो
पै निज आतम ज्ञान बिना सुख लेश न पायो।

यह महाव्रत के परिणाम आस्रव दु:खरूप है। अरे रे! कठिन काम। यहाँ तो महाव्रत को चारित्र मानते हैं। इसे अभी तो महाव्रत भी कहाँ है? परन्तु स्त्री-पुत्र छोड़कर, दुकान छोड़कर बैठे, वस्त्र छोड़े, हो गये साधु। अरे! भाई! साधु बनना, वेश लेना, वह सरल है परन्तु अन्दर साधु होना, अन्दर साधुपना होना, वह अन्दर कोई अलौकिक चीज़ है, बापू! आहा..हा..! समझ में आया? ऐसी बातें, लो!

'मुझे आत्मा का कल्याण करना है' ऐसे परिणाम जीव ने अनेकों बार किये, परन्तु विविध शुभभाव करके, उनमें सर्वस्व मानकर वहाँ सन्तुष्ट हो गया। सरस.. सरस.. ओहोहो..! हजारों रानी छोड़ी, राजपाट छोड़े, दुकान छोड़ी, वस्त्र छोड़े। अब, क्या त्याग बाकी रहा? ऐसा जो शुभभाव था, उसमें सन्तुष्ट हो गया। वह तो शुभभाव है, वह कहीं धर्म नहीं है, चारित्र नहीं है। आहा..हा..! **उनमें सर्वस्व मानकर वहाँ सन्तुष्ट हो गया।** बहुत किया मैंने तो... ओहो..हो..! करोड़ों की दुकान की आमदनी थी, वह छोड़कर मैं त्यागी हुआ हूँ। धूल में भी नहीं, सुन न अब! आहा..हा..! राग से भिन्न भगवान का ज्ञान नहीं हुआ तो उसने कोई त्याग नहीं किया। आहा..हा..! समझ में आया? महाव्रत के परिणाम जो शुभराग है वह तो। उसका जिसे प्रेम है, उसने आत्मा का अनादर किया, आत्मा का त्याग किया। अरे रे! बाल ब्रह्मचारी हो, परन्तु वह तो शुभभाव है। वह मूल ब्रह्मचर्य नहीं। आहा..हा..! ब्रह्मचर्य तो आनन्दरूपी भगवान ब्रह्म, आनन्द में रमना, चरना, अतीन्द्रिय आनन्द में (चरना), उसका नाम ब्रह्मचर्य है। आहा..हा..! शरीर से ब्रह्मचर्य पालन किया तो हो गया... आहा..हा..! हम तो बाल ब्रह्मचारी हैं। वह शुभभाव में सन्तुष्ट हो गया। वस्तु पड़ी रही। ऐसी बातें बहुत कठिन। समझ में आया?

कल्याण करने की सच्ची विधि नहीं जानी। वह तो शुभभाव है। आहा..हा..! परन्तु कल्याण करने की राग से भिन्न मेरी वस्तु है, उसकी दृष्टि करके अनुभव करना, उस विधि को भूल गया। आहा..हा..! क्रियाकाण्ड के रास्ते चढ़ गया। आहा..हा..! वह शुभराग है। नौवें ग्रैवेयक में जब गया, तब जो शुभराग था, वैसा तो अभी शुभराग होता ही नहीं, अज्ञानी को भी। समझ में आया? अज्ञानी को भी, वह नौवें ग्रैवेयक गया (तब) इतनी राग की मन्दता शुक्ललेश्या (थी)। शुक्ललेश्या, हों! शुक्लध्यान नहीं। आहा..हा..! उसकी चमड़ी उतारकर नमक छिड़के (परन्तु) क्रोध न करे—ऐसी क्रिया अनन्त बार की है परन्तु वहाँ वह राग की क्रिया है, उसमें सन्तुष्ट हो गया। आहा..हा..! ऐसी बात!

यह देश के लिये शहीद नहीं होते? देश के लिये मरते हैं। ऐसा मानो कि.. ओहो..! बालमरण है, मूढ़ मरण है, सुन न! ऐई! देश कहाँ तेरा था, कि देश के लिये तूने देह छोड़ा? तेरा देश तो अन्दर है। असंख्य प्रदेशी अनन्त गुण का धाम, तेरा धाम तो यहाँ अन्दर है। इस मेरे देश के लिये मर गया, जाये नरक और निगोद में जायेगा। ऐई! बहुत कठिन, भाई! लौकिक करनेवालों को भी कठिन पड़ता है। आहा..हा..!

कल्याण करने की सच्ची विधि नहीं जानी। २३४ (बोल पूरा हुआ)।

स्वतः सिद्ध वस्तु का स्वभाव वस्तु से प्रतिकूल क्यों होगा? वस्तु का स्वभाव तो वस्तु के अनुकूल ही होता है, प्रतिकूल ही ही नहीं सकता। स्वतःसिद्ध वस्तु स्वयं अपने को दुःखरूप हो ही नहीं सकती॥२३५॥

अब एक न्याय देते हैं **स्वतः सिद्ध वस्तु का स्वभाव वस्तु से प्रतिकूल क्यों होगा?** क्या कहते हैं? भगवान आत्मा जो वस्तु का स्वरूप है, वह तो आनन्द है, ज्ञान है, शान्ति है, वीतरागता है। वह तो वस्तु का स्वभाव, वस्तु से प्रतिकूल कैसे होगा? रागादि होते हैं, वह तो वस्तु के स्वभाव से विरुद्ध हैं। आहा..हा..! समझ में आया? **स्वतः सिद्ध वस्तु का स्वभाव वस्तु से प्रतिकूल क्यों होगा?** ज्ञानानन्द आदि अपना स्वभाव, वह स्वयं से प्रतिकूल कैसे होगा? दया, दान के रागादि होते हैं, वे तो स्वभाव से विरुद्ध भाव हैं। आहा..हा..! ऐसी बातें अब। एक तो धन्धे के कारण निवृत्त नहीं हैं।

उस जापानवाले ने लिखा है। जापानवाले ने नहीं? जैनधर्म-अनुभूति वह जैनधर्म

है–ऐसा लिखा है। आत्मा रागरहित, आत्मा आनन्दस्वरूप की अनुभूति करे, वह जैनधर्म है। जापान का कोई ऐतिहासिक है। फिर उसने लिखा है, बनियों को यह जैनधर्म मिला और बनिये पूरे दिन व्यापार में घुस गये। ऐई! जापान का एक ऐतिहासिक है। पिता–पुत्र। पिता साठ वर्ष का, पुत्र सत्रह वर्ष का। दोनों को यह रस है। ऐतिहासिक खोजक है न? समाचार–पत्र में आया है। इतिहास की खोज करते–करते सब वाँचन किया। निकाला कि जैनधर्म किसे कहते हैं? भले उसे अनुभव न हो, परन्तु वाँचन (किया)। अनुभूति, वह जैनधर्म है। आत्मा राग से भिन्न, दया, दान, व्रत के विकल्प से भिन्न अपनी वस्तु का अनुभव करे, उसका नाम अनुभूति और जैनधर्म है। यहाँ तो लोग दया पाले और यह करे, तो जैनधर्मी (ऐसा मानते हैं)। धूल में भी नहीं, सुन न! धूल में भी नहीं अर्थात् क्या? तुझे पुण्यानुबन्धी पुण्य भी नहीं होगा। आहा..हा..! पापानुबन्धी पुण्य होगा। धूल है।

स्वतः सिद्ध वस्तु का स्वभाव... स्वतः अपने से जो वस्तु का–आत्मा का स्वभाव है, वह **वस्तु से प्रतिकूल क्यों होगा?** स्वभाव से विरुद्ध नहीं होगा। **वस्तु का स्वभाव तो वस्तु के अनुकूल ही होता है,...** आहा..हा..! ज्ञान–आनन्द आदि वस्तु का स्वभाव है तो ज्ञान, आनन्दरूप होता है। **वस्तु के अनुकूल ही होता है,...** आहा..हा..! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञानस्वभाव, वह अपने अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञानस्वभावरूप पर्याय में होता है। समझ में आया? उसे आत्मा कहते हैं। आत्मा का स्वभाव छोड़कर राग और दया, दान का विकल्प करता है, वह तो स्वभाव से विरुद्ध है। आहा..हा..! ऐसी बातें! परन्तु अब बहुत लोग सुनते हैं कि यह क्या कहते हैं? ४४ वर्ष से एक ही बात लगा रखी है। ४४ वर्ष चलते हैं इस जंगल में। बीस लाख तो यहाँ की पुस्तकें प्रकाशित हो गयी हैं। बीस लाख। अभी लाखों छपती हैं। आहा..हा..! बात तो उसमें यह है। आहा..हा..!

वस्तु का स्वभाव... आत्मा पदार्थ है, वस्तु है अर्थात् उसमें अनन्त गुण का वास है, इसलिए वस्तु है। वास्तु लेते हैं न? वास्तु लेते हैं तो किसी मकान में लेते हैं या किसी वृक्ष के ऊपर लेते हैं? यह वास्तु लेते हैं न? फिर पाँच–दस हजार खर्च करते हैं, लापसी उड़ाते हैं, बड़े कार्यकर्ताओं को बुलावे और पैसे का धुँआ करे। किया होगा न ये सब? आहा..हा..! कार्यकर्ता को बुलावे, बड़े सेठ को बुलावे। आहा..हा..! यहाँ कहते हैं, वह तो राग की क्रिया है, वह कहीं स्वभाव के अनुकूल नहीं है।

वस्तु का स्वभाव तो वस्तु के अनुकूल ही होता है, प्रतिकूल हो ही नहीं सकता। आहा..हा..! जिसने वस्तुस्वभाव ज्ञाता-दृष्टा, आनन्द है - ऐसा जिसे स्वीकार हुआ, उसे तो स्वभाव शुद्ध ही उत्पन्न (प्रगट) होता है। आहा..हा..! क्या कहा, समझ में आया? न्याय सूक्ष्म है। वस्तु जो भगवान आत्मा, उसमें अनन्त-अनन्त शुद्धि के गुण भरे हैं। उसका जिसे स्वीकार हुआ तो उसकी पर्याय में वस्तु का स्वभाव ही परिणमेगा। अनुकूल होगा, प्रतिकूल नहीं होगा। आहा..हा..! देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, पंच महाव्रत का राग, वह तो स्वभाव से विरुद्ध है। जिसकी स्वभाव की दृष्टि हुई और स्वभाव के प्रति आदर हुआ तो उसका तो स्वभावरूप अनुकूल परिणमन ही होगा। राग का प्रतिकूल (परिणमन) होगा नहीं। आहा..हा..! और ये रागादि आते हैं तो इन्हें जानने में अनुकूल स्वभाव में रहनेवाला वह है। आहा..हा..! ऐसी बात है। है?

स्वतःसिद्ध वस्तु स्वयं अपने को दुःखरूप हो ही नहीं सकती। भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु स्वयं से दुःखरूप, रागरूप कैसे हो? आहा..हा..! विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

जिस प्रकार माता से पृथक् पड़े हुए बालक को 'मेरी माँ... मेरी माँ...' इस प्रकार अपनी माता की ही रटन रहा करती है। कोई उससे पूछे कि तेरा नाम क्या है? तो वह कहेगा 'मेरी माँ।' कोई उससे खाने के लिये पूछे तो कहेगा 'मेरी माँ', इस प्रकार वह माता की ही रटन करता है; इसी प्रकार जिन भव्य जीवों को अन्तर में आत्मा की दरकार जगती है, आत्मा की ही रटन और आत्मा की ही चिन्ता जो प्रगट करते हैं, जो आत्मा के अतिरिक्त अन्य की रुचि अन्तरङ्ग में नहीं होने देते, उनका जीवन धन्य है।

अहो! मेरा आत्मा पूर्ण चिदानन्दस्वरूप है। जब तक उसका भान और प्राप्ति न हो, तब तक यथार्थ शान्ति अथवा सुख प्राप्त नहीं हो सकता है। अभी तक का अनन्त काल आत्मभान के बिना भ्रान्ति में गँवाया है, अब एक क्षण भी गँवाना नहीं है। इस प्रकार आत्मा की चिन्तावाला जीव अन्य किसी की रुचि नहीं करता।

(पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, आतम के हित पंथ लाग! में से)